॥ श्रीहरिः ॥

श्रीकालिका पुराण

श्रीकालिका पुराण

अनुक्रमणिका

नम्र निवेदन

पुराण भारत तथा भारतीय संस्कृति की सर्वोत्तम निधि हैं। ये अनन्त ज्ञान-राशि के भण्डार हैं। इनमें इहलौकिक सुख-शान्ति से युक्त सफल जीवन के साथ-साथ मानवमात्र के वास्तविक लक्ष्य–परमात्मतत्त्व की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय और विविध साधन बड़े ही रोचक, सत्य और शिक्षाप्रद कथाओं के रूप में उपलब्ध हैं। इसी कारण पुराणों को अत्यधिक महत्त्व और लोकप्रियता प्राप्त है, परंतु आज ये अनेक कारणों से दुर्लभ होते जा रहे हैं।

कालिका पुराण की महिमा

जो एक बार भी इस कालिका पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके अमृतत्व अर्थात् देवत्य को प्राप्त किया करता है। जिससे मन्दिर में यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता जो पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता। जो प्रतिदिन इसका गोपनीय अध्ययन करता है जे कि यह परम तन्त्र है। हे द्विज श्रेष्ठों! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वेदों क अध्ययन कर लिया है। इस कारण से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है। विलक्षण पुरुष इसके अध्ययन से कृतकृत्य हो जाता है।

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाली भी हो जाता है। जो निरन्तर लोक का पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है। यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है, अतएव उसके लिए नमस्कार है। योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है, जो पुराणों के अधिपति भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न हों। जो उग्र हेतु है, पुराण पुरुष है, जो शाश्वत तथा सनातन

रूप ईश्वर है, जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणों के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिए मैं स्तवन करता हूँ और अभिवादन करता हूँ । जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से स्मरण किया करती है, जो मधुरिपु को भी मोह कर देने वाली हैं, जिसका स्वरूप रमा है और शिवा के स्वरूप से जो भगवान् शंकर का रमण कराया करती है माया आपके विभव को और शुभों को वितरित करे ।

श्री काली के सम्बन्ध में

मार्कण्डेय पुराण के सप्तशती खण्ड में जिन काली देवी का वर्णन है अथवा जिनका जन्म अम्बिका के ललाट से हुआ है वे काली श्री दुर्गा जी के स्वरूपों में से ही एक स्वरूप है तथा आद्या महाकाली से सर्वथा भिन्न है । भगवती आद्या काली अथवा दक्षिणा काली अनादिरूपा सारे चराचर की स्वामिनी हैं जबकि पौराणिक काली तमोगुण की स्वामिनी हैं । दक्षिण दिशा में रहने वाला अर्थात् सूर्य का पुत्र यम काली का नाम सुनते ही डरकर भाग जाता है तथा काली उपासकों को नरक में ले जाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है इसलिए श्री काली को 'दक्षिणा काली' और 'दक्षिण कालिका' भी कहा जाता है । दस महाविद्याओं में काली सर्वप्रधान हैं । अतः इन्हें महाविद्या भी कहा जाता है । वही स्त्रीरूपी 'वामा' 'दक्षिण' पर विजय पाकर मोक्ष प्रदायिनी बनी । इसलिए उन्हें तीनों लोकों में 'दक्षिणा' कहा जाता है ।

श्री काली की उपासना से समस्त विघ्न उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार प्रज्जवलित अग्नि में सभी पतंगे भस्म हो जाते हैं । कालिका पुराण का पाठ करनेवाले साधक की वाणी गंगा के प्रवाह की भाँति गद्य-पद्यमयी हो जाती है और उसके दर्शन मात्र से ही प्रतिवादी लोग निष्प्रभ हो जाते हैं । उसके हाथ में सभी सिद्धियाँ बनी रहती हैं इसमें संदेह नहीं है । मार्गशीर्ष मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी कालाष्टमी होती है जो उपासक इन दिन काली की सन्निधि में उपवास कर जागरण करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं । सात अँगुल

से लेकर बारह अँगुल तक की प्रतिमा घर पर रखने का शास्त्रों का मत है । किन्तु इससे अधिक परिमाण की मूर्ति मन्दिर के लिए उत्तम कही गई है ।

काली देवी की प्रतिष्ठा माघ और आश्विन मास में उत्तम तथा समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है । इन मासों में भी विशेष रूप से कृष्ण पक्ष में प्रतिष्ठा करना श्रेष्ठ माना गया है ।

श्री काली का स्वरूप

काली देवी का वर्णश्याम है जिसमें सभी रंग सन्निहित हैं । भक्तों के विकार-शून्य हृदयरूपी शमशान में उनका निवास है । भगवती चित्तशक्ति में समाहिम प्राणशक्तिरूपी शव के आसन पर स्थित हैं । उनके ललाट पर अमृततत्व बोधक चन्द्रमा है और वे त्रिगुणातीत निर्विकार केशिनी हैं । सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों उनके नेत्र हैं जिनसे वे तीनों कालों को देखती हैं । वे सतोगुण रूपी उज्ज्वल दाँतों से रजोगुण-तमोगुण रूपी जीभ को दबाये हुए हैं । सारे संसार का पालन करने में सक्षम होने के कारण वे उन्नत पीनपयोधरा हैं । वे पचास मातृका अक्षरों की माला धारण करती हैं।तथा मायारूपी आवरण से मुक्त हैं तथा सभी जीव मोक्ष न होने तक उनके आश्रित रहते हैं ।

वे निष्काम भक्तों के मायारूपी पाश को ज्ञानरूपी तलवार से काट देती हैं । वे कालरूपी शक्ति को वास्तविक शक्ति देने वाली विराट् भगवती हैं ।

इसके अतिरिक्त रक्तबीजमर्दिनी श्री काली का स्वरूप वर्णन इस प्रकार है–

सम्पूर्ण विकराल देह चमकते हुए काले रंग की है । उनकी बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें और मुख से जीभ को बाहर निकाले हुए हैं, जो गहरे लाल रंग की है । वह नरमुण्डों की माला तथा कटे हुए हाथों का आसन धारण किए हुए हैं । उनके एक हाथ में खड्ग, दूसरे में त्रिशूल, तीसरे में खप्पर तथा चौथे हाथ में भक्तों को आशीर्वाद प्रदान करती हैं ।

काली की महिमा

- देवी वरदान देने में बहुत चतुर हैं इसलिए उन्हें दक्षिणा कहा जाता है ।
- जिस प्रकार कार्य की समाप्ति पर दक्षिणा फल देने वाली होती है उसी प्रकार देवी भी सभी फलों की सिद्धि को देती हैं ।
- दक्षिणामूर्ति भैरव ने उनकी सर्वप्रथम पूजा की इस कारण भी भगवती का नाम दक्षिणाकाली है ।
- पुरुष को दक्षिण और शक्ति को 'वामा' कहा जाता है । वही वामा दक्षिण पर विजय पाकर महामोक्ष देने वाली बनी ।
- भगवती काली अनादिरूपा आद्या विद्या हैं । हे ब्रह्मस्वरुपिणी एवं कैवल्यदात्री हैं ।
- पाँचों तत्वों तक शक्ति तारा की स्थिति है और सबके अन्त में काली ही स्थित हैं । अर्थात् जब महाप्रलय में आकाश का भी लय हो जाता है । तब यही भगवती काली चित्तशक्ति के रूप में विद्यमान रहती हैं ।
- इन्हीं भगवती की वेद में भद्रकाली के रूप में स्तुति की गई हैं ।
- ये अजन्मा और निराकार स्वरूपा हैं । भावुक आराधक अपनी भावनाओं तथा देवी के गुण कर्मो के अनुरुप उनके काल्पनिक साकार रूप की स्तुति करते हैं । अपने ऐसे भक्तों को भगवती काली मुक्ति प्रदान करती हैं ।
- भगवती काली अपने उपासकों पर स्नेह रखने वाली तथा उनका कल्याण करने वाली हैं ।
- इस प्रकार भगवती की दक्षिणाकाली के नाम से अनेकानेक उपलब्धियाँ हैं । जिस भक्त को जो भी उपलब्धि हो, या जो भी सिद्धि चाहे उसे उसी रूप में महाकाली को स्वीकार करना चाहिए ।

॥ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात् ॥

श्रीकालिका पुराण

कालिका अवतरण वर्णन

पूर्ण रूप से एक ही निष्ठा में रहने वाले हृदय से समन्वित योगियों के द्वारा सांसारिक भय और पीड़ा के विनाश करने के अनेकों उपाय किए गये हैं। ऐसे भगवान् हरि के दोनों चरण कमल सर्वदा आप सबकी रक्षा करें जो समस्त योगीजनों के चित्त में अविद्या के अन्धकार को दूर हटाने के लिए सूर्य के समान हैं तथा यतिगणों की मुक्ति का कारण स्वरूप हैं। विभु के जन्म में शुद्धि-कुबुद्धि के हनन करने वाली है और इन जन्तुओं के समुदाय को विमोहित कर देने वाली है; वह माया आपकी रक्षा करे। समस्त जगती के आदिकाल में विराजमान पुरुषोत्तम ईश्वर को (जो नित्य ही ज्ञान से परिपूर्ण हैं उनको) प्रणाम करके मैं कालिका पुराण का कथन करूँगा।

हिमालय के समीप में विराजमान मुनियों ने परमाधिक श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि के चरणों में प्रणिपात करके उनसे कर्मठ प्रभृति मुनिगण ने पूछा था कि हे भगवान्! आपने तात्त्विक रूप से समस्त शास्त्रों और अंगों के सहित सभी वेदों को सब भली-भाँति मन्थन करके जो कुछ भी साररूप था वह सभी भाँति से वर्णन कर दिया है। हे ब्रह्मन्! समस्त वेदों में और सभी शास्त्रों में जो-जो हमको संशय हुआ था वही आपने ज्ञानसूर्य के द्वारा अन्धकार के ही समान विनिष्ट कर दिया है। हे द्विजों में सर्वश्रेष्ठ! आपके प्रसाद अर्थात् अनुग्रह से हम सब प्रकार से वेदों और शास्त्रों में संशय से रहित हो गये हैं अर्थात् अब हमको किसी में कुछ भी संशय नहीं रहा है।

हे ब्राह्मण ! जो ब्रह्माजी ने कहा था वह रहस्य के सहित धर्मशास्त्र आपसे सब ओर से अध्ययन करके हम सब कृतकृत्य अर्थात् सफल हो गए हैं। अब हम लोग पुनः यह श्रवण करने की इच्छा करते हैं कि पुराने समय में काली देवी ने हरि प्रभु का जो परमयति और ईश्वर थे, उन्हें किस प्रकार से सती के स्वरूप से मोहित कर दिया था। जो भगवान् हरि सदा ही ध्यान में मग्न रहा करते थे, यम वाले और यतियों में परम श्रेष्ठ थे तथा संसार से पूर्णतया विमुख रहा करते थे, उनको संक्षोभित कर दिया था अथवा प्रजापति दक्ष की पत्नियों में परम शोभना सती किस रीति से समुत्पन्न थी तथा पत्नी के पाणिग्रहण करने में भगवान शम्भु ने कैसे अपना मन बना लिया था ? प्राचीन समय में किस कारण से तथा किस रीति से दक्ष प्रजापति के कोप से सती ने अपनी देह का त्याग किया था अथवा फिर वही सती गिरिवर हिमवान् की पुत्री के रूप में कैसे समुत्पन्न हुई ? फिर उस देवी ने भगवान् कामदेव के शत्रु श्री शिव का आधा शरीर कैसे आहृत कर लिया था ? हे द्विजश्रेष्ठ! यह सभी कथा आप हमारे समक्ष विस्तार के साथ वर्णित कीजिए। हे विपेन्द्र ! हम यह जानते हैं कि आपके समान अन्य कोई भी संशयों का छेदन करने वाला नहीं है और भविष्य में भी न होगा सो अब आप यह समस्त वृतान्त बताने की कृपा कीजिए।

मार्कण्डेय जी कहा—आप समस्त मुनिगण अब श्रवण वह करिये जो कि मेरा गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है तथा परम पुण्य-शुभ करने वाला, अच्छा ज्ञान प्रदान करने वाला तथा परम कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। इसे प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले नारद जी से कहा था। इसके पश्चात् नारद जी ने भी बालखिल्यों के लिए बताया था। उन महात्मा बालखिल्यों ने यवक्रीत मुनि से कहा था और यवक्रीत मुनि ने असित नामक मुनि को यही बताया था। हे द्विजगणों ! उन असित मुनि ने विस्तारपूर्वक मुझको बताया था और मैं अब पुरातन कथा को आप सब लोगों को श्रवण कराऊँगा। इसके पूर्व मैं इस जगत् के प्रति परमात्मा चक्रपाणि प्रभु को प्रणिपात करता हूँ।

वे परमात्मा व्यक्त और अव्यक्त सत् स्वरूप वाले हैं–वहीं व्यक्ति के रूप से समन्वित हैं। उनका स्वरूप स्थूल है और सूक्ष्म रूप वाला भी है, वे विश्व के स्वरूप वाले वेधा हैं, वे परमेश नित्य हैं और उनका स्वरूप नित्य है तथा उनका ज्ञान भी नित्य है। उनका तेज निर्विकार है। वे विद्या और अविद्या के स्वरूप वाले हैं, ऐसे कालरूप उन परमात्मा के लिए नमस्कार है। परमेश्वर निर्मल हैं, विरागी हैं, व्यापी और विश्वरूप वाले हैं तथा सृष्टि (सृजन) स्थिति (पालन) और अन्त (संहार) के करने वाले हैं, उनके लिए प्रणाम है।

जिसका योगियों के द्वारा चिन्तन किया जाता है, योगीजन वेदान्त पर्यन्त चिन्तन करने वाले हैं, जो अन्तर में परम ज्योति के स्वरूप हैं उन परमेश प्रभु के लिए प्रणाम करता हूँ। लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी ने उनकी आराधना करके समस्त सुर-असुर और नर आदि की प्रजा का सृजन किया था। उन ब्रह्माजी से दक्ष जिनमें प्रमुख थे ऐसे प्रजापतियों का सृजन करके मरीचि, अत्रि, पुलह, अंगिरस, ऋतु, पुलस्त्य, वशिष्ठ, नारद, प्रचेतस, भृगु–इन सब दश मानस पुत्रों का उन्होंने सृजन किया था। उसी समय में उनके मानस से सुन्दर रूप वाली वरांगनाओं की समुत्पत्ति हुई थी। वह नाम से सन्ध्या विख्यात हुई थी, उसका सायं-सन्ध्या का यजन किया करते हैं। उस जैसी अन्य कोई भी दूसरी वरांगना देवलोक, मर्त्यलोक और रसातल में भी नहीं हुई थी। ऐसी समस्त गुण-गणों की शोभा से सम्पन्न तीनों कालों में भी नहीं हुई है और न होगी। वह स्वाभाविक सुन्दर और नीले केशों के भार से शोभित होती है। हे द्विज श्रेष्ठों ! वह वर्षा ऋतु में मोरनी की भाँति विचित्र केशों के भार से शोभाशालिनी थी। आरक्त और मलिक तथा कर्णों पर्यन्त अलकों से इन्द्र के धनुष और बाल चन्द्र के सदृश शोभायमान थी। विकसित नीलकमल के समान श्याम वर्ण से संयुक्त दोनों नेत्र चकित हिरनी के समान चंचल और शोभित हो रहे थे। हे द्विज श्रेष्ठों ! कानों तक फैली हुई स्वाभाविक चंचलता से संयुक्त परम सुन्दर दोनों भौहें थीं जो कामदेव के धनुष के सदृश नील थीं। दोनों

भौहों के मध्य भाग से नीचे और निम्न भाग से विस्तृत और उन्नत नासिका थी जो मानों ललाट से तिल के पुण्य के ही समान लावण्य को द्रवित कर रही थी। उनका मुख रक्तकमल की आभा वाला और पूर्ण चन्द्र के तुल्य प्रभा से समन्वित था जो बिम्ब फल के सदृश अधरों की अरुणिमाओं और मनोहर शोभित हो रहा था। सौ सूर्य के समान और लावण्य के गुणों से परिपूर्ण मुख था। दोनों ओर से चिबुक (ठोड़ी) के समीप पहुँचने के लिए उसके दोनों कुच मानों समुद्यत हो रहे थे। हे विप्रगणों ! उस सन्ध्या देवी के दोनों स्तवन राजीव (कमल) की कालिका के समान आकार वाले थे, पीन और उत्तुङ्ग निरन्तर रहने वाले थे। उन कुचों के मुख श्याम वर्ण के थे जो कि मुनियों के हृदय को भी मोहित्त करने वाले थे। सभी लोगों ने कामदेव की शक्ति के तुल्य ही उस सन्ध्या के मध्यभाग को देखा था जिसमें वलियाँ पड़ रही थीं तथा मध्य भाग ऐसा क्षीण था जैसे मुट्ठी में ग्रहण करने के योग्य रेशमी वस्त्र था।

उनके दोनों ऊरुओं का जोड़ा ऐसा शोभायमान हो रहा था जो ऊर्ध्वभाग में स्थूल था और करभ के सदृश विस्तृत था और थोड़ा झुका हुआ हाथी की सूँड़ के समान था। जो अँगुलियों के दल से संकुल कुसुमायुध अर्थात् कामदेव के तुल्य ही दिखलाई दे रहा था। उस सुन्दर दर्शन वाली, शरीर की रोमावली से आवृत मुख पर, जिसके पसीने की बूँदें झलक रही थीं, जो दीर्घ नयनों वाली, चारुहास से समन्वित, तन्वी अर्थात् कृश मध्य भाग वाली जिसके दोनों कान परम सुन्दर थे, तीन स्थलों में गम्भीरता से युक्त तथा छः स्थानों से उन्नत उसको देखकर विधाता उठकर हृद्गत को चिन्तन करने लगे थे। वे सृजन करने वाले दक्ष प्रजापति मानस पुत्र मरीचि आदि सब उस परवर्णिनी को देखकर समत्सुक होकर चिन्तन करने लगे थे। इस सृष्टि में इसका क्या कर्म होगा अथवा यह किसकी वर-वर्णिनी होगी। यही वे सभी बड़ी ही उत्सुकता से सोचने लगे थे। हे मुनि सत्तमो ! इस तरह से चिन्तन करते हुए उन ब्रह्माजी के मन से वल्गु पुरुष आविर्भूत होकर

विनिःसृत हो गया था।

वह पुरुष सुवर्ण के चूर्ण के समान पीली आभा से संयुक्त था, परिपुष्ट उसका वक्ष स्थल था, सुन्दर नासिका थी, सुन्दर सुडौल ऊरु जंघाओं वाला था, नील वेष्टित केशर वाला था, उसकी दोनों भौंहें जुड़ी हुई थीं, चंचल और पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख से समन्वित था। कपाट के तुल्य विशाल हृदय पर रोमावली से शोभित था शुभ्र मातंग की सूँड़ के समान पीन तथा विस्तृत बाहुओं से संयुक्त था, रक्त हाथ, लोचन, मुख, पाद और करों से उपद्रव वाला था। उस पुरुष का मध्य भाग क्षीण अर्थात् कृश था, सुन्दर दन्तावली थी वह हाथी के सदृश कन्धरा से समन्वित था। विकसित कमल के दलों के समान उनके नेत्र थे तथा केशर घ्राण से तर्पण था, कम्बु के समान ग्रीवा से युक्त, मीन के केतु वाला प्राँश और मकर वाहन था। पाँच पुरुषों के आयुधों वाला, वेगयुक्त और पुष्पों के धनुष से विभूषित था। कटाक्षों के पात के द्वारा दोनों नेत्रों को भ्रमित करता हुआ परम कान्त था। सुगन्धित वायु से भ्रान्त और शृंगार रस से सेवित इस प्रकार के उस पुरुष को देखकर वे सब मानस पुत्र जिनमें दक्ष प्रजापति प्रमुख थे, विस्मय से आविष्ट मन वाले होते हुए अत्यधिक उत्सुकता को प्राप्त हुए थे और मन विकार को प्राप्त हो गया था। वह पुरुष भी जगतों के प्रति और सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्माजी का अवलोकन करने को विनम्रता से नीचे की ओर अपनी कन्धरा को झुकाकर प्रणिपात करते हुए बोला।

पुरुष ने कहा—हे ब्रह्मण ! मैं अब क्या करूँ ? जो भी आप कराना चाहते हो उसी कर्म से मुझे नियोजित कीजिए। हे विधे ! वह कर्म न्यायोचित होवे जिसके करने से शोभा होती है। हे लोकों के ईश! क्योंकि आप तो जगतों के सृजन करने वाले हैं। अतएव जो भी योग्य अभिधाम हो, स्थान हो और जो मेरी स्त्री हो, वही मेरे लिए दीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस महान् आत्मा वाले पुरुष के इस रीति वाले वचन का श्रवण करके अपनी ही सृष्टि से अत्यन्त विस्मित होकर

एक क्षण तक कुछ भी ब्रह्माजी ने नहीं कहा था। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने मन को सुसंयमित करके और विस्मय का परित्याग करके उसके कर्म के उद्देश्य को आवाहन करते हुए उस पुरुष से कहा था। ब्रह्माजी ने कहा—इस सुन्दर रूप और पाँच पुष्पों के बाणों द्वारा पुरुषों तथा स्त्रियों को मोहित करते हुए तुम सनातनी सृष्टि का सृजन करो। न तो देव, न गन्धर्व, न किन्नर और महोरग, न असुर, न दैत्य, न विद्याधर और न राक्षस, न यक्ष, न पिशाच, न भूत, न विनायक, न गुह्यक अथवा न सिद्ध, न मनुष्य तथा पक्षीगण ये सब तेरे शर के लक्ष्य नहीं होंगे। जो भी पशु, मृग, कीट, पतंग और जल में उत्पन्न होने वाले जीव हैं वे सभी जो कि तेरे शर के लक्ष्य होते हैं वे लक्ष्य नहीं होंगे। मैं अथवा वासुदेव स्थाणु अथवा पुरुषोत्तम ये सभी तेरे वश में हो जायेंगे। अन्य प्राणीधारियों की तो बात ही क्या है। तुम प्रच्छन्न रूप वाला होकर सदा जन्तुओं के हृदय में प्रवेश करते हुए स्वयं सुख को हेतु बनकर सनातनी सृष्टि की रचना करो। सदा ही तेरे पुष्पों के बाण का वह मन मुख्य लक्ष्य होगा। आप सभी प्राणियों के लिए नित्य ही मद और मोद के करने वाले बनो। यही तुम्हारे लिए कर्म मैंने कर दिया है जो कि पुनः सृष्टि करने का प्रवर्त्तक है। अब मैं आपका नाम भी बतलाऊँगा जो कि आपके योग्य ही होगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर यही कहकर सुरश्रेष्ठ मानसों के मुखों का अवलोकन करके क्षण भर में ही अपने पद्मासन पर उपविष्ट हो गये।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उनके अभिप्राय के ज्ञान रखने वाले सब मुनिगण उस समय में उचित मरीच अत्रि प्रमुखों में नाम रखा था। सृष्टि के सृजन करने वाले दक्ष प्रभृति ने मुख के अवलोकन से ही अन्य सारे वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने स्थान और पत्नियों को दे दिया था। ऋषियों ने कहा—तुम हमारे विधाता के चित्त का प्रमथन करके समुत्पन्न हुए हो अतएव तुम मन्थन नाम से ही लोक में विख्यात होओगे। जगती में तुम कामरूप हो और ऐसा तुम्हारे समान अन्य कोई भी नहीं है। अतएव हे मनोभव ! तुम काम नाम से भी जाने

जाओ। मदन करने से तुम मदन नाम वाले भी हो और दर्प से शम्भू भगवान् के कंदर्प हो इसलिए तुम लोक में कन्दर्प नाम से भी प्रसिद्ध होओगे। तुम्हारे बाणों का जो पराक्रम है, ब्रह्मास्त्रों का भी उस प्रकार का नहीं होगा।

स्वर्ग में, मृत्युलोक में, पाताल में और सनातन ब्रह्मलोक में तुम्हारे सभी स्थान हैं क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं। यह दक्ष आपको पत्नी को स्वयं ही देगा जो कि परम शोभना है। हे पुरुषोत्तम! जो यह आदि में होने वाला यथेष्ट प्रजापति है और यह कन्या ब्रह्माजी के मन से समुत्पन्न शमरूपा है जो सन्ध्या नाम से सभी लोक में विख्यात होगी। क्योंकि ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी से भली-भाँति यह वरांगना समुत्पन्न हुई है इसलिए इस लोक में 'सन्ध्या' इस नाम से इसकी ख्याति होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! यह कहकर सब मुनिगण चुप होकर संस्थित हो गये थे। उन्होंने ब्रह्माजी के मुख का अवेक्षण किया और उनके ही समक्ष में विनय से अवनत होकर स्थित हो गए थे। इसके अनन्तर कामदेव भी कुसुमों से उद्भूत अपने दण्ड (धनुष) को ग्रहण करके कान्ता के भुवों के सदृश वेल्लित वह धनुष था तथा वह उन्मादन, इस नाम से विख्यात हो गया था।

हे द्विजोत्तमो ! उसने उसी भाँति पाँचों कुसुमों से विनिर्मित अस्त्रों को ग्रहण किया था जिनके निम्नांकित नाम हैं—हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मरण। इन संज्ञा वाले वे बाण या अस्त्र हैं जो मुनियों के भी मन में मोह उत्पन्न कर देने वाले हैं। उस कामदेव ने जो कि प्रच्छन्न स्वरूप से संयुत था वहीं पर निश्चय के विषय में सोचने लगा था। यहां पर मुनिगण संस्थित हैं तथा स्वयं प्रजापति भी हैं। वे सब आज मेरे शरव्य भूत होंगे, यह निश्चित है। मैं भगवान् विष्णु और योगिराज भगवान् शम्भु भी तुम्हारे अस्त्रों के वशवर्ती होंगे। अन्य साधारण जन्तुओं की तो बात ही क्या है, ऐसा जो कहा था मैं सार्थक करूँ।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—कामदेव ने यह मन से सोचकर और निश्चय करके पुष्पों के धनुष की पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी)

कणों के द्वारा योजित किया था। उस समय में आलीढ़ स्थान को प्राप्त करके तथा अपने धनुष को खींचकर धनुषधारियों में परमनिपुण कामदेव ने यत्नपूर्वक उसे वलय के आकार वाला कर लिया था। हे मुनि श्रेष्ठों! उस कामदेव के द्वारा कोदण्ड (धनुष को) सहित करने पर भली-भाँति आह्लाद के उत्पन्न करने वाली सुगन्धित वायु बहने लगी थी। इसके अनन्तर मोह कर देने वाले कामदेव ने उन घात आदि को और सभी मनुष्यों को पृथक्-पृथक् पुष्पों के शरों से मोहित हो गए थे और मन के द्वारा कुछ विकार को प्राप्त हो गए थे। सभी सन्ध्या को निरीक्षण करते हुए बारम्बार विकारयुक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि स्त्री तो मद के वर्द्धन करने वाली होती ही है अतः सब बढ़े हुए मदन वाले अर्थात् अधिक सकाम हो गए थे। फिर उस मदन अर्थात् कामदेव ने पुनः सबको मोहित कराके तथा उन सबको ऐसा कर दिया था कि वे सब इन्द्रियों के विकारों को प्राप्त हो गए थे। जिस समय में उदीरित इन्द्रियों वाले विधाता ने उसको दीक्षा दी थी उसी समय में उनचास भाव शरीर से समुत्पन्न हो गए थे।

हे द्विजो ! विव्वोक आदि हाव-भाव तथा चौंसठ कलायें कन्दर्प (कामदेव) के शिरों से विंधी हुई सन्ध्या के हो गये थे। उन सबके द्वारा देखी गई वह भी कन्दर्प के शरों के पात से समुत्पन्न कटाक्ष आवरण आदि भावों को बारम्बार करने लगी थी। स्वाभाविक रूप से परम सौन्दर्यशालिनी सन्ध्या मदन के द्वारा उद्भूत उन भावों को करती हुई तनु ऊर्भियों के द्वारा स्वर्ग की नदी (गंगा) की भाँति अत्यधिक शोभायमान हो रही थी। इसके अनन्तर भावों में समन्वित उस सन्ध्या को देखते हुई प्रजापति धर्माम्म अर्थात् पसीने से परिपूर्ण शरीर वाले होकर उन्होंने भी अभिलाषा की थी। तात्पर्य यह है उनके शरीर में पसीना आ गया और उनकी भी इच्छा हुई थी। ईश्वर ने कहा—हे ब्राह्मण ! बड़े आश्चर्य की बात है आपको यह कामभाव कैसे उत्पन्न हो गया जो कि अपनी पुत्री को ही देखकर काम के वशीभूत हो गये हैं। यह तो वेदों के अनुसरण करने वालों के लिए योग्य नहीं है।

आपके ही मुख से कहा हुआ वेदों के मार्ग का निश्चय है कि जैसी माता होती है वैसी ही जामि होती है और जैसी जामि होती है वैसी ही सुता हुआ करती है। हे विधे! हे ब्राह्मण! हे चतुरानन! यह समस्त जगत् धर्म में ही है और कैसे इस क्षुद्रकाम के द्वारा यह सब विघटित कर दिया है?

एकान्त योगी सर्वदा दिव्य दर्शन वाले, किस कारण से और कैसे दक्ष मरीचि आदि मानस पुत्र स्त्रियों में लोलुप हो गये थे? मन्द आत्मा वाला और अभी कर्म को प्राप्त करने को उद्यत हुआ कामदेव भी कैसा अल्प बुद्धि वाला है और समय को नहीं जानता है कि उसने आप लोगों को ही अपने शरों का लक्ष्य बना डाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! उसके लिए धिक्कार है जिसकी कान्तागण हठपूर्वक धैर्य का आकर्षण करके चंचलताओं में उसके मन को मज्जित कर दिया करती है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उन गिरीश भगवान् के इस वचन को श्रवण करके लोकों के ईश लज्जा से एक ही क्षण में दुगुने पसीने से भीगे हुए हो गए थे। इसके उपरान्त चतुरानन ब्रह्माजी ने इन्द्रियसम्बन्धी विकार को निगृहीत करके ग्रहण करने की इच्छा समन्वित होते हुए भी उस कामरूप वाली सन्ध्या का परित्याग कर दिया था। हे द्विजश्रेष्ठो! उसके शरीर से जो पसीना गिरा था उससे अग्निष्वात वर्हिषद पितृगण समुत्पन्न हुए थे। ये सब भिन्न हुए अंजन के सदृश थे और विकसित कमल के समान इनके नेत्र थे। ये अत्यन्त अधिक यति, परमपवित्र तथा संसार से परमाधिक विमुख हुए थे। अग्निष्वात चौसठ सहस्त्र कीर्त्तित किए गए हैं। हे द्विजगणों! छियासी हजार वर्हिषद बताए गए हैं। दक्ष के शरीर से जो पसीना भूमि पर गिरा था उससे सम्पूर्ण गुणों से सुसम्पन्न वरांगनायें उत्पन्न हुई थीं। वे वरांगनायें तन्वंगी, क्षीण मध्यभाग वाली और परम शुभ शरीर की रोमावली संयुत थीं जिनका अंग अत्यधिक कोमल था तथा परम सुन्दर दर्शन पंक्तियाँ थीं और तपे हुए सुवर्ण के ही तुल्य उनके शरीर की रोमावली संयुत थीं और तपे हुए स्वर्ण के ही तुल्य ही उनके शरीर की कान्ति थी। मरीचि उनमें प्रधान

थे ऐसे छः मुनियों ने अपनी इन्द्रियों की क्रिया को निगृहीत कर लिया था। उस समय क्रतु, वशिष्ठ, पुलस्त्य और अंगिरस के आदि चारों का जो प्रस्वेद भूमि पर गिरा था उससे हे द्विजश्रेष्ठो! दूसरे पितृगण समुत्पन्न हुए थे। वह सीमय, आज्पय नाम से तथा अन्य सुकाती थी। वे सभी हविर्भुक् थे जो कव्य वाह प्रकीर्त्तित हुए थे। सोमष जो थे वे ऋतु के पुत्र थे, सुकालिन वशिष्ठ मुनि के पुत्र हुए थे। जो आडयप नामक थे, वे पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे और हविष्मन्त अंगिरा मुनि के सुत हुए थे।

हे विपेन्द्रों! उन अग्निष्वातादिक के उत्पन्न हो जाने पर इसके अनन्तर लोकों के पितृ वर्गों में सब ओर कव्यवाह थे। समस्त प्राणियों के ब्रह्माजी ही पितामह हुए थे और सन्ध्या ही पितृ प्रसूता हुई थी क्योंकि सब उसके ही उद्देश्य से हुआ था। इसके अनन्तर भगवान् शंकर के वचन से वह पितामह बहुत लज्जित हुए थे और शीघ्र ही कुंठित किए हुए मुख से संयुत ब्रह्माजी कामदेव के ऊपर अत्यन्त कुपित हो गए थे। वह कामदेव भी पहले ही उनके अभिप्राय का ज्ञान प्राप्त करके उसने पशुपति विधि से डरे हुए ने शीघ्र ही अपने बाण को समेट लिया था। हे द्विजेन्द्रो! इसके अनन्तर लोगों के पितामह ब्रह्माजी ने अत्यन्त क्रोध में आवष्टि होकर जो कुछ भी किया था उसका आप लोग परम सावधान होकर अब श्रवण कीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त जगतों के पति पद्मयोनि ब्रह्माजी अत्यन्त बलवान् दाह करने वाले पावक (अग्नि) के ही समान कोष्ठ में समाविष्ट होकर प्रज्जवलित हो गये थे और उन्होंने ईश्वर से कहा था कि जिस कारण से आपके ही समक्ष कामदेव ने पुष्पों के बाणों से मुझे सेवित किया है अर्थात् मुझे अपने कुसुम बाणों का लक्ष्य बनाया है अतः हे हर! उसका फल अब आप प्राप्त करिए। यह दर्प से विमोहित कामदेव आपके नेत्रों की अग्नि से निर्दग्ध होगा। हे महादेव! क्योंकि इसने अत्यन्त दुष्कर कर्म किया था। हे द्विजों में परम श्रेष्ठों! इस रीति से ब्रह्माजी ने भगवान् व्योमकेश

(शम्भू) के और महात्मा मुनियों के समक्ष में स्वयं ही कामदेव को शाप दिया था। इसके अनन्तर डरे हुए रति के पति कामदेव ने उसी क्षण में अपने बाणों को छोड़ना परित्यक्त कर दिया था और इस परम दारुण शाप का श्रवण करके प्रत्यक्ष ही प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हो गया था वह कामदेव डर से अति गद्‌गद् होकर तथ्य वचन कहने लगा था।

कामदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! आपने किसलिए मुझे अत्यन्त दारुण शाप दिया है। मैंने आपका कोई भी अपराध नहीं किया है। हे लोकों के स्वामिन्! आप तो न्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं। हे विभो! मैं जो करता हूँ वह सभी आपके ही द्वारा कहा हुआ करता हूँ। यहाँ पर मुझे शाप देना उचित नहीं है क्योंकि मैंने अन्य कुछ करता हूँ। यहाँ पर मुझे शाप देना उचित नहीं है क्योंकि मैंने अन्य कुछ भी कार्य नहीं किया है। आपने स्वयं ही मुझ से कहा था कि मैं तथा भगवान् विष्णु और भगवान् शम्भू ये सभी तेरे शरों के गोचर हैं अर्थात् तेरे बाणों के लक्ष्य होंगे। यह जो कुछ भी आपने ही मुझ से कहा था उसी आपके कथन की परीक्षा मैंने की थी अर्थात् मैंने जाँच की थी कि आपका वचन कहाँ तक सत्य है। हे ब्रह्माजी इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं है। हे जगत् के स्वामिन्! निरपराध मुझको जो यह परम दारुण शाप दे दिया है अब इस शाप का आप शमन कीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–समस्त जगतों के पति ब्रह्माजी ने उस कामदेव के इस वचन को सुनकर उस हुतात्मा कामदेव से पुनः दया से युक्त होकर यह प्रत्युत्तर दिया था। ब्रह्माजी ने कहा–यह सन्ध्या तो मेरी बेटी है क्योंकि इसके प्रकाश से ही तुमने मुझको अपने बाणों का लक्ष्य बना लिया था। इसी कारण से मैंने तुमको शाप दिया था। इस समय में अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है। हे मनोभव अर्थात् कामदेव! अब मैं तुझसे कहता हूँ कि आपको जो मैंने दिया था वह किसी भी तरह से शमन हो जायेगा। तू भगवान् शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्मीभूत होकर भी फिर उनकी ही कृपा से पुनः अपने शरीर की प्राप्ति कर लेगा। जिस समय भगवान् हर कामदेव अपनी पत्नी का

परिग्रह करेंगे उस समय में वे ही स्वयं तुम्हारे शरीर को प्राप्त करा देंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने कामदेव से इतने ही वचन कहकर मानस पुत्र समस्त मुनीन्द्रों के देखते हुए वे अन्तर्हित हो गए थे। सबके विधाता उन ब्रह्माजी के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान शम्भु भी वायु के समान वेग से अपने अभीष्ट देश को चले गए थे। उन ब्रह्माजी के अन्तर्हित हो जाने पर भगवान् शम्भु के भी अपने स्थान पर चले जाने के पश्चात् प्रजापति दक्ष उसकी पत्नी को निर्दर्शित करते हुए कामदेव से बोले—हे कामदेव! यह मेरे देह से समुत्पन्न हुई मेरे ही रूप और गुणों से समन्वित है यह आपके ही सदृश गुणों से युक्त है सो अब तुम इसको अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण कर लो। यह महान् तेज से युक्त सर्वदा आपके ही साथ चरण चलने वाली और इच्छानुसार धर्म से वश में वर्त्तन करने वाली होगी।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—दक्ष प्रजापति ने यह कहकर अपनी देह के पसीने से उत्पन्न हुई पुत्री को कामदेव के लिए उसके आगे करके दे दिया था और उसका नाम 'रति' यह कहकर ही प्रदान किया था। कामदेव भी उस परम सुन्दरी रति नाम वाली वराँगना को देखकर उस रति में अत्यधिक अनुरक्त होकर अपने ही बाण के द्वारा विद्ध होकर मोह को प्राप्त हो गया था। क्षणमात्र में होने वाली प्रभा के ही समान वह एकान्त्र गौरी और मृगी के समान लोचनों वाली तथा चंचल उपांगों से समन्वित मृगी की भाँति उसके ही तुल्य परम शोभित हुई थी। उस रति की दोनों भौंहों को देखकर कामदेव ने संशय किया था कि क्या विधाता ने मुझे उन्माद वाला बनाने के लिए यह कोदण्ड (धनुष) निवेषित किया है। हे द्विजोत्तमो! उस रति के कटाक्षों की शीघ्र गमन करने वाली गति को देखकर अर्थात् शीघ्र ही हृदय को बिद्ध कर देने वाली चाल को देखते हुए उसे अपने अस्त्रों की शीघ्रगामिता और सुरन्दरता पर श्रद्धा नहीं रह गयी थी। तात्पर्य यही है कि उसके (रति के) कटाक्षों की गति के सामने अपने बाणों की गति कामदेव को तुच्छ प्रतीत होने लग गयी थी। उस रति की स्वाभाविक रूप से सुगन्धित

धीर श्वासों की वायु का आघ्राण करके कामदेव ने मलय पर्वत की गन्ध को लाने वाली वायु में श्रद्धा का त्याग कर दिया था। कथन का अभिप्राय यह है कि मलय मारुत भी उसके श्वासानिल के समाने हेय प्रतीत हो रही थी। पूर्णचन्द्र के समान भौंहों के चिह्न से लक्षित उसके मुख को देखकर कामदेव ने उसके मुख और चन्द्र में किसी प्रकार के भेद का निश्चय नहीं किया था। उस रति के दोनों स्तनों का जोड़ा सुनहरी कमल की कलिका के जोड़े के ही समान था। उन स्तनों के ऊपर जो कृष्ण वर्ण से युक्त चूचक थे (काली घुंडियाँ) वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों कमल की कलिकाओं पर भ्रमर बैठे हुए रसपान कर रहे हों।

अत्यन्त दृढ़ (कठोर) पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनों के मध्य भाग से नीचे की ओर जाती हुई नाभि पर्यन्त रहने वाली, तन्वी सुन्दर, आयंत और शुभ रसों की पंक्ति को कामदेव ने भ्रमरों की पंक्ति से संम्भृत (संयुत) पुष्प धनुष की ज्या (डोरी) को भी विस्मृत कर दिया था क्योंकि उसका ग्रहण करके इसको ही देखता है। पुनः उसके ही सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसकी गम्भीर नाभि के रन्ध्र (छिद्र) के अन्दर चारों ओर त्वचा से वह आवृत थी। उसके मुख कमल पर जो दो नेत्रों को जोड़ा था वह ऐसी प्रतीत होता था मानों थोड़ी लालिमा से युक्त कमल हो। हे द्विज श्रेष्ठों ! जिसका मध्य भाग क्षीण था ऐसे शरीर से वह रति निसर्ग अष्टपद की प्रभा वाली थी। उसको कामदेव ने रत्नों द्वारा विरचित वेदी के ही समान देखा था। उसके उरुओं का युगल अत्यन्त कोमल और कदली के स्तम्भ के समान आयत एवं स्निग्ध (चिकना) था। कामदेव ने उसको अपनी शक्ति के ही तुल्य मनोहर देखा था। थोड़ी रक्तिमा से युक्त पार्ष्णि पादाग्र प्रान्त भाग से संयुक्त दोनों पदों के जोड़े को कामदेव ने उसमें स्थित अनुराग से परिपूर्ण चित्र देखा था। उस रति के दोनों हाथों को जो ढाक के पुष्पों के समान लाल नाखूनों से युक्त थे और परम सूक्ष्म सुवृत्त अंगुलियों को परम मनोहर देखा था।

हे द्विज सत्तमो ! यह देखकर कामदेव ने यह मान लिया था कि मेरे अस्त्रों से द्विगुणित हुए अस्त्रों के द्वारा क्या यह मुझको मोहित करने के लिए उद्यत हो रही है ? उसकी दोनों बाहुओं का जोड़ा मृणाल के जोड़े के समान अधिक सुन्दर था। वह अत्यन्त कान्ति संयुत जल के प्रवाह के समान मृदु और स्निग्ध शोभित हो रहा था। उसका केशों का पाश अत्यधिक मनोहर नील वर्ण वाले मेघ के सदृश था और कामदेव का प्रिय वह चमरी गौ के पूँछ के बालों के भार के समान प्रतीत होता है। उस अत्यधिक मनोहर रति देवी का काम अवलोकन करके विकसित लोचनों वाला हो गया था। उसी रति की विशेष स्वरूप शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह रति देवी उपकी कान्ति रूपी जल ओघ (समूह) से सम्पूर्ण थी, वह अपने कुचों के मुख कमल की कालिका वाली थी, पद्म के सदृश मुख से समन्वित थी, सुन्दर बाहुरूपी मृगालीश (चन्द्र) की कला से संयुत थी, यह रति देवी दोनों भौंहों के युग्म के विभ्रमों के समूह से तनूर्मियों से परिराजित थी, वह कटाक्ष पातरूपी भ्रमरों को समुदाय वाली थी, वह नेत्ररूपी नील कमलों से समन्वित थी, वह शरीर की रोमावलि के शैवाल से युक्त थी, वह मनरूपी द्रुमों के विशातन करने वाली थी, वह रति गम्भीर नाभिरूपी ह्रद से युक्त थी, वह दक्षरूपी हिमालय गिरि से सुमुत्पन्न हुई गंगा की भाँति महादेव की तरह उत्फुल्ल लोचन थी। उस समय में मोद के भार से युत आनन वाले कामदेव ने विधाता के द्वारा दिए हुए सुदारुण शाप को भूलकर प्रजापति दक्ष से कहा था।

कामदेव ने कहा—हे विभो ! भली-भाँति परमाधिक स्वरूप लावण्य से समन्वित इस सहचारणी के द्वारा मैं भगवान् शम्भु को मोहित करने की क्रिया में समर्थ हो सकूँगा फिर अन्य जन्तुओं से क्या प्रयोजन है। हे अनघ अर्थात् पिष्पाप ! जहाँ-जहाँ पर मेरे द्वारा धनुष का लक्ष्य किया जाता है वहीं-वहीं पर इसके द्वारा भी रमण नामक माया से चेष्टा की जायेगी। जिस समय में मैं देवों के आलय अर्थात् स्वर्ग में जाता हूँ अथवा पृथ्वी या रसातल में गमन किया करता हूँ उसी समय

में यह भी सर्वदा चारुहास वाली हो जाया करेगी। जिस प्रकार लक्ष्मी साथ गमन करने वाली होती है और मेघों के साथ विद्युत रहा करती है उसी भाँति मेरी प्रजाध्यक्ष सहायिनी होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–कामदेव ने इस रीति से यह कहकर रति देवी को बहुत ही उत्सुकता के सहित होकर ग्रहण किया था जिस प्रकार से सागर से समुत्थित उत्तमा लक्ष्मी को भगवान् हृषीकेश ने ग्रहण कर लिया था। भिन्न पीतप्रभा वाला कामदेव उस रति के साथ शोभित हुआ था जिस प्रकार से सन्ध्या के समय में मनोहर सौदामिनी के साथ मेघ की शोभा हुआ करती है। इस रीति से बहुत ही अधिक मोद से युक्त रति के पति कामदेव ने उस रति को अपने हृदय में विद्या को योगदर्शी के ही समान परिग्रहण किया था। रति ने भी परम श्रेष्ठ पति को प्राप्त करके परमाधिक सन्तोष को प्राप्त किया था अर्थात् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई थी। जैसे कमल से समुत्पन्ना पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली लक्ष्मी भगवान् हरि को प्राप्त करके सन्तुष्ट हो गयी थी।

बसन्त आगमन वर्णन

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा–तभी से लेकर ब्रह्माजी भी समय-समय में ही परिपीडित होकर चिन्तन किया करते थे कि भगवान् शम्भु ने मेरी केवल कान्ता के प्रति अभिलाषा को ही देखकर मुझे बुरा कह दिया था वही शम्भु अब मुनिगणों के ही समक्ष में दाराओं को किस तरह से ग्रहण करेंगे अथवा कौन सी नारी उन शम्भु की पत्नी होगी और कौन सी नारी है जो उनके मन में स्थान बनाकर अवस्थित हो रही है, जो योग के मार्ग से भ्रष्ट करके उनको मोहित करेगी। उनका मोह न करने में कामदेव भी समर्थ नहीं हो सकेगा। वे तो नितान्त योगी हैं, वे वीरांगनाओं के नाम को भी सहन नहीं किया करते हैं। मध्य और अन्त में सृष्टि होती है उनका वध अन्य कारित नहीं है अर्थात् अन्य किसी के भी द्वारा नहीं किया जा सकता है। इस भूमण्डल में कोई ऐसे होंगे जो महान् बलवान् मेरे द्वारा बाध्य होंवे। कुछ भगवान् विष्णु के

वारणीय हैं और उपाय से कुछ शम्भु के हैं। उस सांसारिक भोगों के सुखों से विमुख तथा एकांत विरागी भगवान् शम्भु के विषय में इससे अन्य कोई भी कर्म नहीं करेगा, इसमें संशय नहीं है।

लोकों के पितामह लोकेश ब्रह्माजी यही चिन्तन् करते हुए ने आकाश में स्थित होते हुए उन्होंने भूमि में स्थित दक्ष आदि को देखा था। रति के साथ मोह से समन्वित कामदेव को देखकर ब्रह्माजी फिर वहाँ पर गए और कामदेव को सन्त्वना देते हुए उससे बोले--हे मनोभव अर्थात् कामदेव ! आप इस अपनी सहचारिणी पत्नी रति के साथ में शोभायमान हो रहे हैं और यह भी आपके साथ संयुक्त होकर अत्यधिक शोभित हो रही है। जिस रीति से लक्ष्मी देवी से भगवान् होती है। जैसे चन्द्रमा से रात्रि और निशा से चन्द्र शोभायमान होता है ठीक उसी भाँति आप दोनों की शोभा होती है और आपका दाम्पत्य पुरस्कृत होता है। अतएव आप जगत् के केतु हैं और विश्वकेतु हो जायेंगे। हे वत्स ! अब तुम इस समस्त जगत् के हित सम्पादित करने के लिए पिनाकधारी भगवान् शम्भु को मोहित कर दो जिससे सुख के मन वाले भगवान् शम्भु द्वारा का परिग्रह कर लेवें। किसी भी विजन देश में, स्निग्ध प्रदेश में, पर्वतों पर और सरिताओं में जहाँ-जहाँ पर ईश गमन करें वहाँ-वहाँ पर ही इसके साथ उनको मोहयुक्त कर दो।

इस वनिता से विमुख भगवान् हर को जो कि पूर्णतया संयत आत्मा वाले हैं मोहित कर दो। तुम्हारे बिना अर्थात् वाला त्रिभुवन में नहीं है। हे मनोभव ! भगवान् हर के सानुराग हो जाने पर अर्थात् दाम्पत्य जीवन के सुखभोगों के अभिलाषी होने पर आपके शाप की भी उपशान्ति हो जायेगी। इस कारण आप इस समय अपना ही हित करो। हे कामदेव ! अनुराग से युक्त होकर जब शम्भु वरारोह की इच्छा करें तो उस अवसर पर तुम्हारे उपभोग के लिए ये तुमको सम्भावित अवश्य ही करेंगे। इसलिए जगत् की भलाई करने के लिए तुम भगवान् हर के मोहन करने के कर्म में पूर्ण यत्न करो। महेश्वर को मोहित करके आप शिव के केतु हो जाओ। ब्रह्माजी के इस वचन का

श्रवण करके कामदेव ने ब्रह्माजी से जगत् का हितकारी जो तथ्य था वह कहा था। कामदेव ने कहा—हे विभो ! मैं आपकी आज्ञा से अवश्य ही शम्भु का मोहन करूंगा किन्तु हे प्रभो ! पोषित रूपी महान् अस्त्र जो हैं उस कान्ता को मेरे लिए आप सृजित कर दीजिए। मेरे द्वारा शम्भु के सम्मोहित करने पर जिसके द्वारा उसका अनुमोहन करना चाहिए, हे लोकभृत् ! उस परम रमणीय रामा का आप निदेशन कीजिए। उस प्रकार की रामा को मैं नहीं देख रहा हूँ जिसके द्वारा उनका अनुमोहन होवे। अब हे धाता ! कर्तव्य यही है कि अब कुछ उसी तरह का उपाय करें।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—कामदेव के इस प्रकार से कहने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने यही चिन्ता की थी कि मुझे ऐसी सम्मोहनी पोषा (नारी) उत्पन्न करनी चाहिए। इस चिन्ता में समाविष्ट उन ब्रह्माजी को जो इसके अनन्तर निःश्वास विनिःसृत हुआ था उसी से बसन्त ने जन्म धारण किया था जो कि पुष्पों के समुदाय से विभूषित था। भ्रमरों की संहति (समूह) को धारण करने वाले मुकुलित आम्र के अंकुरों को सरस किंशुकों (ढाक के पुष्प) को साथ लिए हुए प्रफुल्लित पादप (वृक्ष) की भाँति शोभित हुआ था। उसी बसन्त की स्वरूप शोभा का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि वह रक्त कमल के सदृश था तथा विकसित ताम्ररस के समान उसके नेत्र थे, सन्ध्या की बेला में उदीयमान अखण्ड चन्द्रमा के समान उसका मुख था और उसकी पर सुन्दर नासिका थी। शंख के सदृश श्रवणों के आवर्त्त वाला था तथा श्याम वर्ण के कुञ्चित (घुंघराले) केशों से शोभित था, सन्ध्या के समय में अंशुमाली के तुल्य दोनों कुण्डलों से विभूषित था। उसकी गति मदमस्त हाथी के समान थी और उसका वक्षःस्थल विस्तीर्ण था तथा पानी स्थूल और आयत भुजाओं से संयुत था एवं उसके दोनों करों का जोड़ा अतीव कठोर था।

उसके उरु, कटि और जंघायें सुवृत्त अर्थात् सुडौल थे, उसकी ग्रीवा कम्बु के तुल्य थी एवं उसकी नासिका उन्नत थी, वह गूढ़ शत्रुओं वाला, स्थूल वक्षःस्थल से युक्त था। इस रीति से समस्त लक्षणों से

वह सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था। उसके अनन्तर उस प्रकार के सम्पूर्ण कुसुमाकर (बसन्त) के समुत्पन्न हो जाने पर सुगन्ध से संयुत वायु वहन करने लगी और सभी वृक्ष पुष्पित हो गये थे। कोयलें मधुर स्वरों से समन्वित होती हुई सैकड़ों बार पञ्चम स्वर में बोलने लगी थीं, विकसित कमलों वाली सरोवरें पुष्करों से युक्त हो गयी थीं। इसके अनन्तर हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्माजी उस प्रकार के अतीव उत्तम उसको समुत्पन्न हुआ देखकर कामदेव से मधुर वचन बोले—हे कामदेव! यह आपका मित्र उत्पन्न होकर समुपस्थित है जो कि सर्वदा ही अनुकूलता का व्यवहार करेगा। जिस रीति से अग्नि का मित्र वायु है जो उसका सभी जगह पर उपकार किया करता है उसी भाँति यह आपका मित्र है जो सदा ही आपका ही अनुगमन करेगा। वसति के अन्त का हेतु होने से ही यह बसंन्त नाम वाला होवेगा। इसका कर्म यही है कि सदा आपका अनुगमन करे तथा लोकों का अनुरञ्जन किया करे।

यह बसन्त शृंगार है और बसन्त में मलयानिल वहन किया करता है। आपके वश में ही कीर्तन करने वाले भाव सदा सुहृद होवें। विव्वोक आदि हाथ तथा चौंसठ कलायें जिस प्रकार से आपके सुहृद हैं वैसे ही रति देवी के भी सौहार्द भाव को करेंगे। हे कामदेव! अब आप इन सहचरों के साथ जिनमें बसन्त प्रधान है और तुम्हारे ही उपयुक्त परिवार स्वरूपा इस सहचारिणी रति के साथ मिलकर अब महादेव को मोहित करो और सनातनी सृष्टि की रचना कर डालो। इन समस्त सहचरों के साथ जो भी इष्ट हो उसी देश में चले जाओ मैं उसको भावित करूँगा जो हरि को मोहित कर देगी। इस रीति से सुरों में सबसे बड़े ब्रह्माजी के द्वारा कहे गऐ वचनों से कामदेव परम हर्षित होकर अपने गणों के सहित तथा पत्नी और अनुचरों के साथ उस समय में वहाँ पर चला गया था। प्रजापति दक्ष को साथ समस्त मानस पुत्रों को अभिवादन करके उस समय कामदेव वहीं पर चला गया था जहाँ हर भगवान् शम्भु हैं। उस अनुचरों के सहित कामदेव के चले जाने पर जो कि शृंगार भाव आदि से संयुत था, हे द्विजोत्तमो! पितामह ने दक्ष प्रजापति से मरीचि, अत्री प्रमुख मुनीश्वरों के साथ में कहा था।

काली स्तुति वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा– इसके अनन्तर उस समय ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले दक्ष के लिए और मरीचि प्रमुख मुनियों से यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–भगवान् शम्भु की पत्नी होने वाली कौन है जो उनको मोहित कर देगी ? इसी का ध्यान करते हुए उन्होंने शिव की कान्ता के विषय में मन स्थिर करने का उत्साह नहीं किया था। हे दक्ष ! जगन्मयी, महामाया, विष्णु की माया के बिना तथा सन्ध्या, सावित्री और उमा के अतिरिक्त अन्य कोई भी उनका सम्मोहन कर देनेवाली नहीं है। इसी कारण मैं इस जगत् को प्रसूत करने वाली भगवान् विष्णु की माया योगनिद्रा का स्तवन करता हूँ क्योंकि वही अपने सुन्दरतम स्वरूप से भगवान् शंकर को मोहित करेगी। हे दक्ष! आप तो उसी विश्व के स्वरूप वाली का यजन करो जिसके करने से वह आपकी पुत्री होकर भगवान् की पत्नी होगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार के ब्रह्माजी के वचन का श्रवण करके मरीचि आदि के द्वारा पूजित दक्ष ने सृजन करने वाले ब्रह्माजी से कहा था। दक्ष प्रजापति ने कहा–हे लोकों के ईश! हे भगवान् ! जो परमतथ्या और जगत् का हित करने को अपने कहा है वह मैं भली-भाँति करूँगा जिससे उसके मन को हरण करने वाली समुत्पन्न हो जावे। मैं ठीक उसी भाँति का हो जाऊँगा जिस प्रकार से मेरी पुत्री स्वयं ही महात्मा शम्भु की पत्नी होकर विष्णु की माया हो जावे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस वेला में मरीचि जिनमें प्रमुख थे उन सभी ऋषियों ने इसी प्रकार होवे यही कहा था। फिर प्रजापति दक्ष ने जगत् से परिपूर्ण महामाया का अभ्यंजन करना आरम्भ कर दिया था। क्षीरोद के उत्तर में नीर में स्थित होकर उस देवी को अपने हृदय में विराजमान करके अर्थात् उसका अपने मन में पूर्णतया ध्यान करके प्रत्यक्ष रूप से अम्बिका के अवलोकन करने के लिए तपस्या का समाचरण करने के लिए आरम्भ कर दिया था। नियत होकर संयत आत्मा वाले और सुदृढ़ व्रत से संयुत होते हुए तप किया था। उस तप

करने के समय में आरम्भ में केवल वायु का आहार, फिर बिना आहार किए हुए और जल का ही केवल आहार तथा पत्तों को आहार करने वाला वह दक्ष रहा था। दक्ष के तप करने के लिए चले जाने पर समस्त जगत् के पति ब्रह्माजी परम पवित्र से भी पवित्रतम परम श्रेष्ठ मन्दराचल के समीप चले गए थे। वहाँ पहुँचकर जगत के धात्री जगत्मयी विष्णु के माया का वचनों के द्वारा और अर्घ्यों से एक मन होकर सौ वर्ष तक स्तवन किया था।

ब्रह्माजी ने कहा–विद्या और अविद्या के स्वरूप वाली, शुद्धा, बिना अवलम्ब वाली, निराकुला जगत् की धात्री और स्थूल और अवर्णनीय स्वरूप से समन्विता देवी का स्तवन करता हूँ। जिससे यह जगत् उदित होता है जो प्रधान नामक है और जगत् से परे है। जिससे उसी के अंशभूता सनातनी निद्रा आप हैं ऐसा आपका मैं स्तवन करता हूँ। आप परमानन्द स्वरूपा चिति हैं, आप परमात्मा के स्वरूप वाली हैं, आप समस्त प्राणियों की शक्ति हैं और आप सबको पाचन करने वाली हैं। आप सावित्री हैं, आप इस जगत् की धात्री हैं, आप ही सन्ध्या, रति और धृति हैं और आप ही ज्योति के स्वरूप के द्वारा इस संसार में प्रकाश करने वाली हैं। यथा आप अपने तम के स्वरूप से सदा ही इस जगत् को आच्छादन करती हुई स्थित रहा करती हैं। आप ही सृष्टि के सृजन स्वरूप से इस संसार को परिपूर्ण करने वाली हैं। आप मेधा हैं, आप महामाया हैं, आप पितृगणों को मोह देने वाली स्वधा हैं, आप स्वाहा हैं तथा समस्कार और वषट्कार एवं स्मृति हैं।

आप पुष्टि तथा धृति, मैत्री करुणा तथा मुदिता हैं। आप ही लज्जा, शान्ति, कान्ति और जगत् की ईश्वरी हैं। आप महामाया स्वाहा और पितृ देवता स्वधा हैं। जो हमारी सृष्टि की शक्ति हैं और जो हरि की स्थिति की शक्ति हैं, हे सनातनी ! आप ही शक्ति हैं। आप एक ही दश प्रकार की होकर मोक्ष और संहार के करने वाली हैं। विद्या और अविद्या के स्वरूप से आप स्वप्रकाशा और अप्रकाश हैं। आप ही समस्त प्राणधारियों की लक्ष्मी हैं, आप ही छाया और सरस्वती हैं।

आप त्रयीमयी अर्थात् वेदों से परिपूर्ण हैं तथा आप त्रिमाता हैं, आप सब भूतों के स्वरूप वाली हैं। जो पितृगणों के रञ्जन करने से सामवेद की उद्‌गीति है वह आप ही हैं। सब यज्ञों की देवी आप हैं तथा आप सामिधेनी और हवि हैं। जो परमात्मा को अव्यक्त, अनिर्देश्य, निष्कल रूप हैं तथा तन्मात्र, सफल और जगन्मय हैं, वह आप ही हैं। जो मूर्ति वितता सर्वधारित्री और क्षिति का धारण करती हुई है। हे विश्वाम्भरे! लोक में सदा शक्ति और भूति को प्रदान करने वाली आप ही हैं। आप लक्ष्मी-चेतना, कान्ति और सनातनी पुष्टि हैं। आप कालरात्रि हैं, आप मुक्ति हैं, आप शान्ति-प्रज्ञा और स्मृति हैं। हे सुख और मोक्ष के प्रदान करने वाली! आप इस संसाररूपी महान् सागर से पार करने के लिए तारणी अर्थात् नौका स्वरूप हैं। आप प्रसन्न होइए! आप समस्त जगतों की गति एवं मति हैं जो सदा ही रहा करती हैं। आप नित्या हैं और आप चराचर को मोहित करने वाली अनित्या भी हैं। आप सब योगों के साङ्गोपांग विभावन करने वाली सन्धिनी हैं। आप यतियों की चिन्ता और कीर्ति हैं और आप ही उनके आठ अंगों से समन्वित हैं। आप सगिंनी, शूलिनी, चक्रिणी और घोर रूप वाली हैं। आप समस्त जनों की ईश्वरी हैं, आप सब पर अनुग्रह करने वाली हैं। आप इस विश्व की आदि हैं, आप अनादि हैं अर्थात् आप ऐसी हैं जिसका कोई आदि है ही नहीं। आप इस विश्व की योनि हैं अर्थात् विश्व के उत्पन्न करने वाली हैं और आप स्वयं अयोनिजा हैं अर्थात् आपके समुत्पन्न करने वाला कोई नहीं है। आप अनन्ता हैं अर्थात् ऐसी हैं जिनका कोई अन्त ही नहीं है। आप सब जगतों की एकान्तकारिणी हैं अर्थात् समाप्त जगतों की रचना करने वाली हैं। आप नितान्त निर्मला हैं और आपको तामसी कहकर गाया जाता है। आप हिंसा और अहिंसा हैं तथा आप चार मुखों से संयुत काली हैं।

आप सबसे परा जननी हैं तथा आप दामिनी हैं। आप ही में यह विश्व लय होता है। आप तत्व स्वरूपा हैं तथा सबको विभरण किया करती हैं। आप सृष्टि से हीन हैं, आप सृष्टि हैं। आप कण रहित होती

हुई भी श्रुति सम्पना हैं। आप तपस्विनी हैं तथा कर चरणों से रहित हैं, आप महान् हैं। आप द्यौ हैं, आप चल हैं, आप ही ज्योति तथा वायु हैं। आप नभ, मन और अहंकार भी हैं। आप जगतों की आठ प्रकार की प्रकृति तथा कृति हैं। आप जगत् की नाभि और परा मेरुरूप धारिणी हैं। आप परानिकट हैं। आप परायणात्मिका अर्थात् पर और अपर स्वरूप वाली हैं। आप शुद्धा-माया और अति मोह के करने वाले हैं। आप कारण और कार्यभूत हैं। हे शिवाशिवे ! आप सत्य और शान्त हैं। आपके रूप विश्व के अर्थ में राग, वृक्ष और फल हैं। आप नितान्त छोटी और दीर्घ हैं। आपका स्वरूप नितान्त अणु और वृहत् हैं। आप सूक्ष्मा होती हुई भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त रहने वाली हैं, आप जगत् से परिपूर्ण हैं। आप मात्र से हीन, विमाना, अति विमाना और उन्मान और समुद्भूता हैं। आप ऐसी हैं जो अष्टि-व्यष्टि, सम्भोग और राग आदि से गलित आशय वाली रहती हैं। वह आपकी महिमा में आपको जो भ्रान्ति आदिक है वह आपका ही स्वरूप है।

आप इष्ट और अनिष्ट के विपाक के ज्ञान रखने वाली हैं और यथेष्ट तथा अनिष्ट का कारण हैं। आप सर्गादि, मध्य तथा अन्त से परिपूर्ण हैं और उसी भाँति आपका रूप है। आठ अंगों वाले योग से बारम्बार इस प्रकार से सम्पादन करके जो तत्व स्थित किया जाता है वह ही आपका सनातन रूप है। बाह्य और अबाह्य में सुख तथा दुःख, ज्ञान और अज्ञान, लय और अलय, उपताप और शान्ति आप ही जगत् की स्वामिनी हैं। जिसके प्रभाव को तीनों लोकों में कोई भी कहने की शक्ति नहीं रखता है अर्थात् किसी के द्वारा भी प्रभाव नहीं कहा जा सकता है वह आप उनका भी सम्मोहन करने वाली हैं। ऐसा आपको मेरे द्वारा क्या स्तवन किया जा सकता है। आप योगनिद्रा, महानिद्रा, मोहनिद्रा, जगन्मयी, विष्ठमाया और प्रकृति हैं ऐसी आपको कौन स्तुति के द्वारा विभाजित करें जो मेरे विष्णु भगवान् और शंकर भगवान् के वपु के वहन करने की स्वरूप वाली हैं। उसके प्रभाव का कथन करने को और गुणगण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है

अर्थात् कोई भी ऐसी क्षमता नहीं रखता है। प्रकाशकारण, ज्योति स्वरूप के अन्तर में गोचर होने वाली आप ही जंगम में स्थेयरूपा एक वाह्य गोचर हैं। समस्त जगतों की जननी स्त्रीरूप वाली आप प्रसन्न होइए। हे विश्व रुपिणी! हे विश्वेशे! हे सनातनि! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–विरञ्चि (ब्रह्मा) के द्वारा इस प्रकार से स्तवन की हुई वह योगनिद्रा परमात्मा ब्रह्मा के सामने आविर्भूत (प्रकट) हो गयी थी। उस प्रकट हुई देवी योगनिद्रा का स्वरूप का अब वर्णन किया जाता है। वह स्निग्ध अञ्जन की कान्ति के समान द्युति वाली थी, उसका स्वरूप परम सुन्दर था, वह उन्नत थीं और उनकी चार भुजायें थीं। वह सिंह के ऊपर सवार थीं, उनके हाथों में खड्ग और नीलकमल था, उसके केश पाश खुले हुए थे। सृष्टि के सृजन करने वाले जगत् गुरु ब्रह्माजी ने अपने समक्ष समुपस्थित उस देवी का अवलोकन करके उन्होंने अपने उन्नत कन्धों को विनम्र करके बड़े ही भक्ति के भाव से उन देवी को स्तवन किया और प्रणिपात किया था। ब्रह्माजी ने कहा–हे जगत् की प्रवृत्ति और निवृत्ति के रूप वाली! हे स्थिति और सर्ग (रचना) के स्वरूप से समन्विते! आपके चरणारविन्दों में मेरा बारम्बार नमस्कार है। चर और अचरों की आप शक्ति हैं, शाप सनातनी और सबका विमोहन करने वाली हैं। जो श्री सदा ही भगवान् शंकर की मूर्ति की माया है, जो विश्वम्भरा हैं और सबका विभरण किया करती हैं, जो ह्रीं, योगिनी, महिता औ मनोज्ञा हैं वह आप ऐसी हैं। हे परमात्मसारे ! आपको मेरा नमस्कार है। हे यामादि पूर्वे ! जिसका योगीजन अपने हृदय में प्रमिति के द्वारा प्रती का विभावन किया करते हैं वह आप प्रकाश शुद्ध, आदि से संयुता हैं, वह आप राग रहिता हैं। आप निश्चित रूप से विविध (अनेक) अवलम्बों वाली विद्या हैं।

आप कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूप कालमय को धारण करने वाली हैं अर्थात् मरण करती हुई हैं। तात्पर्य यह है जगतों को विभरण करने वाली हैं। आप नित्य विकार बीज को करती हैं जो प्रयत्न है,

न्यून है और मध्य है। सत्व, रज और तमोगुण इनके विकारों से आप हीन हैं और जो साम्बस्थिति रूपा हैं। वह आप गुणों की हेतु हैं, बाहर और अन्तराल में भवती की भाँति गमन किया करती हैं। हे अशेष जगतों की पीजे! हे ज्ञेय (जानने के योग्य) और ज्ञान के स्वरूप वाली! हे जगतों की विष्णु माये! जगत् की हित स्वरूपा आपके लिए नमस्कार है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उनके इस वचन को सुनकर लोकों के विमोहन करने वाली काली ने मेघ की गर्जना के समान अर्थात् गम्भीर ध्वनि से जगतों के सृजन करने वाले ब्रह्माजी से बोली। देवी ने पूछा—हे ब्राह्मण! आपने किस प्रयोजन का सम्पादन करने के लिए मेरी स्तुति की है। इसका अवधारण करो और बतलाओ जो भी मनोभाव होवे, यह मेरे सामने शीघ्र ही कहो। मेरे प्रत्यक्ष हो जाने पर कार्य की सिद्धि निश्चिय ही होती है। इस कारण से आप अपना जो मनोऽभिलाषित हो उसे शीघ्र ही कहो जिसको मैं भावित कर दूँगी।

ब्रह्माजी ने कहा—भूतों के ईश भगवान् शम्भु एक ही अर्थात् अकेले ही विचरण किया करते हैं और दूसरी की इच्छा ही नहीं रखते हैं। आप उनको मोहित कर दो और वह स्वयं ही दारा ग्रहण कर लेवें। आपके बिना अर्थात् आपको छोड़कर उनके मन को हरण करने वाली कोई भी नहीं होगी। इस कारण से आप ही एक स्वरूप से भगवान् शम्भु का मोहन करने वाली हो जाओ। जिस प्रकार से आप लक्ष्मी के स्वरूप से शरीर धारण करने वाली होकर भगवान् केशव को अमोदित्त किया करती हैं। विश्व के हित सम्पादन करने के लिए उसी भाँति इनको करिए। वृषभध्वज शम्भु मेरी कान्ता की अभिलाषा मात्र को ही बुरा कहते थे अतः किस किस रीति से वे वनिता को अपनी ही इच्छा से ग्रहण करेंगे। कान्ता के ग्रहण न करने वाले हर के होने पर यह सृष्टि कैसे प्रवृत्त होगी ? आदि, अन्त और मध्य के हेतु स्वरूप उन शम्भु के विरागी होने पर यह कैसे हो सकेगा ? इस चिन्ता में गमन मैं हूँ, आपसे अन्य मेरा यहाँ पर रक्षक कोई नहीं हैं। अतएव विश्व की भलाई के लिए आप यह करिए जो कि मेरा ही कार्य है। इनके मोह

करने के लिए न तो विष्णु समर्थ हैं और न लक्ष्मी तथा न कामदेव ही समर्थ हैं। हे जगत की माता! मैं भी उनको मोहित करने की क्षमता नहीं रखता हूँ। इस कारण से आप ही महेश्वर को मोहित करिए। जिस प्रकार से भगवान् विष्णु की एक प्रिया हैं वैसे ही आप महेश्वर की होवें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी से उस योगमयी ने फिर जो कहा था हे द्विजोत्तमो! उसका श्रवण करिए।

योगनिद्रा स्तुति

देवी ने कहा—हे ब्रह्माजी! आपने जो भी कहा था वह सम्पूर्ण सत्य ही है। मेरे बिना यहाँ पर शंकर को मोहित करने वाली कोई अन्य नहीं हैं। भगवान् हर के द्वारा न ग्रहण करने पर यह सनातनी सृष्टि नहीं होगी, यह तो आपने सर्वथा सत्य प्रतिपादन किया है। मेरे द्वारा भी इस जगत् के पति का महान् यत्न है। आपके वाक्य से आज दुगुना सुनिर्भर प्रयत्न हुआ था। मैं उस प्रकार से यत्न करूँगी कि भगवान् हर विवश होकर स्वयं ही विमोहित होकर दारा का परिग्रहण करेंगे। परम सुन्दर मूर्ति बनकर मैं उसी की वशवर्तिनी हो जाऊँगी। हे महाभाग! जिस तरह से भगवान् विष्णु की वशवर्तिनी हरि प्रिया रहा करती हैं। उसी तरह से वह भी यहां पर मेरे ही साथ वशवर्ती हो जावें और मैं उसी तरह से करूँगी और हर को अपना वशवर्ती बना लूँगी जैसे अन्य साधारण जन को कर लिया जाता है। प्रतिसर्ग के आदि, मध्य उन निरंकुश शम्भु को, हे विज्ञ! विशेष रूप से स्त्री रूप से उनके समीप मैं जाऊँगी।

हे पितामह! दक्ष प्रजापति की स्त्री से बहुत ही सुन्दर स्वरूप से उत्पन्न हुई प्रतिसर्ग समाहित होऊँगी। इसके अनन्तर देवगण जगत्मयी विष्णुमाया मुझको रुद्राणी, शंकरी इस नाम से कहेंगे। उत्पन्न मात्र से ही निरन्तर जिस प्रकार से प्राणी को मोहित करूँ ठीक उसी भाँति से प्रमथों के स्वामी भगवान् शंकर को सम्मोहित कर लूँगी। भूमण्डल में जैसे अन्य साधारण जन वनिता के वश में हो जाया करता है उससे भी

अधिक भगवान् शम्भु मेरे वश में वर्त्तन करने वाले हो जायेंगे। विभेदन करके अपने हृदय के अन्तर में लीन और भुवनाधीन जिस विद्या को महादेव मोह से प्रतिग्रहण कर लेंगे। इसके उपरान्त मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विजसत्तमो ! इस प्रकार से ब्रह्माजी से कहकर जगत् के स्राष्टा के द्वारा वीक्ष्यमाण होती हुई वह देवी फिर वहीं पर अन्तर्धान हो गई थीं। इसके अन्तर्धान होने पर लोकों के पितामह धाता वहाँ पर गये थे जहाँ पर भगवान् कामदेव संस्थित थे।

हे मुनिश्रेष्ठों ! ब्रह्माजी महामाया के वचनों का स्मरण करते हुए अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और वे आपने आपको कृतकृत्य अर्थात् सफल मानने लगे थे। इसके अनन्तर कामदेव ने महात्मा ब्रह्मा को हंस के यान के द्वारा गमन करते हुए देखकर शीघ्रता से समन्वित होकर उसके लिए अभ्युत्थान किया था। उसके उपरान्त उन ब्रह्माजी को अपने समीप में आये हुए देखकर परमहर्ष से विकसित लोचनों वाले कामदेव ने मोद से युक्त समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्माजी की अभिवादन किया था। इसके अनन्तर भगवान् ब्रह्माजी ने प्रीति से मधुर और गद्‌गद् वचनों से कामदेव को हर्षित करते हुए जो विष्णु माया देवी ने कहा था वही कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–हे वत्स! जो आपने पहले सबके मोहन करने के विषय में वचन कहा था कि आप अनुमोहन करने वाली जो भी हो उसका सृजन करो। हे कामदेव! उसी कार्य को सम्पादित करने के लिए मैंने जगन्मयी योगनिद्रा देवी का मन्दराचल की कन्दरा में एकमात्र मन के द्वारा स्तवन किया था। हे वत्स ! वह स्वयं ही मेरे सामने प्रत्यक्ष हुई थी और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने यह स्वीकार कर लिया था कि मेरे द्वारा शम्भु का मोहन किया जायेगा। हे कामदेव! दक्ष प्रजापति के भवन में समुत्पन्न हुई उसके द्वारा शम्भुमोहन का कर्म किया ही जायेगा, यह सर्वथा सत्य है।

कामदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! जो कि जगन्मयी है वह कौन है जो योगनिद्रा इस नाम से विख्यात हुई है। जो शंकर सदा ही तप में संस्थित रहा करते हैं वे उनके द्वारा कैसे वश्य होंगे ? उस देवी का क्या प्रभाव

हे, वह देवी कौन सी है और वहाँ किस स्थान में स्थित रहा करती है ? हे लोक पितामह ! यह सभी कुछ मैं आपके मुखकमल से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। जो अपनी समाधि का त्याग करके एक क्षणमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ करते हैं उनके समक्ष हम भी स्थित नहीं हो सकते हैं वह फिर उनको कैसे मोहित करेगा ? हे ब्रह्माजी! उनके नेत्र जलती हुई अग्नि के प्रकाश के समान हैं तथा वे जटा-जूट के समुदाय से विकराल स्वरूप वाले हैं। ऐसे त्रिशूलधारी शिव को देखकर उनके सामने कौन सी क्षमता है जो कि स्थित हो सके। उस शम्भु का इस प्रकार का स्वरूप है। उनको मोहित करने की इच्छा से मैंने भी स्वीकार किया था। अब मैं उस देवी के विषय में तात्विक रूप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उसके उपरान्त ब्रह्माजी ने कामदेव के वचन को सुनकर बोलने की इच्छा वाला होकर भी अनुत्साह के कारणस्वरूप उसके वाक्य को श्रवण कर भगवान् शंकर के मोहन करने में चिन्ता से समाविष्ट होते हुए कि मैं शंकर को मोहित करने में समर्थ नहीं हूँ, इस रीति से उन ब्रह्माजी ने बार-बार निःश्वास लिया था अर्थात् चिन्ता से श्वास छोड़ा था। उनकी निःश्वास की वायु से अनेक रूपों वाले महाबलवान् चंचल जिह्वा वाले अति भयंकर और अत्यन्त चंचल गण समुत्पन्न हो गए थे। उन गणों में कुछ तो घोड़े के समान मुख वाले थे तथा कुछ हाथी के मुख जैसे मुखों वाले थे। अन्य सिंह तथा बाघ के मुख के समान मुखों वाले थे। कुछ गण रीछ और मार्जार के जैसे मुखों से संयुत थे तो कोई-कोई शरभ तथा शुक के मुखों वाले थे। कुछ प्लव और गौ मुख के सदृश मुख वाले थे तथा कोई सरीसृप के मुख के समान मुखों से समन्वित थे, कुछ उन गणों में गौर रूप थे तो कुछ गाय के समान मुखों से संयुत थे। कोई-कोई पक्षी के सदृश मुखों से संयुत थे। कुछ बहुत विशाल तो कुछ बहुत ही छोटी शरीर वाले थे। कोई-कोई महान् स्थूल थे तो कुछ बहुत ही कृश थे। उन गणों के अनेकानेक स्वरूप बताये जा रहे हैं—कुछ पीली आँख वाले,

कुछ विडाल के तुल्य नेत्रों वाले तो कुछ त्र्यक्षैकाक्ष थे और कोई-कोई महान् उदर से युक्त थे। कुछ एक कान वाले, कुछ तीनों कानों वाले तथा दूसरे चार कानों से युक्त थे। स्थूल कानों वाले, महान् कानों वाले, बहुत कानों वाले और कुछ तीन कानों वाले थे। उनमें कुछ बड़ी आँखों वाले तो कुछ स्थूल नेत्रों से संयुत थे। कुछ सूक्ष्म लोचनों वाले और कुछ तीन दृष्टियों से समन्वित थे।

उन गणों में कोई चार पैरों वाले, कुछ पाँच पैरों से युक्त, कोई तीन चरणों वाले तो कुछ एक ही पद वाले थे। कुछ के बहुत छोटे पैर थे, कुछ लम्बे पैरों वाले थे, कुछ के पैर बहुत स्थूल थे तो कुछ महान् पदों से संयुत थे। कोई-कोई एक हाथ वाले, कुछ चार हाथों से युक्त, कोई दो हाथों वाले तो कोई तीन करों वाले थे। कुछ के हाथ थे ही नहीं तो विरुपाक्ष थे तथा कुछ गोधिका की आकृतियों वाले थे। उनमें कुछ मानवीय आकृति से युक्त थे, कोई-कोई शुशुमार के मुख के समान मुखों वाले थे। कोई क्रौञ्च के आकार वाले, तो कुछ बगुला के आकार वाले एवं कुछ हंस और सारस के रूप वाले थे। कुछ मुद्गुकुरर, कक और काक के तुल्य मुखों वाले थे। अब उन गणों के वर्ण बताये जाते हैं—उनमें कुछ आधे नीले, आधे लाल, कपिल तथा कुछ पिंगल वर्ण वाले थे। कुछ नील, शुक्ल, पीत, हरित और चित्रवर्ण वाले थे। वे गण शंखों को, घण्टों को बजा रहे थे तथा कुछ परिवादी थे। कुद मृदंग, डिमडिम, गोमुख तथा पणवों के बजाने वाले थे। वे सभी गण पीली और उन्नत जटाओं से संयुत अत्यधिक कराल थे। हे द्विजेन्द्रों ! वे सभी गण स्यन्दन (रथ) के द्वारा गमन करने वाले थे। उनमें कुछ हाथों में शूल लिए हुए थे तो कुछ पाश, खंग और धनुष करों में ग्रहण किए हुए थे। कुछ शक्ति, अंकुश, गदा, बाण, पट्टिश तथा पाश अपने करों के लिए हुए थे।

उन गणों के पास अनेक प्रकार के आयुध थे और महाबलवान् वे बड़ा भारी शोर करने वाले थे। वे मार डालो, छेद डालो ऐसा कहने वाले थे और ब्रह्माजी के सामने उपस्थित हो गए थे। इसके अनन्तर

ब्रह्माजी से कहकर कामदेव ने उन गणों को अवलोकन करके गणों के आगे स्थित होते हुए कारण कहते हुए बोलना आरम्भ किया था। कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी! ये आपका क्या कर्म करेंगे अथवा कहाँ पर संस्थित होंगे अथवा रहेंगे? इनके क्या-क्या नाम हैं? वहीं पर इनका आप विनियोजन कीजिए। अपने कार्य में इनका नियोजन करके इनको स्थान देकर इनका नाम रखिए। यह सब कुछ करके इसके पश्चात् महामाया का जो भी कुछ प्रभाव हो उसे मुझे बतलाइए। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस कामदेव के वचन को सुनकर उनके कार्य आदि के विषय में आदेश देते हुए कामदेव के सहित उन गणों से कहा।

ब्रह्माजी ने कहा—ये सब उत्पन्न होने के साथ ही निरन्तर 'मार डालो' यह बहुत बार बोले थे। बारम्बार इनसे यही वचन कहे गये थे। अतएव इनका नाम 'मार' यह होवे। मारात्मक होने से ये नाम से भी मार ही होवें। बिना अर्चना के ये सदा ही जन्तुओं के लिए विघ्न ही किया करेंगे। हे कामदेव! इन गणों का प्रधान कर्म तुम्हारा ही अनुगमन करना होगा। जिस-जिस समय जब-जब भी आप अपने कार्य के सम्पादन करने के लिए जायेंगे वहीं-वहीं पर भी उसी-उसी समय में तुम्हारी सहायता के लिए ये गण जाने वाले होंगे। तुम्हारे अस्त्र के वशवर्त्ती ज्ञानियों के चित्त की उद्भ्रान्ति करेंगे और सर्वदा ज्ञान के मार्ग में विघ्न उत्पन्न करेंगे। जिस प्रकार से सब जन्तुगण सांसारिक कर्म किया करते हैं ठीक उसी भाँति ये सब भी विघ्नों को भी करेंगे। ये सभी जगह पर कामरूप वाले और वेग से समन्वित स्थित होंगे। आप ही इन सबके गणाध्यक्ष हैं। ये पंचयज्ञों के अंशभोगी और नित्य क्रिया वालों के तोय भोगी होवें।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वे सब यह श्रवण करके ब्रह्माजी के सहित कामदेव को परिवारित करके इच्छानुसार अपनी गति को सुनकर समवस्थित हो गये थे। हे मुनि सत्तमों! उनके विषय में क्या वर्णन किया जा सकता है, उनके महात्म्य और प्रभाव का क्या वर्णन किया

जावे क्योंकि वे सब तपशाली थे। उनके न तो जाया थी और न कोई सन्तान ही थी। वे तो सदा ही समीहार से रहित थे। वे न्यासी होते हुए थी महान् आत्माओं वाले थे और से सभी ऊर्ध्वरेता पुरुष थे। इसके अनन्तर वे ब्रह्माजी परम प्रसन्न होते हुए योगनिद्रा का माहात्म्य कामदेव को कहने के लिए भली-भाँति से उपक्रम करने वाले हुए थे। ब्रह्माजी ने कहा—रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुणों के द्वारा जो अव्यक्त और व्यक्त रूप से सविभाजन करके अर्थ को किया करती है वही विष्णुमाया इस नाम से ही कही जाया करती है। जो निम्न स्थान वाले जल में स्थित होती हुई जगदण्ड कपाल से विभाजन करके पुरुष के समीप गमन किया करती है वह योगनिद्रा इस नाम से पुकारी जाया करती है।

मन्त्रों के अन्तर्भावन में परायण और परमाधिक आनन्द के स्वरूप वाली जो योगियों की सत्वविद्या का अन्त है वही जगन्मयी इस नाम से कहने के योग्य होती है। गर्भ के अन्दर रहने वाले को ज्ञान से सम्पन्न (तात्पर्य यह है कि जब तक यह यह जीवात्मा माता के गर्भ के रहता है तब तक अपने आपको पूर्ण ज्ञान रहा करता है) और प्रसव की वायु से प्रेरित होता हुआ जब यह जन्म धारण कर लेता है तो वही सभी ज्ञान को भूलकर ज्ञान रहित हो जाया करता है ऐसा जो निरन्तर ही किया करती है। पूर्व से भी पूर्व का सन्धान करने के लिए संस्कार से नियोजन करके आहार आदि में फिर मोह, ममत्वभाव और ज्ञान में संशय को करती है तथा क्रोध, उपरोध और लोभ में बार-बार क्षिप्त कर-करके पीछे काम में नियोजित करके आहार आदि में फिर मोह, ममत्वभाव और ज्ञान में संशय को करती है तथा क्रोध, उपरोध और लोभ में बार-बार क्षिप्त कर-करके पीछे काम में नियोजित शीघ्र ही चिन्ता से युक्त करती है, जो चिन्ता रात दिन रहा करती है, जो इस जन्तु को आमोद से युक्त और व्यसनों में आसक्त किया करती है, वही महामाया इस नाम से कही गई है, इसी से वह जगत् की स्वामिनी हैं। अहंकार आदि से संसक्त सृष्टि के प्रभाव को करने वाली उत्पत्ति से

यही लोकों के द्वारा वह अनन्त स्वरूप वाली कही जाया करती है। बीज से समुत्पन्न हुए अंकुर को मेघों से समुद्भुत जल जिस प्रकार से प्रोहित किया करता है ठीक उसी भाँति वह भी जन्तुओं को जो उत्पन्न हो गये हैं उनको प्ररोहित किया करती है। वह शक्ति सृष्टि के स्वरूप वाली हैं और सबकी ईश्वरी ख्याति है। वह जो क्षमाधारी हैं उनकी क्षमा है तथा जो दया वाले हैं उनकी (करुणा) दया है। वह नित्यस्वरूप से नित्या हैं और इस जगत् के गर्भ में प्रकाशित हुआ करती हैं। वह ज्योति के स्वरूप से व्यक्त और अव्यक्त का प्रकाश करने वाली परा है। वह योगाभ्यासियों की मुक्ति का हेतु हैं और विद्या के रूप वाली वैष्णवी है। लक्ष्मी के रूप से वह भगवान् कृष्ण की द्वितीया अर्द्धांगिनी परममनोहरा है। हे कामदेव ! त्रयी अर्थात् वेदत्रयी के रूप से सदा मेरे कंठ में संस्थिता है। वह सभी जगह पर स्थित रहने वाली और सब जगह गमन करने वाली है। वह दिव्यमूर्ति से समन्विता हैं। नित्या देवी सबके स्वरूप वाली और परा—इस नाम वाली है। वह कृष्ण आदि का सर्वदा सम्मोहन कहने वाली है और स्त्री के स्वरूप से सभी ओर सभी जन्तुओं को मोहन करने वाली हैं।

मदन वाक्य वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने महामाया के स्वरूप का प्रतिपादन करके महादेव से फिर कहा था कि वह भगवान् शंकर के सम्मोहन करने में युक्ता हैं। ब्रह्माजी ने कहा—विष्णुमाया ने पहले ही यह स्वीकार कर लिया है जैसे महादेव दारा का परिग्रहण करेंगे। वह ऐसा करना अंगीकार कर चुकी हैं। हे कामदेव! उन्होंने स्वयं ही ऐसा कहा था कि वह अवश्य ही प्रजापति दक्ष की पुत्री के रूप में जन्म धारण करके महात्मा शम्भु की द्वितीया अर्थात् पत्नी रति और अपने सखा बसन्त के साथ मिलकर वैसा ही कर्म करो जिससे भगवान् शम्भु दारा को ग्रहण करने की इच्छा कर लेवें। भगवान् शंकर के द्वारा दारा के ग्रहण किए जाने पर हम कृत-कृत्य अर्थात् सफल हो

जायेंगे और फिर यह सृष्टि अविच्छिन्न अर्थात् बीच में न टूटने वाली हो जावेगी। श्री मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो! कामदेव ने लोकों के ईश ब्रह्माजी से उसी भाँति मधुरतापूर्वक कहा जो भी कुछ महादेवजी को मोहित करने के लिए उसने किया था।

कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी ! आप अब श्रवण कीजिए जो भी कुछ हमारे द्वारा महादेव जी के मोहन करने में किया जा रहा है उनके परोक्ष में अथवा प्रत्यक्ष में जो भी किया जा रहा है उसे बतलाते हुए मुझसे आप श्रवण कीजिए। इन्द्रियों को जीत लेने वाले भगवान् शम्भु ज्यों ही जिस समय समाधि का समाश्रय ग्रहण करके स्थित हुए थे उसी समय विशुद्ध वेग वाले अर्थात् सुमन्द और सुगन्धित तथा शीतल वायु के द्वारा हे लोकेश ! जो कि नित्य ही मोहन के करने वाली हैं उनसे उन शम्भु को विजित करूँगा कि अपने शरासन का ग्रहण करके अपने बाणों का मैं उनके गणों को मोहित करते हुए उनके समीप में भ्रमित करूँगा। मैं वहाँ पर सिद्धों के द्वन्द्वों को अहर्निश रमण कराता हूँ और निश्चय ही हाव और भाव सब प्रवेश किया करते हैं। हे पितामह ! यदि शम्भु के समीप में प्रविष्ट होने पर कौन सा प्राणी बारम्बार वहाँ पर भाव को नहीं किया करता है। मेरे केवल प्रवेश के होने ही से सभी जीव-जन्तु उस प्रकार का गमन करते हैं तो उसी समय में मैं वहीं पर हे ब्रह्माजी ! अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त के साथ चला जाऊँगा। यदि यह मेरु पर चले जाते हैं अथवा जिस समय तारकेश्वर में पहुँच जाते हैं या कैलाश गिरि पर गमन करते हैं तो उस समय में मैं भी वहीं पर चला जाऊँगा।

जिस अवसर पर भगवान् हर अपनी समाधि का परित्याग करके एक क्षण को भी स्थित होते हैं तो फिर मैं उनके ही आगे चक्रवाक के दम्पत्ति को योजित कर दूँगा। हे ब्रह्माजी! वह चक्रवाक का जोड़ा बार-बार हाव-भाव से संयुत अनेक प्रकार के भाव से उत्तम दाम्पत्य के क्रम को करेगा। उनके आगे फिर जाया के सहित नीलकण्ठों को भी समीप ही में हैं सम्मोहित करूंगा और समीप ही मृगों तथा अन्य

पक्षियों को भी मोहयुक्त कर डालूँगा। यह सब जिस समय में एक अति अद्भुत भाव को देखकर कौन-सा प्राणी है जो उस समय में उत्सुकता से रहित बना रहे अर्थात् कोई भी चेतना ऐसा नहीं है जिसे उत्सुकता न हो और उनके ही आगे मृग अपनी प्रणयिनियों के साथ उत्सुकता वाले हो जाते हैं। और उनके पार्श्व में तथा समीप में अतीव रुचिर भाव कहते हैं तो मेरा शर कदाचित् भी इसके विवर को नहीं देखता है। जिस मय में वह देह से गिराया जाता है जो कि मेरे ही द्वारा फेंका जाया करता है। आप तो सभी लोकों के धारण करने वाले हैं अर्थात् यह सभी कुछ का ज्ञान रखते हैं। प्रायः यह निश्चित ही ज्ञात होना चाहिए कि रामा के संग के बिना हर का मैं सहसाय भी निष्फल सम्मोहित करने के लिए समर्थ एवं पर्याप्त हूँ और यह सफल ही है।

मेरा मित्र मधु अर्थात् बसन्त तो जो-जो भी उसके विमोहन की क्रिया करने में कर्म होंगे यह किया ही करता है। हे महाभाग! जो नित्य ही उसके लिए उचित है उसका पुनः आप श्रवण कीजिए। जहाँ पर भी भगवान् शंकर स्थित होकर रहेंगे वहीं पर मेरा मित्र वह वसन्त चम्पकों, केशरों, आम्रों, वरुणों, पाटलों, नाग, केसर, पुन्नागों, किंशुकों, धनों, माधवी, मल्लिका, पर्णधारों, कुवरकों इन सबको वह विकसित कर दिया करता है। समस्त सरोवर ऐसे कर देता है कि उसमें कमल पूर्ण विकसित हो जाया करते हैं और वह मलय की ओर से आवाहन करने वाली परमाधिक सुगन्धित वायु में वीक्षन करते हुए यत्नपूर्वक भगवान् शंकर के आश्रम को सुगन्धित कर दे। समस्त वृक्षों का समुदाय विकसित हो जायेगा। वे लतायें परम रुचिर भाव से दाम्पत्य को प्रकट करती हुई वहाँ पदमेक्षों को विष्टित करेंगे अर्थात् वृक्षों से लिपट जायेंगे। पुष्पों वाले उन वृक्षों को उन सुगन्धित समीरणों से संयुत देखकर वहाँ पर मुनि भी कामकला के वश में हो जाया करते हैं जो अपनी इन्द्रियों का दमन किए हुए हैं। हे लोकों के स्वामिन् अनेक परम शोभन भावों के द्वारा अनेक गण, सुर और सिद्ध तथा परम तपस्वी गण भी जो-जो दमनशील हैं वे सभी वश में आ जाया करते हैं।

उनके आगे हमने मोह का कोई भी कारण नहीं देखा है। भगवान् शंकर तो काम से उत्थित भाव को भी नहीं किया करते हैं। यह सभी कुछ मैंने देखकर और भगवान् शंकर की भावना का ज्ञान प्राप्त करके मैं तो शम्भु को मोहित करने की क्रिया से विमुख हो गया हूँ। यह नियत ही है कि बिना माया के यह कार्य कभी भी नहीं हो सकता है। इतना तो मैं सब कुछ कर चुका हूँ किन्तु शम्भु के मोहन के कार्य में मैं विफल ही रहा हूँ किन्तु पुनः आपके वचनादेश को श्रवण करके जो योगनिद्रा के द्वारा उदित है। उस योगनिद्रा का प्रभाव सुनकर तथा गणों सहित देखकर मेरे द्वारा शंकर के विमोहन करने के लिए फिर एक बार उद्यम किया जाता है। कृपा करके हे त्रिलोकेश! योगनिद्रा को पुनः शीघ्र ही जिस प्रकार से शम्भु की जाया (पत्नी) हो जावें वैसा ही कीजिए। शम्भु के यम-नियम और नित्य ही होने वाले प्राणायाम तथा महेश के आसन और गोचर में प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि में विघ्नों को सम्भव होना मैं तो यह मानता हूँ कि मैं तो क्या मुझ जैसे सैकड़ों के द्वारा भी नहीं किया जा सकता है। तो भी यह कामदेव के गण भगवान् शंकर के यम नियमादि उपर्युक्त अंगों के विकाररूपी विघ्न करे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने भी पुनः कामदेव से यह वचन कहा था। हे तपोधने! ब्रह्माजी ने योगनिद्रा के वाक्य का स्मरण करके और निश्चय करके ही यह कहा था। ब्रह्माजी ने कहा—यह योगनिद्रा अवश्य ही भगवान् शम्भु की पत्नी होगी। जितनी भी आपकी शक्ति है उसी के अनुसार आप भी इन योगनिद्र की सहायता करिए। आप अब अपने गणों के साथ ही वहीं पर चले जाइए जहां पर भगवान् शंकर समवस्थित हैं। हे कामदेव! आप भी अपने सखा वसन्त के साथ वहाँ पर शीघ्र ही गमन करिए जिस स्थान पर शम्भु विराजमान हैं और अहर्निश के चतुर्थ भाग में नित्य ही जगत् का मोहन करो और शेष तीन भाग में गणों के साथ सदा भगवान् शम्भु के समीप संस्थित रहो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना कहकर लोकों

के स्वामी ब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे और कामदेव अपने गणों के सहित उसी समय में भगवान् शम्भु के समीप चला गया था। इसी बीच में प्रजापति दक्ष चिरकाल तक तपस्या में रत होता हुआ बहुत प्रकार के नियमों से सुन्दर व्रतधारी होकर देवी की समाराधना में निरत हो गया था। हे मुनि सत्तमों! फिर नियमों से युक्त और योगनिद्रा देवी का यजन करने वाले दक्ष प्रजापति के समक्ष में चण्डिका देवी प्रत्यक्ष हुई थी। इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष प्रत्यक्ष रूप से जगन्मयी विष्णुमाया का दर्शन प्राप्त करके अपने आपको कृतकृत्य अर्थात् पूर्णतया सफल मानने लगा था।

अब भगवती के रूप का वर्णन किया जाता है कि वह देवी बालिका परम स्निग्ध, कृष्ण वर्ण के संयुत, पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनों वाली थी। उसकी चार भुजायें थीं तथा परमाधिक सुन्दर उसका मुख था और नीलकमल को धारण करने वाली परमशुभ थी। वरदान तथा अभयदान देने वाली, हाथ में खंग धारण करती हुई सभी गुणों से समन्विता थी। उसके नयन थोड़ी रक्तिमा लिए हुए थे और सुन्दर और खुले हुए केशों वाली थीं एवं परम मनोहर थीं। प्रजापति दक्ष ने उनका दर्शन प्राप्त करके परम प्रीति से युक्त होकर विनम्रता से उस देवी की स्तुति की थी। दक्ष ने कहा—आनन्द के स्वरूप वाली और सम्पूर्ण जगत् को आनन्द करने वाली, सृष्टि पालन और संहार के स्वरूप से संयुत, परमशुभा भगवान् हरि की लक्ष्मी देवी का मैं स्तवन करता हूँ। हे महेश्वरि! सत्व गुण के उद्वेग के प्रकाश से जो उत्तम ज्योति का तत्व है जो स्वप्रकाश जगत् का धाम है, वह आपका ही अंश है। रजोगुण की अधिकता से जो काम का प्रकाशन है वह हे जगन्मयी! मध्य स्थित राग के स्वरूप वाला वह आपके ही अंश का अंश है।

तमोगुण के अतिरेक जो मोह का प्रकाशन है जो कि चेतनों का आच्छादन करने वाला है वह भी आपके अंशांश को गोचर है। आप परा हैं और परास्वरूप वाली हैं, आप परमशुद्ध हैं, निर्मला हैं और लोकों को मोह करने वाली हैं। आप तीन रूपों वाली, त्रयी (वेदत्रयी),

कीर्ति, वार्ता और इस जगत् की गति हैं। जिस निजोत्थ मूर्ति के द्वारा माधव धात्री का विभरण करते हैं वह आपकी ही मूर्ति है, जो समस्त जगतों के उपकार करने वाली है। आप महान् अनुभव वाली सूक्ष्मा और अपराजिता विश्व की शक्ति हैं जो ऊर्ध्व और अधो के विरोध के द्वारा पवनों से पर का व्यक्तिकरण किया जाता है वह ज्योति आपके मात्रार्थ के भावसम्मत सात्विक जिसका योगीजन बिना आलम्ब वाणी, निष्कल, परम निर्मल आलम्बन किया करते हैं वह तत्व आपके ही अनन्तर गोचर है। जो प्रसिद्धा, कूटस्था, अति प्रसिद्ध और निर्मला है। वह ज्ञाप्ति आपकी निष्प्रपञ्चना और प्रपचामी प्रकाशिका है आप विद्या हैं और आप अविद्या हैं आप आलम्बा हैं और बिना आश्रय वाली हैं। आप प्रपंच रूप से संयुत जगतों की आदिशक्ति हैं और आप ईश्वरी हैं।

जो ब्रह्माजी के कण्ठ के आलय वाली और शुद्ध वाग्वाणी पायी जाती है वह वेदों के प्रकाशन में परायण तथा विश्व को प्रकाशित करने वाली आप ही हैं। आप अग्नि हैं तथा स्वाहा विश्व को प्रकाशित करने वाली आप ही हैं। आप अग्नि हैं तथा स्वाहा हैं। आप पितृगणों के साथ स्वधा हैं। आप नभ हैं और आप कालरूपा हैं। आप दिशायें हैं और आप आकाश स्थिता हैं। आप चिन्तन करने के अयोग्या हैं, आप अव्यक्त हैं तथा आप आपका रूप अनिर्देश्य है। आप ही कालरात्रि हैं और आप ही परमशान्त परा प्रकृति हैं। जिसका संसार और लोकों में परित्राण के लिए जो रूप गह्वर है वह आपको जानते हैं अन्यथा परा आपको कौन जानेंगे। हे भगवती ! आप प्रसन्न होइए, हे अग्ने! हे योगरूपिणि! आप प्रसन्न होइए। हे घोररूपे! आप प्रसन्न होइए। हे जगन्मयि ! आपके लिए मेरा नमस्कार है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति से प्रयत आत्मा वाले दक्ष के द्वारा स्तुति की गई महामाया दक्ष से बोली, यद्यपि उस दक्ष के अभीष्ट को स्वयं जानती हुई भी थी तथापि देवी ने उससे पूछा था।

भगवती ने कहा—हे दक्ष! आपके द्वारा अत्यधिक की गई इस मेरी

भक्ति से मैं आपसे परम प्रसन्न हूँ। अब तुम वरदान का वरण कर लो जो भी आपका अभीप्सित हो वह मैं स्वयं ही तुझे दे दूंगी। हे प्रजापते ! आपके नियम से, तपों से और आपकी स्तुतियों से मैं बहुत अधिक प्रसन्न हो गयी हूँ। आप वरदान का वरण करो मैं उसी वर को दे दूँगी। दक्ष ने कहा–हे जगन्मयि! हे महामाये! यदि आप मुझे वरदान देने वाली हैं तो आप ही स्वयं मेरी पुत्री होकर भगवान् शंकर की पत्नी बन जाइए। हे देवि! यह वर केवल मेरा ही नहीं है अपितु समस्त जगती का है। हे प्रजेश्वरि! यह वर लोकों के ईश ब्रह्माजी का है तथा भगवान् विष्णु का है और भगवान् शिव का भी है। देवी ने कहा–हे प्रजापते! मैं आपकी पुत्री होकर आपकी जाया (पत्नी) में जन्म धारण करने वाली होऊँगी तथा भगवान् शंकर की पत्नी हो जाऊँगी और इसमें विलम्ब नहीं होगा। जिस समय से आप फिर मेरे विषय में मन्द आदर वाले हो जाओगे तब मैं सुखिनी भी अथवा तुरन्त ही अपने देह का त्याग कर दूँगी। हे प्रजापते! यह वर प्रतिसर्ग में आपको दे दिया है कि मैं आपकी सुता होकर भगवान् हर की प्रिया होऊँगा। हे प्रजापते! मैं महादेव को उस प्रकार से सम्मोहित करूँगी कि वे प्रतिसर्ग में निराकुल मोह को समाप्त करेंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से प्रजापति दक्ष से महामाया ने कहा और इसके उपरान्त वह देवी भली-भाँति दक्ष के देखते-देखते ही वहीं पर अन्तर्हित हो गई थीं। उस महामाया के अन्तर्धान हो जाने पर प्रजापति दक्ष की अपने आश्रम को चले गए और उन्होंने परमआनन्द प्राप्त किया था कि महामाया उनकी पुत्री होकर जन्म धारण करेगी। इसके अनन्तर बिना ही स्त्री के संगम के उन्होंने प्रजा का उत्पादन किया था। संकल्प, अविर्भावों के द्वारा तथा मन से और चिन्तन के द्वारा ही प्रजोत्पादन किया था। हे द्विज श्रेष्ठों! वहाँ पर उनके बहुत से पुत्र समुत्पन्न हुए और वे सब देवर्षि नारदजी के उपदेश से इस पृथ्वी पर भ्रमण किया करते हैं। उनके बार-बार जो पुत्र उत्पन्न हुए थे वे सभी अपने भाइयों के ही मार्ग पर नारद जी के वचन से चले

गये थे। हे द्विजोत्तमों! आप लोग सभी पृथ्वी मण्डल में सृष्टि के करने वाले हैं। यही देवर्षि नारद का वाक्य था जिसके द्वारा दक्ष के पुत्र प्रेरित किए गए थे। वे आज तक भी इस पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए वहीं वापिस हुए हैं।

इसके अनन्तर मैथुन से समुत्पन्न होने वाली प्रजा का सम्पादन करने के लिए प्रजापति दक्ष ने वीरण की पुत्री के साथ विवाह किया था जो कि परम सुन्दर कन्या थी। हे द्विजसत्तमो! उसका नाम वीरणी था और अस्किनी यह भी था। उसमें सब प्रजापति का प्रथम संकल्प हुआ। हे द्विजोत्तमो! उस समय में उसमें सद्योजाता महामाया हुई। उसके जन्म होते ही प्रजापति अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। उसको तेज से उज्जवला देखकर उस समय में उसने (दक्ष) यह वही है, ऐसा मान लिया था। जिस समय में वह समुत्पन्न हुई थी, पुष्पों की वर्षा आकाश से हुई थी और मेघों ने जल वृष्टि की थी। उस अवसर पर सभी दिशाऐं उसके जन्म धारण करने पर परम शान्त समुद्गत हो गयी थीं। आकाश में गमन करके देवगणों ने परमशुभ वाद्यों को बजाया था। हे नरोत्तमो! उस सती के समुत्पन्न होने पर शान्त अग्नियाँ भी प्रज्ज्वलित हो गयी थीं। वीरणी के द्वारा लक्षित दक्ष प्रजापति ने उस जगदीश्वरी का दर्शन प्राप्त करके महामाया को परमार्थिक भक्ति की भावना से तोषित किया था।

शिव, शांता, महामाया, योगनिद्रा, जगन्मयी

दक्ष प्रजापति ने कहा था—शिवा, शान्ता, महामाया, योगनिद्रा, जगन्मयी जो विष्णुमाया कही जाती हैं उस सनातनी देवी के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। जिसके द्वारा धाता (ब्रह्मा) इस जगत् की सृष्टि की स्थिति का सृजन करने के कार्य में नियुक्त किया था और पहले इस सृष्टि की रचना उसने की थी और भगवान् विष्णु ने उस सृष्टि की स्थिति अर्थात् हरिपालन किया था। जिसके वियोग से जगत् के पति शम्भु ने अन्त अर्थात् सृष्टि का संहार किया था। उसी देवी आपको, मैं प्रणाम करता हूँ। आप विकारों से रहित हैं, शुद्ध हैं, अप्रमेया अर्थात्

प्रमाण करने के योग्य हैं, प्रभा वाली हैं, आप प्रमाण मानमेय नाम वाली और सुख स्वरूपिणी हैं ऐसी आपको मैं करता हूँ। जो पुरुष, देवी आपका चिन्तन करें जो कि आप विद्या-अविद्या के स्वरूप वाली परा हैं उस पुरुष के सुखों का भोग्य और मुक्ति सदा ही करतल में स्थित रहा करती है। जो पुरुष आप देवी की प्रत्यक्ष रूप से परमपावनी का एक बार भी दर्शन प्राप्त कर लेता है उस पुरुष की अवश्य ही मुक्ति हो जाया करती है जो कि विद्या, अविद्या की प्रकाशिका है। हे योगनिद्रे! हे महामाये! हे जगन्मयी! हे विष्णुमाये! जो प्रमाणार्थ सम्पन्न चेतना है वह तेरे ही स्वरूप वाली है। हे जगन्मात! जो पुरुष आपका अम्बिका कहकर स्तवन किया करता है, जो जगन्मयी और मया इन नामों का उच्चारण करके आपकी स्तुति किया करते हैं उनका सभी कुछ अभीष्ट सम्पन्न हो जाया करता है।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—महान् आत्मा वाले दक्ष के द्वारा इस रीति से स्तुति की गयी। जगन्माता उस अवसर पर उसी भाँति दक्ष प्रजापति से बोली जैसे माता सुनती ही नहीं हो। वहाँ पर स्थित सबको सम्मोहित करके जिस तरह से दक्ष वह सुनता है उस प्रकार अन्य माया से नहीं श्रवण करता है उस समय में अम्बिका ने कहा। हे मुनिसत्तम! जिसके लिए पूर्व भी मेरी आराधना की थी वह आपका अभिष्ट कार्य सिद्ध हो गया है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से कहकर उस समय में देवी ने अपनी माया से दक्ष को समझाया था और फिर वह शैशव भाव में समास्थित होकर जननी के समीप रोदन करने लगी थी। इसके अनन्तर वीरणी ने बड़े ही यत्न से यथोचित रूप से सुसंस्कार करके शिशु के पालन की विधि से उनको स्तन दिया था अर्थात् शगुन का दुग्ध पिलाया था। इसके अनन्तर वीरणी के द्वारा पालित की गयी थी तथा महात्मा दक्ष के द्वारा शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा जिस तरह से प्रतिदिन वृद्धि वाला हुआ करता है उसी भाँति वह बड़ी हो गयी थी। हे द्विज श्रेष्ठों! उस देवी में सब सद्गुणों ने प्रवेश कर लिया था जिस तरह से चन्द्रमा में शैशव में भी समस्त मनोहर कलायें प्रवेश किया करती हैं।

वह निज भाव से जिस समय में सखियों के मध्य गमन करके रमण करती थी। वह जिस समय में गीतों का गान करती है जो कि बचपन के लिए समुचित थे उस समय से स्मरमानसा वह उग्रस्थाणु, हर और रुद्र इन नामों का स्मरण किया करती थी। हे द्विज सत्तमों! दक्ष प्रजापति ने उस बालिका स्वरूप में स्थित देवी का 'सती' यह नाम रखा था। जो कि समस्त गुणों के द्वारा सत्व से भी और तप से भी परम प्रशस्ता थी। दक्ष और वीरणी दोनों की प्रतिदिन अनुपम करुणा बढ़ रही थी। उन दोनों दक्ष और वीरणी की करुणा की वृद्धि का कारण यही था कि वह सती बचपन में ही परमभक्ता थी अतएव उन दोनों की बारम्बार नित्य करुणा की वृद्धि हो रही थी। हे नरोत्तमों! वह समस्त परमसुन्दर गुणों से समाक्रान्त थी और सदा ही नवशालिनी थी अतएव उसने (सती ने) अपने माता-पिता को परमाधिक सन्तोष दिया था अर्थात् वे अतीव सन्तुष्ट थे। इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि उस सती को अपने पिता दक्ष के पार्श्व में.समय स्थित हुई को ब्रह्मा, नारद इन दोनों ने देखा था जो कि इस भूमण्डल में परम शुभा और रत्न भूता थी।

वह सती भी उन दोनों का दर्शन प्राप्त करके समुत्पन्न हुई थी और उस समय विनम्रता से अवनत हो गयी थी। इसके अनन्तर उस सती ने देव ब्रह्माजी और देवर्षि ने उसी सती को प्रणाम किया था। प्रणाम करने के अन्त में ब्रह्माजी ने उस सती को विनय से अवनत स्वरूप का दर्शन किया था। तब नारदजी ने उस सती को यह आशीर्वाद कहा था कि जो तुम्हारी प्राप्ति की कामना करता है और जिसको तुम अपना पति बनाने की कामना किया करती हो उन सर्वज्ञ जगदीश्वर देव को अपने पति के स्वरूप में प्राप्त करो। जो अन्य किसी भी नारी को ग्रहण करने वाले नहीं हुए थे और न ग्रहण करते हैं तथा अन्य जाया को ग्रहण करेंगे भी नहीं। हे शुभे! वही आपके पति होवें, जो अनन्य सदृश हैं अर्थात् जिनके सरीखा अन्य कोई भी नहीं है। इतना कहकर वे दोनों (ब्रह्मा और नारद) फिर दक्ष प्रजापति के आश्रय में स्थित

होकर हे द्विजसत्तमो! उस दक्ष के द्वारा पूजित किए गए थे और वे दोनों अपने स्थान पर चले गए थे।

श्री हरि द्वारा शिव का अनुनयन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—सती देवी अपना बचपन व्यतीत करके फिर परमाधिक शोभन यौवन को प्राप्त हो गई थी और अत्यधिक रूप लावण्य से सुसम्पन्न वह समस्त अंगों के द्वारा सुमनोहर अर्थात् बहुत ही अधिक मन को हरण करने वाली सुन्दरी थी। दक्ष प्रजापति ने जो लोकों का ईश था उस सती को देखा कि वह यौवन से सुसम्पन्न पूर्ण युवती हो गई हैं। तब उसने यह चिन्ता की थी कि इस सती भी प्रतिदिन स्वयं ही भगवान् शम्भु को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली हो गयी थी। उस सती ने अपनी माता की आज्ञा से भगवान् शम्भु की आराधना की थी जो अपने घर में स्थित होकर की गयी थी। आश्विन मास में नन्दाकाख्या में गुड़ और ओदन से सहित लवणों से हर का योजन करके इसके पश्चात् उसने वन्दना की थी। कार्तिक मास की चतुर्दशी तिथि में पुओं के सति प्रपायसों (खीर) से जो समाकीर्ण थे भगवान् हर की समाराधना करके फिर परमेश्वर प्रभु शम्भु का स्मरण किया था। मार्गशीर्ष मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में तिलों के सहित यव और ओदनों से भगवान् हर का पूजन करके फिर नीलों के द्वारा दिवस को व्यतीत करती थी। पौष मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन में रात्रि में जागरण करके प्रातःकाल में शिव का उस सती ने कृसरान्न के द्वारा यजन किया था।

माघ मास की पूर्णमासी में रात्रि में जागरण करके गीले वस्त्र धारण करती हुई नदी के तट पर भगवान् हर का पूजन करती थी। उस पूरे मास में भगवान् शम्भु में नियत मन वाली ने नियत आहार किया था जो अनेक प्रकार के फलों और पुष्पों से ही किया गया था जो भी उस काल में समुत्पन्न होने वाले थे। माघ मास में विशेष रूप से कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में रात्रि जागरण करके देव का बिल्व पत्रों के द्वारा

यजन किया करती थी। चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में पलाश के पुष्पों से भगवान् शिव की पूजा की थी और दिन तथा रात में उनका स्मरण करते हुए समय को व्यतीत किया था। वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन में यवों के सहित ओदनों के द्वारा देव शम्भु का यजन करके द्रव्यों पूरे मास अनुचरण किया करती थी। वृषवाहन प्रभु का स्मरण करती हुई उस सती ने निराहार रहकर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में वृषवाहन देव का यजन करके वसनों से और पुष्पों के द्वारा उसको पूर्ण किया था। आषाढ़मास की चतुर्दशी तिथि में जो कि शुक्ल पक्ष की थी कृतिवासा देव का वृहती के पुष्पों के द्वारा यजन करके उसने उसी भाँति पूजन किया था।

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन और चतुर्दशी में उसने पवित्र यज्ञोपवीतों तथा वस्त्रों के द्वारा देव का पूजन किया था। भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में नाना भाँति के फल तथा पुष्पों के द्वारा भली-भाँति देव का भजन करके चतुर्दशी में जल का ही भोजन किया था। इस प्रकार से जो पूर्व में व्रत सती ने आरम्भ किया था उसी समय में सावित्री के सहित ब्रह्माजी भगवान् शम्भु के समीप हुए थे। भगवान् वासुदेव भी अपनी लक्ष्मी देवी के सहित उनके सन्निधि में गए थे। जहाँ पर भगवान् शम्भु हिमालय गिरि के प्रस्थ पर अपने गणों के सहित विराजमान थे। भगवान् शम्भु के उन दोनों ब्राह्मणों की ओर भगवान् कृष्ण को देखकर जो अपनी पत्नियों के साथ संगत हुए वहाँ पर प्राप्त हुए थे जैसा भी समुचित शिष्टाचार था उसी के अनुसार उनसे सम्भाषण करके उनके यहाँ पर समागमन का कारण शंकर प्रभु ने पूछा था। इस प्रकार से उन दोनों का दर्शन करके जो दाम्पत्य भाव से संगत थे, शम्भु ने भी दारा से परिग्रहण करने की इच्छा मन में की थी। इसके उपरान्त तात्विक रूप से अपने आगमन का कारण पूछा कि आप लोग यहाँ पर किस प्रयोजन को सुसम्पादित किए जाने के लिए समागत हुए हैं और आपका यहाँ पर क्या कार्य हैं ? इसी रीति से भगवान् शम्भु के द्वारा पूछे गए वे दोनों में से लोकों

के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर महादेव जी से कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे त्रिलोचन! जिस कार्य के सम्पादन कराने के लिए यहाँ पर हम दोनों ही आये हैं उसका अब आप श्रवण कीजिए। हे वृषभध्वज! विशेष रूप से तो हम दोनों का आगमन देव अर्थात् आपके ही लिए है और सम्पूर्ण विश्व के लिए भी है। हे शम्भो! मैं तो केवल सृजन करने के ही कार्य में निरत रहता हूँ और यह भगवान् हरि उस सृष्टि के पालन करने के कार्य संलग्न में रहा करते हैं और आप इस सृष्टि का संहार करने में रत हुआ करते हैं यही प्रतिसर्ग में जगत् का कार्य होता रहता है। उस कर्म में सदैव मैं आप दोनों के सहित समर्थ हूँ। यह हरि मेरे और आपके सहयोग के बिना समर्थन नहीं होते हैं। आप संहार करने में हम दोनों के सहयोग के बिना समर्थ नहीं होते हैं। इस कारण हे वृषभध्वज! परस्पर के कृत्यों में सभी की सहायता आवश्यक है। हमारी सहायता सदा योग्य ही है अन्यथा यह जगत् नहीं होता है। कुछ ऐसे हैं आपके वीर्य से समुत्पन्न होने वाले के द्वारा वध के योग्य हैं और मेरे अंश से समुत्पन्न के द्वारा वध के लायक होते हैं। दूसरे ऐसे हैं जो माया के द्वारा देवों के बैरी असुर वध के योग्य होते हैं।

आप तो जब योग से मुक्त होते हैं और राग-द्वेष से मुक्त हैं तथा केवल प्राणियों पर ही दया करने में निरत रहा करते हैं तो आपके द्वारा असुर वध करने के योग्य नहीं हो सकते हैं। हे ईश! उनके अबाधित रहने पर यह सृष्टि और स्थिति कैसे संभव हो सकते हैं? हे हर! जब सृजन, पालन और संहार के कर्म न करने योग्य होंगे तब हमारा शरीर भेद और माया का भी युक्त नहीं होता है। वैसे हम सब एक ही स्वरूप वाले हैं अर्थात् तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों का एक ही शक्ति स्वरूप हैं हम सब कार्यों के विभिन्न होने ही से भिन्न रूप वाले होते हैं। यदि कार्यों का भेद सिद्ध नहीं होता है तो यह रूपों का भेद भी प्रयोजन से रहित ही है। वैसे एक ही तीनों रूपों में होकर

हम विभिन्न स्वरूप वाले होते हैं। हे महेश्वर! यह सनातन अर्थात् सदा से चला आया तत्व है इसको जान लीजिए। यह माया भी भिन्न रूपों से कमला नाम वाली अर्थात् महालक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री तथा सन्ध्या कार्यों के भेद से ही भिन्न हुई हैं। हे महेश्वर! अनुराग की प्रवृति का मूल नारी ही है। रामा के परिग्रह से ही पीछे काम, क्रोध आदि का उद्भव (जन्म) होता है।

काम क्रोध आदि के कारणस्वरूप अनुराग के होने पर यहाँ पर जन्तुगण विराग के हेतु का यत्नपूर्वक सान्त्वन किया करते हैं। अनुराग के वृक्ष से संग ही सर्वप्रथम महान् फल होता है। उसी संग से काम की समुत्पत्ति हुआ करती है। काम से क्रोध उत्पन्न होता है। स्वाभाविक ज्ञान से ही वैराग्य और निवृत्ति होती है। संसार की विमुखता से सनातन हेतु असंग ही होती है। हे महेश्वर! यहाँ पर दया नित्य ही हुआ करती हैं अर्थात् जो संसार से विमुख हैं उसमें नित्य ही दया का होना आवश्यक है और दया के साथ-साथ शान्ति भी होती है। अहिंसा और तप, शान्ति ज्ञानमार्ग का अनुसाधन है। आपके तपोनिष्ठ, विसंगी अर्थात् संगरहित तथा दया से संयुत होने पर अहिंसा तथा शान्ति आपको सदा ही होगी। इसके न करने पर जो-जो दोष हैं वे सभी आपको बतला दिए गए हैं। हे जगत्पते! इस कारण से आप विश्व के और देवों के हित के लिए भार्यार्थ में एक परमशोभना वामा का परिग्रहण करें। जिस प्रकार से लक्ष्मी भगवान् विष्णु की पत्नी है और सावित्री मेरी पत्नी है उसी भाँति शम्भु की जो सहचारिणी होवे उसका ही आप परिग्रहण कीजिए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह से हर के आगे ब्रह्माजी के वचन का श्रवण कर मन्द मुस्कराहट के सहित मुख वाले हरि ने उस समय में लोकों के ईश ब्रह्माजी से कहा। ईश्वर ने कहा—जो आपने कहा है वह इसी प्रकार से तथ्य है। ब्रह्माजी! यह विश्व के ही निमित्त से होना ही चाहिए किन्तु स्वार्थ से भली-भाँति ब्रह्म के चिन्तन करने से मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है। तो भी वह मैं करूंगा जो जगत् की भलाई

के लिए आप कहेंगे। सो हे महाभाग! आप श्रवण कीजिए। जो मेरे तेज को सहन करने में भागशः समर्थ हो यहाँ पर भार्या के ग्रहण करने में उसी को आप बतलाइये जो योगिनी और कामरूपिणी दोनों ही होवे। जब मैं योग में युक्त होऊँ उस अवसर पर उसी भाँति वह भी योगिनी हो जावेगी और जिस समय में कामवासना में आसक्त होऊँ तो उस अवसर पर वह मोहिनी ही होवेगी। हे ब्रह्माजी! भार्या के लिए उसी को आप बतलाइए जो वरवर्णिनी होवे। वेदों के ज्ञाता महामनीषीगण जो अक्षर को जानते हैं अर्थात् जिस अक्षर का ज्ञान रखते हैं उसी परमज्योति के स्वरूप वाले को जो सनातन है मैं चिन्तन करूँगा।

हे ब्रह्माजी! मैं उसी की चिन्ता में सदा आसक्त होता हुआ भावना को गमन किया करता हूँ अर्थात् भावना में निमग्न हो जाता हूँ। उस भावना में जो विघ्न डालने वाली हो वह मेरी होने वाली वाम न होवे। हे महाभाग! आप अथवा विष्णु भगवान् या मैं भी सब पर ब्रह्म के रूप वाले हैं और एक दूसरे के अंगभूत हैं। जो योग्य हो उसका ही अनुचिन्तन करो। हे कमलासन! उसकी चिन्ता के बिना मैं स्थित नहीं रहूँगा उस कारण से ऐसी ही जाया को बतलाइए जो सदा मेरे कर्म के ही अनुगत रहने वाली होवे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—सम्पूर्ण जगतों के स्वामी ब्रह्माजी ने यह उनके वचन का श्रवण कर स्थिति के सहित प्रसन्न मन वाले ने यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा—हे महादेव! जैसी आपने वर्णित की है वैसी ही एक है जो प्रजापति दक्ष की तनया (पुत्री) हुई है जिसका नाम 'सती' है और वह परम शोभना है। वह ऐसी सुधीमती आपकी भार्या होगी। उसी को जो आपको पति के रूप में प्राप्त करने के लिए कामिनी है। उसको आप जान लीजिए। हे देवेश्वर! आप तो सभी आत्माओं में वर्तमान रहने वाले हैं।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इनके अनन्तर ब्रह्माजी के वचन के उपरान्त भगवान् मधुसूदन ने कहा कि जो कुछ भी ब्रह्माजी ने कहा है वह सब आप करिए। उन शंकर प्रभु के द्वारा 'मैं वही मरूंगा', ऐसा कहने पर वे दोनों (ब्रह्मा और विष्णु) अपने अपने आश्रमों को चले

गए थे। ब्रह्माजी और हरि भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए जो कि सावित्री और कमला से संयुत थे। कामदेव भी महादेव जी के वचन का श्रवण करके अपने मित्र (बसन्त) के सहित और पत्नी रति के साथ में आमोद से युक्त हो गया था। उसने विविक्त रूप वाला होकर शम्भु को प्राप्त कर निरन्तर बसन्त को विनियोजित कर वहीं पर स्थित हो गया।

सती से विवाह प्रस्ताव

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--इसके अनन्तर सती ने पुनः शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में उपवास किया था और आश्विन मास में देवेश्वर का भक्ति भाव से पूजन किया था। इस तरह से इस नन्दा व्रत के पूर्ण हो जाने पर नवमी तिथि में दिन के भाग में भक्तिभाव से परमाधिक विनम्र उस सती को भगवान् हर प्रत्यक्ष हो गये थे अर्थात् सती के समक्ष में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो गए थे। प्रत्यक्ष रूप से हर का अवलोकन करके सती आनन्द युक्त हृदय वाली हो गयी थी। फिर उस सती ने लज्जा से अवनत होते हुए विनम्र होकर उनके चरणों में प्रणाम किया था। इसके अनन्तर महादेवजी ने उस व्रत के धारण करने वाली सती से कहा था। शिव स्वयं भार्या के लिए उसकी इच्छा करने वाले होते हुए भी उसके आश्चर्य के फल के प्रदान कराने वाले हुए थे। ईश्वर ने कहा—हे दक्ष की पुत्री! आपके इस व्रत से मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब आप वरदान का वरण कर लो जो भी आपको अभिमत होवे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—जगत् के स्वामी महादेव उसके भाव को जानते हुए उस सती के वचनों के श्रवण करने की इच्छा से 'वरदान माँग लो' यह बोले थे। वह सती भी लज्जा से समाविष्टा होती हुई जो कुछ भी हृदय में स्थित था उसके कहने में समर्थ न हो सकी थी क्योंकि बाला को जो भी मनोरथ अभीष्ट था वह लज्जा से समाच्छादित हो गया था अर्थात् लज्जावश उस अभीप्सित को मन में ही रखकर कुछ भी न बोल सकी थीं।

इसी बीच में कामदेव उस समय में अभिप्राय के सहित हर की नेत्र मुख और व्यापार से चिन्हित प्राप्त करके विवर चाप का पुष्पहेति के द्वारा सन्धान करने वाला हो गया था। इसके अनन्तर हर्षण बाण के द्वारा उसने (कामदेव ने) हर के हृदय बेधन किया था। इसक उपरान्त हर्षित शम्भु ने फिर एक बार सती को देखा था। उस समय में परमेश्वर शिव ने परब्रह्म के चिन्तन को एकदम भुला ही दिया था। फिर इस कामदेव ने मोहनबाण के द्वारा भगवान् हर को बेधित किया था। तब हर्षित होकर शम्भु उस अवसर पर बहुत ही अधिक मोहित हो गये थे। हे द्विजोत्तमों! जब इन्होंने मोह और हर्ष को व्यक्त कर दिया था तो वह माया के द्वारा भी विमोहित हो गये थे। इसके अनन्तर सती ने अपनी लज्जा को स्तम्भित करके जिस समय में हर से वह बोली थी—हे वरद! मेरे अभीष्ट वर इस अर्थ को करने वाले को प्रदान करिए। उस समय में सती के वाक्य के अवसान की प्रतीक्षा न करके ही वृषभध्वज ने दाक्षायणी से पुनः 'मेरी भार्या हो जाओ' कहला दिया था।

हर के यह वचन सुनकर जो अभीष्ट के फल का भावना से युक्त था वह सती मनोगत वर की प्राप्ति करके परम प्रमुदित होती हुई मौन होकर स्थित हो गयी थी। हे द्विजोत्तमो! कामवासना से समन्वित महादेवजी आगे वहाँ पर ब्रह्म चारुहास वाली सती ने अपने हावों और भावों से किया था। उस समय में अपने भावों का आदान-प्रदान करके शृंगार नामक रस ने उन दोनों में प्रवेश किया था। वे विप्रेन्द्रों! भगवान् हर के आगे स्निग्ध भिन्न अंजन की प्रभा से समान प्रभा वाली, स्फटिक के समान उज्ज्वल कान्ति वाले हर के सामने चन्द्रमा के समीप में अंकलेख की तरह राजित हुई थी। इसके अनन्तर दाक्षायणी पुनः उन महादेवजी से बोली थी—हे जगत्पते! मेरे पिता के सामने गोचर होकर मुझे ग्रहण कीजिए। उस समय में देवी सती ने इस प्रकार से जो स्मितयुक्त वचन कहा था कि 'मेरी भार्या हो जाओ' यह महादेव जी ने कहा था। इसके अनन्तर कामदेव यह देखकर रति और अपने मित्र

वसन्त के साथ प्रसन्नता से युक्त हो गया था और निरन्तर अपने आपको अभिनन्दित किया था।

हे द्विजोत्तमों! इसके अनन्तर दाक्षायणी ने शम्भु को समाश्वासित करके हर्ष और मोह से समन्विता होती हुई वह सती माता के समीप गयी थी। भगवान् हर भी हिमालय के प्रस्थ से प्रवेश करके जो कि उनका आश्रम था दाक्षायणी के विप्रलम्भ (वियोग) के दुःख से ध्यान में परायण हो गए थे। इसके उपरान्त विप्रलब्ध भी अर्थात् वियोग से युक्त होते हुए भी उन्होंने ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण किया था जो कि जाया के परिग्रहण के अर्थ में पद्मयोनि ने (ब्रह्माजी ने) कहा था। पहले विश्वास से ब्रह्मवाक्य के पर का स्मरण करके ही वृषभध्वज मन से ब्रह्माजी का चिन्तन करने लगे थे। इसके अनन्तर चिन्तन किए हुए यह परमेष्ठी (ब्रह्मा) त्रिशूली के आगे शीघ्र ही इष्ट की सिद्धि से प्रेरित हुए प्रविष्ट हुए थे जहाँ पर हिमालय के प्रस्थ में यह विप्रलब्ध भगवान् शम्भु विराजमान थे। सावित्री के सहित ब्रह्माजी वहाँ पर ही उपस्थित हो गए थे। इसके उपरान्त भगवान् हर ने सावित्री के सहित धाता को देखकर बड़ी ही उत्सुकता के साथ विप्रलब्ध शम्भु सती से बोले।

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी, विश्व के अर्थ जो दारा के परिग्रहण की कृति में आपने जो कहा था वह अब मुझे उस सार्थक की ही भाँति प्रतीत होता है। अत्यन्त भक्ति से दाक्षायणी के द्वारा मेरी आराधना की गयी है। जिस समय में उसके द्वारा प्रपूजित मैं उसको वरदान देने के लिए गया था तब उसके समीप कामदेव ने विशाल बाणों से वेध दिया था और मैं माया से मोहित हो गया था कि मैं उसका प्रतिकार शीघ्र ही करने में असमर्थ हो गया हूँ देवी का वाँच्छित मैंने यह भी देखा था। हे विभो! व्रत की भक्ति से प्रसन्नता से समन्वित मैं उसका भर्त्ता हो जाऊँ। इससे हे प्रजापते! अब आप विश्व के लिए और मेरे लिए ऐसा करें कि दक्ष प्रजापति मुझे आमन्त्रित करके अपनी पुत्री को मुझे शीघ्र ही प्रदान कर देवे। आप दक्ष के भवन में गमन कीजिए और मेरा वचन

उनसे कहिए कि जिस प्रकार से सती का वियोग भस्म हो जावे वैसा ही पुनः आप करें।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रजापति के सकाश में महादेव जी ने यह इतना कहकर उन्होंने सावित्री का अवलोकन किया था तो उनको सती का विप्रयोग विशेष बढ़ गया था। लोकों के ईश ब्रह्माजी ने उनसे सम्भाषण करके वे आनन्द से संयुत कृत-कृत्य अर्थात् सफल हो गये थे और उन्होंने जगतों का हित तथा शिव का हित कर यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा हे वृषभध्वज! हे भगवान्! हे शम्भो! जो आप कहते हैं उसमें विश्व का अर्थ तो सुनिश्चित ही है। इसमें आपका स्वार्थ नहीं है और न कोई मेरा स्वार्थ है। दक्ष तो अपनी पुत्री को आपके लिए स्वयं ही दे देगा और मैं भी आपके वाक्य को उसके ही समक्ष कह दूँगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोक पितामह ब्रह्माजी ने यह महादेवजी से कहकर अतीव वेग वाले स्पन्दन द्वारा वे दक्ष प्रजापति के निवास स्थान पर गये थे। इसके अनन्तर उधर दक्ष भी सम्पूर्ण वृतान्त सती के मुख से सुनकर यह चिंता कर रहा था कि यह मेरी पुत्री शम्भु को कैसे दे दी जावे। आये हुए भी महादेव परम प्रसन्न होकर चले गए थे वह भी पुनः ही सुता के लिए कैसे इक्षित हैं अथवा मुझे उनके निकट शीघ्र ही कोई दूत भेजना चाहिए। यह योग्य नहीं है कि यदि विभु अपने लिए इसको न ग्रहण करें तो एक अनुचित ही बात होगी।

मैं उन्हीं वृषभध्वज की पूजा करूँगा कि जिस तरह से वह स्वयं ही मेरी पुत्री के स्वामी हो जावें। वे भी इसी के द्वारा अत्यन्त प्रयत्न के साथ अतीव वांच्छा करती हुई से पूजित हुए हैं। शम्भु मेरे भर्ता होवे और इस प्रकार से उन्होंने उसे वर भी दिया। इस रीति से दक्ष चिन्तन कर रहे थे कि उसी समय में ब्रह्माजी उसके आगे समुपस्थित हो गये। वे हंसों के रथ में सावित्री के साथ ही विराजमान थे। प्रजापति दक्ष ने ब्रह्माजी को देखकर उनका प्रणिपात किया था और वह विनम्र होकर स्थित हो गया था। उसने उनको आसन दिया था और यथोचित

रीति से सम्भाषण किया था। इसके अनन्तर उन सब लोकों के ईश से वहाँ पर आगमन का कारण दक्ष ने पूछा था। हे विपेन्द्रों! वह दक्ष चिन्ता से आविष्ट भी था किन्तु हर्षित हो रहा था। दक्ष ने कहा—हे जगतों के गुरुवर! यहाँ पर आपके आगमन का कारण बतलाइए? आप पुत्र के स्नेह से अथवा किसी कार्य के वश में इस आश्रम में समागत हुए हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से महात्मा दक्ष के द्वारा पूछे गये सुरश्रेष्ठ (ब्रह्माजी) ने उस प्रजापति दक्ष को आनन्दित करते हुए हँसकर यह वाक्य कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा—हे दक्ष! सुनिए, मैं तुम्हारे जिस कार्य के लिए यहाँ पर समागत हुआ हूँ वह कार्य लोकों का हितकर है तथा पथ्य है और आपका भी अभीप्सित है। तेरी पुत्री ने जगत् के पति महादेव की समाराधना करके जो वर प्राप्त करने की उनसे प्रार्थना की थी वह आज स्वयं ही गृह में समागत हुए है। शम्भु ने आपकी पुत्री के लिए आपके समीप में मुझे पुनः प्रस्थापित किया है जो कृत्य परम श्रेय है उसका अवधारण करिए। जिस समय वरदान देने को वे आए थे तभी से लेकर आपकी पुत्री के वियोग से शीघ्र ही कल्याण की प्राप्ति नहीं कर रहे हैं, कामदेव ने भी उस समय अत्यधिक बेधन किया था उसे जगत् के प्रभु का बेधन सभी पुष्कर बाणों से एक ही साथ किया था। वह कामदेव के द्वारा बाणों से बिद्ध होकर आत्मा का परिचिन्तन त्याग कर जैसे कोई सामान्य जन हो उसी भाँति अतीव व्याकुल वाणी को भुलाकर विप्रयोग से गणों के आगे अन्य कृति में भी 'सती कहाँ है' यह बोला करते हैं।

मैंने जो पूर्व में चाहा था और आपने तथा कामदेव ने इच्छा की थी एवं मरीचि आदि मुनिवरों ने जिसकी इच्छा की थी। हे पुत्र! वह कार्य अब सिद्ध हो गया है। आपकी पुत्री के द्वारा शम्भु की आराधना की गई थी और वे भी उस तुम्हारी पुत्री विचिन्तन से हिमवद्गिरि में अनुमोदन करने के लिए इच्छुक हैं। जिस प्रकार से अनेक प्रकार के भावों के द्वारा सती ने नन्दा के व्रत से शम्भु की आराधना की थी ठीक

उसी भाँति उनके द्वारा सती की आराधना की जा रही है। इसलिए हे दक्ष! शम्भु के लिए परिकल्पित अपनी पुत्री सती को बिना विलम्ब किए हुए उनको दे दो उसी से आपकी कृतकृत्यता अर्थात् सफलता है। मैं उनको नारद द्वारा आपके आलय में ले आऊँगा। उसके लिए आप भी इस सती को जो कि उन्हीं के लिए परिकल्पित है उन्हें दे दो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—दक्ष ने 'ऐसा ही होगा', यह दक्ष ने ब्रह्माजी से कहा था और ब्रह्माजी भी वहाँ से उसी स्थान पर चले गऐ थे जहाँ पर भगवान् शम्भु विराजमान थे। ब्रह्माजी के चले जाने पर दक्ष प्रजापति भी अपनी दारा और तनया के साथ आनन्दयुक्त हो गया था और पीयूष से परिपूरित की ही भाँति पूर्ण देह वाला हो गया था।

इसके अनन्तर कमलासन ब्रह्माजी भी मोद से प्रसन्न होकर महादेवजी के समीप प्राप्त हो गये थे जो कि हिमालय पर्वत पर संस्थित थे। वृषभध्वज ने उन आते हुए लोकों के स्रष्टा को देखकर वे सती की प्राप्ति में बारम्बार मन में संशय कर रहे थे। इसके अनन्तर दूर ही ही से साम से समन्वित ब्रह्माजी को महादेवजी ने जो कामवासना को भस्म में धारण किए थे और कामदेव के द्वारा उन्मादित हो गये थे, कहा था। ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी! आपके पुत्र (दक्ष) ने सती के अर्थ में स्वयं क्या कहा था ? आप मुझे बतलाइए जिससे कामदेव के द्वारा मेरा हृदय विदीर्ण न किया जावे। बाधमान विप्रयोग सती के बिना मुझको हनन कर रहा है। हे सुरश्रेष्ठ! यह कामदेव अन्य सब प्राणियों का त्याग कर मेरे ही पीछे पड़ा हुआ है। हे ब्रह्माजी! वह सती जिस तरह से भी मुझे प्राप्त हो जावे वही आप शीघ्र ही करिए। ब्रह्माजी ने कहा—हे वृषभध्वज! सती के अर्थ में जो मेरे पुत्र (दक्ष) ने कह दिया था उसको आप सुनिए और अपना साध्य सिद्ध हो गया, यही अवधारित कर लीजिए।

उसने कहा था कि मुझे मेरी पुत्री उन्हीं के लिए देने के योग्य है और उनके लिए ही वह परिकल्पिता है। यह कर्म तो मुझे भी अभीष्ट था ही किन्तु अब आपके वाक्य से पुनः अधिक अभीप्सित हो गया है।

मेरी पुत्री के द्वारा शिव समाराधित किए गए हैं और इसी के लिए उसने स्वयं ही ऐसा किया है और वे शिव भी उनकी इच्छा करते हें अर्थात् सती को भार्या के रूप में पाना चाहते हैं। इसी कारण से मुझे इसको हर के ही लिए देना चाहिए। अर्थात् मैं उन्हीं को दूँगा। वे शिव किसी शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न में मेरे समीप में आ जावें। हे ब्रह्माजी, उसी समय में मैं भिक्षार्थ में शम्भु के लिए अपनी पुत्री सती को दे दूँगा।

हे वृषभध्वज ! दक्ष ने यही प्रसन्नता के साथ कहा था। इसलिए आप किसी परम शुभ मुहूर्त में उस सती की अनुयाचना करने के लिए उन (दक्ष) के समीप में गमन कीजिए। ईश्वर ने कहा–मैं आपके साथ तथा महात्मा नारद जी के साथ ही यहाँ से गमन करूँगा। हे जगतों के द्वारा पूज्य! इस कारण से आप शीघ्रताशीघ्र ही नारद जी का स्मरण करिए। मरीचि आदि दस मानस पुत्रों को भी स्मरण करिए उन सबके ही साथ मैं अपने गणों सहित दक्ष के निवास स्थान पर जाऊँगा। इसके अनन्तर कमलासन प्रभु के द्वारा वे सब स्मरण किए गए थे जो मन के समान वेग वाले ब्रह्माजी के पुत्र नारद के ही सहित थे।

तीनों देवों का एकत्व प्रतिपादन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–फिर वहाँ पर देवर्षि नारद जी के सहित सभी मानस पुत्र समागत हो गये थे। ये सब ब्रह्माजी के द्वारा किए हुए केवल स्मरण से ही बात के द्वारा विशेष प्रेरित जैसे होवें वैसे ही सब वहाँ उपस्थित हो गए थे। उनके साथ और ब्रह्माजी के साथ में अपने गणों के साथ में लेकर भगवान् शम्भु मोह से संगत होते हुए दक्ष के निवास मन्दिर में गये थे। इसके अनन्तर उनके कर्म के योगी काल के आने पर गणों ने शंख, पट्टह, डिण्डिम, सूर्यवंशी को वादित किया था और आनन्द से युक्त हुए वे सब शंकर का अनुगमन करते हैं। कुछ ताल बजा रहे थे और कोई करतलों के द्वारा अग्रितल की ध्वनि कर रहे थे। वे सब अपने अति वेग वाले विमानों के द्वारा वृषभध्वज का अनुगमन करते हैं। अनेक तरह की आकृतियों वाले गण भारी

कोलाहल करते हुए तथा बुरी तरह की ध्वनि को करने वाले शब्दों के योग से ही वहाँ से अर्थात् शिव के आश्रम से निर्गत हुए थे। इसके उपरान्त आनन्द से युक्त देव, गन्धर्व और अप्सराओं के गण वाद्यों के द्वारा मोह को करते हुए तथा नृत्यों से समन्वित हुए वृषभध्वज का अनुगमन कर रहे थे। हे विपेन्द्रों ! गन्धर्वों तथा गणों के उस शब्द से सब दिशायें तथा समस्त वसुन्धरा परिपूरति हो गए थे अर्थात् वह ध्वनि सर्वत्र फैलकर भर गई थी।

कामदेव भी अपने गणों के सहित शृंगार रस आदि के साथ काम को मोहित करता हुआ अनुगत हुआ था। भार्या के लिए भगवान् हर के गमन करने पर उस समय में समस्त सुर ब्रह्मा आदि स्वयं ही मनोहर शब्द कर रहे थे। हे द्विजश्रेष्ठों! सभी दिशायें सुप्रसन्न हुई थीं। परम शान्त अग्नियाँ प्रज्वलित हो गयी थीं और आकाश से पुष्पों से समन्वित हो गए थे। जो कोई अस्वस्थ भी थे वे भी सभी प्राणी स्वस्थ हो गये थे। हंस और सारसों के समुदाय नील कम्बु और चकोर ईश्वर की प्रेरणा करते हुए के ही समान परम मधुर शब्दों को कर रहे थे। शिवजी को भुजंग (सर्प), बाघम्बर, जटाजूट, चन्द्रकला भूषणता को प्राप्त हुए थे वह इन भूषणों से भी अधिक दीप्त हो रहे थे। इसके अनन्तर एक क्षण में बलवान् और वेग वाले बलीवर्द (बैल) के द्वारा ब्रह्मा और नारद आदि के सहित शिव दक्ष के निवास स्थान पर पहुँच गए थे।

इसके उपरान्त महान तेजस्वी प्रजापति दक्ष ने स्वयं शिव का स्वागत करके ब्रह्मा आदिक के लिए उनके लिए जैसे भी उचित थे, आसन दिए थे। उसी भाँति अर्घ्य, पाद्य आदि से उन सबकी समुचित पूजा करके जैसी भी योग्य थी फिर दक्ष मानस मुनियों के साथ संविद किया था। हे द्विज सत्तमों! इसके उपरान्त शुभमुहूर्त्त और लग्न में प्रजापति दक्ष ने बड़े ही हर्ष से अपनी पुत्री सती को शम्भु भगवान् के लिए प्रदान किया था। शम्भु ने भी सभी विधि से हर्षित होकर सती का परिग्रहण किया था। वृषभध्वज ने परम श्रेष्ठ तनु वाली दाक्षायणी

से उस समय में पाणि का ग्रहण किया। ब्रह्मा और नारद आदि मुनियों ने सामवेद की गीतियों से ऋचाओं से तथा सुश्राव्य यजुर्वेद के मन्त्रों से ईश्वर को तोषित किया था। सब गणों ने वाद्यों का वादन किया था और अप्सराओं के गणों ने नृत्य किया था। आकाश में संगत मेघ ने पुष्पों की वृष्टि की थी। इसके अनन्तर भगवान् गरुड़ध्वज कमला (लक्ष्मी) के साथ में अत्यन्त वेग वाले गरुड़ द्वारा भगवान् शम्भु के समीप उपस्थित होकर यह वचन बोले थे।

श्री भगवान् ने कहा–हे हर! जिस प्रकार से लक्ष्मी के साथ से मैं शोभायमान होता हूँ ठीक उसी भाँति स्निग्ध नीलअंजन के समान श्वास शोभा से समन्वित दाक्षायणी के साथ आप शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। आप इसी सती के साथ में विराजमान होकर देवों की अथवा मानवों की रक्षा करो। इस सती के साथ संसार वालों का सदा मंगल करो। हे शंकर! यथायोग्य दस्युओं का हनन करेगा। अभिलाषा के सहित जो भी इसको देखकर अथवा श्रवण करेगा। हे भूतेश! उसका हनन करोगे इसमें कुछ भी विचारणा नहीं है अर्थात् इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विजो! प्रीति से प्रसन्न मुख वाले सर्वज्ञ प्रभु ने प्रसन्न मन वाले परमेश्वर से 'ऐसा ही होवे' यह कहा था। इसके अनन्तर उस समय से ब्रह्माजी ने चारु (सुन्दर) हास वाली दक्ष की पुत्री सती का दर्शन करके कामदेव से आविष्टा मन वाले होते हुए उसके मुख को देखने लगे थे। उस समय ब्रह्माजी ने बारम्बार सती के मुख का अवलोकन किया था और फिर अवश होते हुए उस समय में इन्द्रियों के विकार को प्राप्त हुए थे।

हे द्विजोत्तमों! इसके अनन्तर उनका तेज शीघ्र ही भूमि पर गिर गया था जो कि मुनि के आगे उस समय में वह जल दहन की आभा वाला था। हे द्विजसत्तमों! इसके उपरान्त उससे मेघ शब्द से संयुत हो गए थे। अब उन सुसज्जित मेघों के नाम बतलाए जाते हैं–सम्वर्त्त, अवर्त्त, पुष्कर और द्रोण। वे गर्जना करते हुए और जलों को मोचित करने वाले थे। उन मेघों के द्वारा आकाश के संच्छादित हो जाने पर

अर्थात् सर्वआकाश मेघों के द्वारा घिरा हुआ हो जाने पर भगवान् शंकर कामवासना से मोहित होते हुए दाक्षायणी देवी को अतीव देखते हुए कामदेव के द्वारा मोहित हुए। इसके उपरान्त उस समय में भगवान् विष्णु के वचन का स्मरण करते हुए शंकर ने शूल को उठाकर ब्रह्माजी का हनन करने की इच्छा की थी। हे द्विजोत्तमों! शम्भु के द्वारा ब्रह्माजी को मारने के लिए त्रिशूल के उद्यमित करने पर अर्थात् उठाये जाने पर मरीचि और नारद आदि सब उस समय में हाहाकार करने लगे थे। प्रजापति दक्ष ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, कह कहते हुए शंकित होते हाथ को उठाकर शीघ्र ही आगे समागत होकर भूतेश्वर प्रभु को निवारित किया था। इसके उपरान्त उस समय में महेश्वर ने दक्ष को मलिन देखकर भगवान् विष्णु की वाणी को स्मरण कराते हुए यह प्रिय वचन बोला था।

ईश्वर ने कहा–हे विपेन्द्र! नारायण ने जो इस समय में कहा था, हे प्रजापते! वह यहाँ पर ही मैंने भी अंगीकार किया था। जो भी इस सती को कामवासना की अभिलाषा से युक्त होते हुए देखता है उसको आप मार डालेंगे। मैं इस वचन को इसका हनन करे सफल करता हूँ। ब्रह्माजी ने अभिलाषा अर्थात् कामवासना की इच्छा से समन्वित होकर क्यों सती का अवलोकन किया था। वह तेज के त्याग करने वाले हो गये थे इसी से उसका हनन मैं करता हूँ क्योंकि वे अपराध (पाप) करने वाले हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से बोलने वाले उनके आगे स्थित होकर भगवान् विष्णु ने बड़ी शीघ्रता की थी। समस्त जगत के प्रभु ने उनको मारने का निवारण करते हुए यह वचन कहा था। श्री भगवान् ने कहा–हे भूतेश्वर! जगतों के सृजन करने वाले और परमश्रेष्ठ ब्रह्माजी का हनन नहीं करोगे क्योंकि इन्होंने ही आपको भार्या के लिए सती को परिकल्पित किया था। हे शम्भो! यह चतुर्मुख (ब्रह्माजी) प्रजाओं के सृजन करने के लिए प्रादुर्भूत हुए थे। इनके मारे जाने पर जगत का सृजन करने वाला अन्य कोई अब प्राकृत नहीं है। फिर हम किस तरह से सृजन, पालन और संहार के कर्मों को करेंगे क्योंकि

इनके द्वारा वह मेरे आपके द्वारा ही सामञ्जस्य से ये कर्म हुआ करते हैं। एक के निहित हो जाने पर इनमें कौन हैं जो उस कर्म को करेगा। हे वृषभध्वज! इस कारण से आपके द्वारा विधाता वध करने के योग्य नहीं है।

ईश्वर ने कहा—मैं इन चतुरानन ब्रह्मा को मारकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा। बाकी रही प्रजा सृजन की बात सो मैं अकेला ही प्रजाओं का जो भी स्थावर और जंगम हैं सृजन कर दूँगा। मैं अन्य विधाता का सृजन कर दूँगा अथवा मैं ही अपने तेज से कर दूँगा और मेरे द्वारा निर्मित एवं सृजित विधाता सृष्टि के करने वाले होंगे जो सर्वदा मेरी अनुज्ञा से ही करेगा। वे विभो! मैं ही उसको मारकर अर्थात् ब्रह्मा का वध करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हे चतुर्भुज! एक सृजन करने वाले का सृजन करूँगा। आप मुझे वारित न करिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—भगवान् चतुर्भुज ने गिरीश के इस वचन का श्रवण करके मन्द मुस्कान से युक्त प्रसन्न मुख वाले होते हुए फिर भी 'ऐसा मत करो'—यह कहते हुए बोले की प्रतिज्ञा की पूर्ति आत्मा में करना योग्य नहीं होता है। हे द्विजोत्तमों! ईश्वर के मुख के सामने ही विष्णु ने कहा था। इसके उपरान्त शिव ने कहा था कि मेरे शम्भु के रूप से ब्रह्मा मेरी आत्मा किस तरह से हैं। यह तो प्रत्यक्ष रूप से आगे स्थित होते हुए भिन्न ही दिखलाई दे रहे हैं। इसके अनन्तर उस समय में मुनियों के सामने भगवान् ने हँसकर गरुड़ध्वज ने महादेव को दोष देते हुए कहा था।

श्री भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी आपसे भिन्न नहीं हैं और न शम्भु ही ब्रह्माजी से भिन्न हैं और दोनों से मैं भी भिन्न नहीं हूँ। यह हम तीनों की अभिन्नता तो सनातन अर्थात् सदा से ही चली आने वाली है। भाग अभाग स्वरूप वाले प्रधान और अप्रधान का ज्योतिर्मय का मेरा भाग आप दोनों हैं और मैं अशंक हूँ। कौन तो आप हैं, कौन मैं हूँ, कौन ब्रह्मा हैं वे तीनों ही परमात्मा मेरे ही अंश हैं। सृजन, पालन और संहार के कारण ये भिन्न होते हैं। आप अपनी आत्मा में ही संस्तव करो।

ब्रह्मा, विष्णु और शम्भु को एकत्रित हुए हृद्यत करो। जिस तरह एक ही धर्मी के शिर, ग्रीवा आदि के भेद से अंग होते हैं। हे हर! ठीक उसी भाँति मेरे एक के ही ये तीनों भाग हैं। जो ज्योति सबसे उत्तम है, जो अपने और पराये प्रकाश रूप हैं, कूटस्थ, अव्यक्त और अनन्त रूप से युक्त हैं और नित्य हैं तथा दीर्घ आदि विशेषणों से हीन तथा वह पर है उसी रीति से हम तीनों अभिन्न हैं।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उन भगवान् के इस वचन को श्रवण करके महादेव विमोहित हो गये थे। वह अभिन्नता का ज्ञान रखते हुए भी अन्य चिन्तन से सदा ही विस्मृति होने से ही उनको अभिन्नता का ज्ञान नहीं हो रहा था। उन्होंने फिर भी गोविन्द से त्रिभेदियों की अभिन्नता को पूछा था। ब्रह्मा, विष्णु और त्र्यम्बकों का और एक का विशेषक को पूछा। इसके अनन्तर पूछे गए नारायण ने शम्भु से कहा था और तीनों देवों का अनन्यता और एकता को प्रदर्शित किया था। इसके उपरान्त विष्णु भगवान् के मुख कमल से कोश से अनन्यता का श्रवण करके तथा विष्णु-विधि और ईश के तत्व में स्वरूप को देखकर मृड (शिव) ने पुष्प, मधु से प्रकाश विधाता इसको नहीं मारा था।

तीनो देवों का अनन्यत्व

ऋषिगणों ने कहा–भगवान् जनार्दन ने तीनों देवों की जो अनन्यता को कहा था। हे द्विजोत्तम! शम्भु के लिए सदा अद्वय के श्रवण करने की इच्छा रखते हैं अथवा गरुड़ध्वज ने कैसे एकत्व को दिखाया था? हे विपेन्द्र! उसको बतलाइए। हमको बहुत ही अधिक कौतूहल है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे मुनिगणों! आप लोग श्रवण करिए। यह तीनों देवों की अनन्यता अर्थात् उनके एकत्व का दर्शन परम गोपनीय है। भगवान् हर ने भगवान् गोविन्द से पूछा था और बहुत ही आदर के साथ सम्भाषण करके ही पूछा था। हे मुनिश्रेष्ठों! इन्होंने इनकी अभिन्नता का प्रतिपादन करने वाला यहीं कहा था। श्री भगवान् ने

कहा–यह जब भुवन वर्जिततमोमय अर्थात् तम से परिपूर्ण था। यह अप्रज्ञात, अलक्ष्य और सभी ओर से प्रसुप्त के ही तुल्य था। यहाँ पर दिन रात्रि का भाग नहीं है, न आकाश है और न काश्यपी ही है, न ज्योति है, न जल है और न वायु है अन्य किञ्चित् संस्थित नहीं है। परमब्रह्म एक ही था जो सूक्ष्म, नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं, यह अव्यक्त और ज्ञानरूप से द्वैत से ही परिपूर्ण है।

प्रकृति और पुरुष ये दोनों सर्व सहित नित्य हैं। हे भूतेश! काल भी स्थित है जो एक ही जगत् का कारण है। हे हर! जो एक परमब्रह्म है वह स्वरूप से परे है उसी जगत के पति के यह तीनों रूप नित्य हैं। काल नाम वाला दूसरा रूप है जो अनाद्य है और वह तो कारण है वह सब भूतों का अवच्छेद से संगत होता है। फिर वह अपने प्रकाश से भास्वद्रूप वाला प्रकाशित होता है। पहले सृष्टि की रचना करने के लिए अतुल रूप से स्वयं प्रकृति से क्षोभयुत करता हुआ था। प्रकृति के संक्षुब्ध हो जाने पर महत्तत्व की उत्पत्ति हुई थी। पीछे महत्तत्व से तीन प्रकार का अहंकार समुत्पन्न हुआ था। अहंकार के समुत्पन्न होने पर शब्द तन्मात्रा से विष्णु ने आकाश का सृजन किया था जो आकाश अनन्त है और मूर्ति से रहित है अर्थात् आकाश की कोई भी मूर्ति नहीं है। इसके उपरान्त महेश्वर ने रस तन्मात्र से जल का सृजन किया था। उस समय वह अपनी माया से निराधार ने स्वयं ही धारण किया था।

इसके अनन्तर प्रभु ने तीनों गुणों की अर्थात् सत्व, रज, तम इनकी समता ने संस्थित प्रकृति को परमेश्वर ने पुनः सृष्टि की रचना के लिए संक्षोप्ति किया था। इसके पश्चात् उस प्रकृति ने उस जल में त्रिगुण के भाग वाले निराकुल जगत् के बीच स्वरूप बीज को भली-भाँति सृजन किया था। वही निश्चत रूप से क्रम से ही वृद्ध महान् सुवर्ण का अण्ड हुआ था। उस अण्ड ने गर्भ में ही उस सम्पूर्ण जल को ग्रहण कर लिया था और अण्ड के गर्भ में जल के स्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु ने उस अण्ड को आपकी ही माया से इस अतुल ब्रह्माण्ड को धारण कर लिया था। जल, अग्नि, वायु तथा नभ से वह अण्डक

बाहिर सब पार्श्व में और सभी ओर आछन्न हो गया था। सात सागरों के मान से जैसे नदी आदि के मान से ब्रह्माण्ड के अन्दर जल है उसी तरह से उसके अन्दर यह भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा के रूप के धारण करने वाले हैं। एक वर्ष तक निवास करके ही मैंने उस अण्ड का भेदन किया था।

हे महेश्वर! उससे इसमें मेरु हुआ था। उस जल से जरायु पर्वत हुए और सात समुद्र हुए था। उसके मध्व में गन्ध की तन्मात्रा से पृथ्वी समुत्पन्न हुई थी। ईश्वर के द्वारा और प्रवृत्ति से वह त्रिगुणात्मिका ज्योति की थी। पहले ही पर्वत आदि से वसुन्धरा समुत्पन्न हुई थी। ब्रह्माण्ड के खण्ड के संयोग से वह अत्यन्त दृढ़ हो गई थी। उसमें ही सब लोकों के गुरु ब्रह्माजी स्वयं संस्थित हैं। तब ही से सब लोकों के गुरु ब्रह्माजी स्वयं संस्थित हैं। जब ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित थे तो वह व्यक्त नहीं हुए थे। उसी समय में रूप की तन्मात्रा से भली-भाँति तेज उत्पन्न हुआ था। प्रकृति के द्वारा विनियोतिज स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न हुआ था जो वायु सभी ओर से समस्त प्राणियों का प्राणभूत हुआ था। अतुल जलों से, तेजों से, वायुओं से तथा नभ से उस अण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त था और गर्भ में गमन करने वाला था। इसके अनन्तर महेश्वर ने ब्रह्मा के शरीर को तीन भागों में विभक्त कर दिया था। हे शम्भो! स्वभाव की इच्छा के वश से त्रिगुण त्रिगुणीकृत हो गया।

. उसका जो उर्ध्वभाग था चतुर्मुख और चतुर्भुज हो गया था। पद्म केशर के समान और रंग काया वाला ब्रह्म महेश्वर था। उसका जो मध्य भाग था वह नीले अंगों वाला, एक मुख से युक्त चार भुजाओं वाला था। शंख, चक्र, गदा और पद्म हाथों में लिए हुए वह काम वैष्णव था। उसका अधोभाग पाँच मुखों से समन्वित, चार भुजाओं वाला था। वह स्फटिक के तुल्य शुक्ल था और वह काम चन्द्रशेखर था। इधर-उधर ब्रह्म के कार्य में सृष्टि की शक्ति नियोजित किया था और वह लोकभूत ब्रह्म के रूप से सृष्टा हो गया था। महेश ने वैष्णव

काम में अपनी ज्ञान की शक्ति को महेश्वर में ही स्थिति अर्थात् पालन का करने वाला विष्णु हो गया था। सर्वशक्तियों के नियोग से मेरा सदा ही तद्रूपता है।

वही परमेश्वर संहार करने वाले शम्भु हो गये थे। इनका वे फिर तीनों शरीरों में अर्थात्–ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनों में वह स्वयं ही प्रकाश किया करते हैं। ज्ञानरूप परमात्मा भगवान् प्रभु अनादि हैं। सृजन, पालन और संहार के करने से एक ही हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु और महेश पृथक्–पृथक् नहीं हैं। इस प्रकार से शरीर, रूप और ज्ञान हमारा अन्तर होता है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस प्रकार से शिव भगवान् ने उन अमित तेज वाले भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके अतिरेक से विकसित मुख वाले होकर पुनः जनार्दन प्रभु से बोले–यदि ज्योति स्वरूप वाला और निरञ्जन महेश ही है, कौन सी माया है अथवा कौन काल है अथवा कौन प्रकृति कही जाया करती है ? कौन से पुरुष उनसे भिन्न-अभिन्न हैं यदि ऐसा है तो फिर एकता किस रीति से होती हैं ? हे गोविन्द! उनके प्रभाव को मुझे बतलाइए।

श्री भगवान् ने कहा–आप ही सदा ध्यान में समवस्थित होकर परमेश्वर को देखा करते हैं जो आत्मा में आत्मस्वरूप हैं और वह ज्योति के रूप वाला सहक्षर है। हे विभो! माया को, प्रकृति को, काल को और पुरुष को आप स्वयं जानने वाले हैं जब आप ध्यान का भोग करते हैं तो उसी के द्वारा ज्ञाता हैं। इसीलिए आप ध्यान में तत्पर हो जाइए क्योंकि इस समय में आप हमारी माया से मोहित हो रहे हैं। इसी कारण से आप निश्चय ही परम ज्योति का विस्मरण करके वनिता में निरत हो रहे हैं। अब आप कोप से युक्त हैं अतएव कोप को भूलकर हे प्रथमों के स्वामिन्! प्रकृति के आदिरूप जिसको आप पूछ रहे हैं। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–फिर तो वहाँ पर महादेवजी ने इस परम सुनिश्चित वाक्य का श्रवण करके समस्त मुनियों के देखते हुए ये योग से युक्त होकर ध्यान में परायण हो गये थे। इस समय में बन्ध का आसाद न करके विर्निमीलित लोचनों वाले महेश्वर ने सब आत्मा का

चिन्तन किया था। परमपुरुष का चिन्तन करते हुए उनका शरीर बहुत अधिक कान्तियुक्त होकर चमक रहा था। तेज से उज्ज्वल उनको देखने के लिए उस समय में मुनिगण भी समर्थ नहीं हुए थे। उसी क्षण में जब ये शम्भु ध्यान से मुक्त हो गये तो भगवान् विष्णु की माया ने भी उनका परित्याग कर दिया था उस समय वे तप के तेज से अतीव उज्जवल एवं कान्तिमान् होकर चमक रहे थे।

जो-जो भी गण उस अवसर पर सेवा करने के लिए शंकर के समीप में स्थित रहते थे वे सब भी उन शंकर अथवा दिवाकर के देखने में समर्थ नहीं थे अर्थात् उन्हें देख नहीं सकते थे। उस काल में स्वयं ही भगवानृ विष्णु समाधि में मन लगाने वाले शिव के शरीर के अन्दर ज्योति के स्वरूप से प्रविष्ट हुए थे। उन शंकर ने जठर में प्रवेश करके जैसे पहले सृष्टि का क्रम था ठीक उसी भाँति स्वयं अव्यय नारायण ने दिखा दिया था। वह न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही हैं, न विशेषण के गोचर हैं, वह नित्य आनन्दरूप हैं, निरानन्दन हैं, एक हैं, शुद्ध हैं और इन्द्रियों की पहुँच के बाहर हैं वह अस्पृश्य हैं और सब का दृष्टा अर्थात् देखने वाला है, वह निर्गुण है, परमपद हैं, परमात्मा में गमन करने वाला आनन्द हैं और जगत् के कारण का भी कारण हैं। सबसे प्रथम शम्भु ने तत्स्वरूपी आत्मा को देखा था। वह पर प्रविष्ट हुए मन में बाहर के ज्ञान से विवर्जित उसी के रूप प्रकृति को जो सृष्टि की रचना के लिए भिन्नता को प्राप्त हुई थी। उसी के समीप एक उसको पृथक् भूत हुई की भांति देखा था।

फिर इनमें जिस रीति से वास कर रहे पुरुषों को देखा था। हे द्विजसत्तमों! जैसे स्थूल अग्नि के कण से निरन्तर होवें। वह ही काल के रूप से बारम्बार भासित होता है। सृष्टि, पालन और अहंकार के योगों का अवच्छेद से कारण है। प्रकृति और पुरुष ही काल भी जो अभिन्न थे और सर्ग के लिए भिन्नता को प्राप्त हुए भी समान थे। इन सबको पृथक भूत और अभिन्न चन्द्रशेखर प्रभु ने देखा था। एक ही ब्रह्म है जो द्वैत से रहित और यहाँ पर कुछ भी नानारूप वाला नहीं है।

वह ही प्रधान रूप से और काल के स्वरूप से भासमान होता है तथा पुरुष के रूप में संसार के लिए प्रवृत्त हुआ करता है।

भोग करने के लिए निरन्तर वह प्राणधारियों के शरीर में प्रवर्त्तित होता है। वह ही माया या प्रकृति हैं जो शंकर भगवान् को मोहित करती है। वह ही हरि को और ब्रह्माजी को मोहयुक्त करती हैं। ठीक उसी भाँति से आप अन्य जन्म वाले हैं। माया के नाम वाली प्रकृति जात हुई और जन्तु को सम्मोहित भी किया करती है। वह सदा स्त्री के स्वरूप से लक्ष्मीभूता हुई हरि भगवान् की प्रिया है। वह ही सावित्री, रति, सन्ध्या, सती और वारिणी है। वह देवी स्वयं बुद्धि के रूप वाली है जो चण्डिका इन नाम से गायन की जाया करती है। यह ध्यान के मार्ग में गमन किए हुए भगवान् हर ने शीघ्र स्वयं ही देखा था। महत्तत्व आदि के भेद से फिर सृष्टि के क्रम को स्वयं देखा था। भगवान् ने काल-प्रकृति तथा पुरुषों को दिखलाकर हे द्विजोत्तमों! उसी प्रकार से उनके शरीर को अन्य दिखलाया था।

हर कोप शमन वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर भगवान् ने शम्भु के लिए ब्रह्माण्ड का संस्थान दिखलाया था जिस प्रकार से पहले ब्रह्माण्ड जो जल की राशि में स्थित होता हुआ बढ़ा था। उसके मध्य में पद्मगर्भ की आभा वाले जगत् के पति ब्रह्मा को जो ज्योति के रूप वाला प्रकाश के लिए और सृष्टि की रचना करने के लिए पृथक्गत है और शरीरधारी को देखा था। फिर ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत चार भुजाओं से समन्वित ज्योतियों से प्रकाशित कमल पर आसन वाले को देखा था और वहीं पर उन्होंने तीन भागों में स्थित वपु वाले ब्रह्मा को देखा था। जो ऊर्ध्व, मध्य और अन्त भागों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप वाला था। जिस रीति से वायु का ऊर्ध्व भाग उस समय में ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गया था जो मध्य भाग था। वह एक ही शरीर तीन भागों में बार-बार हर भगवान् ने अपने गर्भ में इस सम्पूर्ण जगत् को

उसी भाँति देखा था। कदाचित् वैष्णवकाय अर्थात् विष्णु का शरीर ब्रह्मकाय में अर्थात् ब्रह्मा के शरीर में लय हो जाता है। किसी समय में ब्रह्म वैष्णव में तथा शाम्भव वैष्णवकाय लीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कभी ब्रह्मा का शरीर विष्णु के शरीर में और शम्भु के शरीर में विष्णु का शरीर लय को प्राप्त हो जाया करता है।

शम्भु का शरीर विष्णु के वपु में अथवा ब्रह्मा का वपु शम्भु के शरीर में लीनता को प्राप्त होता हुआ तथा बार-बार एकता को प्राप्त होने वाला शम्भु भगवान् ने देखा था। वामदेव की भिन्नता को अप्राप्त पृथक्गत परमात्मा में गमन करते हुए अर्थात् लीनता को प्राप्त होते हुए उसके वपु को स्वयं देखा था। शम्भु ने उसके मध्य में जल में वितत अर्थात् विस्तृत पृथ्वी को देखा था। जो महान् पर्वतों के संघातों से विरल है। फिर उन्होंने आदि से सर्ग की रचना करते हुए ब्रह्माजी को देखा था तथा अपने आपको पृथक्भूत और गरुड़ पर आसन वाले विष्णु को देखा था। वहाँ पर ही प्रजापति दक्ष को और उसी भाँति अपने गणों को, प्ररीचि आदि दशों को, वैरिणी को, सती, सन्ध्या, रति, कन्दर्प, वसन्त के सहित श्रृंगार, हावों को, भावों को, मारों को, ऋषियों को, देवों को, गरुड़ गणों को देखा था। मेघों को, चन्द्र, सूर्य, वृक्षगण, वल्ली और तृण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, राक्षस और किन्नरों को देखा था।

मनुष्यों को, भुजंगों को, ग्राह, मत्स्य, कच्छप, उल्का, निर्घात, केतुकों को, कृमि, कीट और पतंगों को देखा था। वहाँ पर किसी वनिता को देखा था जो द्वन्द्व भाव को कर रही थी। किसी को उत्पन्न, उत्पत्ति को प्राप्त होते हुए विपद्ग्रस्त को देखा था। कुछ लोगों को हास-विलास करते हुए और कुछ को विलाप करते हुए तथा कुछ दौड़ लगाते हुओं को परमेश्वर ने देखा था जो कि शम्भु की ओर ही भाग रहे थे। कुछ लोग दिव्य अंलकारों से युक्त थे, कुछ माला और चन्दन से चर्चित हुए थे, कुछ लोग वीक्षा करते थे और कुछ पुनः शम्भु के साथ क्रीड़ित थे। कुछ लोग स्तुति कर रहे थे, कुछ शम्भु का स्तवन

करते हुए-विष्णु और ब्रह्मा का स्तवन करने वाले थे। उनके द्वारा कुछ मुनि और तपस्वी गण भी देखे गये थे। कुछ लोग नदी के तट पर तपोवन में तपस्या करते हुए देखे गये थे। कुछ लोग स्वाध्याय तथा वेदों में रत देखे गये थे और कुछ पढ़ाते हुए देखे गये थे। वहीं पर सात सागर, नदियाँ और देव सरोवर देखे गए थे। वही पर यह पर्वत पर स्थित थे, ऐसा स्वयं शम्भु के द्वारा देखा गया था।

यह महालक्ष्मी के रूप से भगवान् हरि को पर्याप्त रूप से मोहित किया करती है। सती के स्वरूप वाली उसी भाँति आत्मा को अर्थात् अपने आप को मोहित करती हुई को शंकर ने देखा था। वे स्वयं सती के साथ मेरु पर्वत कैलाश में रमण करते थे तथा मन्दिर में देव विपिन में जो शृंगार रस से सेवित था। वह देवी सती के रूप का परित्याग करके हिमवान् की सुता होकर समुत्पन्न हुई थी। जिस प्रकार से पुनः उसने उन सती को प्राप्त किया था और जैसे अन्धक मारा गया था। जैसे कार्तिकेय समुत्पन्न हुए और जिस तरह से तारक नाम वाले का हनन किया था यह सब विस्तारपूर्वक भली भाँति वृषभध्वज ने देखा था। जिस रीति से नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले के द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया था और जिस प्रकार से हिरण्याक्ष और कालनेमि नष्ट हुआ था तथा जैसे पहले किया हुआ दानवों के समुदाय के साथ विष्णु भगवान् के द्वारा युद्ध हुआ था तथा जो-जो भी वहाँ पर निहित हुए थे यह सभी कुछ भगवान् हर ने देखा था। जगत् के प्रपञ्चरूप ब्रह्मा आदि नक्षत्र ग्रह और मनुष्य, सिद्ध और विद्याधर आदि को पृथक-पृथक देख-देखकर ईश्वर शम्भु ने उन सबका संहार करते अपने आप को देखा था। इन्होंने फिर संहार के अन्त में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरी को देखा था। यह सम्पूर्ण चर और अचरों से समन्वित जगत् शून्य हो गया था। इस समस्त शून्य जगत् में ब्रह्मा, विष्णु के शरीर में गमन करने वाले तथा शम्भु लीन होते हुए उसी के शरीर में प्रवेश कर गये थे। इन्होंने एक ही अव्यक्त रूप वाले विष्णु को देखा था और इन्होंने अन्य कुछ भी नहीं देखा था जो उस समय में विष्णु के बिना

होवें। इसके अनन्तर विष्णु भगवान् को देखा गया था। परमात्मा में लय को प्राप्त, भासमान पर तत्व, सनातन ज्योति के रूप वाले परमतत्व देखे गये थे। इसके अनन्तर ज्ञान से परिपूर्ण, नित्य, आनन्दमय, ब्रह्म से पर, केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य को देखा था और अन्य कुछ भी नहीं देखा था। परमात्मा में उस जगत् का एकत्व और पृथक्त्व अपने शरीर के अन्दर मर्ग, स्थित और संयमों को देखा था।

प्रकाशरूप, शान्त, नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे परमात्मा को देखा था कि ब्रह्मा एक ही पर है। जो अद्वय द्वैत से रहित है। इससे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखा था। कौन भगवान् विष्णु है, कौन ब्रह्मा है अथवा क्या यह जगत् है ? शम्भु के द्वारा परमात्मा का यह भेद ग्रहण नहीं किया गया था। इस प्रकार से देखते हुए उनके शरीर के सुन्दर से बाहर माया आदि निर्गत हुए थे और वृषभध्वज (शिव) में प्रवेश कर गए थे। जनार्दन प्रभु ने अनन्यत्व और पृथक्त्व दिखलाकर शम्भु के लिए उनके शरीर से शीघ्र ही फिर बाहर हो गये थे। इसके उपरान्त समाधि से परित्याग करने वाले चलित आत्मा से युक्त शिव का मन सती की ओर गया था जो शिवमाया से मोहित हो गये थे। हे द्विजोत्तमों! फिर भगवान् हर ने दाक्षायणी के मनोहर और विकसित कमल के आकार वाले मुख को देखा था। इसके आगे दक्ष, मारीचि आदि मुनियों को, अपने गणों को, कमलासन (ब्रह्मा) को और भगवान् विष्णु को वहाँ पर देखकर भगवान् शंकर अत्यन्त विस्मित हो गये थे। इसके अनन्तर विस्मय में स्मित (मन्द मुस्कराहट) से प्रफुल्लित मुख से संयुत वृषभध्वज महादेव से भगवान् जनार्दन ने कहा।

श्री भगवान् ने कहा–हे शंकर! जो-जो भी आपने एकत्व में और भिन्नता में देखा और आपने तीनों देवों को स्वरूप जान लिया है। आपने अपने अन्तर में प्रकृति, पुरुष, काल और माया को अच्छी तरह से जान लिया है। हे महादेव! वे फिर किस प्रकार वाले हैं ? ब्रह्म एक ही हैं और वह शान्त, नित्य, परम महत् हैं। वह किस तरह से भिन्नता को प्राप्त हुआ और कैसा हैं यह आपने देख लिया है। मार्कण्डेय मुनि

ने कहा– इस रीति से भगवान् वृषभध्वज जब भगवान् विष्णु के द्वारा पूजे गये थे हे द्विजोतमों! हर ने हरि के लिए यह तथ्य वचन कहा था।

ईश्वर ने कहा–एक शिव परमशान्त, अनन्त, अच्युत ब्रह्म हैं और उनसे अन्य ऐसा कुछ भी नहीं है उनसे अभिन्न सम्पूर्ण जगत् हरि के कला आदि रूप से सृष्टि की रचना का हेतु होता है। वह समस्त प्राणियों को प्रभव है और निरञ्जन है और हम सब उसके ही सदा अंश स्वरूप वाले हैं। सृष्टि, स्थिति (पालन) और संयमन (संहार) उसके द्वारा कथित भेद से तीनों रूप शोभित होते हैं। न तो मैं, न आप और न हिरण्यगर्भ, न कालरूप, न प्रकृति और उसकी प्रेरणा करने के लिए समर्थ है। यहाँ पर कुछ रूप के बिना भी उसका सत् भी है। श्री भगवान् ने कहा–हे वृषभध्वज! यह तत्व आपने कहा और जान लिया है। हम ब्रह्मा, विष्णु और पिनाकी (शिव) उसके अंशभूत ही हैं। इस कारण आपके द्वारा ब्रह्मा वध के योग्य नहीं हैं। यदि आपको एकता विदित है जो कि हे शम्भो! ब्रह्मा, विष्णु और पिनाकधारी शिव की होती है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–अपरिमित तेज के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके महादेव जी ने सबकी एक स्वरूपता को देखकर ब्रह्मा का हनन नहीं किया। भगवान् विष्णु ने जिस रीति से एकता को आदिष्ट किया था वह सब मैंने आपको बतला दिया है।

शिव सती विहार वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर मेघों के गर्जन करने पर श्री महादेवजी सती के पति के विष्णु भगवान् प्रभृति सबको विदा करके अथवा त्याग करके वे हिमवान पर्वत पर राज पर चले गए थे। उस परमाधिक आमोद की शोभा वाली सती को अपने अत्युन्नत वृषभ पर समारोपित कराके हिमालय के प्रस्थ को गमन किया था जिसमें परम रम्य कुञ्जों का समुदाय था। इसके उपरान्त वह सुन्दर दन्त-पंक्ति वाली चारुहार से समन्वित सती भगवान् शंकर के समीप शोभायमान

हुई थी। वृषभ पर स्थित भी वह चन्द्र के मध्य में कलिका के समान ही थी। वे सब ब्रह्मा आदिक और मरीचि आदि मानस पुत्र, दक्ष प्रजापति भी सभी सुर और असुर परम प्रसन्न हुए थे अर्थात् उस अवसर पर सभी को अत्यन्त हर्ष हुआ था। जो सब भगवान् शंकर के साथ में गमन कर रहे थे। उनमें कुछ तो शंखों को बजा रहे थे और कुछ सुमंगल करने वाले तालों का वादन कर रहे थे। कुछ हास्य ही कर रहे थे। इसी रीति से सबने वृषभध्वज का अनुगमन किया था अर्थात् शिव के पीछे-पीछे गये थे फिर ब्रह्मा आदि भी सब शम्भु के द्वारा विदा कर दिए गए थे। वे सब परमाधिक आनन्द से कुछ दूर तक शिव की पीछे-पीछे गये थे। इसके उपरान्त ब्रह्मा आदि और मानस पुत्रों ने शम्भु के साथ सम्भाषण करके आशुगमन करने वाले रथों के द्वारा अपने-अपने आश्रमों को चले गये थे। समस्त देवगण, सिद्ध और उसी भाँति अप्सराओं के समुदाय और जो-जो भी वहाँ पर यक्ष, विद्याधर आदि समागत हुए थे वे सभी भगवान् हर के द्वारा बिना किए हुए अपने निवास स्थानों को चले गए थे तथा वृषभध्वज के द्वारा ग्रहण करने पर सभी आमोद से समन्वित हुए थे। इसके अनन्तर भगवान् शिव अपने गणों के सहित आनन्द देने वाले संस्थान पर पहुँचकर जो कि कैलाश गिरि के नाम वाला था। वहाँ पर शिव ने अपनी प्रिया को वृषभ ने नीचे उतार लिया था। फिर विरूपाक्ष प्रभु ने इस दाक्षायणी सती की प्राप्ति करके अपने गणों को जो नन्दी आदिक थे उस गिरि की कन्दरा से विदा कर दिया था। भगवान् शम्भु ने नन्दी आदि से बहुत ही मधुर वाणी में उन सबसे कहा था कि यहाँ पर जिस समय में भी मैं आप सबका स्मरण करूँ उसी समय में स्मरण से चलमानस वाले आप लोग मेरे समीप में तब-तब ही आगमन करेंगे। इस प्रकार से वामदेव के द्वारा कथन करने पर वे नन्दी भैरव आदिक सब हिमवान् गिरि पर चल रहे थे। उन सबके जाने पर भगवान् ईश्वर भी उस सती के साथ मोहित हो गये थे। हर भी एकान्त में प्रतिदिन उस दाक्षायणी के साथ चिरकाल पर्यन्त बहुत ही अधिक रमण करने वाले हो गये थे।

किसी समय में वन में स्वाभाविक रूप से समुत्पन्न हुए पुरुषों का समाहरण करके उनकी एक अतीव मन को हरण करने वाली सुन्दर माला की रचना करके उन्होंने सती के हार के स्थान में नियोजित किया था। किसी समय दर्पण में अपने मुख का अवलोकन करने वाली सती का अनुगमन करके भगवान् शम्भु भी अपने मुख को देखा करते थे। किसी समय उस सती के कुन्तलों को उल्लसित करके उल्लास में आए हुए शिव बाँधा करते थे तथा किसी प्रकार मोचन किया करते थे और बराबर उन केशों को काढ़ा भी करते थे अर्थात् कंघी भी काढ़ते थे। अनुराग में निमग्न हर इस सती के स्वाभाविक लालिमा लिए हुए दोनों चरणों को उज्ज्वल पावक के द्वारा निसर्ग रक्त किया करते थे। जो दूसरों के आगे भी बार-बार ऊँचे स्वर के कथन करने के योग्य बात होती थी उसको भी भगवान् हर सती के मुख को स्पर्श करने के विचार में उनके कान में कहा करते थे। विशेष दूर भी न जाकर यह शम्भु किसी समय में प्रयत्नपूर्वक समागत होकर पीछे के भाग में आकर अन्य मन वाली इस सती की आँखों को बन्द कर दिया करते थे। वृषभध्वज अपनी माया से वहाँ पर ही अन्तर्धान होकर उस सती का आलिंगन किया करते थे। तब वह भय से चकित होकर अधिक व्याकुल हो जाया करती थी।

उन हिमालय पर्वत में वृषभध्वज के प्रवेश किए जाने पर कामदेव भी अपने मित्र वसन्त के तथा अपनी पत्नी रति के साथ वहाँ पर चला गया था। उस कामदेव के प्रविष्ट हो जाने पर वसन्त ने भगवान् शंकर के समीप में अपनी शोभा का वृक्षों में, जल में और भूमि में विस्तार कर दिया था। वहाँ पर सभी वृक्ष फूलों से संयुत होकर पुष्पित हो गए थे और अन्य लतायें भी पुष्पित हो गईं थीं सब सरोवरों के जल खिले हुए कमलों से युक्त हो गये थे तथा उन कमलों पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। वहाँ पर सुरति के प्रविष्ट हो जाने पर मलय की ओर से आने वाली वायु वहन कर रही थी। सुगन्धित पुष्पों के सहित योग को जाने से सुरभियाँ मोहित हो गईं थीं। उस समय में उस सुरभि ने मुनियों के

भी मन का प्रमथन कर दिया था। चक्र के समूह के ही घृत के समान कृति कामदेव ने सार का समुद्धरण किया था। पलाश सन्ध्या काल में आधे चन्द्रमा के सदृश शोभित हुए थे। पुष्प कामदेव के अस्त्र के ही समान सदा प्रमोद के लिए हो गये थे। सरोवरों में कमल के पुष्प शोभित हो रहे थे।

नागकेशर के वृक्ष स्वर्ण वर्ण वाले पुष्पों के शंकर से समीप में मदन (कामदेव) के केतु की आभा वाले परम सुन्दर शोभित हो रहे थे। चम्पक के वृक्ष बार-बार हेम पुष्पत्व को अर्थात् सुनहले पुष्पों को प्रकट करते हुए विकसित प्रचुर पुष्पों से भली-भाँति शोभायमान हुए थे। विकसित हुए अर्थात् खिले हुए पाटला के पुष्पों से दिशायें पाटलांशु हो गई थीं। जिस किसी तरह से वे पाटलनाभ वाले वृक्ष पुष्पित हो रहे थे। अवंग वल्ली की सुरभि गन्ध के द्वारा वायु को सुरभित करके कामीजनों में पूर्व चित्तों को बहुत ही अधिक सम्मोहित करती है। वासन्ती से वासित वल्वज शोभित हो रहे थे उसकी गन्ध के लालची भ्रमर मनोहर रति मित्र थे। सुन्दर पावक के वर्चस्व वाले आम्र वृक्षों के शिखर कामदेव के बाणों के समूह से वंदनावृत होते हुए शोभायुक्त थे। सरोवर तथा जलाशयों का जल फूले हुए कमलों के द्वारा शोभित हुए थे जो अव्यक्त ज्योति के उद्गम से मुनिगणों के चित्तों के ही तुल्य थे।

सूर्य की किरणों के संगम से तुषार क्षय को प्राप्त हो गये थे। उस समय में उन तुषारों का क्षय विज्ञानशाली पुरुषों के हृदय से ममत्व की ही भाँति हुआ था। उस समय में प्रतिदिन कोयल निःशंक होकर अपनी मधुर ध्वनि का विचार कर रही थी। जो पुष्पों में बहुत ही अधिक पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी) के शब्द की ही भाँति था। वहाँ पर भ्रमर वनों के अन्तर्गत पुष्पों में गमन करने वाले भ्रमरकान्ता की लीला को भूख वाले कामदेव रूपी व्याघ्र की ध्वनि की ही भाँति गुँजन कर रहे थे। चन्द्र तुषार की भाँति था और भानु सकल कलाओं वाला नहीं था। यह क्रम से स्वजनों के मोह के लिए कुशलतापूर्वक इन कलाओं

को धारण करता था। उस समय में चन्द्रमा के साथ प्रसन्न और तुषार से रहित विभावरी सुमनोहर कामिनियाँ प्रिय के साथ की भाँति की हो गयी थीं। उस समय महादेव उत्तम धरा में उत्तम सती के साथ बहुत समय तक होकर रमण करते रहे।

हिमाद्रि निवास गमन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा--इसके अनन्तर किसी समय में दक्ष की पुत्री सती ने जलदों के आगम में अद्रि (पर्वत) शिखर के प्रस्थ में संस्थित वृषभध्वज से बोली–मेघों के समागम का समय प्राप्त हो गया है। यह काल परम दुःसह होता है। अनेक वर्णों वाले मेघों के समुदाय से आकाश और दिशायें सब स्थगित अर्थात् आछन्न हो गये हैं। अत्यन्त वेग वाली वायु हृदय को विदीर्ण करती हुई वहन करती है। विद्युत की पताका वाले मेघों की ऊँची और तीव्र गर्जना से जो मेघधारा सार को मोचन कर रहे हैं, इससे किसके मन क्षुब्ध नहीं होते हैं अर्थात् सभी के मन में लोभ उत्पन्न हो जाया करता है। इस समय में सूर्य दिखलाई नहीं देता है और मेघों से चन्द्रमा भी समाच्छन्न हो गया था और इस समय में दिन भी रात्रि की भाँति प्रतीत होता है। यह समय विरही जनों को बहुत ही व्यथा करने वाला है। ये मेघ एक जगह में स्थित नहीं रहा करते हैं। ये गर्जन की ध्वनि करते हुए पवन से चलायमान हो जाते हैं। हे शंकर! ये ऐसे प्रतीत होते हैं मानों लोगों के माथे पर गिर रहे हों। वायु से हत हुए वृक्ष आकाश में नृत्य-सा करते हुए दिखलाई दिया करते हैं। हे हर! ये कामुक पुरुषों के ईक्षित हैं और भीरुओं को त्राण देने वाले हैं। स्निग्ध नीलअञ्जन के समान श्याम मेघों के ओघ के पीछे से बलकाओं की पंक्ति यमुना के धृष्ट फेन के ही समान शोभा देती है।

यह गत कालिका क्षण-क्षण में चञ्चल है ऐसी दिखलाई दिया करती है। जैसे सागर में सन्दीप्त बड़वा मुख पावक होता है। मन्दिर के प्रांगणों में भी शस्य पुरूढ़ होते हैं। हे विरूपाक्ष! अन्य स्थान मे मैं

शास्त्रों की उद्भूति (उत्पत्ति) को क्या बतलाऊँ। श्यामल और राजत कक्षों से यह हिमवान् विषद हो रहा है जिस तरह से मन्दिर अचल के वृक्षों के समुदाय के पत्रों से क्षीर सागर होता है। वह कुसुमों की श्री इसके कुटज का सेवन करती है। मयूर मेघों की ध्वनि से बार-बार परम हर्षित होते हैं और वे निरन्तर वृष्टि की सूचना देने वाले हर एक वन में अपनी वाणी को बोला करते हैं। हे हर! अत्यन्त घोर काले मेघों की ओर मुख किए हुए चातकों की ध्वनि का आप श्रवण करिए जो कि वृष्टि की समीपता को सूचना देने वाला है।

इस समय में आकाश में इन्द्र के धनुष ने अपना स्थान बना लिया है अर्थात् इन्द्रधनुष दिखलाई देता है। जिस प्रकार से धारा के शरों से ताप का भेदन करने के लिए मानों यह उद्गत हुआ हो। मेघों के अन्याय को देखिए जो कि कारकों अर्थात् ओलों का उत्कर उसी भाँति चातक और अनुगत मयूर को ताड़ित करता रहता है।

शिखी (मयूर) और सारंग का पराभव मित्र से भी देखकर हे गिरीश! हँस बहुत दूर देश में स्थित मानसरोवर को गमन किया करते हैं। इस विषय काल में कण्टक और कोरक अपने घोसलों की रचना किया करते हैं। आप बिना गेह के किस प्रकार से शान्ति को प्राप्त करते हैं। हे पिनाक धनुष के धारण करने वाले! वह विशाल मेघों से उठी हुई भीति (डर) मुझको बाधा कर रही है। अतएव मेरे कहने से आप शीघ्र ही निवास स्थान के लिए यत्न करिए। हे वृषभध्वज! कैलास में अथवा हिमालय गिरि में या भूमि में आप अपने योग्य निवास स्थान को बनाइए। उस दाक्षायणी के द्वारा एक बार ही इस प्रकार से कहे हुए शम्भु ने उस समय में थोड़ा हास किया था जो शम्भु अपने मस्तक में स्थित चन्द्रमा की रश्मियों से पोषित आनन (मुख) वाले थे। इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले सभी तत्त्वों के ज्ञान से सुसम्पन्न मन्द मुस्कराहट से अपने होठों के सम्पुट को भेद न करने वाले शिव परमेश्वरी देवी को तुष्ट करते हुए बोले थे।

ईश्वर ने कहा—हे मनोहरे! आपकी प्रीति के लिए जहाँ पर भी मुझे

निवास करना चाहिए, हे मेरी प्यारी! वहाँ पर मेघ कभी भी गमन करने वाले नहीं होंगे। इस महीभृत अंर्थात् पर्वत के नितम्ब के समीप पर्यन्त ही मेघ सञ्चरण किया करते हैं। हे मनोहर! वर्षा ऋतु में भी इस प्रालेय के धाम गिरि के अन्दर सदा मेघों की गति वहीं तक है। उसी भाँति कैलास की जहाँ तक मेखला है वहीं तक मेघ सञ्चरण करते हैं। उसके ऊपर वे कभी भी गमन नहीं किया करते हैं। सुमेरु के वारिधि के ऊपर बलाहक (मेघ) नहीं जाया करते हैं। पुष्कर और आवर्तक प्रभृति उसके जानुओं के मूल तक ही रहते हैं। इन गिरीन्द्रों पर जिसके भी ऊपर आपकी इच्छा हो, हे प्रिये! जहाँ पर भी आपका मन हो वही आप मुझे ही बतला दीजिए। सदा हिमालय गिरि में स्वेच्छापूर्वक विहार के द्वारा आपके कौतुक उपदेय हैं। जहाँ पर सुवर्ण पक्षों के द्वारा अनिलों के वृन्दों से और मधुर ध्वनि वाले पक्षियों से तुम्हारे कौतुक होंगे।

सिद्धों की सिद्धांगनायें आपके साथ सखिता की अर्थात् सनातनी सखी की भावना की इच्छा करने वाली होती हुई स्वेच्छापूर्वक विहारों के द्वारा मणिकुहिस पर्वत पर कौतुक के सहित आपका उपहार करती हुई फल आदि दोनों के सहित वहाँ पर आयेंगी। जो देवों की कन्यायें हैं और जो गिरि की कन्यायें हैं, जो तुरंगमुखी नागों की कन्यायें हैं वे सभी निरन्तर आपकी सहायता करती हुई अनुमोद के विभ्रमों के द्वारा समाचारण करेंगी। आपका वह अतुल रूप है अर्थात् ऐसा है जिसकी तुलना न हो। आपका मुख परम सुन्दर है। अंगला अपने शरीर की कान्ति के संघ को देखकर अपने वपु में और रूप गुच्छों में खेला करेंगी इससे निर्निमेष ईक्षण से चारुरूप वाली है। जो मेनका अप्सरा पर्वतराज की जाया के रूप और गुणों से तीनों लोकों में ख्याति वाली हुई थी वह भी सूचनाओं से आपके मन का अनुमोदन नित्य किया करेगी। गिरिराज के द्वारा वन्दना करने के योग्य पुरन्धि वर्गों के साथ उदाररूपा प्रीति का विस्तार करती हुई उनके द्वारा सदा अपने कुल के लिए उचित गुणों के समुदायों से प्रीति में समन्वित प्रतिदिन आपकी शिक्षा करने के योग्य है। हे प्रिये! अतीव विचित्र कोमलों के सन्तान

और मोद से कुञ्जों के समुदाय से समावृत होने वाले और जहाँ पर और सदा ही बसन्त का प्रभाव विद्यमान रहता है क्या वहाँ आप गमन करना चाहती हैं ? समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले वृक्षों से और कल्पसंज्ञा वाले शार्दूलों से जो संच्छन्न है वहाँ पर जिसके कुसुमों का उपयोग करोगी।

हे महाभागो! जहाँ परश्वापद गण परम प्रशान्त हैं जो मुनि और यतियों से सेवित हैं अनेक प्रकार के मृग गणों से समावृत हैं ऐसा देवों का आलय है। स्फटिक के वर्ण से युक्त विप्र आदि से और रजत चाँदी के निर्मित से विराजाजित हैं जो मानस सरोवर के वर्गों से दोनों ओर परिशोभा वाला है। जो हिरण्मय रत्नों के नाल वाले पंकजों तथा मुकुलों से आवृत्त हैं तथा शिशुमार, शंख, कच्छप, मकर, झषों के द्वारा निमेषित और मञ्जुल नीलोत्पल आदि से समन्वित है। देवी के सैकड़ों स्नानों से सक्त सम्पूर्ण वाले कुंकुमों से युक्त, विचित्र मालाओं के गन्ध से युक्त, जनों से अपूर्ण एवं स्वच्छ कान्ति वाले शाद्वलों से, तरुओं से जो तीर पर स्थित थे उनसे उपशोभित, मानों नृत्य करते हुए शास्त्रों के समुदाय से अपने सम्भव का व्यञ्जन करते हुए कादम्ब, सारस, मत्त चक्रांगों के ग्राम (समुदाय) से शोभित मधुर ध्वनि करने वाले, मोद को करने वाले भ्रमर आदि से युक्त–इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण की पुरियों से शोभान्वित देवों का आलय मेरु को ज़ो उन्नत है जो रम्भा, शची, मेनका आदि रम्भोरुगण सेवित है। क्या आप सबके सारभूत महागिरि की इच्छा करती हैं ?

वहाँ पर सैकड़ों देवियों से समन्वित अप्सरागणों के सहित सेवा की हुई शची (इन्द्राणी) आपके लिए समुचित सहायता करेगी। मेरे कैलास अंचलों के शिरोमणि को जो सत्पुरुषों का आश्रय और वित्तेश कुबेर की पुरी से परिराजित हैं क्या ऐसे स्थान के प्राप्त करने की इच्छा करती हो ? हे सुन्दरि! गंगाजल से ओघ से प्रयत, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान प्रभा से संयुत, दरियों में और सानुओं में (शिखरों में) सदा यक्ष की कन्याओं से सम्मोहित, अनेक मृग गणों से सुसेवित, सैकड़ों

पद्माकारों से समावृत जो सभी गुणगणों से सुमेरु की तरह ही तुल्य है। इन स्थानों में जहाँ पर भी आपके अन्तःकरण की स्पृहा हो उसे शीघ्र ही मुझको बतला दो वहाँ पर ही मैं आपका निवास बना दूँगा।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से भगवान् शंकर के द्वारा कहने पर उस अवसर पर दाक्षायणी ने धीरे से अपनी इच्छा को प्रकाशित करने वाला वह वचन कहा था। सती ने कहा–इस हिमालय में ही अपना निवास आपके साथ चाहती हूँ। आप शीघ्र ही इस महागिरि में ही निवास करिये। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इसके अनन्तर उस देवी सती के वाक्य का श्रवण करके भगवान् शंकर परमाधिक प्रसन्न हुए और उस दाक्षायणी के साथ जो हिमवान् का शिखर था उस पर चले गए थे। वह हिमालय का शिखर सिद्धों की अंगनाओं से युक्त था और मेघ एवं पक्षियों के लिए अगम्य था अर्थात् वहाँ पर मेघ तथा पक्षी भी नहीं जा सकते थे। उसके परमोन्नत तथा मरीचवन से सुशोभित शिखर पर उन्होंने गमन किया था।

सती के देह त्याग वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–वह कनकों के रूपों से रत्न सुशोभित शिखर था। वह शिखर सूर्य के समान उन्नत था। उस शिखर को सती सखा शिव ने प्राप्त किया था। उसमें जो स्फटिक पाषाण था और शाद्वल एवं द्रुमों से राजित था, विचित्र पुष्पों की लताओं से तथा सरोवरों से संयुत था, वहाँ प्रफुल्लित वृक्षों की शाखाओं की टहनियों पर गुञ्जार करते हुए भ्रमरों के द्वारा परम शोभा हो रही थी। विकसित कमलों के द्वारा तथा नील कमलों के समुदाय के द्वारा चक्रवाकों समूहों से और कादम्ब से शोभि था। प्रमत्त सारस, क्रौंच और नीलकण्ठ इनसे जो शब्दायमान था एवं कोकिलों की मधुर ध्वनियों से तथा मृगों से सेवित था। तुरंग के समान मुखों वाले सिद्धों, अप्सराओं और गुह्यकों से, विद्याधरों, देवियों तथा किन्नरों के द्वारा विहार किया हुआ था। पर्वतीय पुरन्ध्रियों से और कन्याओं से वह समन्वित था। विपञ्ची

तन्त्रिका मन्द मृदंग, पट्टह की ध्वनियों से और नृत्य करती हुई कौतुक से समुत्थित अप्सराओं के द्वारा सुशोभित था। देवी-दिव्य और गन्ध युक्त लताओं से समावृत्त, ऊर्ध्व प्रफुल्ल कुसुमों से तथा निकुन्जों से शोभायमान स्थान था। उसमें वृषभध्वज ने इस प्रकार से समन्वित सुशोभन में सती के साथ चिरकाल पर्यन्त रमण किया था। उस स्वर्ग के सदृश स्थान में भगवान् शंकर ने दिव्यमान से दश हजार वर्ष तक आनन्द सहित सती देवी के साथ रमण किया था। पहले वह शंकर भगवान् किसी समय उस स्थान से कैलाश पर चले जाया करते हैं। किसी समय देवों और देवियों से समावृत मेरु पर्वत के शिखर चले जाते हैं। उसी भाँति दिक्पालों के उद्यान में, वनों में और वसुधा तल में जा-जाकर पुनः वहाँ पर सती को साथ में लिए हुए उनसे रमण किया करते थे। उन्होंने रात दिन को नहीं जाना था, न तो वे ब्रह्म का चिन्तन करते थे, न तप और शम का ही समाचरण किया करते थे। सती के अन्दर समाहित मन वाले शम्भु ने केवल प्रीति ही की थी। सती सभी ओर केवल एक महादेवजी के ही मुख को देखा करती थीं और महादेवजी भी निरन्तर सभी जगह सर्वदा सती के ही मुख का अवलोकन किया करते थे। इस रीति से परस्पर में एक-दूसरे संसर्ग से अनुराग रूपी वृक्ष को सती और शम्भु ने भावरूपी जल के सेवन के समान सेवन किया था।

दक्ष यज्ञ का आयोजन

इसी बीच में जगतों के हित को करने वाले प्रजापति दक्ष के एक महान् यज्ञ के यजन करने का समारम्भ किया था जो कि सर्वजीवन था। जहाँ पर अट्ठासी हजार ऋत्विज हवन करते हैं। हे सुरर्षियों! इसमें चौसठ हजार उद्गाता थे। उतने ही अध्वर्यु और नारद आदि होता गण थे। समस्त मरुद्गणों के साथ विष्णु भगवान् स्वयं ही अधिष्ठाता हुए थे। ब्रह्माजी स्वयं वहाँ पर त्रयी की विधि के निदर्शक थे। उसी भाँति सब दिक्पाल उसके द्वारपाल और रक्षक थे। वहाँ पर यज्ञ स्वयं

उपस्थित हुआ था और धरा स्वयं वेदी हुई थी अर्थात् पृथ्वी ने ही स्वयं वेदी का स्वरूप धारण किया था। अग्नि ने उस यज्ञ के महोत्सव में हवियों के शीघ्र ग्रहण करने के लिए ही अपने अनेक स्वरूप धारण किए थे। शीघ्र ही मरीचि आदि को आमन्त्रित करके जो पवित्रैक के धारण करने वाले थे वहाँ पर बुलाया था और उन्होंने सामिधेनी से अर्चि को प्रज्ज्वलित किया था। सप्तर्षि गण पृथक-पृथक सामगाथा करते थे जो कि श्रुतियों के स्वरों से पृथ्वी, दिशाओं को और विदिशाओं को एवं आकाश को पूरित कर रहे थे।

महात्मा दक्ष ने वहाँ पर योगियों में किन्हीं को भी परावृत नहीं किया था। न तो कोई ऋषिगण, न देवगण, न मनुष्य और न पक्षीगण, न उद्भिद, न तृण, न पशु और मृग परावृत किए गए थे। उस दक्ष ने सुमदाध्वरों में गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धों के समुदाय, आदित्य, साध्य, ऋषिगण, यक्ष, समस्त स्थावर नागदर को भी परावृत नहीं किया था। कल्प, मन्वन्तर, युग, वर्ष, मास, दिन, रात्रि, कला, काष्ठा, निमेष आदि सब वृत किए हुए वहाँ पर सब समागत हुए थे। उस दक्ष के द्वारा वृत किए हुए महर्षि, राजर्षि, सुरभि संघ, पुत्रों के सहित नृप, गण देवता ये सब उस समय आगत हुए थे। कीट, पतंग, सब जल में समुत्पन्न जीव, वानर, श्वापद, घोर, विघ्न, शैल, नदियाँ और समुद्र, सरोवर, वापी, वृत हुए थे और सब गये थे। सभी हवियों के अपने भाग को ग्रहण करने की इच्छा वाले थे। वे दृढ़ यज्वीक्रतु के गमन करने वाले हुए थे। पाताल में निवास करने वाले असुर भी वहाँ पर समागत हुए थे। नागों की स्त्रियाँ और समस्त देवों की सभा आई थी।

जो कुछ भी इस जगत में वर्त्तन करने वाले थे चाहे चेतन हो या अचेतन ही वे सब में वरण इस सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ का समारम्भ किया था। उस यज्ञ में महात्मा दक्ष ने केवल भगवान् शम्भु का वरण नहीं किया था अर्थात् शम्भु को आमन्त्रण नहीं दिया था। शम्भु कपाल धारण करने वाले हैं अतएव उनमें यज्ञ में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं है ऐसा ही निश्चय करके शम्भु को निमन्त्रित नहीं किया गया

था। सती भी यद्यपि परमप्रिय अपनी पुत्री थी किन्तु क्योंकि वह भी कपाली शिव की भार्या थी अतएव उनका भी वृत नहीं किया गया था क्योंकि यज्ञ के विषय में दक्ष ने दोषों को विचार कर लिया था। सती ने यह श्रवण करके कि पिताजी ने एक उत्तम यज्ञ करने का आरम्भ किया है किन्तु क्योंकि मैं कपालधारी की भार्या हूँ इसीलिए वास्तव में मुझको नहीं बुलाया गया है। वह सती अत्यन्त क्रोधित हो गयी थी जो कि कोप उसे अपने पिता दक्ष के ऊपर उनको हुआ था। उस अवसर पर उनका मुख और नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे। उसी समय में सती ने शाप द्वारा दक्ष प्रजापति को दग्ध करने के लिए मनन किया था। यद्यपि वह सती क्रोध में आविष्ट थीं तो भी इस पूर्व समय को उसने स्मरण किया था। मन से ऐसा निश्चय करके उस समय में सती ने शाप नहीं दिया था क्योंकि मैंने पहले दृढ़ प्रतिज्ञा की है मेरी अवज्ञा होने पर मैं फिर निश्चय ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी।

जिस समय दक्ष ने तनया की इच्छा वाले होते हुए बहुत समय तक मेरा स्तवन किया था उसी समय में मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसको शाप नहीं दूँगी। इसके अनन्तर अपने नित्य स्वरूप का उस देवी ने चिन्तन करके अत्यन्त उग्र, निष्कल और जगत् से परिपूर्ण का स्मरण किया था। उस सती ने हरि की योगनिद्रा नाम वाले पूर्व स्वरूप का स्मरण करती हुई उस समय में दक्ष की पुत्री ने मन के द्वारा इस प्रकार से चिन्तन किया था। ब्रह्मा के द्वारा उदित दक्ष प्रजापति ने जिसके लिए मेरी स्तुति की थी वह कुछ भी नहीं जाना था और भगवान् शंकर भी पुत्रवान् नहीं हुए थे। इस समय में देवगण का एक ही कार्य सम्पन्न हुआ था कि भगवान् शंकर मेरे लिए स्त्री में अनुराग करने वाले हो गये थे। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी शम्भु के अनुराग की वृद्धि करने के लिए समर्थ नहीं थी और न कोई होगी क्योंकि अन्य किसी को भी शंकर ग्रहण नहीं करेंगे। तो भी मैं पूर्वयोजित समय से पूर्व ही अपने शरीर का त्याग कर दूँगी और जगत् की भलाई के लिए फिर गिरि अर्थात् हिमवान् में अपना प्रादुर्भाव करूँगी।

पूर्वकाल में हिमवान् के सुरम्य एवं देवों के गृह के सदृश प्रस्थ में शम्भु ने प्रीति से संयुत मेरे साथ रमण करने को बहुत समय तक मुझसे प्रेम किया था। वहाँ पर जो मेनका देवी है वह सुन्दर अंगों वाली और व्रत का समाचरण करने वाली है। वह परम सुशीला और पुर की स्त्रियों में अत्युत्तमा है जो कि पार्वती के गण हैं उनमें श्रेष्ठ है। उसमें मेरे साथ एक माता की ही भाँति चेष्टा की थी जो कि सभी कर्मों से यथोचित थी। उसमें मेरा अनुराग हो गया था और वह अनुराग ऐसा ही था कि वही मेरी माता होगी। पर्वतीय कन्याओं के साथ मैं बचपन की क्रीड़ायें चिरकाल पर्यन्त कर-करके मेनका की उत्तम प्रसन्नता को उत्पन्न करूँगी। मैं फिर भगवान् शम्भु की अत्यन्त प्यारी जाया (पत्नी) होऊँगी। फिर मैं उनके उपाय से बिना किसी संशय के देवों कार्यों को करूँगी। इस प्रकार से चिन्तन करते हुए वह फिर कोप से समावृत्त हो गयी थी। वहाँ पर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस समय में अपने शरीर को योग के द्वारा समस्त द्वारों को आवृत करके मस्तक स्फोटित कर दिया था।

उस महान स्फोट ने उस सती की प्राणवायु आत्मा के दशम द्वार पर निर्भेदन करके बाहर चली गयी थी। सब ऋषिगणों ने प्राणों का परित्याग करने वाली उसको देखकर आकाश में स्थित उन्होंने हा-हाकार किया था और वे शोक से व्याकुल नेत्र वाले हो गये थे। इसके अनन्तर उसी सती के बहिन की पुत्री वहाँ पर सती को मृत देखकर शोक से पुनः विजया ने रुदन किया था। हा! सती तुम कहाँ गयीं ? हा! सती आपको यह क्या हुआ ? हा! मौसी! इस प्रकार का उस समय में महान् क्रन्दन का शब्द हो गया था। हे सती! अप्रिय के श्रवण करने ही से तुमने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया है। अब मैं ऐसे सुदृढ़ विप्रिय को देखकर कैसे जीवित रहूँ। उस समय में अपने हाथ से सती के मुख का बार-बार मार्जन करती हुई उसने करुणापूर्वक विलाप करती हुई ने उसी सती के मुख को सूँघा था। वह अपने नेत्रों से निकलते हुए जलों से उस सती के हृदय और मुख का सिंचन करती हुई हाथों से

उसके केशों को उल्लासित करके बार-बार मुख को देख रही थी।

ऊपर और नीचे की ओर कम्पित शिर वाली शोक से व्याकुल इन्द्रियों से समन्वित हुई पाँचों अंगुलियों से अपने वृक्ष-स्थल और शिर को पीट रही थी। उस विजया ने अश्रुओं से युक्त कण्ठ वाली होती हुई यह वचन कहा था। माता वीरणी तेरे मरण का श्रवण करके शोक से कर्षित हो जायेंगी। वह माता कैसे प्राणों को धारण करने वाली होगी। वह तो तुरन्त ही जीवन को त्याग देगी। उसके द्वारा क्रूर कर्म करने वाले आपके पिता कैसे होंगे ? आपको मृत सुनकर कोई कैसे अपना जीवन धारण करेगा। आपके प्रति निश्चय ही अपने कर्मों का विचिन्तन करके उस समय शोक से व्याकुल दक्ष ने ये बहुत ही क्रूर एवं कठोर कर्म किए थे और ज्ञान से हीन वह यजन करने वाला होकर कैसे कर्म के करने में प्रवृत्त हो रहे हैं क्योंकि वह श्रद्धा से रहित और बुद्धि का त्याग कर देने वाला है। हा! माता! बालक की भाँति रुदन करती हुई मुझे कुछ उत्तर तो दो। भक्ति से दयाशून्य मैं शोक से अपने प्राण शल्य के ही समान धारण कर रही हूँ। हे माता! क्या किसी समय में शम्भु के द्वारा विहित का स्मरण कर रही हो ?

आपका वही सचन चक्षु, मुख और नासिका से सभी हैं। इन सबके सब विभ्रम इस समय में कहाँ चले गये हैं और आपका वह हसित भी कहाँ चला गया है ? वे भगवान् शम्भु आपके विभ्रमों से हीन, सुन्दर नासिका से युक्त नेत्रों से युग्म वाले मन्द हास से रहित, आपके मुख को देखकर कैसे सहन करेंगे ? हे माता! आपके बिना हर के आश्रम में समागत हुओं को बार-बार सुधा के तुल्य सुवृत वाक्य को कौन कहेंगी ? बान्धवों में श्रद्धा वाली और पति के भावों के वश में अनुगमन करने वाली, सुलक्षणों से पूर्ण उसके समान अब कौन होगी। हे देवी! अब आपके बिना देवेश्वर शम्भु शोक से उपहत चेतना वाले होकर दुःखित आत्मा से युक्त-निरुत्साह और चेष्टा रहित हो जायेंगे। इस रीति से विशेष रूप से दुःखित होकर सती के प्रति विलाप करती हुई विजया सती को मृत देखकर अत्यधिक शोक से आहत हो गयी

थी। वह ऊपर की ओर भुजाओं को किए हुए विशेष क्रन्दन करती हुई कम्प से संयुत होती हुई भूमि पर गिर गयी थी।

दक्ष यज्ञ-भंग वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसी बीच में भगवान् शम्भु परम शोभन मानस ह्रद में सन्ध्या वन्दना को समाप्त करके आश्रम की ओर आये हुए थे। वृषभध्वज ने विजया के परम दारुण रूदन की ध्वनि को आते हूए ही श्रवण किया था और फिर वे चकित हो गये थे। इसके अनन्तर भगवान् शम्भु बलवान मन और मारुत के वेग से त्वरान्वित होकर शीघ्र ही अपने आश्रम के स्थान पर प्राप्त हो गए थे। उस समय में हर ने प्यारी दाक्षायणी देवी को मृता देखकर भी अत्यधिक प्रियभाव से मृत होने पर भी त्याग नहीं किया था। इसके उपरान्त मुख को देखकर और बार-बार आमृजन करके यह सोई है इसी प्रकार से दाक्षायणी से बार-बार कैसे पूछा था। इसके उपरान्त भर्ग के वचन का श्रवण करके उसकी बहन-पुत्री विजया ने जिस रीति से दाक्षायणी का निधन कहा था।

विजया ने कहा—हे शम्भु! प्रजापति दक्ष के यज्ञ करने के लिए इन्द्र सहित सभी देवों को बुलाया था तथा दैत्यों, राक्षसों, सिद्धों और गुह्यकों को भी बुलाया था। ब्राह्मणों, श्री गोविन्द और इन्द्रादिक् पतियों को भी उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए बुलाया था तथा देवयोनि को और समस्त साध्य तथा विद्याधरों को भी बुलाया था। हे शंकर! जो सत्व थे उसने उनको आहूत नहीं किया था जो कि समस्त भुवनों में भी हैं। यह दाक्षायणी इस प्रकार से प्रवर्त्तित यज्ञ के विषय में श्रवण करके जो कि मेरे वचन से ही श्रवण किया था उसने भगवान् शम्भु का और अपने न बुलाने के हेतु के विषय में विचार किया था। मैंने जैसे भी सुना था उसी के अनुसार चिन्ता करती हुई उस सती का ज्ञान प्राप्त करके, हे भूतेष मैंने ही यज्ञ में न बुलाने का कारण कहा था। वह कारण यही था कि दक्ष ने सोचा था कि भगवान् शम्भु

कपाल के धारण करने वाले हैं और उसकी पत्नी भी उनके ही संग होने के कारण से विशेष गर्विता हो गयी हैं। अतएव शम्भु और सती भी मेरे यज्ञ में शामिल नहीं होंगे। यही न बुलाने का हेतु मैंने पहले ही अपनी पत्नी वीरणी को उस मन्दिर में बोलते हुए दक्ष के मुख से ही सुना था। यही मेरे वचन का श्रवण करके वह सती कान्तिहीन मुख वाली होकर भूमि में बैठ गई थी। वह कोप परायण होती हुई मुझसे भी कुछ नहीं बोली थी।

हे हर! उसी क्षण उसका मुख क्रोध से युक्त हो गया था और उसकी भृकुटियाँ टेढ़ी हो गई थी तथा उसका मुख ऐसा श्याम पड़ गया था जैसा कि धूमकेतु से आकाश हो जाया करता है। उसने थोड़ी ही देर तक ध्यान करके उसने महान् स्फोट से अपने मस्तक का भेदन कर अपने प्रिय प्राणों का उत्सर्जन कर दिया अर्थात् मृत हो गई थी मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वृषभध्वज ने विजया के इस वचन का श्रवण करके वे अत्यधिक कोप से प्रज्वलित अग्नि की ही भाँति उत्थित हो गये थे। अत्यधिक कोप से आकुल उनके कान्त, चक्षु, नासिका और मुख से अग्नि की महती ध्वनि का सृजन करती हुई परमघोर जलती हुई कणिकायें निकली थीं। कल्प के अन्त में आदित्य के वर्चस वाली बहुत सी उल्कायें विनिःसृत हो गई थी। इसके अनन्तर वे शम्भु वहाँ पर बहुत ही शीघ्र चले गए थे जहाँ पर महान् तपस्वी दक्ष विद्यमान थे और यज्ञ कर रहे थे। महान् कोप से आवृत्त होकर भर्ग ने उस यज्ञ का अवलोकन किया था जो महान् धन के वैभव से सुसम्पन्न थे और पा धूप आदि युक्त था। वह यज्ञ हवन किया हुए आज्य से वृद्धि युक्त था तथा दीप्त हुई वह्नि से विराजित हो रहा था। शम्भु ने समुचित स्थानों पर संस्थित आयुधों और ध्वजों से युक्त सब दिक्पालों को देखा था।

उस यज्ञ के मध्य में विधाता की ओर व्यवस्थित भगवान् विष्णु का भी अवलोकन किया था। उन सबको देखकर अतीव कोप से शम्भु कुपित हो गये थे। अपनी-अपनी भार्याओं के सहित भग, सूर्य, सोम

सहस्राक्ष, गौतम, पूर्व भाग में अवस्थित सनत्कुमार, आत्रेय, भार्गव, विनतासुता, मरुद्गण साध्य, आग्नेय जातवेदा को देखा था। काल, चित्रगुप्त, कुम्भयोनि, गालव, समस्त विश्वदेवा, कव्यवाह आदि पितृगणों को देखा था। समस्त अग्निष्वात आदिक को और चारों प्रकार के भूतग्राम को, सौम, प्रेतगणों को, दक्षिण दिशा में अवस्थित सिद्धों को देखा था। वहाँ पर शम्भु ने राक्षसों को, पिशाचों को, भूतों को, मृग, पक्षियों को, कव्यादों को, क्षुद्र जन्तुओं को तथा पुण्य जनेश्वर को देखा था। महर्षि मौद्गल को, नैऋत्य दिशा में राहु को तथा किन्नरों को, महारगों को, नक्रों को, मत्स्यों को, ग्राहों को, कच्छपों को, सात समुद्रों को, सिन्धु को, नदियों को, तीर्थों को और गुह्यकों को देखा था।

मानस आदि सब मनुओं को तथा गंगा नदियों को, कामदेव को, मधु को, बसन्त को और अनुगों के सहित वरुण को देखा था। शनैश्चर को, समस्त पर्वतों को जो पश्चिम दिशा में व्यवस्थित थे। प्राणादि पाँचों वायुओं और गणों के सहित समीरण को, कल्पद्रुमों को, हेमवान् पर्वत को और महामुनि कश्यप को देखा था। वायव्य दिशा में कमल व्रति को और फलों को तथा कलानिधि को, अनेक रत्नों को, हेमों को, मनुष्यों को तथा पर्वतों को देखा था। हिमाद्रि जिनमें प्रमुख था और यज्ञ, स्थूल, कर्णादि, बुध, नर, कुबेर के सहित नरवाह यक्षराज, ध्रुव, धर और सोम, विष्णु, अनिल और अनल, प्रत्यूष, प्रभास इन सबको कौबेरी दिशा में समवस्थित हुए देखा था। वृषभध्वज के बिना समस्त रुद्रों को, जीवों को तथा मनुओं को, विविध बाहु से संजात वैश्यों को और सभी ओर शूद्रों को देखा था। ऐशानी दिशा में विविध भाँति के अन्नों को, व्रीहियों को, तिलों को भी देखा था। ऐशानी और पूर्व दिशा के मध्य में सशित व्रतों से संयुत ब्रह्मर्षियों को देखा था।

चारों महर्षियों को, वेदों को और छै वेदों के अंगों को देखा था। नैऋत्य और पश्चिम दिशा के अन्तःस्थित आनन्द श्वेत पर्वत को देखा था। सहस्र काद्रवेय के सहित सात भोगियों को, वहाँ पर ही केतु को और डाकिनियों से समन्वित कूष्माण्ड को देखा था तथा नाना वर्णों से

संयुत तथा विद्युत के सहित अन्य जलधरों को वहीं पर स्थित दिग्गजों को, जिनमें ऐरावत प्रमुख था भगवान् हर ने देखा था। यथास्थान पर दिक्करिणी से समन्वित सबको देखा था। महान् धन से संयुत उस यज्ञ को दूर ही से देखकर शिव ने वीरभद्र नामक गण को शीघ्र ही उसकी ओर प्रेषित किया था। वह वीरभद्र महागण भी बहुत से अनेक गणों संवृत हुआ था। उसने महात्मा दक्ष के यज्ञ का फिर ध्वंस कर दिया था। उस महान् यज्ञ के विध्वंस करते हुए वीरभद्र को देखकर समस्त देवगणों से आवृत भगवान् वैकुण्ठ ने वरण किया था। उनको निवारण करते हुए देखकर ही ईश्वर के लोचन क्रोध से लाल हो गये वे फिर ईश्वर स्वयं ही उस महायज्ञ में प्रविष्ट हो गये थे और उस यज्ञ का ध्वंस कर दिया था।

भग आगे से ही उस यज्ञ में प्रवेश करते हुए उनको सर्वप्रथम देखकर अपनी बाहुओं को फैलाकर भगत्वरा से संयुत होकर भगवान् भूतेश के पास गया था। उसको सामने आते हुए देखकर भगवान् भर्ग भी अत्यन्त कुपित हो गये थे और अपनी अंगुलि के अग्रभाग के प्रहार से उन्होंने उस भग के नेत्रों का हनन कर दिया था। नेत्रों से हीन विरुपाक्ष भग को देखकर दिवाकर से त्वरायुक्त होते हुए स्पर्धा करने वाले भगवान् शर्व के समीप आये थे। इसके उपरान्त महादेव ने सूर्य को कर से पकड़कर हाथ से दूर हटाकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर उस यज्ञ की ओर ही धावमान हो गये थे। मार्त्तण्ड (सूर्य) हँसते हुए बड़े वेग के साथ दोनों बाहुओं को फैलाकर कहने लगा आओ, मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। इतना कहकर सूर्य ने उस शिव को आगे चलकर फिर रोक दिया था। हँसते हुए उस सूर्य के दाँतों को वृषभध्वज ने क्रोधयुत होकर हाथ के ही प्रहार से मुख से गिरा दिया था। इस प्रकार से सूर्य को बिना दाँतों वाला तथा भग को हीन मन्त्रों वाला देखकर समस्त देवगण, ऋषि लोग और जो भी वहाँ पर अन्य थे वे सब भाग गये थे।

भगवान् सब देवगण आदि को भागकर परमाधिक कोप वाले होते

हुए वे मृग के रूप से अपमान करते हुए उस यज्ञ को ही पकड़ने के लिए पीछे दौड़े थे। वह यज्ञ भी आकाश के मार्ग के द्वारा ब्रह्मस्थान में प्रवेश कर गया था। वृषभध्वज भी उसके पीछे से कुपित होते हुए ब्रह्मस्थान को गमन कर गये थे। भर्ग से डरा हुआ यज्ञ ब्रह्मा के कहने पर नीचे उतर आया था और अवतरित होकर अपनी माया से सती के देह में प्रवेश कर गया था। भगवान् भर्ग भी मृत हुई दक्ष की दुहिता के निकट चले गये थे उस समय में भर्ग पीछे हो गए थे और वहाँ पर यज्ञ तथा सती के शव को उन्होंने देख लिया था। उस समय भगवान् हर ने दाक्षायणी देवी सती को मृता देखकर यज्ञ को भूलकर उसके समीप में स्थित हुए उन्होंने बहुत अधिक उस सती के विषय में शोक किया था। शूलपाणि भगवान् शम्भु अनेक प्रकार के सती के गुण गणों का चिन्तन करते हुए उस देवी सती की परमाधिक सुन्दर दाँतों की पंक्ति को, कमल के समान प्रकाशित मुख को, अरुण दर्शन वस्त्र, उसकी दोनों भृकुटियों के जोड़े को देखकर बहुत ही तीव्रतर शोक से व्याकुल होकर रुदन करने लगे थे।

विजया सखी के शोक विचार

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा– उस अवसर पर भगवान शिव दक्षा के गुणगणों को परिगणन करते हुए हुए अत्यधिक दुःख से प्रपीड़ित होकर प्राकृत मनुष्य की ही भाँति शोकाकुल हो गये थे। उस समय में विलाप करते हुए शिव को जानकर अर्थात् सती के वियोग में शम्भु को रुदन करते हुए देखकर कामदेव, रति और बसन्त के सहित महेश्वर प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था। उस रति के पति कामदेव ने शोक से अत्यन्त परिभ्रष्ट उस शम्भु को जो भ्रष्ट चेतना वाले और रुदन करने वाले थे, एक ही साथ अपने पाँचों बाणों से प्रहार किया था। शोक के कारण अभिहत चित्त वाले भी शम्भु कामदेव के बाणों के प्रहार से व्याकुल होकर अत्यन्त ही संकीर्ण भाव को प्राप्त हो गये थे और उन्होंने बहुत शोक किया था और वे मोह को भी प्राप्त हो गये थे

अर्थात् शोक के वेग से मूर्छित हो गये थे। वे एक क्षण में तो शोकाकुल होकर भूमि पर गिर जाया करते थे और एक क्षण में ही उठकर दौड़ लगाते थे। एक ही क्षण में वे भ्रमण करने लगते थे अथवा चक्कर काटा करते थे और फिर वे विभु वहीं पर अपने नेत्रों को निमीलित कर लिया करते थे। किसी समय में देवी दाक्षायणी का ध्यान करते हुए हास करने वाले हो जाते थे अर्थात् खूब अधिक हँसते रहा करते थे। किसी समय में भूमि में लेटी हुई उस सती का आलिंगन किया करते थे मानों वह रस के भावों से युक्त ही स्थित होवे। भगवान शंकर 'हे सती! हे सती!' इस प्रकार से निरन्तर सती के नाम का कथन करके ऐसा कहा करते थे कि अब इस व्यर्थ में किए हुए नाम का परित्याग कर दो। ऐसा कहकर अपने हाथ से उस सती के शव का स्पर्श किया करते थे। शम्भु भगवान् अपने हाथ से इस सती का परिमार्जन करके उसके यथास्थित अलंकारों को विश्लेषित करके अर्थात् शरीर से दूर करके फिर उन अलंकारों को वहाँ पर ही अर्थात् उस सती के मृत शरीर पर अलंकारित किया करते थे। तात्पर्य यह है कि कभी तो आभूषणों को सती के मृत शव से दूर हटा लेते थे और उसी सती को सजीव समझकर आभूषणों को उनके अंगों में धारण कराया करते थे।

भूतेश्वर भगवान् शम्भु के इस प्रकार से विलाप-कलाप करने पर भी जिस समय में वह मृत हुई सती ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था तो उस समय भगवान् शिव शोक की उद्गाढ़तापूर्वक अत्यधिक रूदन करने लगे थे। जब वे रूदन कर रहे थे तो उसके आँसू नीचे गिर रहे थे। उस समय में देवगण ने उसको देखा था और वे ब्रह्मादिक देव चिन्ता में परायण होते हुए अत्यधिक चिन्तातुर हो गये थे। भूमि पर गिरे हुए ये वाष्पक अर्थात् आँसू यदि पृथ्वी का दाह कर देंगे तो वहाँ पर क्या उपाय करना चाहिए अर्थात् इन आँसुओं के द्वारा पृथ्वी का दाह का क्या प्रीतकार होगा इससे ये सभी हा-हाकार करने लगे थे। इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवों के शनैश्चर के साथ विचार किया था

और उन्होंने भगवान शम्भु के जो मोह के वशीभूत हो गए थे वाष्पों को धारण करने हेतु शनैश्चर का स्तवन किया था। देवगण ने कहा–हे महान् भाग्य वाले! हे शनैश्चर देव! आप तो लोकों पर अनुग्रह करने वाले हैं। हे मूलशक्ति से समुत्पन्न होने वाले! आपका जन्म तो सूर्यदेव से ही हुआ है। आपके लिए हमारा नमस्कार समर्पित है। हाथ में शूल धारण करने वाले, पाश को धारण करने वाले और धनुर्धारी आपको नमस्कार है। आपका हस्त वरदान देने वाला है और अन्य तम की छाया के आत्मज हैं–ऐसे आपको नमस्कार है।

हे नील मेघ के सदृश! आप पिसे हुए अञ्जन के तुल्य हैं। समस्त लोकों के प्राणों के धारण करने में कारणस्वरूप आपके लिए प्रणाम। आपको नमस्कार होवे। हे भगवान्! आप शीघ्रतापूर्वक प्रसन्न हो जाइए। भगवान् शम्भु के शोक से समुत्पन्न हुए वाष्पों आँसुओं से हमारी इस पृथ्वी की रक्षा करो। जिस प्रकार से पुरातन समय में वर्षों तक वृष्टि का अवरोध किया था और आप ही ने मेघों से होने वाली वृष्टि को रोक दिया था अब उसी भाँति भगवान् हर के शोक के गिरे हुए वाष्पों के जल में भी कीजिए। अर्थात् इस आँसुओं के जल को भी रोक दीजिए। आपके द्वारा जलों का ग्रहण करना देखकर पुष्कर आदि उन मेघों ने महेन्द्र की आज्ञा से निरन्तर वर्षा को छोड़ा था अर्थात् सतत वृष्टि करते रहे थे। आपने पहले पूर्व समय में उस सम्पूर्ण वर्षा के जल को आकाश ही में विनष्ट कर दिया था। अब उसी भाँति भगवान् शिव के आँसुओं के जल को भी नष्ट करने के लिए प्रयत्न कीजिए। भगवान् शिव के वाष्पों के निवारण करने के कार्य से अन्य कोई भी आपके बिना सामर्थ्य रखने वाला नहीं है। यह शिव के शोक से समुत्पन्न आँसुओं का-जल देव गन्धर्वों के सहित तथा पर्वतों के सहित ब्रह्मलोकों का दाह कर देगा। ऐसी ही इन आँसुओं के जल में दाहकशक्ति विद्यमान है। वह वाष्पों का जल इस भूमण्डल में गिरा है इसलिए आप अपनी माया से इनको धारण करो।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा– समस्त देवों द्वारा इस प्रकार से भाषण

किए जाने पर सूर्य पुत्र शनैश्चर ने अत्यन्त दयाद्र मन वाला होकर उन देवों को प्रत्युत्तर दिया था। शनैश्चर ने कहा—हे सुरों में श्रेष्ठों! अपनी शक्ति के अनुसार ही आपका कार्य करूँगा किन्तु ऐसी ही होना चाहिए कि दाह करने वाले मुझको भगवान् शम्भु न जान लेवें। महान् दुःख और शोक के व्याकुल वाष्पधारी शिव के समीप में उनके कोप से यदि वह जान लेंगे तो मेरा शरीर निश्चय ही नष्ट हो जायेगा—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इस कारण से ऐसा ही करिए कि जिस प्रकार से सती के पति भूतेश्वर शिव मुझको न जान पावें और उनके नेत्रों से मैं पृथक ही बना रहूँ। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके पश्चात् वहाँ से ब्रह्मा आदि समस्त देवता शंकर के समीप में गये थे और सांसारिक योगमाया के द्वारा शम्भु को उन्होंने पुनः अधिक मोहित कर दिया था। शनैश्चर भी उसी समय भूतेश्वर के समीप में पहुंच गया था और उस दुराधर्म वाष्पों की वृष्टि को माया से रोक दिया था। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी तो वह शनैश्चर भी शम्भु के वाष्पों को धारण करने में असमर्थ हो गया था तो उसके द्वारा जलधारक महागिरि पर वे वाष्प प्रक्षिप्त किय गये थे।

लोकालोक पर्वत के समीप में जलधारा वाष्प वाला गिरि है जो पुष्कर द्वीप के पृष्ठ में स्थित है। वह तोय सागर के पश्चिम में है। वह सब परिमाण से मेरु पर्वत के सदृश है। उस समय में असमर्थ शनैश्चर ने उस पर ही वाष्पों को विन्यस्त कर दिया था। वह पर्वत भी शम्भु के उन वाष्पों को धारण करने में समर्थ नहीं हुआ था। उन वाष्पों के समुदायों से वह पर्वत विदीर्ण हो गया था और शीघ्र ही मध्य भाग में भग्न हो गया था। उन वाष्पों ने उस पर्वत का भेदन करके वे फिर तोय सागर में प्रवेश कर गये थे। वे वाष्प अतीव क्षार थे कि वह सागर भी ग्रहण करने में समर्थ नहीं हुआ था। इसके अनन्तर सागर को मध्य में भेदन करके वे वाष्प सागर की पूर्व में रहने वाली बेला पर समागत हो गये थे तथा स्पर्श मात्र से उन्होंने उस बेला का भेदन कर दिया था। पुष्कर द्वीप के मध्य में गमन करने वाले ने वाष्प बेला का भेदन करके

वैतरणी नदी हो गये थे और पूर्व सागर में गमन करने वाले हो गये थे। जलधारा के भेद से और सागर के संसर्ग से कुछ सौम्यता को प्राप्त होकर फिर उन्होंने पृथ्वी का भेदन नहीं किया था।

सती के शरीर के खण्ड-खण्ड होकर गिरना

इसके अनन्तर शोक से विमूढ़आत्मा वाले शम्भु विलाप करते हुए उस मृत सती के शव (मृत देह) को अपने कन्धे पर रखकर प्राच्य देशों को चले गए थे। एक उन्मत्त की भाँति गमन करने वाले इन शंकर के भाव को देवगणों ने देखकर ब्रह्मा आदि देवगण शव के भ्रष्ट होने के कर्म के विषय में चिन्ता करने लगे थे। भगवान् शंकर के शरीर के स्पर्श से यह शव विकीर्णता को प्राप्त नहीं होगा फिर किस रीति से उस वृषभध्वज के कन्धे से इस शव का भ्रंश होगा। यही चिन्तन करते हुए वे ब्रह्मा विष्णु और शनैश्चर योगमाया से अदृश्य होते हुए सती के शव के अन्दर प्रवेश कर रहे थे। देवों ने इसके उपरान्त सती के शव के अन्दर प्रवेश करके उन्होंने उस सती के शव के खण्ड-खण्ड कर दिए थे और विशेष रूप से स्थान-स्थान में उन खण्डों को भूतल में गिरा दिया था। देवीकूट के दोनों चरणों को सबसे प्रथम भूमि में निपातित किया था। उड्डीयान में दोनों उरुओं के युग्म को जगतों के हित के लिए भूमि पर उसको डाला था।

कामगिरि कामरूप में योनि मण्डल गिरा था और वहाँ पर ही पर्वत की भूमि में सती के शव का नाभिमण्डल गिरा था। जालन्धर में सुवर्ण के हार से विभूषित स्तनों को जोड़ा गिरा था, पूर्वगिरि में अस और ग्रीवा पतित हुए और फिर कामरूप से शिर पतित हुआ था। भगवान् शंकर जितने भूमि के भाग में सती के शव लेकर गये थे उतना ही प्राच्यों में याज्ञिक देश कीर्तित हुआ था। अन्य जो सती शव के अवयव थे वह छोटे-छोटे टुकड़ों में देवों के द्वारा खण्डित कर दिए गये थे। हे द्विजो! जहाँ जहाँ पर सभी सती के पाद आदि पर्यन्त शरीर के अवयव गिरे थे वहाँ वहाँ पर ही महादेव स्वयं लिंग के स्वरूप धारण

करने वाले हो गये थे और वे मोह से समायुक्त होकर सती के प्रति स्नेह के वशीभूत होकर स्थित हो गये। ब्रह्मा विष्णु और शनैश्चर ने भी समस्त देवगणों ने परम प्रीति के साथ सती के पाद आदि शरीरावयवों की और ईश की पूजा की थी।

देवीकूट में महादेवी महाभाग, इस नाम से गान की जाया करती हैं। जगत् के प्रभु योगनिद्रा सती के दोनों चरणों में लीन हैं। उड्डीयान में कात्यायनी और कामरूप वाली कामाख्या हैं। पूर्णगिरि व पूर्णेश्वरी है तथा जालन्धर गिरि में चण्डी इस नाम से विख्यात है। कामरूप के पूर्वान्त में देवी दिकुरवासिनी है तथा ललितकान्ता, इस नाम से योगनिद्रा का गान किया जाता हैं। जहाँ पर सती का शिर गिरा था वहाँ पर वृषभध्वज उस शिर का अवलोकन करके लम्बी श्वास लेते हुए शोक के परायण होकर उपविष्ट हो गये थे। भगवान् शंकर के उपविष्ट हो जाने पर वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण दूर से ही शिव को सान्त्वना देते हुए उनके समीप में गये थे। भगवान् शंकर ने आते हुए देवों का अवलोकन करके शोक और लज्जा से समन्वित होते हुए वहीं पर शिवत्व को प्राप्त होकर लिंग के स्वरूप को प्राप्त हो गये थे। भगवान शंकर के लिंग का स्वरूप प्राप्त हो जाने पर ब्रह्मा आदि देवगणों ने उन लिंग के स्वरूप वाले जगतगुरू त्र्यम्बक भगवान् का वहाँ पर ही स्तवन किया था।

देवगण ने कहा—महानदेव शिव, स्थाणु, उग्र, रुद्र, वृषभध्वज-श्मशान में निवास करने वाले, सबका अन्तःकरण, पर, भर्ग को हम भक्ति-भाव से नीललोहित शंकर को प्रणाम करते हैं जो गिरीश, वरदान देने वाले, भूत भावन और अव्यय देव हैं। अनादि, मध्य और संसार की योगविद्या वाले शम्भु के लिए नमस्कार है जो परमशिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति हैं उनके लिए नमस्कार है। जटिल अर्थात् जटाजूट वाले, गिरीश, विद्या की शक्ति के धारण करने वाले, शिव, शान्त ब्रह्म और लिंग की मूर्ति वाले आपके लिए नमस्कार है। ज्ञानरूपी अमृत के अन्त तथा सम्पूर्ण शुद्ध देहान्तर, शिव, शान्त, ब्रह्म

और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है। आदि और मध्य तथा अन्त स्वरूप, स्वभाव अनल की दीप्ति वाले, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगभूमि वाले के लिए नमस्कार है। प्रलय के अन्त में विराजमान, प्रलय और स्थिति के कारण, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है।

जो परों से भी पर हैं और उससे पर परमात्मा है उसके लिए, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति के लिए नमस्कार है। ज्वालाओं की मालाओं से समावृत अंगों वाले, विश्व के रूप वाले, शिव, शान्त ब्रह्म और लिंगमूर्ति आपके लिए प्रणिपात समर्पित है। परमार्थ स्वरूप, ज्ञान के दीप अर्थात् प्रकाश करने वाले, वेधा, शिव, शान्त, ब्रह्म और लिंगमूर्ति आपके लिए ओंकार के सहित नमस्कार है। हे दाक्षायणी के पतिदेव! हे मृड! हे शर्व! हे महेश्वर! हे सब भूतों के ईश! हे शिव! हे भगवान् आपके नमस्कार है आप प्रसन्न होइए। हे लोकों के स्वामिन्! हे महेश्वर! आपको शोक के सहित चेष्टा करते हुए होने पर सभी देवगण समाकुल हैं इसलिए आप अब इस शोक का परित्याग कर दीजिए। हे भूतों के ईश! आपको नमस्कार है–नमस्कार है। हे सब कारणों के भी कारण! प्रसन्न होइए। हम सबकी रक्षा करो और शोक का त्याग कर देवें। आपके लिए नमस्कार है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस प्रकार से भली-भाँति स्तवन किए गए जगत् के पति महादेव अपने रूप में समस्थित होते हुए शोक से आहत प्रादुर्भूत हुए थे। उनकी शोक से विह्वल और बिना चेत वाले अर्थात् मन्य मनस्क प्रादुभूर्त हुए देखकर देवों ने शोक के अपहरण करनेवाले विधि वृषभध्वज की स्तुति की थी। ब्रह्माजी ने कहा–हे हर! आप ही हिरण्यबाहु ब्रह्मा हैं और आप ही जगत् के पति विष्णु हैं। इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और विनाशों के आप ही हेतु होते हैं। आप अपनी अष्ट मूर्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त होकर इसके उत्पादक-स्थापक और नाशक भी हैं। विश्वकृत! आप ही हैं। हे महादेव! आपकी आराधना करके मुक्ति पाने की इच्छा वाले

पुरुष मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं। वे राग-द्वेष आदि बन्धन के कारणों से छूटे हुए हैं और बुद्ध पुरुष संसार से विमुख होते हैं। हे महेश्वर! विभिन्न वायु, अग्नि और जल के ओघ से रहित, सूर्य और चन्द्रमा से युक्त, इस रीति से दूर में भी स्थित नहीं है अर्थात् सन्निकट में ही वर्तमान हैं। तीन मार्गों के मध्य में संस्थित हैं और अनु प्रकाशक हैं, परमशुद्धमय तत्त्व हैं। जो ज्ञानरूपी जल के द्वारा बर्धित—समीप में ही समुत्पन्न तपरूपी जत्रों से संस्थागित, आठ शास्त्ररूपी तरु का पुष्प है उसका सूक्ष्म उपगमन करने वाला, पीत-पराग सदा ही आपके वश में गमन करने वाला है। समीकरण (वायु) की ध्वनि को नीचे की ओर समाधान करके और रात्रि को ऊपर की ओर निरुद्ध करके हंस के मध्य से हृदय के पद्म के मध्य में रज सुमुखीकृत है परन्तु आपका तेज सर्वदा सर्वत्र है। पूरक अथवा कुम्भक प्राणायामों से रिक्त चित्रों से जो पर नामक प्रेरणा है, वे प्रपञ्च योगियों के द्वारा दृश्य और अदृश्य है। तात्विक रूप से शुद्ध और वृद्ध आपके द्वारा लब्ध हैं। सूक्ष्म जगत् में व्याप्त और गुणों के समूह से पीन मृग्यम्बुधि के साधन-साध्य रूप वाला है। हे महेश! चोर और रक्षकों के द्वारा न तो उग्झित है और न नीत ही है अर्थात् लिया हुआ है ऐसा ही आपका अर्थ से हीन चित्त है। वह चित्त कोप से, शोक से, मान से और दम्भ से भी व्यय नहीं होता है। वह चित्त तो उपयोग करके अन्य प्रकार से ही बढ़ता रहा करता है। आप माया से मोहित हैं इसलिए आप हृदय में स्थित को ही आपने विस्मृत कर दिया है। माया को भिन्न समझकर अपनी आत्मा के द्वारा ही आत्मस्वरूप को धारण करो।

हे महेश्वर! जगत् के हित के सम्पादन करने के लिए हमने पूर्व में ही माया का स्तवन किया था उसके द्वारा ध्यान में संलग्न चित्त बहुत से प्रयत्नों के द्वारा प्रसाधित है। शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, परात्मता, ईर्ष्या, मान, संशय, कृपा, असूया, जुगुप्सिता ये बारह, मन में मल होते हैं जो बुद्धि के नाश करने के हेतु हैं। आप जैसे महापुरुषों द्वारा इन बारह मानस मलों का सेवन नहीं किया जाया करता है। हे

हर! आप शोक का परित्याग कर दीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से साम के द्वारा स्तुति किए गए शम्भु ने अपने वाँछित का संस्मरण करके भी सती के शोक से बिना कृत हुए शिव ने उस समय में आत्मा का अवधारण नहीं किया था। नीचे की ओर को मुख किए हुए समवस्थित ब्रह्माजी को देखकर उसने धीरे से यह कहा था–हे ब्रह्माजी! कुछ अतिक्रमण करनेवाली बात कहो। आप बतलाओ, अब मैं क्या करूँ।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस प्रकार से वामदेव और समस्त देवों के द्वारा कहे हुए विधना (ब्रह्मा) उस समय मे महेश्वर के शोक का विनाश करने वाला यह वचन कहा था। ब्रह्माजी ने कहा–हे महादेव! अपनी आत्मा के द्वारा ही अर्थात् अपने आप ही अपनी आत्मा अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का संस्मरण करके शोक का परित्याग कर दो। आप शोक करने के स्थान नहीं हैं। शोक से आपका परम अन्तर हो गया है। हे भूतेश्वर! आपके शोकयुक्त हो जाने पर सभी देवगण अत्यन्त भयभीत हो गए हैं। आपका क्रोध और शोक जगती-तल को भ्रंश कर देगा और आपका शोक इसका शोषण कर देगा। आपके वाष्पों अर्थात् अश्रुपात से यह सम्पूर्ण पृथ्वी व्याकुल होकर विदीर्ण हो जाती यदि शनि आपके वाष्पों को अवग्रहण नहीं करता। वह शनि भी हठ से कृष्ण हो गया है। जहाँ पर गन्धर्वों के सहित सब देवगण सदा उत्सुकता से युक्त होकर क्रीड़ा किया करते हैं। जो यह सुमेरु पर्वत के सदृश मान से उत्तम पर्वत हैं–पुष्कर, आवर्त्तक आदि जलों का पान किया करते थे–जहाँ पर जा करके महामुनि कुम्भयोनि मन्दार पर्वत से निरन्तर जगत के हित में तपस्या किया करते थे।

जिस पर्वत में भगवान शम्भु स्थित होकर पूर्व में जल के सागर को हाथ के मध्य में रखकर तप के बल से पी गये थे। शनैश्चर के द्वारा आपके वाष्पों को सहन करने में असमर्थ होते हुए क्षिप्त लोकों से यह जलधारा नामक गिरि विदारित हो गया था। हे शम्भो! आप वाष्प पर्वत का विशेष रूप से भेदन करके सागर में चले गये थे। वे प्रभीत

अण्डजों से सकूल सागर का शीघ्र ही भेदन करके वाष्प उसके पूर्व पुलिन पर चले गये थे और उन्होंने उस पुलिन का भी भेदन कर दिया था। वेला का भेदन करके फिर पृथ्वी का भेदन किया था और उन्होंने एक नदी को बना दिया था। उन्होंने उस वैतरणी नाम वाली नदी को बना दिया था जो पूर्व सागर की ओर गमन करने वाली थी। वह नदी गर्म जल के होने के कारण से अत्यन्त भीषण थी जो किसी भी नौका, विमान, द्रोणी और रथ के द्वारा भी पार करने के योग्य नहीं हो सकी थी। पृथिवी महान् दुःख से साथ अब उसको धारण किए हुए थी। वह सदा ही ऊर्ध्वगत अर्थात् ऊपर की ओर जाते हुए वाष्पों से नभश्चरों का विक्षेपण करती हुई थी और उसके ऊपर से देवगण भी भय से आतुर होकर गमन करते हैं।

यमराज के द्वार से परावर्तित होकर दोनों जल से विस्तार वाली निम्न होती हुई वह सम्पूर्ण तीनों भुवनों को भय उत्पन्न करती हुई वहन किया करती है। आपके शोक संतप्त निःश्वासों की वायुओं से समस्त पर्वत और कानन व्याप्त हैं और समाकुल द्वीपीनाग आज तक भी प्रतिशयन नहीं किया करते हैं। आपके संतप्त निःश्वासों से समुत्पन्न वायु सम्पूर्ण जगत के सुख को पीड़ित करता हुआ वह बाधाहीन और सनातन आज तक भी शमन को प्राप्त नहीं होता है। सती के शव अर्थात् मृत शरीर को वह करनेवाले आपके पद-पद में यह पृथ्वी शीर्यमाण हो रही है और वह परम व्याकुल पृथ्वी अपनी व्याकुलता का मोचन नहीं कर रही है। इस समय न तो पाताल में और न स्वर्ग में वह सत्व विद्यमान है जो आपके क्रोध से और शोक से हे वृषभध्वज! व्याकुल न होवे। इसी कारण से आप शोक और अमर्ष को परित्याग करके हम सब को शान्ति का प्रदान करो। अपनी आत्मा के द्वारा ही अपनी आत्मा को जानिये अर्थात् स्वयं ही अपने आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कीजिए और आत्मा से ही आत्मा को धारण करिए और वह सती दिव्यमान से सौ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर त्रेता युग के आदि में वही सती पुनः आपकी भार्या होगी।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ब्रह्माजी के द्वारा इस रीति से कहे हुए शम्भु नीचे की ओर मुख वाले, ध्यान में परायण होकर अमित ओज वाले ब्रह्माजी से बोले—हे ब्रह्मण! जब तक मैं सती के द्वारा किए हुए शोक से उत्तीर्ण होऊँ तब तक आप मेरे सखा हो व शोक का अपमोदन करिये। हे ब्रह्माजी! उस अवसर पर मैं जहाँ-जहाँ पर भी गमन करूँ वहाँ-वहाँ पर भी आप भी गमन करके मेरे इस दुस्सह शोक की हानि करिए। तात्पर्य यही है कि मेरे ही सर्वदा साथ रहकर जहाँ पर भी मैं जाऊँ वहीं पर मेरे शोक का विनाश करने की कृपा करें। लोकेश ब्रह्माजी ने 'ऐसा ही होवे' यह वृषभवाहन से कहकर अर्थात् मैं आपके साथ में सर्वत्र रहकर आपके शोक का विनाश करूँगा। फिर ब्रह्माजी ने भगवान् शम्भु के ही साथ में कैलाश गिरि पर जाने का मन किया था। ब्रह्माजी के साथ भगवान शम्भु को कैलाश पर्वत की ओर गमन करने के लिए उत्सुक देखकर जो नन्दी और भृङ्गि आदिगण थे वे भी यह देखकर वहाँ प्राप्त हो गये थे। फिर एक विशाल पर्वत के ही समान वृषभ विधाता के सामने उपस्थित हो गया था जिस तरह से सिताभ के सदृश गैरिक होवे। वासुकि आदि जो शर्व थे उन सबने यथास्थान पर भगवान् शम्भु की बहुत शीघ्र वहाँ आकर शिव के शिर और बहु आदि से उनको विभूषित कर दिया था। कथन का अभिप्राय यही है कि वासुकी प्रभृति सब सर्प वहाँ आकर शिव के करादि अंगों के आभूषण हो गये थे।

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और सती के पति महादेव समस्त देवों के समूह के साथ हिमवान् पर्वत पर चले गए थे। इसके पश्चात् गिरि अपने नगर से निकलकर उन औषधियों के प्रस्थों को अपने आत्माओं के सहित सुरोत्तमों के सामने उपस्थित हुए थे। इसके अनन्तर उस गिरिराज के द्वारा वे सभी सुरगण पूजे गये थे और सबका एक ही साथ अभ्यर्चन किया गया था। वहाँ पर उस देवों के यजन करने में सभी सचिव और पुरवासीगण भी सम्मिलित थे। वे सुरगण ही बहुत प्रसन्न हुए थे। फिर वहीं पर उस गिरीन्द्र के नगर में भगवान् हर ने उस

औषधियों के प्रस्थ पर सखियों के साथ गौतम की आत्मजा विजया का अवलोकन किया था। उसने भी उन समस्त सुरों को प्रणिपात करके हर से कहा था। गिरीश से अपनी माता की भगिनी सती के विषय में पूछती हुई ने क्रोध किया था। हे महादेव! आपकी वह सती कहाँ पर है मेरे हृदय से दुःख दूर नहीं हट रहा है। मेरे ही आगे पहले समय में उसने जिस समय में कोप से प्राणों को त्यागती है उसी समय में शोकरूपी शल्य से विद्ध होकर सुख को प्राप्त नहीं करती हूँ। इतना कहकर वस्त्र के छोर से मुख को ढककर अधिक रूदन करती हुई भूमि पर गिर पड़ी थी और बहुत दुःख को प्राप्त हो गई थी।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके पश्चात् उस समय में दाक्षायणी का स्मरण करते हुए उसको भूमि पर गिरी हुई देखकर उस समय में शोक से समुत्पन्न उद्वेगयुक्त रञ्ज को शिव सहन न कर सके थे। जिनका धीरज एकदम ही नष्ट हो गया था ऐसे भगवान् शम्भु वाष्पों से व्याकुल लोचनों वाले हो गए थे अर्थात् उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाह चलने लग गया था। सभी देवों के देखते हुए वे भगवान् शिव चिन्ता के ध्यान में तत्पर हो गये थे। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने शोक से कथित विजया को ढाढ़स बँधाकर फिर भगवान् शंकर को समाश्वासन देते हुए सान्त्वना से साथ यह वचन कहने लगे थे। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान्! आप पुराने योगी हैं। आपको ऐसा शोक करना युक्त प्रतीत नहीं होता है। आपका ध्यान तो परधाम में ही था फिर यहाँ पर सती में कैसे हो गया? आप तो निरञ्जन हैं और आप बड़े-बड़े यतियों के ध्यान में जानने के योग्य हैं। आप पर से भी पर हैं, आपका स्वरूप निर्मल है तथा आप सर्वत्र गमन के स्वभाव एवं शक्ति से समन्वित हैं। जो राग और लोभ आदि मल हैं उन मलों से आप विहीन रहने वाले हैं। ऐसा ही आपका स्वरूप है उसे ही आप अपनी बुद्धि से ग्रहण कीजिए।

प्राणी के अन्दर रहने वाले ज्ञान के विनाश करने वाले निम्नलिखित चौदह दोष हुआ करते हैं। वे ये हैं—शोक, लोभ, क्रोध, मोह, हिंसा,

मान (मैं बहुत ही महान् हूँ, ऐसा मान मन में रखना), दम्भ अर्थात् याषाणु, मद, प्रमोद, ईर्ष्या, असूया, अक्षान्ति और असत्यता। आप तो विष्णु के ही स्वरूप वाले जगतों के विधाता हैं अर्थात् जगतों की रचना करने वाले हैं। जो भी आपको महान् मोह कर देने वाली सती हैं, यह तो आपकी ही लोकों के मोह के लिए माया है। जो समस्त लोकों को जन्म में और गर्भ में पूर्व देह की बुद्धि को विमोहित करती हुई, विनाश करके बाल्य अवस्था में जन्तु का पालन किया करती है आज वह भी शोक से सहित आपको विमोहित कर रही है। प्रत्येक कल्प में पहले आपने सहस्त्रों सतियों का त्याग किया था जो मृत हो गई थीं। इस प्रकार से चर-अचर लोक के हित के ही सम्पादन करने के लिए उसी भाँति आपके द्वारा यह सती पुनः ग्रहण की गई थी। हे वृषभध्वज! आप ध्यान के योग द्वारा देखिए दूसरे जन्म में जो सहस्त्रों सतियां मृत हुई हैं आप यथा तथा परिवर्जित हैं अथवा जैसी की तैसी वह हैं। क्योंकि वह पुनः समुत्पन्न होकर हे ईश! वह आपको ही प्राप्त करेगी। जो आप देवगणों के द्वारा भी दुष्प्राप्य होते हैं और फिर वह जैसी जाया आपको होने वाली है। यह सभी कुछ आप ध्यान के योग द्वारा देख लीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस रीति से ब्रह्माजी ने बहुत प्रकार से ज्ञान को भगवान् शंकर से कहा था। फिर उस गिरिराज ने नगर से उनको निर्जन स्थान में गत कर दिया था। इसके उपरान्त हिमवान् के प्रस्थ में और उनके नगर के पश्चिम दिशा में द्रुहिण आदि ने शिव नाम वाला परिपूर्ण एक सरोवर देखा था। उस परम एकान्त स्थान की प्राप्ति करके ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवों ने वहाँ पर उपसेवन किया था अर्थात् वहाँ पर बैठ गए थे और जैसा भी न्याय था उसी के अनुसार उन्होंने महेश्वर को अपने आगे बिठा लिया था। वह शिव नाम वाला सरोवर बहुत ही सुन्दर था जो सभी देहधारियों में मन को हरण करने वाला था। उसका जल ठंडा और निर्मल था। वह सरोवर अपने सभी गुणों से मानस सरोवर के तुल्य था। भगवान् शम्भु उस सरोवर को

देखकर एक क्षण पर्यन्त उसके देखने में उत्सुकता से रुक गए थे। उसी सरोवर से एक शिप्रा नाम वाली नदी निकली हैं और वह दक्षिण सागर को जा रही थी, जो जगत् के जनों को पावन कर रही थी, ऐसा उन्होंने वहाँ पर देखा था। उस पूर्ण सरोवर के पास जाकर अनेक देशों से समागत हुए परमाधिक सुन्दर दर्शन करते हुए बहुत से पक्षियों को शम्भु ने अवलोकन किया था।

वहाँ पर विराजित होकर उन्होंने गम्भीर वायु से एवं सम्पन्न तरंगों में चक्रवाक के जोड़ों को नृत्य करते हुए देखा था। उन शम्भु भगवान ने चञ्चुओं से तरंगों को पृथक-पृथक देखा था जिस तरह से जल से पुनः उत्पन्न करते हुए पक्षियों को देखा हो। प्रत्येक तट पर श्रेणी में आबद्ध हुए कादम्ब, सारस और हंसों के द्वारा अंगीकृत वह सागर जैसा हो वैसा ही वह सरोवर था। जिसको शिव ने देखा था। बड़े-बड़े मत्स्यों से युक्त अर्थात् बड़ी मछलियों के उछालों से क्षोभ को प्राप्त हुए जल के शब्द से भय उत्पन्न होने वाले पक्षियों के द्वारा विहित शब्द वहाँ पर हो रहा था। वहाँ पर उस मन के हरण करने वाले दृश्य का अवलोकन किया था। विकास को प्राप्त हुए कमलों से और वहीं पर मनोहर जलों से वह सरोवर परम शोभित हो रहा था। जिस तरह से स्थूल और सूक्ष्म नक्षत्रों से स्वर्ग शोभयमान हुआ करता था। बड़े-बड़े कमलों के मध्य में विरले ही नीलकमल उसमें दिखलाई दे रहे थे और वह ऐसे ही शोभा से संयुक्त थे जैसे नक्षत्रों के मध्य में नीलमेघ का खण्ड शोभित हुआ करता है।

पद्मों के समूह के मध्य में संस्थित हम किन्हीं के द्वारा प्रस्तुत नहीं हो रहे थे क्योंकि उनमें भी विकसित कमलों की भ्रान्ति होती थी\अर्थात् उन हँसों को भी जो कमलों के बीच में स्थित थे खिले हुए कमल की समझा जा रहा था। वे स्वर्गवासियों के द्वारा निश्चल ही दिखाई दे रहे थे। दो प्रकार के रक्त और शुक्ल वर्ण के विकसित पद्मों को देखकर ब्रह्माजी ने अपने आसन के कमल में काम में उत्फुल्लत्व और अरुणत्व की अर्थात् विकास और लालिमा की निन्दा की थी। महादेवजी ने उस

सरोवर के विकसित महोत्पल का अवलोकन करके उन्होंने हाथ में स्थित कमल का कुछ भी मान नहीं किया था क्योंकि वह हाथ के कमल की कान्ति मस्तक में स्थित चन्द्रमा की कान्ति से मलिन हो गया था। भगवान् हरि ने अपने सुदर्शन चक्र से सूर्य की किरणों से विकसित हाथ में रहने वाले कमल को ओर सरोवर के पद्म को सब ओर देखकर सदृश ही माना था। उस सरोवर को जो नाना भाँति के पक्षियों से समाकुल, सम्पूर्ण सैकड़ों ही कमलिनिओं से संच्छन्न (ढका हुआ) और नीलोत्पलों के समूह से युक्त था, देखा था। वह सरोवर तट पर देवदारु के वृक्षों के प्रसूनों में रहने वाले परागों से सुगन्धित जल से समन्वित था और देखने वालों के हृदय को महान आनन्द को उत्पन्न करने वाला था। उस सरोवर के प्रत्येक तट पर महान विशाल वृक्ष थे और वह शाद्वलों से भी परिवारित था अर्थात् उसके किनारे शाद्वलों से चारों ओर घिरे हुए थे। ऐसे उस सुन्दर सरोवर की शोभा को देखकर शम्भु क्षण भर के लिए उत्सुकता से युक्त तथा शोक से रहित हो गये थे। तात्पर्य यही है कि उस सरोवर की सुषमा से शम्भु का शोक मिट गया था और एक विशेष उत्सुकता उनके हृदय में उत्पन्न हो गई थी।

क्षिप्र पर्वत और क्षिप्रा नदी की कथा

भगवान् महेश्वर ने उस सरोवर से निकली हुई शिप्रा नदी का अवलोकन किया था जिस प्रकार से इन्द्र मण्डल से भागीरथी गंगा और मेरु पर्वत से जम्बु नदी निकलती है, उसी भाँति भगवान् शम्भु से शिप्र से शिप्रा को विनिसृत किया था। ऋषियों ने कहा--शिप्र नाम वाला सरोवर कौन-सा है और किस प्रकार से उससे शिप्रा नदी निःसृत हुई थी ? इसका प्रभाव किस प्रकार का है, यह सभी कुछ आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा--हे मुनिगणों! अब आप लोग श्रवण कीजिए कि जिस प्रकार से शिप्रा नदी निःसृत हुई थी। हे महाभागों! यह भी सुनिए कि उस शिप्रा का क्या प्रभाव

है क्योंकि मैं यह सभी आप लोगों को बतला रहा हूँ। जिस समय से वशिष्ठ जी ने देवी अरुन्धती का विवाह किया था। हे द्विजो! उसी समय में वैवाहिक जलों से शिप्रा नदी समुत्पन्न हुई थी। वह समागत होकर शासन से शिप्र सरोवर में गिरी थी जिस प्रकार से भागीरथीं गंगा भगवान विष्णु के चरणों से शिव जल वाली सागर में पतित हुई थी।

पहले समय में देवों के उपयोग करने के लिए ही धाता ने इसका विशेष निर्माण किया था जो हिमवान् के शिखर पर एक महान शिप्र नाम वाला सरोवर है। वहाँ पर आज भी अप्सरागणों के सहित इन्द्र देव अपनी शची को साथ में लेकर उस परम शुभ जल में रमण किया करते हैं। आज तक भी वह देवों के द्वारा एक रत्न की ही भाँति सर्वदा यत्न के साथ रक्षित हुआ करता है। वहाँ पर तप के प्रभाव से मुनिगण इस परमशुभ सरोवर में गमन किया करते हैं। महान् यत्न से ही वे लोग शिप्रा नाम वाले सरोवर के उसके जल में स्नान करने के लिए तथा पान करने को जाया करते हैं। वहाँ पर मनुष्य हैं जो योग से उसके जल का स्नान तथा पान करके अविकल इन्द्रियों वाले होते हुए अवश्य ही देव के स्वरूप को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे द्विजोतमों! यह सरोवर वर्षा ऋतु में भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि अन्य प्राकृत जलाशयों के समान यह सरोवर का जल नहीं बढ़ा करता है और यह गर्मी की ऋतु में शोषण को भी प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह तो सर्वदा ही जैसा है वैसा ही रहा करता है। न घटता है और न कभी बढ़ता ही है।

हे द्विजश्रेष्ठों! शिप्र के गर्भ के मध्य में स्थित जल प्रतिदिन बढ़ता था। वहाँ पर उस बढ़े हुए जल को पहले भगवान् हरि ने अपने चक्र के द्वारा लोकों की भलाई करने की भावना से गिरि के शिखर का भेदन करके उस नदी को परमपुण्य करके पृथ्वी की ओर प्रेरित कर दिया था। जाह्नवी गंगा के ही समान फल देने वाली वह नदी स्नान करने वालों को पवित्र करती हुई दक्षिण सागर को चली गयी थी। क्योंकि वह नदी शिप्र नाम वाले सरोवर से ही समुत्पन्न हुई थी अर्थात्

वह महानदी शिप्र से निकली थी अतएव उसका 'शिप्रा' यह शुभ नाम पूर्व में ही ब्रह्माजी ने रखा था। जिसमें कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि के दिन जो भी कोई मनुष्य स्नान किया करता है वह मनुष्य अत्यन्त देदीप्यमान विमान के द्वारा भगवान् विष्णु के लोक में गमन किया करता है। तात्पर्य यही है कि इस महानदी में कार्तिक मास की पूर्णमासी में स्तवन करने का ऐसा फल हुआ करता है कि वह सीधा विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया करता है। पूरे कार्तिक मास में शिप्रा नदी के जल में जो भी मनुष्य स्नान किया करता है वह सीधा ही ब्रह्माजी के लोक को चला जाया करता है और कुछ समय तक वहाँ दैविक सुखों का भोग करके पीछे संसार के जन्म और मृत्यु के निरन्तर आवागमन से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है। ऋषिगणों ने कहा–महामुनि वशिष्ठ जी ने किस प्रकार से अरुन्धती देवी के साथ विवाह किया था ? हे ब्रह्मण, वह अरुन्धती किसकी पुत्री समुत्पन्न हुई थी ? यह सभी आप कृपा करके हमको वर्णन करके समझाइए।

वह परमश्रेष्ठा देवी अरुन्धती तीनों लोकों में पतिव्रता नारियों में बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हुई थी। वह ऐसी ही पतिव्रता नारी थी कि अपने पतिदेव के चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान में अपने नेत्रों से नहीं देखा करती थी। जिस देवी अरुन्धती को केवल कथा का ही श्रवण करके जो कि महात्म्य के सहित है स्त्रियाँ स्मरण करके यहाँ सतीत्व को प्राप्त करती हुई मरकर भी अन्य जन्म में भी सतीत्व को प्राप्त किया करती हैं। कालधर्म को समासन्न होने वाला पुरुष जिसका दर्शन नहीं किया करता है तथा जो भी शुचि होता है वह पुरुष पापकारी होता है। वह देवी के जन्म का वर्णन आप हमारे समझ में करने की कृपा करिए। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा था–आप लोग भली-भाँति श्रवण कीजिए जैसे वह समुत्पन्न हुई थी और जिस प्रकार से उस देवी ने अपने पति के स्वरूप वशिष्ठ मुनि को प्राप्त किया था और जो वह प्रसिद्ध पतिव्रता हुई थी। जो सन्ध्या पहले ब्रह्माजी पुत्री मन से ही समुत्पन्न हुई थी उसने तपस्या का तपन किया था और वहीं

शरीर का त्याग करके पीछे अरुन्धती नाम वाली हुई थीं। वह मेधातिथि की पुत्री होकर वह सती ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वचन से सचरित्र व्रत वाली मुनियों में श्रेष्ठ की सती हुई थी। उसने ही संशित व्रतों वाले महात्मा वशिष्ठ का पति के स्वरूप में वरण किया था अर्थात् स्वयं ही वशिष्ठ को अपना पति बनाना स्वीकार किया था।

ऋषियों ने कहा--उस संध्या ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए कहाँ पर किस प्रकार से तप किया था? फिर क्यों अपने शरीर का परित्याग किया था और वह कैसे मेधातिथि की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई थी ? कैसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों के द्वारा कहे हुए परम संशित वाले सुन्दर महात्मा वशिष्ठ मुनि को उसने पति के स्थान में वरण किया था ? हे द्विजोत्तम! इस चरित्र को श्रवण करने की इच्छा वाले हमको यह सब विस्तार के साथ कहने की कृपा कीजिए। महासती अरुन्धती देवी के चरित्र के सुनने के लिए हमारे हृदय में बड़ा भारी कौतुहल हो रहा है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--ब्रह्माजी ने भी पहले अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर कामवासना के लिए अपना मन किया था और फिर सुता का त्याग कर दिया था। काम के उस प्रकार के भाव को जो मुनियों के हृदय में भी मोह के करने वाला है वहाँ पर उसको सन्ध्या ने स्वयं ही देखा था। तब वह परम दुःखिता होकर लज्जा को प्राप्त हो गई थी अर्थात् स्वयं ही लज्जा आ गई थी।

इसके अनन्तर ब्रह्माजी के द्वारा कामदेव को शाप दे देने पर तथा विधाता के अन्तर्धान हो जाने पर और भगवान् शम्भु के अपने स्थान पर चले जाने पर वह मनस्विनी सन्ध्या एक क्षण पर्यन्त शीघ्र ही पूर्व में होने वाले वृत्त का ध्यान करती हुई वह सन्ध्या परायण हो गई थी। इस महापाप का प्रायश्चित मैं स्वयं ही करूंगी और वेद मार्ग के अनुसार अपने आपको अग्नि में हवन कर दूँगी अर्थात् अग्नि में जलकर अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी। इस भूमण्डल में मैं एक प्रकार की मर्यादा की स्थापना करूँगी कि जिससे उत्पन्न होते ही शरीरधारी कामदेव से युक्त न होवे। इसी के लिए मैं परमाधिक दारुण

अर्थात् कठिन कष्टप्रद तप का समाचरण करके मर्यादा की स्थापना करके ही इसके पश्चात् अपने जीवन का त्याग करूँगी। जिस मेरे शरीर में मेरे पिता ब्रह्माजी ने अपने मन की अभिलाषा से समन्वित स्वयं किया था जब उस शरीर से भाइयों के साथ कुछ प्रयोजन भी नहीं है। जिस अपने शरीर के द्वारा सहज स्वीय तात में काम का भाव उद्भावित कर दिया गया था वह शरीर कभी सुकृत की साधना करने वाला नहीं है। इस प्रकार से संध्या मन के द्वारा भली-भाँति चिन्तन करके वह परम श्रेष्ठ पर्वत पर चली गयी थी जो चन्द्रभाग नाम वाला था और जिससे चन्द्रभाग नाम वाली नदी निकली थी। सवर्ण समान और समुदित चन्द्र से जिस रीति से उदयपर्वत निरन्तर शोभित हुआ था ठीक उसी भाँति उस संध्या के द्वारा वह पर्वत उस समय समाधिष्ठित हुआ और शोभित हुआ।

चन्द्रमा को शाप का वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उस श्रेष्ठ पर्वत की ओर गमन की गयी संध्या को देखकर जो कि तपश्चर्या करने के लिए नियत आत्मावाली थी, ब्रह्माजी ने अपने सुत से कहा था। वह पुत्र वशिष्ठ मुनि थे। वशिष्ठ संशित आत्मावाले, सब कुछ ज्ञान रखने वाले, ज्ञानयोगी, समीप में ही सुसमासीन और वेदों तथा वेदों के अंग शास्त्रों में पारगामी थे। ब्रह्माजी ने कहा—हे वशिष्ठ! आप जाइए जहाँ पर मनस्विनी सन्ध्या ने गमन किया है। वह संध्या तपस्या करने के लिए इच्छा रखने वाली हैं। आप जाकर इसको विधि के अनुसार दीक्षा दीजिए। पहले यहाँ पर कामुकों को देखकर उसको लज्जा हो गयी थी। हे मुनिश्रेष्ठ! उसने आपको, मुझको और अपने आपको सकाम ही देखा था अर्थात् सभी के अन्दर कामवासना का अवलोकन किया था। पूर्व में होने वाले आयुक्त रूप ने संयुत कर्म को विचार करके वह हमारे और अपने भी प्राणों का भली-भाँति परित्याग करने की इच्छा करती है। इस प्रकार से जो मर्यादा से रहित पुरुष हैं उनमें वह

तपश्चर्या के द्वारा ही मर्यादा की स्थापना करेगी। वह साध्वी तपस्या करने के लिए ही इस समय चन्द्रभाग पर्वत पर गई है। हे तात! वह तपस्या के किसी भी भाव को नहीं जानती है इस कारण से वह जिस प्रकार से उपदेश को प्राप्त कर लेवे आप वैसा ही करिए।

आप भी अपने इस वर्तमान रूप का परित्याग करके अन्य रूप धारण करके उसके समीप में तपश्चर्या का निर्देश कीजिए। आपके इस स्वरूप को देखकर पूर्व में जैसे वह लज्जा को प्राप्त हुई थी उसी भाँति अब [illegible] लज्जा को पाकर आपके [illegible] वह कुछ भी नहीं कहेगी। आप अपने रूप का त्याग करके ही अन्य रूप वाले बन जावें। फिर उस महाभाग वाली सन्ध्या के लिए उपदेश देने को गमन करें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–'ऐसा ही होगा', यह कहकर वशिष्ठ भी जटाधारी ब्रह्मचारी बन गये जो एकदम तरुण था। मुनि वशिष्ठ चन्द्रभाग पर्वत पर उस संध्या के समीप में गये थे वहाँ पर देवसर ऐसे परिपूर्ण था जैसे गुण में मानसरोवर ही होवे। इसके उपरान्त उस वशिष्ठ मुनि ने इस सरोवर के तट पर गमन करती हुई उस सन्ध्या को देखा था। वह कमलों से समुज्जवल सरोवर तट पर समवस्थित उसके द्वारा उसी भाँति शोभयमान हो रहा था जैसे प्रदोष के समय उगे हुए चन्द्रमा और नक्षत्रों मुनि ने सम्भाषण किया था। वहाँ पर मुनि ने बृहल्लोहित नाम वाला सरोवर भी देखा था।

उस सरोवर से चन्द्रभागा नदी दक्षिण सागर को जाती हुई थी जो उस पर्वत के महान शिखर का भेदन करके ही जा रही थी। वह नदी चन्द्रभागा पश्चिम शिखर का भेदन करके ही वहन कर रही थी जैसे हिमवान् पर्वत से गंगा सागर को गमन करती है। ऋषियों ने कहा–हे विपेन्द्र! चन्द्रभागा उस महागिरि में कैसे समुत्पन्न हुई थी। वह सर भी कैसा था जिसका नाम बृहल्लोहित है। वह चन्द्रभाग नाम वाला पर्वत पर्वतों में श्रेष्ठ कैसे हुआ था और चन्द्रभागा नाम वाली वृषोदका नदी किससे उत्पन्न हुई थी? इस सबके श्रवण करने की इच्छा होते हुए हमारे हृदय में बड़ा भारी कौतुक है। हम चन्द्रभागा का महात्म्य तथा गिरि के

सार का महत्व भी सुनना चाहते हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे मुनिसत्तमों! अब आप लोग चन्द्रभागा की उत्पत्ति और चन्द्रभागा का महात्म्य तथा नामकरण भी श्रवण कीजिए। हिमवान् पर्वत से संयुक्त अर्थात् लगा हुआ, सौ योजन के विस्तार वाला और तीस योजन आयाम अर्थात् चौड़ाई वाला एक कुन्द तथा इन्दु के समान धवल श्वेत गिरि है।

उस पर्वत का पहले विधाता ने शुद्ध सुधा के निधि चन्द्रमा को विभाग करके उसे पितामह देवान्न कल्पित किया था। कमल के आसन वाले ब्रह्माजी ने उसी भाँति पितृगण के लिए तिथियों की क्षीणता व वृद्धि के स्वरूप वाला जगत के हित सम्पादन के लिए कल्पित किया था। हे द्विज श्रेष्ठो! उस जीमूत में चन्द्रमा विभक्त किया गया था। इसीलिए देवों ने पहले समय में उस गिरि को नाम से चन्द्रभाग किया था। ऋषियों ने कहा–यज्ञों के भागों में स्थित रहने पर तथा क्षीरसागर से समुत्पन्न अमृत के रहने पर कमलासन (ब्रह्मा) ने किसलिए चन्द्र का देवान्न किया था? उसी भाँति क्रम के रहते हुए किस कारण से पितृगण के लिए उसे कल्पित किया गया था? हे ब्रह्मन्! यह हमको बड़ा संशय हो रहा है। उसको आप हमको सूर्य की ही भाँति छेदन करिए। द्विजोत्तम! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका छेदन करने वाला नहीं है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–प्राचीन समय में प्रजापति दक्ष के परमसुन्दरी सत्ताईस अश्विनी आदि अपनी पुत्रियों को सोम के लिए प्रदान की थीं। उन समस्तों को ही विधि के साथ सोम ने अपने साथ विवाह लिया था। उस समय में दक्ष के अनुमत में वह सोम सबको अपने स्थान में ले गया। इसके अनन्तर चन्द्र उन समस्त कन्याओं में राग से रोहिणी के ही साथ निवास करता था और रसोत्स व कला आदि के द्वारा रमण किया करता था। वह सोम केवल रोहिणी का ही सेवन किया करता था और रोहिणी के साथ ही आनन्द मनाया करता था। रोहिणी कि बिना सोम कुछ भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया

करता था। रोहिणी ही में परायण रहने वाले चन्द्र को देखकर वह सब कन्याएं अनेक प्रकार के उपचारों के द्वारा चन्द्रमा की सेवा करने लगी थीं। प्रतिदिन उनके द्वारा निषेवित होते हुए भी चन्द्र ने उनमें कुछ भी भाव नहीं किया था तो उस समन में वे सब अमर्ष के वश में समागत हो गयी थीं। इसके अनन्तर उत्तराफाल्गुनी नाम वाली, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, मघा, विशाखा, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा और उत्तराषाढ़ा ये नौ बहुत ही अधिक कुपित हो गयी थीं। वे सब चन्द्र के समीप जाकर चारों ओर से कहने लगी थीं।

निशानाथ को परिवृत्त करके फिर उन्होंने रोहिणी को देखा था जो उस चन्द्रमा के वाम अंक में स्थित थी और उसके द्वारा अपने मण्डल में रमण करने वाली थी। उन सबने उस वर्णिनी रोहिणी को उस प्रकार की देखकर वे सब हवि से हुताशन की भी भाँति क्रोध से अत्यधिक जल गयी थीं। इसके अनन्तर जिसके तीन पूर्व में है ऐसी पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा के सहिम मघा, भरणी और कृत्तिका ने चन्द्र की गोद में स्थित महाभागा रोहिणी को हठ से पकड़कर ग्रहण कर लिया और वे अतीव कुपित होती हुई रोहिणी के प्रति कठोर वचन कहने लगी थीं। हे बुद्धि वाली! तेरे जीवित रहते हुए चन्द्र हम लोगों में बिल्कुल भी अनुराग नहीं करता। जब भी किसी समय में यह चन्द्र सुरत में उत्सुक होकर समुपस्थित होगा तभी बहुतों के क्षेम की वृद्धि के लिए हम उस दुष्ट बुद्धि वाली का हनन कर देंगी। तुझको मारकर हमको कुछ भी पाप नहीं होगा क्योंकि तू बहुत सी स्त्रियों के प्रजनन का हनन करने वाली तथा बिना ही ऋतुकाल के पाप करने वाली है। जिस अर्थ के विषय में पहले ब्रह्माजी ने अपने पुत्र के प्रति कहा था। नीति शास्त्र के उपदेश के लिए वह निश्चय ही हमारा सुना हुआ है।

दोषयुक्त कर्म करने वाले किसी एक दुष्ट के जहाँ पर प्रवृत्त हो जाने से यदि बहुतों का क्षेम होता है तो उसका वध पुण्य ही प्रदान करने वाला हुआ करता है वहाँ किसी भी पाप के होने का तो प्रश्न ही नहीं होता है। जो स्वर्ण की चोरी करने वाला है, जो मदिरा का पान

करने वाला है, जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, जो गुरुपत्नी के साथ संगम करने वाला है और जो अपने आपका घात करने वाला हो, इन सबका वध करना पुण्य ही प्रदान करने वाला होता है।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उन सबके इस प्रकार के अभिप्राय को समझकर और कर्म को देखकर तथा भय से डरी हुई रोहिणी को देखकर जो उसकी अत्यधिक प्रिय और मन को रमण करने वाली परम सुन्दरी थी, उस सबसे सम्भोग को न करने से उत्पन्न क्षाभ व अपने आपको अपराधी सोचकर उस डरी हुई रोहिणी को उनके हाथ से मोचन कर दिया था अर्थात् छुड़ा लिया था। उस चन्द्र ने रोहिणी को छुड़ाकर अपनी दोनों बाहुओं से उसका (रोहिणी) भली-भाँति आलिंगन करके उस चन्द्र ने जो कृत्तिका आदि भामनियाँ थी उस सबका धारण कर दिया था। इस भाँति इन्दु का धारण करती हुई कृत्तिका आदि से लेकर मघा से अन्त तक भामिनियों ने उस रोहिणी को देखती हुई को मनस्विनियों से साम्य वचन कहे थे। हे निशानाथ! हम सबका निरसन करने वाले आपको न तो कुछ लज्जा ही है और न पाप से कोई डर ही है। आप तो एक प्राकृत अर्थात् साधारण जन की ही भाँति बरताव कर रहे हैं।

हम सब चारित्र व्रत के धारण करने वाली है अर्थात् हमारे अन्दर चरित्र सम्बन्धी कोई भी दोष नहीं है फिर ऐसी हम सबका निराकरण करके जो सर्वदा ही आपकी भक्ति करने वाली है फिर क्यों आप मूढ़ मानव की भाँति इस एक ही रोहिणी का सदा सेवन किया करते हैं अर्थात् इसी से प्रणयानुराग करते हैं ? क्या आपको धर्म का ज्ञान नहीं हुआ है जो पहले वेदों के मूल वाला सुना गया है जो कि आप तत्पुरुषों के द्वारा निन्दित और धर्म से हीन कर्म को आप कर रहे हैं ? धर्मशास्त्र के अर्थ को गमन करने वाले कर्म को यथोचित रीति से करने वाली और उद्वाहित अर्थात् ब्याही हुई पिता का आप केवल मुख भी नहीं देखते हैं। हे निशापते! पूर्व में कहते हुए पिता के मुख से नारद के लिए जो सुना है उस दक्ष प्रजापति के धर्म-शास्त्र के अर्थ का आप श्रवण

कीजिए। जो पुरुष बहुत सी दाराओं वाला हो और राग के वशीभूत होकर उनमें से किसी भी एक ही स्त्री का सेवन किया करता है वह पाप का भागी होता है और स्त्री के द्वारा जित भी हुआ करता है तथा उसका अशौच सनातन अर्थात् सर्वदा ही बने रहना वाला हुआ करता है। हे विधो! स्त्रियों को जो स्वाम्य सम्भोगज दुःख हुआ करता है उस दुःख के समान अन्य कोई भी दुःख नहीं हुआ करता है। जो पुरुष परम सती और ऋतुकाल वाली पत्नी का संग नहीं किया करता है, ऋतुकाल के शुद्ध होने पर भी उसके संग से रहित होता है, वह भ्रूण ही होता है। भ्रूण गर्भ में रहने वाले शिशु को कहते हैं।

जितने समय तक भार्या आत्रेयी होती है उतने ही समय पर्यन्त निबोधन है। उस भार्या संग में कुछ विहित का आचरण न करना चाहिए। बहुत-सी भार्याओं वाले पुरुष का जो ऋतुकाल के मैथुन का विनाश है वह शास्त्र के द्वारा भी कथित कुछ भी कर्म नहीं होता है। विधि के साथ विवाहित भार्याओं का निरन्तर तोष करना चाहिए। अन्य प्रकार से कल्याण करने वाले पुरुष का भी उन भार्याओं की तुष्टि से कल्याण होता है। भार्या के द्वारा तो भर्ता सन्तुष्ट हो और भर्ता के द्वारा भार्या संतुष्ट होवे, जिस कुल में यह नित्य ही होता है वहाँ पर निश्चित रूप से ही कल्याण रहा करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। सौभाग्य के मद से अहंकार वाली जिस पत्नी के द्वारा सपत्नी का संगम करने के लिए भर्ता का विरोध किया जाया करता है वह स्त्री दूसरे जन्म में वैश्या हुआ करती है और उसको अधर्म भी होता है। ऐसी स्त्री का तथा पिता का कुल दोनों ही प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं। पति के विरुद्ध मान होने पर जो सपत्नी के साथ प्रवृत्त होता है उस अकल्याण करने वाले दोनों को ही अधिक दुःख हुआ करता है।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा–इस रीति से उनके द्वारा बहुत अधिक कठोर वचन कहने पर चन्द्रमा रोहिणी के मुख की कान्ति को मलिन देखकर बहुत ही अधिक कुपित हुए थे। उस समय में रोहिणी ने भी उन सबकी उग्रता को बारम्बार देखकर वह भी भय, शोक और लज्जा

से समाकुल होकर कुछ भी नहीं बोली थी। इसके अनन्तर परमाधिक क्रोधी हुए चन्द्र ने उसी समय में उन सब स्त्रियों को शाप दिया था क्योंकि तुम सबने मेरे ही आगे अतीव उग्र और तीक्ष्ण वचन कहे हैं। इन तीनों भुवनों में कृत्तिका आदि आपकी उग्र और तीक्ष्ण यही गति देवगणों में भी प्राप्त करोगी। इस कारण से ये नौ कृत्तिका प्रभृत्ति दिन यात्रा में उपयुक्त नहीं होगी। तुम सबको देवी देव आदि और क्षिति में मनुष्य आदि देखते हैं तो उसी दोष से यात्रा में उन पुरुषों की यात्रा अभीष्ट के प्रदान करने वाली नहीं हुआ करती है। इसके उपरान्त उन सबों ने उसके अति दारुणी शाप को सुनकर इस शाप के देने से चन्द्रमा के हृदय को बहुत ही अधिक निष्ठुर जान लिया था।

उस समय वे सब अति कुपित होकर दक्ष प्रजापति के भवन को चली गयी थीं और वहां पर अश्विनी आदि ने अपने पिता दक्ष से कहा था– सोम हमारे साथ निवास नहीं करते हैं और वे सदा ही एक रोहिणी का ही सेवन किया करते हैं। हम लोग सभी उनकी सेवा भी करती हैं तो भी वे पराई वधू की ही भाँति हम से अनुराग न करके हमारा सेवन नहीं किया करते हैं। अवस्थान में, अवसान में तथा भोजन में और श्रवण करने में चन्द्रदेव रोहिणी के साथ निवास करते हुए समीप में आपकी इन पुत्रियों को देखकर रोहिणी के बिना कोई भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। वह अन्य स्थान में गमन करती हुई को देखकर नयन का आधान करके नहीं देखा करते हैं। इस वस्तु में जो भी कुछ करना चाहिए वह हमारे द्वारा चन्द्र अनिरुद्ध हुए हैं उस समय उसने हमारे लिए तीव्र शाप किया था। चन्द्रदेव ने कहा था कि आप लोग अत्यन्त दारुण और तीक्ष्ण होती हुई शोक में वाच्यत्व को प्राप्त करके बिना यात्रा वाली हो जाओगी।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्रियों का वाक्य सुनकर और उनको ही साथ में लेकर उसी स्थान पर गये थे जहाँ चन्द्रदेव रोहिणी के साथ उस समय में वर्त्तमान थे। चन्द्रमा दूर से आते हुए दक्ष को देखकर अपने आसन से उठ खड़े हुए थे और समीप

जाकर उन महामुनि के लिए प्रणिपात किया था। इसके अनन्तर उस समय अपने आसन को ग्रहण करके दक्ष प्रजापति ने भली भाँति वन्दना करने वाले चन्द्रमा से सामपूर्वक यह कहा था—आप अपनी भार्याओं से समानता का ही व्यवहार करिए और विषम व्यवहार का परित्याग कर दीजिए। विषमता में ब्रह्माजी ने बहुत से दोष परीकीर्त्तित किये हैं। दाराओं में काम के अनुबन्धन से वे दाराति और पुत्र की कला वाली होती हैं। काम का अनुबन्धन संसर्ग से ही होता है और वह ससर्ग संगम से हुआ करता है और संगम अभिध्यान और वीक्षण से समुत्पन्न होता है इस कारण से आप भार्याओं में अभिध्यान और वीक्षण आदि करिए। यदि इस मेरे धर्म से नियन्त्रित वचन को आप नहीं करते हैं तो उस समय में आप लोक के वचनों से दोषयुक्त और आप वाले हो जायेंगे।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—महात्मा दक्ष के उस वचन का श्रवण करके चन्द्रदेव ने भी 'ऐसा ही होगा'--यह दक्ष की शंका से कह दिया था। इसके अनन्तर दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्रियों को तथा जामाता इन्दु को अनुमन्त्रित करके उस समय में वह मुनिकृतकृत्य होकर अपने आश्रम को चले गये थे। दक्ष के चले जाने पर फिर चन्द्रमा ने उस रोहिणी के पास प्राप्त होकर उसमें और उन शेष पत्नियों से पूर्व जैसा ही भाव ग्रहण किया था क्योंकि रोहिणी में उसका अनुराग था। वहीं पर रोहिणी को प्राप्त करके अन्य किसी को भी वह नहीं देखता था। वह सर्वदा रोहिणी ही में निवास किया करता था। फिर वे सब कुपित हो गई थीं। वे सब अपने दुर्भाग्य के कारण उद्विग्न मन वाली होती हुई पिता के समीप में जाकर उन्होंने कहा था कि सोमदेव हम लोगों में निवास न करते हैं और वे सदा ही रोहिणी का सेवन किया करते हैं। उसने अपने वाक्य को भी ग्रहण नहीं किया। अतएव आप हमारे रक्षक होओ। उसी क्षण में मुनि उस उद्वेग और क्रोध से संयुत होकर उठ खड़े हुए थे और मन में विधु के समीप में जाकर क्या करना है इसका ध्यान करते जा रहे थे।

उस समय प्रजापति दक्ष चन्द्र के समीप में पहुँचकर यह वचन उन्होंने चन्द्रदेव से कहा था कि अपनी भार्याओं में समानता का ही व्यवहार करिए तथा उनके प्रति जो भी कुछ विषमता की भावना होवे उसका आप अब परित्याग कर दीजिए। यदि आप हमारे वचनों को मूर्खता से नहीं समझते हैं तो हे निशापते! मैं धर्मशास्त्र के अतिक्रमण करने वाले आपके लिए शाप दे दूंगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर चन्द्रदेव ने उस प्रजापति के सामने वैसा ही करने के लिए स्वीकार किया था क्योंकि उनको दक्ष से अत्यधिक भय था। 'इसी प्रकार से किया जायेगा' ऐसा पुनः स्वीकार कर लिया था। फिर अपनी भार्याओं में विषय में समान ही व्यवहार करने के लिए चन्द्र के द्वारा अंगीकार किये जाने पर दक्ष चन्द्र से सहमत होकर अपने स्थान को चले गये थे। दक्ष के गमन करने पर निशानाथ चन्द्र फिर अत्यधिक रूप से रोहिणी के ही साथ में रमण करता हुआ उसने उस प्रजापति दक्ष के वचन को भुला ही दिया था कि मैं सब भार्याओं में एक सा व्यवहार करूँगा। वे अश्विनी आदि सभी मनोरम उनकी सेवा करने वाली हुई थीं किन्तु चन्द्र ने उनका कभी सेवन नहीं किया था और वह केवल उन सबकी अवज्ञा ही किया करता था। वे चन्द्रदेव के द्वारा अवज्ञासंयुत होकर अपने पिता से यह बोली थीं।

उन्होंने कहा था कि हे मुनिश्रेष्ठ! आपके वचन को भी सोमदेव ने नहीं किया है और वह तो अब पहले से भी अधिक हमारे विषय में अवज्ञा किया करते हैं। सोम के द्वारा हमारे विषय में जो भी करना चाहिए वह कुछ भी नहीं होता है। अतएव अब हम तो सब तपस्विनी हो जायेंगी। आप हमको वही निर्देश कीजिए। तपस्या के द्वारा अपनी आत्माओं का शोधन करके हम अपना जीवन ही त्याग देंगी। हे द्विजोत्तमो! आप ही विचार कीजिए कि ऐसी दुर्भाग्यशालिनी हमको जीवन रखने से क्या लाभ है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–फिर यह इतना कहकर वे सभी कृत्तिका प्रभृति दक्ष की पुत्रियाँ अपने करों से कपोलों का आलम्बन करके विवश होती हुई भूमि पर रूदन करने वाली थीं।

अतीव दुःख से व्याकुल इन्द्रियों वाली इस प्रकार से स्थित उन सबको देखकर अत्यन्त दीन मुख वाले प्रजापति कोप से वह्नि के ही समान ज्वलित हो गये थे। इसके अनन्तर कोप से व्याप्त महात्मा दक्ष की नासिका के अग्रभाग से बहुत ही भीषण यक्ष्मा निकल पड़ा था। वह यक्ष्मा दाढ़ों से कराल मुख वाला था और कृष्ण वर्ण वाले अंगार के समान था वह बहुत ही लम्बे विशाल शरीर वाला था उसके केश बहुत ही थोड़े थे वह अतीव कृश और धमनियों से संतत था।

उसका मुख तो नीचे की ओर था, उसके हाथ में एक दण्ड था, वह विश्राम करके निरन्तर कास (खाँसी) को करता जा रहा था, उसके नेत्र नीचे की ओर बैठे हुए थे तथा वह स्त्री के साथ सम्भोग करने के लिए अत्यन्त लालायित रहता था। उस यक्ष्मा ने दक्ष प्रजापति से कहा था–हे मुनि! मैं अब किस स्थान में स्थित रहूँगा अथवा मुझे क्या करना होगा? हे महामते! आप मुझे यह अब बतलाइए। तब तो प्रजापति दक्ष ने उस यक्ष्मा से कहा था कि आप बहुत शीघ्र सोमदेव के समीप में जाइये। आप सोमदेव का भक्षण करिये और उसी सोम में स्वेच्छा से सदा संस्थित रहिए। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा–इसके अनन्तर महामुनि दक्ष के इस वचन को श्रवण करके वह धीरे-धीरे सोमदेव के समीप गया था और वह सोम का गद (रोग) ही था। उस समय में वह सोम के समीप में इसी भाँति प्राप्त हुआ था जैसे सर्प अपनी बाँबी में प्रवेश किया करता है। वह महागद अर्थात् विशाल रोग चन्द्रमा के हृदय में छिद्र की प्राप्ति करके प्रवेश कर गया था। उस दारुण राज्यक्ष्मा के उस सोम के हृदय में प्रविष्ट हो जाने पर चन्द्रदेव मोहित हो गये अर्थात् उनको मोह हो गया था और वह बहुत बड़े विषम तन्द्र को प्राप्त हो गया था। क्योंकि यह रोग प्रथम उत्पन्न होकर उस राजा में लीन हो गया था। हे द्विज! इस कारण से उस रोग की लोक में 'राजयक्ष्मा' इस नाम से प्रसिद्धि हो गयी थी।

इसके अनन्तर वह सोम (रोहिणी का पति) उस राजयक्ष्मा नामक रोग के द्वारा अभिभूत हो गया था और वह प्रतिदिन ग्रीष्म ऋतु में क्षुप्र

नदी की ही भांति क्षय रोग को प्राप्त होने लगा था। इसके अनन्तर उस चन्द्र के क्षीय माण हो जाने पर समस्त औषधियाँ क्षय को प्राप्त हो गयीं थीं। उन औषधियों के क्षय को प्राप्त हो जाने पर यज्ञ नहीं प्रवृत्त होते थे। यज्ञों का अभाव हो जाने से देवों का सब अन्य भी क्षय को प्राप्त हो गया था। तब तो सभी मेघ नष्ट हो गये थे और वृष्टि का एकदम अभाव हो गया था अर्थात फिर वर्षा नहीं हुई थी। जब वृष्टि का ही अभाव हो गया तो लोगों के व्यवहार क्षीण हो गये थे। हे द्विजोत्तमो! दुर्भिक्ष (अकाल) और उसके कारण से होने वाले व्यसन (दुःख) से समस्त रोग हो गये थे। तब तो लोगों का दान देना और धर्म के कृत्य करना सभी कुछ लोक के लिए प्रवृत्त नहीं होता है। समस्त प्रजा सत्त्व से हीन हो गयी थी और सब लोभ से उपहत इन्द्रियों वाले हो गये थे। वे सभी प्रजायें कुकर्मों में रति रखने वाली हो गईं थीं तथा सभी सागर और ग्रह भी क्षुभित हो गये थे। इसके अनन्तर जगत् को अधिक व्याकुल और दस्युओं (चोर लुटेरों) से प्रपीड़ित देखकर चन्द्र को अपना नायक बनाते हुए सब देवगण ब्रह्माजी के समीप में गये थे।

इस सृष्टि की रचना करने वाले, जगतों के स्वामी देवेश्वर ब्रह्माजी के पास पहुँचकर उन्होंने उनको प्रणाम किया तब वे सब यथोचित स्थानों पर उपविष्ट हो गये थे। लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने सब देवों को मलिन मुख वाले देखकर जो कि ऐसे प्रतीत होते थे मानों किसी दूसरे के पराभूत हैं और अपने विषयों को अपहृत किए हुए से दिखाई पड़ रहे थे। तब तो ब्रह्माजी ने देवों के गुरु बृहस्पति इन्द्र और अग्नि को आमने सामने बिठाकर उनसे पूछा था। ब्रह्माजी ने कहा हे देवगणों! आपका मैं स्वागत करता हूँ अर्थात् आपका यहाँ पर समागम परम शुभ मानता हूँ। आप लोग अब यह बतलाइये कि आप सब किस प्रयोजन को सुसम्पन्न करने के लिए यहाँ आये हैं? मैं देख रहा हूँ कि आप सभी लोग किसी महान दुःख से उपहत देहों वाले हैं और आप अधिक म्लान हो रहे हैं। आप सबको बाधाओं से रहित, आतंक से हीन तथा

इच्छानुसार गमन करने वाले बनाकर और अपने विषय में विन्यस्त करके आज से आप लोगों को परम दुःखित कैसे देख रहा हूँ ? जो भी कुछ आप लोगों के दुःख का बीज अर्थात् हेतु होवे अथवा जो भी कोई आप लोगों को बाधा पहुंचाता होवे वह सभी आप लोग पूर्ण रूप से मुझे बतलाइए और यही समझ लीजिए कि वह आपका कार्य सिद्ध हो ही गया है अर्थात् उसका मैं निवारण करके आपको सुख सम्पन्न ही बना दूँगा, इनमें कुछ भी संशय न समझें। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर वृद्ध श्रवा, जीव और लोकों का भरण करने वाले कृष्णवर्मा ने उन ब्रह्माजी से देवों के दुःख का कारण बतलाया था।

देवों ने कहा–हे जगत् की रचना करने वाले! आपके समीप में जिस कार्य के सम्पादन के लिए हम लोग समागत हुए हैं उनका आप श्रवण कीजिए जो कि हम लोगों के दुःख का बीज है और जिसके होने से हम सब लोग म्लानश्री वाले हो रहे हैं। हे पितामह! कहीं पर भी लोक में यज्ञ सम्प्रवर्तित नहीं हो रहे हैं अर्थात् कोई भी किसी जगह पर लोक में यज्ञ नहीं कर रहे हैं। समस्त प्रजा इस समय निरातंक और निराधार होकर क्षय को प्राप्त हो रही है। भूमण्डल में न तो कोई दान देता हैं और न कोई धर्म सम्बन्धी कर्म करता है, न तप है अर्थात् कोई भी तपस्या भी नहीं कर रहा है। मेघ लोक में वर्षा नहीं करते हैं, समस्त पृथ्वी क्षीण जल वाली हो गयी थी। सभी औषधियाँ क्षीण हो गयी हैं शस्य भी क्षय को प्राप्त है और लोक सभी समाकुल हैं। विप्रगण दस्युओं के द्वारा पीड़ित होते हुए वेदों के बाद में नियत नहीं हो रहे हैं। अन्न की विकलता को प्राप्त करके बहुत-सी प्रजा मर रही है। यज्ञ भोगों के क्षीण हो जाने पर हम सभी लोग भोगने के योग्य पदार्थों से हीन हो रहे हैं। हम बहुत ही दुर्बल हो गए हैं और हमारी कान्ति नष्ट हो गई है। हम कहीं पर भी शान्ति को प्राप्ति नहीं कर रहे हैं। चन्द्रदेव तो रोहिणी के ही मन्दिर में सदा वक्रगति से चिरकाल पर्यन्त स्थित रहा करते हैं और वृष राशि के वह क्षीण होकर ज्योत्सना (चाँदनी) से हीन रहते हैं। देवों के द्वारा जिस समय में भी चन्द्र का अन्वेषण किया जाता

है तो वह कभी भी इनके आगे स्थिति वाला नहीं हुआ करता है। वह किसी समय में भी देवों के समाज में अथवा आप के समीप में उपस्थित नहीं हुआ करता है।

वह किसी समय भी रोहिणी का त्याग करके वहीं पर भी गमन नहीं किया करता है। यदि कोई भी अन्य नहीं होता है तभी चन्द्र बाहर जाया करता है। वह चन्द्र समस्त कलाओं से हीन केवल एक ही कला वाला रह गया है अर्थात केवल एक ही कला उसमें शेष रह गई हैं। हे लोकों के ईश! यही सर्वत्र लोक में कर्म का विपर्यय प्रवृत्त हो रहा है। तात्पर्य यही है कि सभी कर्म विपरीत हो रहे हैं। यह ऐसा है उसको देखकर हम सब कान्दिशीक हो रहे हैं अर्थात् किस ओर जावें, ऐसे कर्त्तव्यविमूढ़ होकर हम सब आपकी ही शरणागति में प्राप्त हुए हैं। जब तक पाताल लोक से उठकर काल कञ्जरादि असुर हे लोकेश्वर! हमको बाधा पहुँचाते हैं तब तक आप भय से हमारी रक्षा कीजिए। यह जगतों का अतिक्रम किस कारण से हो गया है यह हम नहीं जानते हैं। इस विप्लव का क्या कारण है यह भी हम नहीं जानते हैं। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–दिव्यदर्शी पितामह ब्रह्माजी ने देवों के इस वचन का श्रवण करके एक क्षण पर्यन्त ध्यान करते हुए सुरोत्तम से कहा–ब्रह्माजी ने कहा हे देवताओं! जिस कारण यह लोकों का विप्लव हो रहा है उसका आप श्रवण करिए। देव सोम ने दाक्षायणी सत्ताईस संख्यावाली अश्विनी आदि का श्रेष्ठ वधू के रूप में भार्या बनाने के लिए उनके साथ परिणय किया था।

उस सोम ने उस सबके साथ परिणय करके वह चन्द्र केवल रोहिणी में ही निरन्तर अनुराग से प्रवृत्त हुआ था और अन्य सब में यह अनुराग नहीं किया था। वे सब अश्विनी आदि कन्यायें ज्वर से प्रपीड़ित थीं। वे छब्बीस वर आरोहण वाली कन्यायें पिता के समीप में आ गयी थीं। जिस प्रकार से निशानाथ अनुराग से रोहिणी में प्रवृत्त होता रहता है उस भाँति उन सबका सेवन नहीं किया करता है। यह सब उस प्रजापति दक्ष से निवेदन कर दिया था। इसके अनन्तर महा

बुद्धिमान दक्ष ने सोम के द्वारा चन्द्रदेव की स्तुति करके और बहुत अधिकासूनृत वचनों से सम्भाषण करके अपनी पुत्रियों के लिए अनुरोध किया था। तब महात्मा के द्वारा अनुरुद्ध होकर चन्द्र ने उन सब में समान ही प्रवृत्त होने की प्रतिज्ञा की थी। चन्द्रदेव ने उन सबमें समान भाव रखने की बात स्वीकार करने पर वह मुनि श्रेष्ठ दक्ष भी अपने निवास स्थान को चला गया था। उस मुनि श्रेष्ठ दक्ष प्रजापति के चले जाने पर चन्द्र ने उनमें विषमभाव का त्याग नहीं किया था और वे फिर निरन्तर क्रोधित होकर अपने पिता के समीप में गई थीं।

इसके अनन्तर पुनः दक्ष ने दूसरी सुताओं के विषय में अनुरोध किया था और समान व्यवहार रखने की प्रतिज्ञा कराकर उसने यह वचन कहा था कि हे चन्द्र! यदि आप समान व्यवहार नहीं करेंगे और आप यदि इन सब ही में अनुराग न करेंगे तो मैं आपको शाप दे दूँगा। इस कारण से जो समुचित हो वही आप व्यवहार सभी के प्रति करिए।

इसके उपरान्त दक्ष के चले जाने पर उस चन्द्र ने समान बर्ताव नहीं किया तो पुनः दक्ष के समीप में जाकर क्रोध के साथ कहने लगीं। वह चन्द्रदेव आपके कथित वचनों का सत्कार नहीं करते हैं और वे हम सबमें प्रवृत्त नहीं होते हैं अर्थात् हम सबका सेवन अभी भी नहीं किया करते हैं। अतएव अब हम सब तपश्चर्या करेंगी और आपके ही समीप में स्थित रहा करेंगी। अपनी उन पुत्रियों के इस वचन का श्रवण करके महामुनि दक्ष परम क्रोधित हो गये थे और फिर चन्द्रदेव के क्षय करने के लिए शाप देने को उत्सुक हो गये थे। हे महामुने! शाप देने के लिए उद्यत मन वाले और महान कुपित हुए उन दक्ष प्रजापति की नासिका के अग्रभाग से क्षय नाम वाला एक महान रोग निकल पड़ा था। उस महारोग को चन्द्रदेव के लिए प्रेरित कर दिया गया था जो कि मुनिवर दक्ष के ही द्वारा भेजा गया था। वह महारोग चन्द्रदेव के देह में प्रवेश कर गया था और उसने चन्द्र को क्षयित कर दिया था।

चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर महात्मा की ज्योत्सना (चाँदनी) भी क्षय को प्राप्त हो गयी थी। ज्योत्सना के क्षीण हो जाने पर समस्त

औषधियाँ भी क्षय को प्राप्त हो गयी थीं। औषधियों के अभाव से ही इस लोक में यज्ञों की सम्प्रवृत्ति नहीं हुआ करती है। यज्ञों के न होने ही से वृष्टि का अभाव हो रहा है और समस्त प्रजाओं का क्षय हो रहा है। यज्ञ के भागों के उपयोग से हीन आप लोगों की दुर्बलता समुत्पन्न हो गई और स्वगोचर से विकार को गया है। यही सम्पूर्ण हमने आपको बतला दिया है जिस रीति से लोकों में विप्लव हो रहा है। हे सुरोत्तमों! अब यह भी आप लोग श्रवण कर लीजिए कि जिस उपाय से इस विप्लव की शान्ति होगी।

ब्रह्माजी ने कहा—हे सुरगणों! अब आप सब लोग दक्ष प्रजापति के गृह को चले जाइए और उनको प्रसन्न करिए कि चन्द्रदेव का अर्थात उनके क्षीण होने का महारोग दूर हो जावे। चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में स्थित हो जायेगा और आपको भी शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी तथा समस्त औषधियों की समुत्पत्ति भी हो जायेगी। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—ब्रह्माजी के इस वचनामृत का श्रवण करके समस्त देवगण जिनमें इन्द्रदेव सबके आगे चलने वाले नायक से परम प्रसन्न मन वाले होते हुए उस समय में दक्ष प्रजापति के सदन अर्थात निवास स्थान पर गए थे। वहाँ पर सब सुरगणों ने नीति के अनुसार उपस्थान करके मुनिवर प्रजापति दक्ष को प्रणाम करके बहुत ही विनम्रता संयुत मधुर वाणी से उन्होंने कहा। देवों ने कहा—हे ब्राह्मण! अत्यन्त दुःखित हमारे ऊपर प्रसन्न होइये, हे महाबुद्धे! हमारी इस शोक के सागर से रक्षा कीजिए और उद्धार करिए। सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा का ब्रह्मा संज्ञा वाला जो रूप है उन्हीं के अंश समस्त जगतों के आप परम ज्योति हैं। हे विप्ररूप! आपके लिए हमारा नमस्कार है। प्रजा की रक्षा करने से और प्रजा के पालन करने के कारण से दक्ष और प्रजापति आप योगेश हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं।

समस्त जगतों की रक्षा के लिए और कुशल आत्मा वालों के लिए तथा आत्मा के हित के लिए, दक्ष के लिए, महात्मा के लिए शीघ्र

आपके लिए नमस्कार है। नियत इन्द्रियों वाले योगियों के द्वारा निरन्तर चिन्तन किये हुए सार का भी आप सारभूत हैं। ऐसे परमात्मा दक्ष के लिए नमस्कार है। योगियों की वृत्ति को अनाधृष्ट करके पारगामियों में परायण सहसा ही आद्यन्न कहा गया है उनके लिए नित्य ही नमस्कार है, नमस्कार है। इन प्रकार से कहे हुए उन यज्ञ के भागों का सेवन करने वालों के वचन को सुनकर दक्ष प्रसन्न मुखवाला होकर मुख्य रूप से इन्द्रदेव को सम्बोधित करके बोले। दक्ष ने कहा—हे महाबाहो! हे इन्द्रदेव! आपको यह महान् दुःख कैसे प्राप्त हो गया है ? हे विभो! आप इस दुःख का हेतु तो बतलाइए। मैं उसके श्रवण करने की इच्छा कर रहा हूँ। आप लोगों के दुःख को दूर करने के लिए मेरा क्या कर्त्तव्य होता है ? उसको यदि मैं कर सकता हूँ तो अवश्य ही करूँगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस महान आत्मा वाले ब्रह्माजी के पुत्र के वचन का श्रवण करके नीतिक्षेत्र वाक्पति इन्द्रदेव ने उस महामुनि से कहा था।

शचीपतिशक्र ने कहा—निशानाथा चन्द्रक्षयी अर्थात् क्षय होने वाला हो गया है। उसके क्षीण हो जाने पर सभी औषधियां क्षय को प्राप्त हो गई हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, उनकी हानि यज्ञों की हानि करने वाली हैं। कुछ तो प्रजा वृष्टि के अभाव से महान दुःख को पाकर नष्ट हो गई है। यह निशानाथ चन्द्रमा का जो क्षय है वह आपके ही कोप से प्रवृत्त हो गया है और इस क्षय से पूरे जगत् का ही विनाश हो जायेगा। इस समय में ऐसा कुछ भी नहीं है जो क्षोभ से युक्त न हो। हे विप्रेन्द्र! इस समय सभी विलुप्त हैं चाहे स्थावर हो या जंगम होवे या पतंग ही होवे। इस समय से न तो यज्ञ सम्प्रवत्त हो रहे हैं और तापस गण ही तपश्चर्या किया करते हैं। आहार के अभाव के कारण होने वाले दुःख से समस्त प्रजा क्षीण और भय से आतुर हैं। हे विपेन्द्र! ऐसा प्रवृत्त होने पर इस रसातलिक से जब तक दैत्य उठकर बाधा नहीं पहुँचाते हैं तभी तक आप उद्धार कीजिए। हे दक्ष! चन्द्रदेव पर प्रसन्न होइए और अपने तप के बल से उसे पूर्ण बना दीजिए। चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में स्थित हो जायेगा।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से उसके वचन का श्रवण करके उस समय में प्रजापति के उन सुरगणों से हृदय के शल्य का उद्धार करते हुए बोले। दक्ष प्रजापति ने कहा—जो मेरा वचन निशानाथ चन्द्र में शाप का व्यसन कर प्रवृत्त हुआ है उसको किसी भी निदान के द्वारा मैं मिथ्याभूत करने का उत्साह नहीं करता हूँ। किन्तु मेरा वचन एकान्त रूप से जिससे वृथा न होवे और चन्द्र भी बढ़ता रहे, जिससे वही उपाय देखिए। उसमें भी एक उपाय है कि जो चन्द्रमा मास के आधे भाग में क्षय और वृद्धि को प्राप्त होकर भार्याओं से समान बर्ताव करे। उस प्रजापति को प्रसन्न करके उसके उस वचन का श्रवण करके समस्त देवगण वहाँ पर गये थे जहाँ पर चन्द्रमा रहता है। हे द्विजो! दक्ष मुनि के द्वारा इस प्रकार से वचन के कहने पर इसके अनन्तर उस समय में भार्याओं के सहित चन्द्रमा का समादान करके वे परम प्रसन्न सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजी के भवन में गये थे। हे महाभागो! वहाँ पर पहुँचकर जैसा दक्ष प्रजापति ने कहा था वह सभी परमात्मा ब्रह्माजी से उन्होंने कह दिया था।

उस समय में ब्रह्माजी देवों के मुख से दक्ष प्रजापति के वचन का श्रवण करके वे फिर सब सुरों के साथ चन्द्रभाग नामक पर्वत पर जो कि एक महान् पर्वत था वहाँ चले गये थे। वहाँ पर सुरों के श्रेष्ठ ने जाकर प्रजाओं के हित की कामना से बृहल्लोहित पुष्प में चन्द्रदेव को स्थापित कर दिया था। उस सरोवर में स्नान करने वाले जन्तु को निरोगता हो जाया करती है। बृहल्लोहित नाम वाले सरोवर में स्नान करने से प्राणी चिरायु अर्थात् बड़ी उम्र वाला हो जाया करता है। वहाँ पर स्नान किए हुए चन्द्र के शरीर से उसी क्षण में रोग निकल गया था जिसका नाम राज्यक्ष्मा था जैसा कि पूर्व रूप कहा गया है। राज्यक्ष्मा भी निकलकर जगत् के पात ब्रह्माजी को प्रणाम करके उससे बोला था कि मैं क्या करूँगा और कहाँ पर जाऊँगा। क्योंकि आप इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने वाले हैं अतएव हे लोकेश! मेरा सनातन कृत्य-स्थान और पत्नी को मेरे ही अनुरूप निर्देश कीजिए।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर चन्द्रमा के शरीर में स्थित

अभियुक्त अमृतों से परिपुष्ट उसको देखकर और क्षीण हुए चन्द्रमा को देखकर उन्होंने स्वयं ही हाथों से उसका ग्रहण करके गिरि में बारम्बार निष्पीडित किया था और उस राजयक्ष्मों के शरीर से उस अमृत को गालित किया था। उस समय में जो शीघ्र ही अमृत जल में गलित किए गये थे। लोकभृत ने क्षीरसागर के मध्य में एकान्त में प्रक्षिप्त कर दिया था। जो पहले उसके उस अमृत से चन्द्र की कलाएं क्षीण हो गयी थीं उनके चूर्णों को क्षीरोद सागर से लव से ग्रहण किया था। राजयक्ष्मा के संसर्ग से एक कला मात्र ही शेष वाले इसकी क्षीण हुई पन्द्रह कलाएं जो पूर्व में अमृत से परिपूर्ण थीं वे राज्यक्ष्मा के गर्भ में स्थित थीं और पीड़ा से तृष्णीभूत थीं वे ज्योत्स्ना के अमृतों से जो कलपापति का निबद्ध शरीर था वह राजयक्ष्मा के गर्भ में स्थित तीन प्रकार का हो गया था।

वह ज्योति से परिपूर्ण हो गया था और ज्योत्स्ना राजयक्ष्मा में लीन हो गई थी और रोग के गर्भ में स्थित सम्पूर्ण सुधा द्रवीभूत हो गई थी। जिस समय ब्रह्माजी ने राजयक्ष्मा के अन्तर से सुधा को निर्गलित किया था उस समय समस्त ज्योत्सना सुधा की ज्योति उससे बहिर्गत हो गई थी। उसी समय विधाता के द्वारा वह सम्पूर्ण क्षीरोद सागर में प्रक्षिप्त कर दी गयी थी। उन देवों को उस पर्वत में परित्याग करके वह स्वयं वहाँ से शीघ्र ही गमन कर गये थे। इसके उपरान्त कलापूर्ण अमृतों का जल से प्रक्षालित करके उन तीनों को ग्रहण करके शीघ्र ही ज्योत्सना का भी प्रक्षालन करके उस गिरि पर समागत हो गए थे। उस समय विधाता क्षीरोद से चन्द्रभाग पर्वत पर पहुँचकर देवों के मध्य में ज्योत्स्ना कलाओं के चूर्ण में प्रवृष्टि हो गयी थी। ब्रह्माजी ने उन तीनों को संस्थापित करके वे देवों के मध्य में संस्थित हो गए थे। उसके स्थान आदि के विषय में निर्देश करते हुए उन्होंने राजयक्ष्मा से कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा--हे राजयक्ष्मा! जो सर्वदा ही रात दिन व सन्ध्या के समय में वनिता में रत रहा करता है और उसमें सुरत को सेवन किया करता है वहाँ पर ही आप निवास करेंगे। जो प्रतिश्याय

(जुकाम-सर्दी) श्वास और कास से समन्वित होता हुआ भी मैथुन को समाचरण किया करता है और श्लेष्मा (कफ) का उसी प्रकार वाला हुआ करता है उसमें ही आपका प्रवेश होना चाहिए। जो कृष्णनाम वाली मृत्यु की पुत्री है और आपके गुणों के ही तुल्य है वही आपकी भार्या होवेगी जो निरन्तर ही आपका अनुगमन किया करेगी। आपका कर्म भी यही है कि जो क्षीणता करें उसी को आप अपना विषय बना लेवें। अब आप बहुत ही शीघ्र चले जाइए और आप चन्द्र से विमुख हो जाइए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस रीति से विधाता के द्वारा विदा किया गया महान रोग राजयक्ष्मा समस्त देवगणों के देखते हुए ही अन्तर्धान को प्राप्त हो गया था। उस महान रोग के अर्न्तधान हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को पन्द्रह कलाओं के द्वारा समृद्धिपूर्ण कर दिया था। फिर ब्रह्माजी ने सुता से पूत और क्षीरोद से धौत उसके द्वारा तथा ज्योत्स्ना के सहित कलाओं के चूर्णों से पूर्व की ही भांति चन्द्रदेव को कर दिया था। जिस समय में सोलह कलाओं से परिपूर्ण चन्द्र पूर्व की ही भाँति शोभित था उस समय में समस्त देवगण उसके दर्शन से बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे। इसके अनन्तर उस पूर्ण चन्द्र ने पितामह के लिए प्रणिपात किया था। अत्यन्त हर्षित न होते हुए सुरों ने सभा के मध्य में संस्थित होते हुए यह वचन कहा था।

सोमदेव ने कहा–हे ब्रह्माजी! मेरे शरीर में पूर्व की ही भाँति श्यामलता नहीं है और न तो वैसा पराक्रम ही है और न वैसा उत्साह ही है। मेरे अंग की सन्धियाँ निषीदित हैं। मैं पहली की ही भाँति चेष्टायें करने के लिए सुनरा अर्थात् अपने आप ही उत्साहित नहीं होता हूँ। हे लोककृत! मैं निरन्तर चेष्टा से हीन होता हुआ किस कारण से रहता हूँ ? ब्रह्माजी ने कहा–हे सोम! यक्ष्मा के द्वारा ग्रस्त आपकी जो अंग की सन्धियाँ हो गई हैं वे पूर्व में विकीर्ण हो गई हैं और अब वह पूर्णता को प्राप्त नहीं है। अब इस समय में मैंने आपसे देह का चूर्ण निकाल दिया है। राजयक्ष्मा के शरीर से अमृत की ज्योत्सना शीघ्र ही निकाल दी है। उनके प्रक्षालन की विधि में जो लव के रूप में जल

में स्थित है क्योंकि आप ज्योत्सना से और सुधा से उसी से हीन हैं। इसके उपरान्त आपकी अंग संधियां, हे राजन! इस समय में सीदित हो रही हैं। उपाय भी मैं करूँगा जिससे आप किसी पीड़ा को प्राप्त न होवें।

पुर के अध्वर में प्राजापत्य पुरोडाश का हवन करना चाहिए। इसके उपरान्त ऐन्द्र और पीछे आग्नेय सभी ऋतुओं में देना चाहिए। इसके अनन्तर आपका भाग पुरोडाश मैंने किया है। उस भाग के भोग करने वाले जो नित्य ही यज्ञ के द्वारा कृत है पूर्व की ही भाँति आपका उत्साह और श्याम वीर्य हो जायेगा। जो आपके अमृत के कण क्षीरोद के जल में स्थित हैं अथवा आपके शरीर का चूर्ण और ज्योत्सना के जो लव हैं। हे विभो! वह सब आपकी ज्योत्सना योग से अनुदिन वृद्धि को प्राप्त होगा जो निरन्तर क्षीर सागर के गर्भ में गमन करने वाला है। द्वितीय स्वरोचिष के अन्तर के प्राप्त होने पर शंकर के अंश से जायमान दुर्वासा विप्र सूर्य की ही भाँति प्रचण्ड और चण्ड होगा। उसने देवेन्द्र के अविनय से सदारुण शाप दे दिया था। सुर और असुरों से सहित तीनों भुवनों को बिना श्री वाला कर देगा फिर लोक के श्री से हीन होने पर लोक में विप्लव हो जायेगा। हे सोम! जिस तरह से आपके क्षय होने से सबका विप्लव प्रवृत्त हो गया था।

वह मनुष्य के प्रमाण से तीसरे कृत युग में होगा और जब तक चारों युग होंगे स्थित होगा। इसके अनन्तर देवों के साथ चतुर्थ कृतयुग के सम्प्राप्त होने पर मैं शम्भु और विष्णु क्षीरोद का निर्मन्थन करेंगे। मन्दराचल को मन्थन करके अर्थात् मथान करने का साधन बनाकर फिर वासुकि सर्प का नेतरा बनायेंगे। यज्ञ भागों के लीन होने पर देवान्न के लिए हम फिर देवों के साथ दानवों के साथ मिलकर क्षीरोद का मन्थन करेंगे। आपके शरीर का यह अमृत जो क्षीरसागर में स्थित है उसको प्रमथन करके हम राशिभूत तथा क्षय को ग्रहण करेंगे। उस समय में हम आपके शरीर को सर्वोषधियों के अनन्तर से करके हे विभो! आपके शरीर के लिए सागर के जल में प्रक्षिप्त कर देंगे। सागर का निर्मन्थन करके और पीछे जब अमृत का समुद्धरण करेंगे तो उस

समय आपका वपु पूर्व की ही भाँति सम्भूत होगा। ओज और वीर्य से अद्‌भुतकान्त अक्षय और सुधात्मक अर्थात् सुधा से परिपूर्ण हर अंग की सन्धियों वाला आपका शरीर परम सुन्दर हो जायेगा।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार से सुधाँशु (चन्द्रमा) से कहकर चन्द्र के क्षय के लिए और आधे मास तक वृद्धि के लिए यत्नों वाले हुए थे। जैसा प्रजापति दक्ष ने कहा था कि.चन्द्रमा आधे मास तक क्षय और वृद्धि को प्राप्त होवे उस मासार्ध में विधाता ने यत्न किया था। फिर सुरों में ज्येष्ठ ने चन्द्रमा को सोलह प्रकार से विभक्त किया था और ऐसा विभाग करके समस्त देवों से वे यह उत्तम वचन बोले थे। चन्द्रमा की सोलह कलायें हैं उनमें एक भगवान शम्भु के मस्तक में आज की अवधि पर्यन्त स्थित रहे और पराक्षय के बिना ही क्षय को प्राप्त होंवे। दक्ष के वाक्य से यदि क्षय रोग से मासार्ध तक क्षय के लिए चन्द्र प्रपीड़ित किया जाता है तो उस समय में उपशान्ति नहीं होगी किन्तु जिसकी जो कला शम्भु में है ज्योत्सना उसके ही प्रति गमन करे। हे सुरोत्तमो! प्रतिमास में चौदह कलाओं की संस्था है। आप लोग प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके चतुर्दशी पर्यन्त चतुर्दश की संस्थाओं से भी तथ्यों का पालन करें।

तेजों के लोग चतुर्दशी तिथि में क्रम से सूर्य के विम्ब में प्रवेश करें। इस प्रकार से कृष्णपक्ष में चन्द्र का क्षय होता है। शेष कला हरित्यत्र में पलायित दर्श में जावें। उस तिथि में निशापति के प्रथम भाग में स्थित रहे। द्वितीय दर्श भाग में रोहिणी के मन्दिर में गमन करे। तीसरे भाग में तो सरस्वती में स्नान करके चन्द्र समुस्थित होता है। विभावस्तु के चतुर्थ तिथि भाग में वह बल से सम्पूर्ण होता है। विम्ब में स्थित घोटक के सहित यह चन्द्रमा मण्डल में जावे। जितने समय पर्यन्त प्रथमा कला क्षय को प्राप्त होवे इसी प्रकार से कृष्णपक्ष में तब तक वह प्रतिपदा होती है। द्वितीयादि में कृष्णपक्ष में उसी प्रकार की वृद्धि तथा ह्रास होता है। तिथियों की वृद्धि का हेतु शुक्ल और कृष्ण में उसी भाँति होता है। इसके अनन्तर फिर शुक्ल पक्ष में जब तक पूर्व

कला उचित होती है तब तक वृद्धि को नहीं जाती है और आदि से प्रतिपदा तिथि है।

इसके अनन्तर द्वितीय भाग की जो ज्योत्स्ना भगवान हर के मस्तक में है और जो स्थित है वह जावे और गयी हुई वह फिर आ जायेगी। आपके द्वारा दिन-दिन में अमृत पीने के योग्य होता है। हे सुरोत्तमो! वह पूर्ण अन्त वाला द्वितीया आदि तिथियों से सदा ही चन्द्र स्वंय ही उत्पन्न होगा क्योंकि वहाँ पर ज्योत्स्ना का योग होता है उसी के उसी से उसकी समुत्पत्ति होगी। जिस प्रकार से दिन-दिन में भाग क्षण को प्राप्त होते हैं वे अनुचित चन्द्र की वृद्धि को प्राप्त होते हैं। हे सुरो! शुक्ल पक्ष में भी प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं। सूर्य के बिम्ब से तेज का भाग पुनः ही समागत होगा। जिस प्रकार से कृष्णपक्ष में उसी भाँति भाग के क्रम को प्राप्त होगा। भगवान् शम्भु के मस्तक में संस्थित चन्द्रमा से ज्योत्सना प्रति दिन पुनः आयेगी। सूर्य के बिम्ब से तेजोभाग स्वयं ही अमृत की वर्षा करता है। इसी प्रकार से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होगी। दोनों पक्षों में जो शुक्लत्व और कृष्णात्व के नाम हैं वे चन्द्रमा के क्षय और वृद्धि से ही हुआ करते हैं। जब चन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है तो उसे कृष्ण पक्ष पुकारा जाया करता है। जितने काल के द्वारा जो भाग क्षय और वृद्धि को प्राप्त होगा उतने ही काल को अभिव्याप्त करके वह तिथि फिर स्थित रहेगी।

चिरकाल में वृद्धि अथवा क्षय शीघ्रता से वृद्धि अथवा क्षय को द्रुत से अर्थात् शीघ्रता से तिथियों का सदा क्षय होता है और चिरकाल से तिथियों में प्रवेश में वृद्धि होती है। हव्य और कव्य चन्द्रदेव के बिना सम्भव नहीं होगा। इस कारण से उसकी वृद्धि के लिए हे देवताओं! आप लोग चन्द्रदेव की रक्षा करें। 100 अनुमास से कला शेष चन्द्रदेव का आस्वादन करना चाहिए। अमावस्या के अपरार्ध काल में तो वह पितृगणों के साथ रोहिणी के मन्दिर में रहता है। उसके ही आस्वादन से प्रतिदिन कला की वृद्धि हुआ करती है। उस कव्य से पितृगण भी परामृप्ति को प्राप्त होंगे। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर सभी

सुरगण जैसा भी विधाता ने कहा था वैसा ही उन्होंने चन्द्र की क्षय और वृद्धि के लिए लोक हित के स्वरूप चन्द्रमा के अर्धभाग को देवों सहित विधिपूर्वक अत्यन्त क्षुधित होकर शिर से ग्रहण किया था। जो तेज परनित्य अज, अव्यय और अक्षय है उस स्वरूप वाली ही चन्द्रमा की कला है जो प्राप्त हो गई थी।

जिस समय योगी की आनन्दज, अजर और पर ज्योति प्रवेश किया करती है उस समय में उनका चिन्तन लीनता को प्राप्त हो जायेगा। महादेव के मस्तक में विराजमान सुधा निधि के होने पर चित्त की लीनता में चन्द्र के द्वारा मुक्ति हो जाया करती है। इस प्रकार से यह वैदिकी श्रुति है। महादेव जी ने इसका ज्ञान प्राप्त करके क्षय और वृद्धि के अनिवाकृत चन्द्र को लोकों के हित के लिए शिर के द्वारा ग्रहण किया था। चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समायोग से औषधियाँ वृद्धि को प्राप्त हुआ करती हैं। सब औषधियों के प्रवृद्ध होने पर ही अध्वरों की प्रवृत्ति हुआ करती है। अध्वरों के प्रवृत्त हो जाने पर देवगण अपने-अपने भागों का परिग्रहण किया करते हैं और पितृगण बहुत से कव्यों को ग्रहण करते हैं। अमृत ब्रह्माजी ने देवगणों के लिए बहुत पुरातन सृजा था अब देवता लोग हव्यभाग से हीन हुये जो भी हैं वे उसके द्वारा ही तृप्ति का लाभ किया करते हैं। यज्ञ के आयातित भी वह ज्योत्सनाओं से निश्चय ही वृद्धि को प्राप्त होता है और वह यज्ञों की ज्योत्सना के विनाशभूत अन्यथा क्षीण हो जाया करता है।

अतएव यज्ञ के अमृत का कारण भी चन्द्रमा ही स्वयं होता है अतएव दक्ष प्रजापति के शाप से रक्षा के लिए चिकीर्षित होता है। आज भी कृष्णपक्ष में सुरगणों के द्वारा चन्द्र का पान किया जाया करता है। तेज तो सूर्य देव को चला जाता है और चन्द्र का अर्धभाग तथा उसकी ज्योत्सना भगवान शम्भुदेव के समीप में चले जाया करते हैं और फिर शुक्ल पक्ष में शेष कला उदित हुआ करती है। ज्योत्सना का दूसरा भाग और द्वितीय तेज का भाग और अन्य भी शिव के मस्तक में संस्थित चन्द्रमा से और क्रम से सूर्य के बिम्ब से चन्द्र की

सोलह कलायें हैं उनमें एक भगवान शम्भु के मस्तक में रहा करती है। शेष कलाओं के सित और असित अर्थात् शुक्ल और कृष्ण ये दोनों पक्ष उदय और क्षय वाले ही होते हैं। यह सब मैंने आपको बतला दिया है। जिस प्रकार से भी चन्द्रमा का विभाग किया गया है, जिस रीति से ब्रह्मा के द्वारा उस श्रेष्ठ पर्वत में चन्द्रमा समागत हुआ था। जिस कारण से यज्ञ भाग के स्थित होने पर विभु को देवों का अन्न किया था। जिस तरह से कव्य के स्थित होने पर भी पितृगण का अन्न तिथियों का क्षय और वृद्धि होता है। इस परम पुण्यतम आख्यान को जो भी कोई मनुष्य एक बार भी श्रवण कर लिया करता है उसके कुल में राजयक्ष्मा का महारोग कभी भी किसी को नहीं रहा करता है और न होता ही है। जो भी कोई मनुष्य राजयक्ष्मा से पराभूत है और विधाता के वचन का श्रवण कर लेता है तो उसका यक्ष्मा विनष्ट हो जाया करता है। यह आख्यान परमाधिक स्वस्ति अर्थात् कल्याण का स्थान है, पुण्यमय है और शुभ तथा गुह्य से भी अधिक गोपनीय है। जो भी कोई एकचित्त होकर इसको सुनता है वह महान् पुण्य का भागी होता है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जहाँ पर सब महागिरि के शिखर पर देवों की सभा हुई थी वहाँ पर विधाता के वचन से सीता नाम वाली देव नदी समुत्पन्न हुई थी। जिस समय मनोहर सीता के जल से स्तवन कराकर उन सब देवगणों ने ब्रह्मा के वाक्य से चन्द्र का पान कर गये थे उस समय में सीता नदी का जल चन्द्रमा के स्नान के योग से वह अमृत होकर उस वृहल्लोहित संज्ञा वाले में निपातित हो गया था। उस समय में उसका जल बढ़ गया था और उस सरोवर में वह नहीं समाया था। उसको ब्रह्माजी ने स्वयं ही देखा था कि वह विशेष बढ़ा हुआ जल अमृत था। उसके देखने से उस जल से एक अत्युत्तम कन्या समुत्थित हुई थी। उस कन्या का नाम चन्द्रभागा था जिसको कि विधाता ने स्वयं ही रखा था। ब्रह्माजी की सहमति से सागर ने उसको अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण कर लिया था। उसी के द्वारा अधिष्ठित जल को निशावर्ति ने गदा के अग्रभाग से भेदन करके

पश्चिम पार्श्व में उस गिरि के प्रति समवाहित कर दिया था।

उसके अमृत जल का भेदन करके वृहल्लोहित नाम वाला सरोवर कर दिया था और वह चन्द्रभाग नदी तो सागर को गमन करने वाली थी। उस समय सागर ने भी महानदी चन्द्रभाग भार्या को उस जल के प्रवाह से उसको अपने भवन में ले गया था। इसी रीति से उसमें चन्द्रभागा नाम वाली नदी समुत्पन्न हुई थी। वह चन्द्रभागा महान शैल में अपने गुणों के द्वारा सदा गंगा के ही समान थी। नदियां और सब पर्वत स्वभाव से ही दो रूपों वाले सदा हुआ करते हैं। नदियों का रूप तो उनका जल ही होता है तथा शरीर दूसरा ही हुआ करता है। पर्वतों का रूप को स्थावर ही होता है। इसी प्रकार से जल तथा उस समय में नदी और पर्वत का स्थावर होता है। उनका काम तो अन्तर में वास किया करता है और निरन्तर उत्पन्न नहीं होता है।

पर्वत का शरीर तो स्थावर के द्वारा ही आप्यायित होता है। उसी भाँति नदियों का शरीर जल के द्वारा ही सदा आप्यापित हुआ करता है। नदियों का तथा पर्वतों का रूप कामरूपी होता है। भगवान् विष्णु ने यत्नपूर्वक पहले जगत् की स्थिति के लिए ही कल्पित किया था। हे सुरगणों! जल की हानि होने पर निरन्तर ही नदियों को महान् दुःख हुआ करता है और विकीर्ण हो जाने पर स्थावर गिरि के शरीर में उत्पन्न होता है। उस पर्वत पर जो कि चन्द्रभाग नाम वाला था बृहल्लोहित के तट पर गमन करने वाली सन्ध्या का अवलोकन किया था और वशिष्ठ मुनि ने उस समय में बड़े ही आदरपूर्वक उससे पूछा था। वशिष्ठ जी ने कहा—हे भद्रे! आप इस निर्जन महान् गिरि पर किस प्रयोजन के लिए आयी हैं। हे गौरि! आप किसकी पुत्री हैं ? और आपका क्या चिकीर्षित है अर्थात् क्या करने की इच्छा रखती हैं। यदि आपकी कोई भी गोपनीय बात न हो तो मैं यही सुनना चाहता हूँ। आपका मुख तो चन्द्रमा के समान परमाधिक सुन्दर है किन्तु इस समय में वह निःश्री सा क्यों हो रहा है ? उन महात्मा वशिष्ठ मुनि के इस वचन का श्रवण करके उन महात्मा का अवलोकन किया था जो

प्रज्वलित अग्नि के ही समान थे। वे उस समय ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो शरीरधारी ब्रह्मचर्य के ही सदृश हों। उन जटाधारी को बहुत ही आदर के साथ प्रणिपात करके इसके पश्चात् उस संध्या ने उन तपोधन से कहा था।

वशिष्ठजी द्वारा सन्ध्या को दीक्षा देना

सन्ध्या बोली–जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैं इस शैल पर समागत हुई थी वह मेरा कार्य सिद्ध हो गया है। हे द्विजोत्तम्! हे विभो! आपके दर्शन मात्र से ही वह कार्य पूर्ण हो जायेगा। हे ब्रह्मन्! मैं तपश्चर्या करने के लिए ही इस निर्जन पर्वत पर आई थी। मैं ब्रह्माजी के मन से समुत्पन्न हुई हूँ और मैं लोक में सन्ध्या इस नाम से प्रसिद्ध हूँ। यदि आपको कुछ गोपनीययुक्त होता हो तो आप मुझको उपदेश दीजिए। यही मेरा परम गुह्य चिकीर्षित है और दूसरा कुछ भी नहीं है। तपस्या के भाव का ज्ञान न प्राप्त करके ही मैंने इस तपोवन का उपाश्रय ग्रहण किया है। मैं चिन्ता से परिशुष्क हो रही हूँ और मेरा मन सदा ही काँपता रहता है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ जी ने उस संध्या के वचन को सुनकर उन स्वयं ही सम्पूर्ण तत्त्व के ज्ञाता मुनि ने उससे अन्य कुछ भी नहीं पूछा था। इसके अनन्तर उस समय वशिष्ठ मुनि ने उस नियत आत्मा वाली और तप के लिए अत्यन्त उद्यम धारण करने वाली उसको शिष्य-गुरु के ही समान वशिष्ठ ने मन्त्र दीक्षा दी थी।

वशिष्ठ मुनि ने कहा–जो महान् तेज परम है, जो परम महान् तप है, जो परम समाराधना करने के योग्य है उन भगवान विष्णु को ही अपने मन में धारण करिए। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन परम पुरुषार्थों का एक ही आदि कारण है उन जगतों के आद्य पुरुषोत्तम प्रभु का यजन करो। जो भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले हैं और उनके लोचन कमलों के ही समान परम सुन्दर हैं उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के तुल्य है और कहीं पर उनकी

छवि नीले मेघ के सदृश ही है। गरुड़ के ऊपर स्थल में चिह्न वाले, परमशान्त और वनमाला के धारी, हरि का भजन करो। जो केयूर और कुण्डलों को पहिने हुए हैं, जो किरीट और मुकुट से समुज्ज्वल हैं, जो बिना आकार वाले केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य हैं, जो आकार के सहित देवधारी हैं, नित्य आनन्दस्वरूप, बिना अवलम्बन वाले और सूर्य मण्डल के मध्य में संस्थित हैं ऐसे देवेश्वर विष्णु की इस मन्त्र के द्वारा ही हे शुभआनन वाली! आप यजन करो। वह मन्त्र 'ॐ नमो वासुदेवाय ॐ' यह है। इसी मन्त्र के जाप के द्वारा निरन्तर मौनी होकर तपश्चर्या का समारम्भ करो। उसमें कुछ नियम हैं उनका अब श्रवण करो।

नित्य स्नान मौन होकर करना चाहिए और मौन व्रत के साथ ही पूजन करें। प्रथम तो छठवें दोनों कालों में पूर्ण और फलों का आहार करें और तीसरे षष्ठ काल में उपवास परायण ही होना चाहिए। इस प्रकार से तप की समाप्ति में षष्ठ काल की क्रिया होती है। वृक्षों के छालों के वस्त्र धारण करें और उस समय पर भूमि में ही शयन करें। इसी रीति से मौनी रहें और तपस्या नाम वाली व्रतचर्या फल के प्रदान करने वाली होती है। इस तरह के तप का उपदेश करके इच्छापूर्वक माधव भगवान का चिन्तन करो। वे प्रसन्न होकर आपके अभीष्ट को शीघ्र ही प्रदान कर देंगे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर वशिष्ठ जी ने उस संध्या के लिए तप करने की क्रिया का उपदेश देकर और उससे न्याय के अनुसार सम्भाषण करके मुनि वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। उसने तपस्या के भाव का ज्ञान प्राप्त करके और परम आनन्द प्राप्त करके उसने वृहल्लोहित के तीर पर स्थित होकर तपश्चर्या करना आरम्भ कर दिया था। उसने वशिष्ठ मुनि ने जैसा कहा था उस मन्त्र को तथा तप के साधन को करके उसी व्रत से भक्तिभाव के द्वारा गोविन्द का पूजन किया था। परम एकान्त मन वाली को चारों युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग) का समय व्यतीत हो गया था।

उसके इस अद्भुत तप को देखकर कोई भी विस्मय को प्राप्त हुए

बिना नहीं रहा था कि उस तरह की तपश्चर्या अन्य किसी की भी नहीं होगी। इसके अनन्तर मनुष्यों के मान से चारों युगों की एक चौकड़ी व्यतीत हो गई थी। फिर अन्दर-बाहर और आकाश में अपना वपु दिखला कर उस रूप से परम प्रसन्न हुए जिस रूप को उसने चिन्तन किया था वहीं उसके सामने प्रत्यक्षता को प्राप्त हो गये थे जो भगवान विष्णु इस जगत् के स्वामी थे। इसके अनन्तर अपने सामने अपने मन के द्वारा चिन्तन किए गए हरि को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई थी। उनका स्वरूप शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाला था तथा वे किरीट और मुकुट से परम समुज्वल थे। पुण्डरीक के समान उनके नेत्र थे और वे गरूड़ पर विराजमान थे। उनकी छवि नीलकमल के समान थी। मैं भय के साथ क्या कहूँगी अथवा किस प्रकार से हरि भगवान का स्तवन करूँ इसी चिन्ता में परायण होकर उसने अपने नेत्रों को मूँद लिया था। मूँदे हुए लोचनों वाली के हृदय में भगवान ने प्रवेश किया था और उसमें उस संध्या को परम दिव्य ज्ञान को प्रदान किया था और उसकी दिव्य वाणी बोलने की शक्ति दी थी तथा दिव्य चक्षु भी प्रदान किए थे। वह फिर परम दिव्य ज्ञान, दिव्य लोचन और दिव्य वाणी को प्राप्त करने वाली हो गई थी। उसने प्रत्यक्ष में हरि को दर्शन कर उसका स्तवन किया था।

सन्ध्या ने कहा—जो बिना आकार वाले हैं, जो ज्ञान के ही द्वारा जानने योग्य हैं, जो सबसे परे हैं, जो न तो स्थूल हैं और न सूक्ष्म ही हैं तथा जो उच्च भी नहीं हैं, जिनका रूप योगियों के द्वारा अन्दर ही चिन्तन करने के योग्य है उन आप भगवान श्रीहरि के लिए मेरा नमस्कार है। जिनका स्वरूप शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप है जो परम शान्त, निर्मल, विकारों से रहित, ज्ञान से भी परे सुन्दर प्रकार से सुक्त, विसारी, रवि प्रख्य, ध्वान्त (अन्धकार) भाग से परे हैं उन परम प्रसन्न आपके लिए मैं प्रणाम करती हूँ। जो एक शुद्ध देदीप्यमान विनोद चित्त के लिए आनन्द, रूप, सत्य से समुत्पन्न, पापों का हरण करने वाला, नित्य ही आनन्दरूप, सत्य और बहुत ही अधिक प्रसन्न जिसका श्री का

प्रदाता यह रूप है उन प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है। विद्या के आकार से उद्भावना करने के योग्य प्रकृष्ट रूप से भिन्नसत्व से छन्न-ध्यान करने के योग्य आत्मस्वरूप से समन्वित, सार, पार और पावनों को भी पवित्र करने वाला जिनका रूप है उनके लिए मेरा प्रणिपात है। योग मार्ग में युक्त पुरुषों के द्वारा गुणों के समूह आठ अंग वाले योग से जो नित्यार्चन और व्यय से हीन चिन्तन किया जाता है, जिसकी योगीजन अपने ज्ञान योग में व्यापी तत्त्व को प्राप्त करके परात्पर को प्राप्त हुए हैं, जो शुद्ध रूप वाले हैं और जो मनोज्ञ हैं, जो गरुड़ पर विराजमान हैं, जिनका प्रकाश नील मेघ के समान है, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले हैं उन योग से युक्त आपके लिए मेरा प्रणाम समर्पित है।

जिनका गगन, भूमि, दिशायें, जल, ज्योति, वायु और काल स्वरूप है उनके लिए मेरा नमस्कार है। जिनके कार्यों के अगस्थ में प्रधान और पुरुष निवास किया करते हैं उन अव्यक्त रूप वाले गोविन्द के लिए नमस्कार है। जो स्वयं हैं और जो भूत हैं, जो स्वयं उसके गुणों से पर हैं, जो स्वयं ही इस जगत का आधार हैं उनके आपके लिए नमस्कार है तथा बारम्बार प्रणाम है। जो सबसे पर तथा पुराण हैं, जो पुराणपुरुष और जगन्मय परमात्मा हैं जो अक्षय और व्यथा से रहित हैं उस देश के लिए बारम्बार नमस्कार है। जो ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके इस सृष्टि की रचना किया करते हैं और जो विष्णु से स्वरूप से इस जगत् का परिपालन करते हैं तथा जो रुद्र के रूप में होकर इस जगत् का संहार किया करते हैं उस आपकी सेवा में बारम्बार मेरा प्रणिपात समर्पित है। कारणों के भी कारण, दिव्य अमृतज्ञान और विभूति के प्रदाता, समस्त अन्य लोकों को मोह के दाता हैं उन प्रकाश स्वरूप वाले परात्पर के लिए बारम्बार नमस्कार हैं। जिसका महान प्रपञ्च जगत् कहा जाया करता है जो भूमि, दिशायें, सूर्य, चन्द्र, मनोजव, वह्नि, मुख, नाभि से अन्तरिक्ष है उन भगवान हरि आपके लिए नमस्कार है।

आप पर परमात्मा हैं, हे हरे! आप विविध विद्या हैं, आप शब्दब्रह्म और विचार के पर से भी पर हैं। जिस जगत् के पति का न तो आदि है, न मध्य और अन्त ही होता है उन देव का मैं किस प्रकार से स्तवन करूँ जो देव वाणी, मन के गोचर से भी बाहिर अर्थात् पर हैं, जिनके स्वरूपों का ब्रह्मा आदि देवगण तथा तप के भी धनवाले मुनिगण भी विवरण नहीं किया करते हैं उनके रूप मेरे द्वारा किस प्रकार से वर्णन करने योग्य हो सकते हैं ? उन निर्गुण प्रभु के गुण मुझ स्त्री जाति वाली के द्वारा कैसे जानने के योग्य हो सकते हैं ? जिनके स्वरूप को इन्दु आदि सुर और असुर भी नहीं जानते हैं। हे जगत् के नाथ! आपके लिए नमस्कार है। हे तप से परिपूर्ण! आपके लिए नमस्कार है। हे भगवान्, आप प्रसन्न हो गए आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उसका शरीर वल्कल और अजिन (मृगचर्म) से संवृत था तथा बहुत ही क्षीण और मस्तक पर पवित्र जटा-जूटों में राजित था अर्थात् परम शोभित था। मादिनी में सर्जित कमल के सदृश मुख को देखकर भगवान हरि कृपा से समाविष्टि होकर उस सन्ध्या से यह बोले।

श्री भगवान ने कहा—हे भद्रे! आपकी इस परम दारुण तपश्चर्या से मैं अधिक प्रसन्न हो गया हूँ। हे शुभ प्रज्ञा वाली! मुझे आपकी स्तुति से अधिक प्रसन्नता हुई है। अब आप मुझसे वरदान जो भी अभीष्ट उसे प्राप्त कर लो। जिस वर से उनका मनोगत कार्य हो मैं उसको कर दूँगा, तुम्हारा कल्याण होवे, मैं तुम्हारे इन व्रतों में परम हर्षित हो गया हूँ। सन्ध्या ने कहा—हे देव! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मेरी इस तपश्चर्या से आपको आह्लाद हुआ है तो अब मैंने प्रथम बार व्रत किया है उसी को आप करने की कृपा कीजिए। हे देवेश्वर! उत्पन्न मात्र ही प्राणी इस नभस्तल में क्रम से ही सकाम न होवें, वे सम्भव होवें। मैं तीनों लोकों में परम पतिव्रता प्रथित हो जाऊँगी जैसे कोई दूसरी न होवे। मैंने यह एक बार व्रत किया है। काम वासना से संयुत मेरी दृष्टि कहीं पर भी न गिरेगी। हे जगत् के स्वामिन्! पति को छोड़ कर कहीं

पर मेरी सकाम दृष्टि नहीं होवे। यह भी मेरा परम सुकृत होगा। जो कोई भी पुरुष कामवासना से युक्त होकर मुझे देखे उसका पुरुषत्व विनाश को प्राप्त हो जावेगा और वह क्लीव अर्थात् नपुंसक हो जावेगा।

श्री भगवान् ने कहा—प्रथम तो शैशव भाव हुआ करता है और दूसरा कौमार नाम वाला भाव होता है, तीसरा यौवन का भाव है और चतुर्थ वार्द्धक भाव होता है। तीसरे भाव अर्थात् यौवन के भाव को सम्प्राप्त हो जाने पर जो एक शरीरधारी अवस्था का भाग है मनुष्य उसमें ही कामवासना से समन्वित हुआ करते हैं। कहीं-कहीं पर द्वितीय भाव के अन्त में भी हो जाते हैं। मैंने आपके तप से जगत् में मर्यादा स्थापित कर दी है कि उत्पन्न होते ही शरीर धारी सकाम नहीं होंगे और आप तो लोक में उस प्रकार का भाव प्राप्त करेंगी कि तीनों लोकों में अन्य किसी का भी ऐसा भाव नहीं होगा। जो भी कोई बिना आपके पाणिग्रहण करने के किए हुए कामवासना से युक्त होकर आपको देखेगा वह तुरंत ही क्लीवता अर्थात नपुंसकता को प्राप्त करके अतीव दुर्बलता को पा लेगा। आपका पति तो बहुत बड़े भाग्य वाला होगा जो सुन्दर रूप लावण्य से और तप से समन्वित होगा। वह आपके ही साथ रहकर सात कल्पों के अन्त पर्यन्त जीवन के धारण करने वाला होगा। ये जो भी वरदान आपने मुझसे प्रार्थित किए थे व सब मैंने पूर्ण कर दिये हैं और अन्य भी मैं आपको बतलाऊँगा जो कि पूर्व में आपके मन में स्थित था।

आपने पूर्व में ही अग्नि में अपने शरीर के परित्याग करने की प्रतिज्ञा की थी वह प्रतिज्ञा बारह वर्ष तक होने वाले मुनिवर मेधातिथि के यज्ञ में की थी। हुत से प्रज्जवलित अग्नि में शीघ्र ही आप गमन करें। उस पर्वत की उपत्यका में चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसों के आश्रम में मेधातिथि महायज्ञ कर रहे हैं वहाँ पर जाकर स्वयं छन्न होती हुई जिसको मुनियों ने भी नहीं देखा है, मेरे प्रसाद से वह्नि से जलकर आप उसकी पुत्री होंगी। जो भी अपने मन के द्वारा अपने पति होने की थी वह जो भी कोई हो उसको अपने मन में धारण करके अपने शरीर

का त्याग वह्नि में कर दो। हे सन्ध्ये! जब आप इस परम दारुण पर्वत में तपश्चर्या कर रही हो उस तप को करते हुए चारों युग व्यतीत हो गयें हैं तथा कृतयुग के व्यतीत होने पर त्रेता के प्रथम भाग में दक्ष की कन्या उत्पन्न हुई थी। उस प्रजापति दक्ष ने सत्ताईस अपनी कन्याओं को चन्द्रदेव के लिए दे दिया था।

उन कन्याओं के लिए जिस समय में क्रोधयुक्त दक्ष के द्वारा चन्द्रदेव को शाप दिया गया था उस समय में आपके समीप में सभी देवगण समागत हुए थे। हे सन्ध्ये! उसके द्वारा ब्रह्मा के साथ देवगण नहीं देखे गये थे क्योंकि आपने मुझमें ही अपना मन लगा रखा था। अतः आप भी उनके द्वारा नहीं देखी गई थीं। चन्द्रदेव को दिए हुए शाप को छुटकारे के लिए जिस प्रकार से विधाता ने चन्द्रभाग नदी की रचना की थी उसी समय में यहाँ पर मेधातिथि उपस्थित हो गया था। तप से उसके समान कोई भी अन्य नहीं है और न अब तक कोई हुआ ही है तथा भविष्य में ही कोई ऐसा तपस्वी नहीं होगा। उस मेधातिथि ने महान् विधि वाला ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का आरम्भ किया था। वहाँ पर जो वह्नि प्रज्वलित है उसी में अपने शरीर का त्याग करो। हे तपस्विनी! यह मैंने तुम्हारे की कार्य के सम्पादन करने के लिए स्थापित किया है। हे महाभागे! आप वह करिए और उस महामुनि के यज्ञ में गमन करिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भगवान् नारायण ने स्वयं ही अपने कर के अग्रभाग से इसके अनन्तर सन्ध्या का स्पर्श किया था। इसके पश्चात् एक ही क्षण में उसका शरीर पुरोडाश से परिपूर्ण हो गया था। इस प्रकार से करके जगत् के स्वामी वहाँ पर अन्तर्धान हो गये थे और वह सन्ध्या उस सत्र में गई थी जहाँ पर मेधातिथि मुनिवर विद्यमान थे। उसके अनन्तर भगवान विष्णु के प्रसाद से किसी के भी द्वारा उपलक्षित होती होई सन्ध्या देवी ने मेधातिथि मुनि के लिए उपदेश दिया था। उसी तपश्चर्या के उपदेश को मन में करने उस समय सन्ध्या ने पतित्व के रूप से ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वरण रखा था। उस महायज्ञ में समिद्ध

अग्नि में मुनियों के द्वारा उपलक्षित न होती हुई उस समय में भगवान विष्णु ने प्रसाद से विधाता की पुत्री ने प्रवेश किया। फिर उसी क्षण में उसका शरीर पुरोडाश से परिपूर्ण हो गया था। दग्ध हुई पुरोडाश की गन्ध लक्षित होती हुई ही विस्तार को प्राप्त हो गई थी।

वह्नि ने उसके शरीर का दाह करके पुनः भगवान् विष्णु की ही आज्ञा से शुद्ध को सूर्य मण्डल में प्रवृष्टि कर दिया था। सूर्य का दो भागों में विभाग करके उसके शरीर की उस समय में रथ में जो अपना था, पितृगण और देवों की प्रीति के लिए संस्थापित कर दिया था। उसका अर्धभाग हे द्विजोत्तमो! अर्थात् उसके शरीर का आधा हिस्सा प्रातः सन्ध्या हो गई थी जो अहोरात्र आदि के मध्य में रहने वाली थी। उसका शेष भाग था जो अहोरात्रान्त के मध्य में रहने वाली वही वह सायं सन्ध्या हो गयी थी। जो सदा ही पितृगणों की प्रीति को प्रदान करने वाली थीं। सूर्योदय से प्रथम जो अरुण का उदय जिस समय में होना है प्रातः सन्ध्या उसी समय में उदित हुआ करती है जो देवगणों की प्रीति को करने वाली हैं।

सूर्यदेव के अस्ताचलगामी होने पर शोण (रक्त) पद्म के सदृश होती है वह सायं सन्ध्या भी समुदित हुआ करती है जो पितृगणों के मोद के करने वाली हुआ करती है। उनके प्राणों को प्रभु भगवान के द्वारा शरीरों के दिव्य शरीर से ही किये थे।

महामुनि के यज्ञ के अवसान के अवसर प्राप्त करके हो जाने पर मुनि के द्वारा तपे हुए सुवर्ण की प्रभा के तुल्य पुत्री वह्नि के मध्य में प्राप्त हुई थी। उस समय में उस पुत्री को मुनि ने आमोद से समन्वित होकर ग्रहण कर लिया था। उस पुत्री को यथार्थ जल में संस्पनन कराकर कृपा से युत होते हुए अपनी गोद में रखा था और उनका नाम अरुन्धती, यह महामुनि ने रखा था। वे शिष्यों में परिवृत होते हुए वहाँ पर महान मोद को प्राप्त हुए थे।

वह जिस किसी भी कारण से धर्म का विरोध नहीं करती थी अतएव त्रिलोकी में विदित नाम उसने प्राप्त किया था अर्थात् वह जैसा

करती थी वैसा ही नाम की प्राप्ति उसने की थी। उन मुनि ने यज्ञ को समाप्त करके कृतकृत्य भाव को प्राप्त किया था और तनया के प्रलम्भ से वे सम्मदयुत हुए थे। उस अपने आश्रम के स्थान में अपने शिष्य वर्गों के सहित महर्षि उसी अपनी तनया को प्यार किया करते थे और निरन्तर उसी को प्रिय बना लिया था।

वशिष्ठ अरुन्धति विवाह

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर वह देवी उन मुनिवर के आश्रम में बड़ी हो गई थी जो कि चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसारण्य नाम वाला था। जिस प्रकार से चन्द्रमा की कला शुक्लपक्ष में नित्य ही प्रवर्द्धित हुआ करती है जैसे ज्योत्सना बढ़ा करती है उसी भाँति वह अरुन्धती भी वृद्धि को प्राप्त हुई थी। उस समय में पाँचवा वर्ष के सम्प्राप्त होने पर गुण गुणों के द्वारा उस सती चन्द्रभागा ने भी उस ताप सारण्य को भी परम पवित्र कर दिया था। वहाँ पर मेधातिथि द्वारा निषेचित महापुण्य वाला तीर्थ था जो अरुन्धती की क्रीड़ा का स्थान था और उन अरुन्धती ने बाल्योचित कृत्य से पूत किया था। आज भी तापसारण्य में चन्द्रभागा नदी के जल में मनुष्य अरुन्धती तीर्थ के जल में स्नान करके अन्त में हरि की प्राप्ति किया करता है। कार्तिक के पूरे मास में चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान करके विष्णु भगवान के लोक में प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। माघ मास में पूर्णमासी अथवा अमावस्या में उसी भाँति चन्द्रभागा के जल में स्नान करता है और एक-एक बार ही किया करता है।

उस पुरुष के वंश में महारोग कभी भी नहीं होगा। देह के अन्त में वह पुरुष चन्द्र भवन को जाकर फिर वह भगवान हरि के लोक में चला जाया करता हैं। जब पुण्य का क्षय हो जाया करता है तभी यहाँ संसार में आकर अर्थात् पुनः जन्म ग्रहण करके वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है। चन्द्रभागा नदी का जल पीकर वह मनुष्य चन्द्रलोक को प्राप्त किया करता है। विधि के साथ एक बार स्नान करके अयुत (दस

हजार) वाजपेय यज्ञ के पुण्य को प्राप्त किया करता है। चन्द्रभागा के जल में स्नान करके बाल्य लीला से क्रीड़ा करती हुई पिता के समीप में उसके तट पर किसी समय में उस अरुन्धती को आकाश मार्ग से जाते हुए ब्रह्माजी ने अरुन्धती को उस काल में उपदेश में देखा। इसके उपरान्त उस समय में मुनियों के द्वारा परिपूजित जो कि मेधातिथि आदि थे ब्रह्माजी ने उस महामुनि से समुचित कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे महामुनि! यह अरुन्धती के उपदेश का काल है। इस कारण इसको सती स्त्रियों के मध्य में सन्निधि वाली करो। बहुला सावित्री और सावित्री के समीप में आप पुत्री को स्थापित करिये। हे महामुने! आपकी पुत्री उन दोनों का संसर्ग प्राप्त करके महान् गुण गण और ऐश्वर्य से संयुत शीघ्र ही हो जायेगी। परमात्मा ब्रह्माजी ने वचन का श्रवण करके मेधातिथि से उस समय में ऐसा ही होगा, यह मुनिश्रेष्ठ ने कहा था। इसके अनन्तर सुर श्रेष्ठ के चले जाने पर मेधातिथि मुनि अपनी पुत्री को लेकर उसी क्षण में सूर्य भवन के प्रति गमन किया था। वहाँ पर सूर्य मण्डल के मध्य में विराजमान सावित्री को देखा था। जो कि पद्म के आसन पर संस्थित थी और वह देवी अक्षों की माला को धारण करने वाली एवं सितवर्ण वाली थी। रवि के मण्डल से निकलकर उस मुनि के द्वारा वह देखी गई थी। वह बहुला शीघ्र ही मानस पर्वत के प्रस्थ पर चली गयी थी। वहाँ पर प्रतिदिन सावित्री, गायत्री तथा बहुला, सरस्वती और द्रुपदा के पाँचों मानस अनल पर थी।

वहाँ पर लोकों की हितकामना से परस्पर में धर्माख्याओं के द्वारा साध्वी कथाओं को कहकर फिर अपने-अपने स्थान को चली जाया करती थी। तप ही जिसका धन था। हे माता! आप तो समस्त लोकों की माता है मैं आपको पृथक-पृथक प्रणाम समर्पित करता हूँ। उस तपोधन ऋषि ने उन सबसे परम मधुर वचन कहा था और वह उन सबको एक ही स्थान में सम्मिलित हुई का दर्शन करके बहुत ही भयभीत और विस्मित हुआ था। मेधातिथि ने कहा–हे माता सावित्री!

हे माता बहुले! यह मेरी महान् यज्ञ वाली पुत्री है। अब इसके उपदेश करने का समय आ गया है। उसी के लिए मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ। यह जगत् के सृजन करने वाले के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली हुई है कि यह आपकी शिष्यता को प्राप्त करे अर्थात् आपकी शिष्य हो जावे। इस कारण से यह मेरी पुत्री आपके समीप में लाई गई है। जिस प्रकार से इसकी सुचरित्रता होवे उसी प्रकार से इस मेरी बालिका को आप दोनों देवी बना देवें। हे माताओं! आप दोनों के लिए प्रणाम अर्पित है। इसके उपरान्त उस समय में देवी सावित्री मन्द मुस्कराहट के साथ बहुला के सहित उस मुनियों में श्रेष्ठ से कहा था और उस बालिका से भी कहा था।

उन दोनों देवियों ने कहा—हे ब्राह्मण! भगवान विष्णु के प्रसाद से आपकी पुत्री बहुत ही चरित्र वाली है। हे मुने! यह तो पहले ही ऐसी सुयोग्य हुई है फिर इसको उपदेश देने से क्या लाभ है। तात्पर्य यही है कि जो यह आपकी पुत्री पहले ही से परम योग्य है तो फिर इसको उपदेश देने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं और महासती बहुला ब्रह्मवाक्य के होने से आपकी धैर्य वाली सुता को विनीत बनायेंगी अर्थात् सदुपदेशों के द्वारा परम विनीत ऐसे ढंग से कर देंगी के उसमें विशेष विलम्ब नहीं होगा। यह पहले ब्रह्माजी की पुत्री थी आपके तपोबल के कारण से तथा भगवान विष्णु के प्रसाद से यह अरुन्धती आपकी सुता हुई है। यह सती आपके कुल को पवित्र करती है और उसकी वृद्धि की करेगी। यह लोकों को और देवों का कल्याण ही करेगी। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर यह मेधातिथि मुनि के द्वारा विदा होकर उसने अपनी पुत्री अरुन्धती को आश्वासन दिया था और फिर उनको प्रणाम करके वह अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनिवर के चले जाने पर अरुन्धती उन दोनों के साथ माताओं की ही भाँति निडर पाली हुई थीं और उसने भी आनन्द प्राप्त किया था। किसी समय में रात्रि में सावित्री के साथ वह रतिदेव के गृह को जाया करती थी और किसी समय में बाहुल्य के साथ इन्द्रदेव के घर में जाती थी।

इसी रीति से वह देव उन दोनों के साथ सुरों के आलय में अर्थात् स्वर्गलोक में विहार करती उसने दिव्यमान से अर्थात् वेदों की गणना के हिसाब से सात परिवत्सर व्यतीत कर दिये थे। उन दोनों के साथ ये बैठी हुई उस सती ने शीघ्र ही स्त्री धर्म को सम्पूर्णता से जान गयी थी अर्थात् स्त्रियों का पूरा धर्म का ज्ञान उसने प्राप्त कर लिया था और वह सावित्री तथा बहुला से भी अधिक ज्ञानवती हो गयी थी। इसके अनन्तर उसको उस समय समुचित काल के सम्प्राप्त होने पर यौवन का उद्‌भेद हो गया था अर्थात् यौवनावस्था के चिह्न प्रकट हो गये थे जिस प्रकार से पद्मिनीयों की रुचि हुआ करती है। उद्‌भूत यौवन वाली उसे मानस अचल में विहार करती हुई अकेली ही ने सुन्दर तेज वाले वशिष्ठ मुनि को देखा था। उस सती ने उस समय में उस मुनि का अवलोकन करके कामवासना की भावना से बालसूर्य के तुल्य प्रभा वाले सुन्दरतम रूप ब्राह्मण की श्री से समन्वित इसकी इच्छा की थी अर्थात् उसे प्राप्त करने की लालसा उसको हो गयी थी। इसके उपरान्त महान तेज वाले उन वशिष्ठ मुनि ने भी उस परवर्णिनी का अवलोकन करके अद्‌भुत काम वाला होते हुए उस अरुन्धती को देखा था। हे द्विज श्रेष्ठों! इस रीति से परस्पर में एक दूसरे का अवलोकन करके महान काम की वृद्धि हो गई थी। जिस तरह से किसी प्राकृत अर्थात् साधारण व्यक्ति को बिना ही मर्यादा के कामदेव समुत्पन्न हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य की ही भाँति कामवासना उद्‌भूत हो गई थी।

इसके अनन्तर उस प्रकार उस मेधातिथि की पुत्री ने धीरज का आलम्बन किया था और अपनी आत्मा को तथा मदन (कामदेव) से प्रेरित मन को धारण किया था अर्थात् अपने आपको मन को संयत रखा था। महान् तेजस्वी वशिष्ठ मुनि ने भी अपनी आत्मा में धैर्य रखकर कामवासना से उन्मथित मन को स्तम्भित किया था। इसके अनन्तर देवी अरुन्धती ने मुनि की सन्निधि का त्याग करके अपने मनोरथ की बुराई करती हुई जहाँ पर सावित्री थी वहाँ पर ही वह चली गई थी। वह महासती मानस दुःख की अधिकता से बाध्यमाना होती हुई

मैंने सती का भाव परित्याग कर दिया है, यही वह चिन्तन कर रही थी। उसका कामवासना के द्वारा समुत्पन्न दुःख से मुख कान्तिहीन हो गया था उसका सम्पूर्ण शरीर भी म्लान हो गया था और गति भी मलिन हो गयी थी और उसने यह विचार किया था और अपने मन की गर्हणा (बुराई) करती थी कि यह मन की वृत्ति मृणाल के तन्तु के ही समान परम सूक्ष्म है और उस क्षण में छिन्न हो जाया करती है। सतियों की स्थिति अत्यन्त अल्प चलपता से ही विनष्ट हो जाया करती है। यही सती के धर्म को पढ़ाकर मुझे चरित्र व्रत वाली सावित्री ने कहा था।

सावित्री देवी ने धर्म को यह सार उद्धृत किया था अर्थात् मुझे बतलाया था यह आज परकीय पुरुष में मनोरथ से नष्ट कर दिया है। तात्पर्य यह है कि दूसरे पुरुष में रम जाने ही से वह नष्ट हो गया है। उस समय उस मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती क्या वहाँ पर पराये में मेरा मन होगा इसी विचार को बढ़ाते हुए यही वह चिन्तन कर रही थी। दुःख से आर्त्त वह बहुला और सावित्री देवी के समीप पहुँच गयी थी। उस प्रकार से परम चिन्तित होती हुई, कान्तिहीन मुख वाली उस सती को देखकर ध्यान के चिन्तन में परायण होकर सावित्री ने विचार किया था और दिव्य ज्ञान के द्वारा विचार करती हुई उस सती को पूरा ज्ञान हो गया। जिस प्रकार से वशिष्ठ मुनि ने साथ अरुन्धती का अवलोकन हुआ था और जैसा उन दोनों में अत्यन्त दुःसह कामवासना प्रवृद्ध हुई थी। दिव्य दर्शन करने वाली सावित्री ने अरुन्धती के मुख की कान्ति की हीनता का हेतु भी जान लिया था। इसके अनन्तर उस सावित्री के मेधतिथि की पुत्री के मस्तक पर हाथ रखकर उस महादेवजी ने जो चरित्र व्रत वाली सावित्री थी यही कहा था–हे बेटी! किस कारण से तुम्हारा मुख भिन्न वर्ण वाला हो गया है ?

हे गुणोत्तमे! जिस प्रकार से नाल से छिन्न होने वाला पद्म जो सूर्य के ताप ते तापित हुआ होता है उसी भाँति तेरा शरीर कैसे म्लान हो गया है। जिस तरह से चन्द्र का बिम्ब छोटे से काले बादल के द्वारा सवृत होकर मलिन हो जाया करता है वैसे ही तुम्हारा मुख हो गया है।

हे भद्रे! तुम्हारे मन का आन्तरिक भाव की चिन्ता से युक्त जैसा लक्षित हो रहा है। इसलिए तुम मुझे जो भी गोपनीय रहस्य की बात हो और जो भी इस दुःख का कारण हो उसे बतला दो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इसके अनन्तर वह नीचे की ओर मुख वाली होकर लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी जबकि बड़ी माता सावित्री के द्वारा वह पूछी भी गई थी तब भी बस लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी। जब मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती ने उस समय में कुछ भी नहीं कहा था तो मनस्विनी सावित्री ने स्वयं प्रकाश करके उससे कहा था। हे वत्से! जो तुमने सूर्य के समान प्रभा से समन्वित मुनि को देखा था वह ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ मुनि हैं जो कि तेरा स्वामी होगा और उसका दाम्पत्य भाव को होना तो पहले ही विधाता ने निर्मित कर दिया है। इसलिए आपका जो सतीभाव है वह उस मुनि दर्शन से हीन नहीं हुआ है अथवा जो उसके दर्शन से आपका हृदय कामवासना से संयुत हो गया है इससे भी सतीभाव का निवास नहीं हुआ है। अतएव जो तुम्हारे मन में दुःख है उसका परित्याग कर दो। हे शोभने! तुमने पूर्व जन्म में परम दारुण तप करके ही उस मुनि को अपना पति बनाना तय किया था। इसी कारण से वह भी तुम्हारे लिए सकाम हो गये थे। हे वत्से! तुम श्रवण करो कि अपने ही इस वशिष्ठ मुनि को अपने पति के स्थान में वरण किया था जैसा कि वहाँ पर जिस भाव से निरन्तर आपने तप किया था।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस सावित्री ने यह कहकर जैसे पहले सन्ध्या हुई थी और अपने चन्द्रभागा के तट पर पर्वत में जिसके लिए तप किया था जिस तरह से ब्रह्मचारी के रूप में वशिष्ठ मुनि ने बोधा के वचन से उपदेश की हुई तपस्या की थी और जैसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुए थे। जिस प्रकार से उसके लिए वर दिया था और जैसे भार्या ही की स्थापना की थी अथवा जिस प्रकार से उसके द्वारा वशिष्ठ मुनि को अपना पति होना चाहा था। जिस प्रकार से मेधातिथि ने यज्ञ किया था और जैसे तुमने अपने शरीर का त्याग किया था और जिस रीति से उसकी पुत्री ने जन्म ग्रहण किया

था उस समय में उसको यह विस्तारपूर्वक क्रम से बहुला के साथ सावित्री से कहा था।

इसके अनन्तर इसके वचन का श्रवण करके जो भी पूर्व जन्म में हुआ था। उस समय में यह सुन करके मेरे मन में जो था वह मैंने जान लिया था। इस रीति से वह अत्यधिक लज्जा को प्राप्त कर नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और सावित्री के वचन से वह पूर्व जन्म के स्मरण वाली हो गई थी। उसी भाँति अधोमुखी होकर पूर्व जन्म में जो भी हुआ था उस समय में उस दिव्य ज्ञान वाली अरुन्धती ने सब घटनाओं का स्मरण किया था। पहले भगवान् विष्णु के प्रसाद से वह दिव्य दर्शन होकर इस समय में वह दिव्य दर्शन वाली बाल्यभाव के द्वारा प्रच्छन्न हो गई थी। सावित्री के वचन का श्रवण करके पूर्व जन्म में वृतान्त को सबको प्रत्यक्ष की ही भाँति वह सम्पूर्ण पूर्व ज्ञान को प्राप्त करने वाली हो गयी थी। पूर्व ज्ञान की प्राप्ति करके जो पहले भगवान विष्णु ने दिया था कि मैंने पूर्ण जन्म में इन्हीं वशिष्ठ मुनि का अपने स्वामी के स्थान में वरण किया था। इस ज्ञान के रखने वाली वह देवी अरुन्धती स्वयं ही परम आमोद से समन्वित हो गयी थी और वशिष्ठ मुनि ने दर्शन से पूर्व में उसकी कामवासना के अद्भुत होने का भी पूर्ण ज्ञान हो गया था।

जिस प्रकार से उसके मन में सतीत्व के निवारण करने में आतंक समुत्पन्न हो गया था उस समय में उस मेधातिथि की पुत्री ने उस समय में उस आतंक को स्वयं ही त्याग दिया था। इसके उपरान्त चिन्ता को त्याग देने वाली उस अरुन्धती सती को समझकर तब सावित्री सूर्यदेव के भवन को चली गई थी। इसके अनन्तर सावित्री अरुन्धती को उस सूर्यदेव के मन्दिर में बिठाकर वह सर्वज्ञा और श्रेष्ठ सती सावित्री ब्रह्माजी के भवन को चली गई थी वहाँ पर ब्रह्माजी को प्रणाम किया था और ब्रह्माजी के द्वारा पूछी गई उस सावित्री से अमित ओज वाले ब्रह्माजी ने कहा था—हे भगवान्! आप तो समस्त जगतों के स्वामी हैं। आपके पुत्र वशिष्ठ मुनि को मानस पर्वत के शिखर पर उस सती

अरुन्धती ने देखा था। फिर उसके केवल अवलोकन करते ही कामदेव की वासना अधिक बढ़ गई थी। हे प्रजापते! वे दोनों ही परस्पर स्पृह करने वाले हुये थे। वे दोनों ही ने बड़े धीरज से बहुत ही दुःखित होकर काम की वासना का स्तम्भन किया था। वे दोनों ही अन्य मनस्क होकर अथवा उदास होते हुए परम लज्जित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये थे।

हे सुरश्रेष्ठ! ऐसा हो जाने पर जो भी कुछ समुचित होवे उस समय में यही आप कीजिए। भविष्य काल की भलाई में लोकों की हितकामना से वही आप करें जो उचित हो। समस्त जगतों के गुरु ब्रह्माजी ने यह उसके वचनों को श्रवण करके आगे होने वाले कर्म की प्रवृत्ति का दिव्य ज्ञान के द्वारा दर्शन किया था अर्थात् समझ लिया था कि भविष्य में क्या होने वाला है। उस अवसर पर लोक पितामह ने इसका स्वागत ही किया था क्योंकि उन दोनों के दाम्पत्य भाव का समय यह उपस्थित हो गया था। इसीलिए लोकों के हित के लिए उसकी प्रवृत्ति के लिए अवश्य ही जाऊँगा। ऐसा मन के द्वारा निश्चय करके सावित्री के साथ ब्रह्माजी ने गमन किया था और वे मानव गिरि के प्रस्थ पर गये थे जहाँ पर कि उन दोनों का दर्शन हो जावे। पितामह के वहाँ चले जाने पर शिव समस्त सुरगुणों सहित नन्दी प्रभृति गणों के साथ वृषभध्वज वहाँ पर आ गये थे। भगवान वासुदेव भी ब्रह्माजी के द्वारा परिचिन्तित होकर वहाँ पर आ गये थे जो कि जगत् के साथ वह भी भक्ति की भावना से शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले थे। जहाँ पर ब्रह्मा और शिव स्थित थे वे भी वहाँ पर स्वयं ही आ गये थे। इसके अनन्तर जगतों के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन तीनों ने मेधातिथि के समीप में देवर्षि नारदजी को दूत बनाकर भेजा था।

उन्होंने नारदजी ने कहा—हे नारद! आप शीघ्र ही चन्द्रभागा नामक पर्वत पर चले जाइए। वहाँ पर उस पर्वत की उपत्यका में परम श्रेष्ठ मुनि मेधातिथि विराजमान हैं। आप उनको हमारे वचन से यथाकाम स्वयं ही हमारे पास ले आइए। आप स्वयं ही मेधातिथि को साथ में

लाकर शीघ्र ही यहाँ पर आ जाइए। ब्रह्मा आदि के वचन का श्रवण करके नारदजी शीघ्र ही चले गये थे और सब कार्य की सिद्धि के लिए वे मेधातिथि को वहाँ पर लाने के लिए प्रस्थान कर गए थे। उन देवर्षि ने मेधातिथि से सम्भाषण करके देवों के वचनों से मेधातिथि को अपने साथ लाकर मानस पर्वत पर चले गये थे। वहाँ मानस पर्वत पर समस्त देवगण इन्द्र के सहित और सब तपोधन, मुनिगण, साध्य, विद्याधर, दक्ष और गन्धर्व भी वहाँ पर समागत हो गये थे। सब देव और समस्त देवियों और जो देवों के अनुचर थे तथा जो अन्य जन्तुगण थे वे सभी मानस के प्रस्थ को समायात हो गये थे। इसके पश्चात् देवों के समाज के सम्पन्न हो जाने पर कमलासन ने मेधातिथि मुनि से अतिदेश करते हुए यह वचन कहा था।

ब्रह्माजी ने कहा–हे मेधातिथे! आप अपनी सुचारित व्रत वाली पुत्री अरुन्धती को इस देवों के समाज में ब्रह्मविधि से दे दीजिए। मैंने इन दोनों का वर वधू होना पहले ही सृजित कर दिया है। भगवान हरि ने भी इस परम समुचित कर्म के विषय में आज्ञा प्रदान कर दी थी। ऐसा समाचरण करने पर आपके कुल में बड़ा भारी यश होगा और इससे समस्त प्राणियों की भलाई भी होगी। अतएव शीघ्र ही दे दीजिए और इस कार्य में विलम्ब नहीं कीजिए। फिर ब्रह्माजी ने इस वचन का श्रवण करके वह मुनि बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे और उन्होंने कहा था–'ऐसा ही होगा' फिर उसने समस्त देवों को प्रणाम किया था। उस मुनि के वचन का श्रवण करके वह अपनी पुत्री अरुन्धती को ले आये थे। ध्यान में स्थित वशिष्ठ मुनि के समीप में देवों के साथ चले गये थे। देवों के द्वारा पतिव्रत मुनि ने वशिष्ठ जी के समीप में पहुँचकर जो मुनि ब्रह्मश्री से देदीप्यमान थे और प्रज्जवलित अग्नि के ही समान कान्ति वाले थे। उनके पृथक-पृथक उस मानस पर्वत की कन्दरा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में बुद्धि को धारणा किये हुए समासीन मुनि का दर्शन किया था। वहाँ पर अरुन्धती के पिता के ओजस्वियों में परमश्रेष्ठ, उदितवान सूर्य के समान, नियत आत्मा वाले वशिष्ठ मुनि

के जल को रखकर आशीर्वाद करने वाले मन्त्रों से, गायत्री से और द्रुपदादि मन्त्रों से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने स्वयं ही उन दोनों का स्नपन किया था। इसके अनन्तर अन्य महर्षियों ने और जो देवर्षियों ने शान्ति की थी।

उन सबने महान स्वर समन्वित ऋक्, यजु और साम वेदों के मन्त्र भागों द्वारा गंगा आदि सरिताओं के जलों से उन दोनों को फिर शान्ति की थी। तीनों भुवनों में सञ्चरण करनेवाला सूर्य के समान वर्चस् वाला विमान जो अव्याहत गति से समन्वित था और जल के सहित कमण्डलु उन दोनों के लिए ब्रह्माजी ने हाथ में दिया था। भगवान् विष्णु ने दुष्प्राप्य उत्तम स्थान दिया था जो मरीचि आदि के समीप में सब देवों का ऊर्ध्व था। भगवान् रुद्रदेव ने उन दोनों के लिए सात कल्पों के अन्त पर्यन्त जीवित बने रहने का वर दिया था। अदिति ने कुण्डलों का जोड़ा दिया था जो ब्रह्माजी के द्वारा अपने ही द्वारा निर्माण किये गए थे। उस समय में मेधातिथि ने कुण्डल अपने कानों से निकालकर पुत्री के लिए दिये थे। सावित्री ने पतिव्रता होना ओर बहुला ने बहुत पुत्रों वाली होना ये आशीर्वाद दिया था। देवेन्द्र ने बहुत से रत्नों का समूह कुबेर के ही समान दिया था। इस रीति से देवगण, मुनियों, देवियों और जो भी अन्य जन वहाँ पर उपस्थित थे सबने यथायोग्य दान उन दोनों के लिए पृथक्-पृथक दिया था। इस प्रकार से विधिपूर्वक विवाह करके सुवर्ण के मानस पर्वत पर वशिष्ठ और अरुन्धती रहे थे और वशिष्ठ जी ने उस अरुन्धती के साथ परम हर्ष प्राप्त किया था।

विवाह के अवभृथ के लिए और शान्ति के लिए जो सुरों के द्वारा लाया हुआ जल था वहाँ पर वह जल मानस पर्वत की कन्दरा में गिरा था। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के हाथों में समुदीरित वही जल सात भागों में विभक्त होकर मानस पर्वत से गिरा था। उससे शिप्रा नदी समुत्पन्न हुई थी जो भगवान विष्णु के द्वारा भूमण्डल में प्रेरित की गई थी। महाकौषी के प्रपात में जो पतित हुआ था उससे कौषकी नाम वाली नदी उत्पन्न हुई थी और जो विश्वामित्र ऋषि के द्वारा अवतारित

थी। उमा के क्षेत्र में जो जल गिरा था उससे महानदी समुत्पन्न हुई थी जो महाकाल नामक सर से निकली है। सरों में श्रेष्ठ महाकाल में गिरि वह जल पतित हुआ था। हिमवान पर्वत के पार्श्वभाग में भगवान शम्भु की सन्निधि में जो जल गिरा था उससे गोमती नाम वाली नदी समुत्पन्न हुई जो गोमद से उदीरित है।

मैनाक नाम वाला जो पुत्र मौलराज के ही समान था पहले वह उसी शिखर में मेनका के उदर से समुत्पन्न हुआ। यह जल वहाँ गिरा था उसका शुभनाम दविका था जो महादेव के द्वारा सागर की ओर प्रेरित की गई थी। जो जल हंसावतार की सन्निधि में संगत हुआ था उससे सरयू नाम वाली नदी उत्पन्न हई थी जो परम पुण्यतम कही गई है। जो जल खाण्डव वन की सन्निधि में महापार्श्व के गिरे थे जो कि हिमवान की कंदरा में याम्य में पतित हुये थे वहाँ इरा के ह्रद के मध्य से इरावती नाम वाली नदी के जन्म धारण किया था जो सरिताओं में परम श्रेष्ठ है। ये सभी सरितायें स्नान पान और सेवन से जाह्नवी गंगा के तुल्य है। ये सब सदा दक्षिण सागर में गमन करने वाले मनुष्यों को फल दिया करती हैं। ये नदियाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सनातन बीज भर्ता हैं अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए कारण स्वरूप ही हैं। ये सात महानदियाँ सर्वदा देवों के भोगों को प्रदान करने वाली हैं। इस रीति से सता नदियाँ समुत्पन्न हुईं थी जो सदा ही पुण्य जल वाली थीं।

देवों की सन्निधि में अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि का विवाह हो जाने पर इस प्रकार से उस अरुन्धती के साथ विवाह करके उस अवार पर वे वशिष्ठ मुनि उस अरुन्धती को लेकर देवों के द्वारा दिये हुए स्थान में ही उसी समय से वशिष्ठ मुनि श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वचन से ही उस पूर्वोक्त स्थान पर चले गये थे। वे समस्त जगतों के हित के सम्पादन करने के लिए तीनों भुवनों में सर्वदा जिस-जिस युग में स्त्रियों को जैसे भी है वैसे ही हो जाते हैं। वेशभाव और शरीर को धर्म से नियोजन करके यह परम प्रसन्न बुद्धिवाले, प्रमाद से रहित

होते हुए तीनों लोकों में विचरण किया करते हैं। इसी रीति से मुनि वशिष्ठ ने पहले अरुन्धती के साथ परिणय की गई थी। जो पुरुष इस धर्म के साधन स्वरूप आख्यान को नित्य ही श्रवण किया करता है वह सब प्रकार के कल्याणों से युक्त होकर चिरायु और धनवान हुआ करता है।

जो कोई स्त्री निरन्तर अरुन्धती की इस कथा को सुना करती है वह इस लोक में पतिव्रता हो परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति किया करती है। यह आख्यान परम कल्याण का गृह है और यह परम धर्म के प्रदान करने वाला है। यह आख्यान सर्वदा कीर्ति, यश, पुण्य का विशेष बढ़ाने वाला है। पुरुष के विवाह में, यात्रा में और श्राद्ध में जो श्रवण करता है उनकी स्थिरता, पुंसवन, सिद्धि और पितृगण प्रीति हो जाया करती है। यह सम्पूर्ण महात्मा वशिष्ठ का आख्यान आपको कह दिया है जिस प्रकार अरुन्धती उनकी भार्या और परम पतिव्रता हुई थी। वह जिसकी पुत्री होकर उत्पन्न हुई और जिस तरह से उसने अपना जन्म ग्रहण किया था तथा जिस स्थान में उसका समुद्भव हुआ था और जिस प्रकार से उसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के वचन से अपने पति का वरण किया था, यह सभी कुछ गुह्य से भी अत्यधिक गुह्य को मैंने आपको वर्णन करके समझा दिया है। यह आख्यान पुण्य का दाता पापों का हरण करने वाला और वायु तथा आरोग्य के बढ़ाने वाला है। यह बहुत वर्षों के पापों को क्षय करने वाला इतिहास है। इसको सभा में द्विजों को कोई एक बार भी श्रवण करा देता है वह मनुष्य कलुषों के समूह से हीन देह वाला हो जाता है और साथ में रहकर मुनिवरों की सहचर्या को प्राप्त कर लेता है और मृत होने पर वह देवता ही हो जाता है।

सती का विभूति वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त हिमालय पर्वत के प्रस्थ पर शिप्र सरोवर के तट पर उपविष्ट हुए महादेवजी समीप में उस

सरोवर का अवलोकन कर रहे थे। बारम्बार ब्रह्मा और हरि के द्वारा प्रेष्यमाण यह ध्यान करने के लिए मन को स्थिर करके दृढ़ आत्मा वाले हुए थे। आत्मा के द्वारा आत्मा को आत्मा में ही विशेष रूप देखने के लिए कामदेव को शमन करने वाले शिव के ध्यान के द्वारा परम यत्न किया था। दुहिण प्रभृति ने ध्यान प्रविष्ट चित्त वाले उनको देखकर यतमानस होते हुए हर में प्रवेश की हुई माया नाम वाली का स्तवन किया था। माया मोहित हुए शिव बहुत ही अधिक सती के शोक से व्याकुल हैं और वह उसी के लिए विलाप किया करते हैं उसमें मोह के हेतु जगत्प्रभु की स्तुति करके शम्भु में कर देंगे। जब तब सती पुनः शरीर का ग्रहण करके शिव की भामिनी होवे तब तक यह विगत शोक वाले होकर निष्कल का ध्यान करें। ब्रह्मा आदि देवगण यही मन से चिन्तन करके महामाया योगनिद्रा देवी की स्तुति करने का सभारम्भ उन्होंने कर दिया था।

देवों ने कहा—उस श्री शक्ति पावनी पुष्टि और परम निष्कला का जो महान् अव्यक्त रूप वाली है हम लोग महतीभक्ति की भावना से स्तुति करते हैं। वह परम शिवा है, शिव अर्थात् कल्याण के करने वाली हैं शुद्धा, स्थूला, सूक्ष्मा, परावरा, अन्तर्विद्या, अविद्या नाम वाली, प्रीति और एकाग्र योगिनी हैं। आप ही मेधा हैं, आप ही धृति हैं, ह्रीं हैं और आप एक सबके गोचरा हैं, आप ही दीधिति हैं, सूर्य में गति हैं और सुप्रपञ्च के प्रकार करने वाली हैं। जो ब्रह्मांड संस्थान है, जो जगत् के बीजों में जगत् है जो ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब के अन्त पर्यन्त आप्यायित किया करती हैं। जो समस्त जगतों का प्राणभूत सदागति और देवों का आधार है वह नभ भी आपका ही एक अंशभूत हैं। इस प्रकार से जो तेज है वह सर्वत्र ही भली भाँति जायेगा वह आपका रूप जगत् के बीच है और जो प्रायः दिखाई दिया करता है।

जो ब्रह्मलोक पाताल और सदा अन्तरात्मगता है वह आप वियत् (आकाश) के मध्य में और बाहिर और ब्रह्माण्ड के सभी ओर है। जो अचल चल चक्र से यांत्रित प्रपंच को उत्पन्न करने वाली है। आप

इस जगत् की धात्री, लोकमाता हैं और आप माधवी क्षिति हैं। आप बुद्धि हैं और आप ही उसके विषय हैं, आप माता हैं और छन्दों की गति हैं आप गायत्री, वेदमाता और आप सावित्री तथा सरस्वती हैं। आप ही जब जगती की वार्ता हैं और आप कामरूपिणीत्रयी हैं। आप निद्रा के स्वरूप के द्वारा प्राणी हैं तथा निर्जर आदि हैं। निर्जर देवों का नाम है जो स्वर्ग आदि के स्थान वाले हैं उन सबको आप सुख देती हुई प्रकट रूप से मोहयुक्त किया करती हैं। आप पुण्य कार्य करने वालों के लिए लक्ष्मी हैं और जो पाप कर्म किया करते हैं, उनके लिए साक्षात यातना हैं। उसी भाँति जो नीति के धारण करने वाले पुरुष हैं उनके लिए श्री हैं और नैतिकी धृति सुख देने वाली हैं। आप सब जगतों की शान्ति हैं और आप चन्द्र में गोचर होने वाली कान्ति हैं। आप समस्त प्राणियों की धात्री हैं और आप विष्णु का मोहन करने वाली लक्ष्मी हैं। आप भूतों के तत्त्व रूप वाली हैं और आप पाँचों भूतों की सार करने वाली हैं। त्रिलोकी की महामाया हैं।

भगवान महेश्वर सर्वभूत को संसार चक्रों में समारोपिति करके जैसे भ्रमण कराते हुए हैं, हे महेश्वर! वह माया आप ही हैं। आप जय से युक्तों की जयन्ती, ह्रीं, विद्या, उत्तमा नीति हैं, आप सामदेव की गीतिका हैं, आप चतुर्वेदों की ग्रन्थि और हुति हैं। आप समस्त देवों के समुदाय के प्रपंच को एक ही करने वाली हैं। जो स्तुति नहीं हुई वह आप यहाँ भव्य के करने वाली होवें। इस संसाररूपी महासागर की महान् कराल तरंगों के दुःखों से विस्तार करने वाली तरणि हैं\जो स्थिति की रीति से हीन हैं। जो अष्टांग रूप परम पावन केलिगीत के विक्षेप करने वाली हैं उसको निश्चय ही हम प्रणाम करते हैं। आप नासिका, नेत्र, मुख, भुजा और वक्षःस्थल में और मानस में सुखों को धारण करके सदा ही जन्तु का पालन किया करती हैं, जो संसार में होने वालों सुभगा निद्रा हैं, ऐसे जानी जाया करती हैं यही आप हमारे ऊपर धृति, स्मृति और वृत्ति रूप वाली प्रसन्न होवें। जो सृष्टि स्थिति और अन्त में रूप वाली अथवा सृजन, पालन और संहार करने वाली

हैं, जो सृष्टि, स्थिति और अन्न की शक्ति हैं वह माया हम पर प्रसन्न होवें।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—महामाया योगनिद्रा यह उस समय में सुरों के द्वारा संस्तुता है वह शीघ्र ही भगवान हर के हृदय से निकली थी। उसके विनिःसृत होने पर उसमें मधुसूदन ने प्रायदेश किया था। विश्व के रूप को धारण करने वाले भगवान ने स्वयं उन शम्भु की शान्ति के लिए ही उनके अन्दर प्रवेश करके कल्प-कल्प में ऐसे हो गये थे और अच्युत प्रभु ने सृष्टि, स्थिति और अन्त को वैसा ही दिखला दिया था जिस रीति से उनकी सती जाया हुई और वह जो जिसकी पुत्री हुई थी तथा जैसे सती युक्त देह वाली हुई थी वह सभी दिखला दिया था। बाहर व्यक्त हुआ प्रपञ्च और बहुत रजोगुण और पर ज्योति को दिखलाकर फिर उस समय में उनको योग चित्त वाला कर दिया था। फिर भगवान शंकर ने भी अनेक बार उन समस्त प्रपञ्चों का भक्षण करके उस समय में उन्हें निःसार मानकर सार वस्तु में ही चित्त को निवेशित किया था। उस समय में ब्रह्मा आदि देवों की माया उनके द्वारा परितुष्टित होकर और कर्त्तव्य की प्रतिज्ञा करके वहाँ पर ही शीघ्र अन्तर्धान हो गई थी। बैकुण्ठ नाथ भगवान भी पद में भगवान शम्भु के चित्त को संयमित करके रवि मण्डल से राजा की ही भाँति शरीर से निकल गये थे।

उस समय ब्रह्मा और नारायण प्रभृति समस्त देव कृतकृत्य अर्थात् सफल हो गये थे और प्रीति से युक्त होकर गिरि पर हर को छोड़कर अपने-अपने स्थान को चले गये थे। ध्यान में समास्त महादेव जी को प्रणाम करके इन्द्र आदि सुगण मौनधारी देव को विज्ञापन करके अपने-अपने स्थान को चले गये थे। उन देवों के चले जाने पर वृषभ के वाहन वाले शम्भु दिव्यमान से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त परज्योति के ध्यान में संलग्न हो गये थे। ऋषियों ने कहा—भगवान् मधुरिपु ने कैसे शम्भु के हृदय में शीघ्र प्रवेश करके कल्प-कल्प में सृष्टि, स्थिति और संयम को दिखलाया था। जिस तरह से रजोगुण के द्वारा जगत् के

प्रपंच के लिए जगतीतल में गये थे। फिर कैटभारी प्रभु ने उनकी निःसारता को किस प्रकार से दिखलाया था ? हे द्विजश्रेष्ठ! उन्होंने फिर सारतर, गोपनीय, सनातन परज्योति को दिखलाया था ? वह सत्य बतलाइए। यही हम सब श्रवण करने की इच्छा करते हैं। यह अतीव अद्भुत है उसे हम आप मुनीन्द्र के मुख से ही सुनने के इच्छुक हैं। आप इसको विस्तारपूर्वक कहिए क्योंकि यह परम निःश्रेयम धर्म है।

सर्ग इत्यादि का वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विजश्रेष्ठों! मैं आदि सर्ग वाराह का वर्णन करूँगा जिस तरह से कल्प-कल्प में वाराह में जैसी सृष्टि हुई थी। भगवान् हरि ने प्रतिसर्ग में उसी भाँति आदि सृष्टि को दिखलाकर भगवान् शम्भु के लिए प्रलय आदि को दिखलाया था, इसे समझ लो। सबसे प्रथम मैं प्रलय का प्रर्णन करूँगा। उसके पीछे आदि सर्ग को बतलाऊँगा। हे विप्रो! प्रति सर्ग में फिर वाराह का ज्ञान प्राप्त कर लो। काल के एक अंश को निमेष कहा जाता है जो नेत्रों के उन्मेष से विशेष लक्षित हुआ करता है। उन अठारह निमेषों से एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं की एक कला है। उतनी ही अर्थात् बीस कलाओं से एक क्षण नामक कहा गया है। बारह क्षणों से एक मुहूर्त कहा गया है तथा बीस मुहूर्तों से मनुष्यों का अहोरात्र होता है और पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है। पक्षों में मनुष्यों के वर्ष होते हैं जो कि पितृगणों का एक अहर्निश हुआ करता है। बारह मासों का एक वर्ष होता है जो देवों का एक अहोरात्र ही है। पितृगणों के कर्म के लिए कृष्ण पक्ष ही दिन माना गया है।

स्वप्न अर्थात् शयन करने के लिए शुक्ल पक्ष होता है जो रजनी कही गई है। उत्तरायण सूर्य के होने पर छः मास देवों का दिन कहा गया है। दक्षिणायन के छः मास देवों की रात्रि शयन करने की हुआ करती है। सूर्य के समुत्पन्न दो-दो मासों से ऋतु कहा गया है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है जो मनुष्यों का माना गया है। छः

ऋतुओं का एक वत्सर (वर्ष) होता है। और उनको आप पृथक-पृथक सुनिये। हे द्विजोत्तमो! संज्ञा के भेद से चैत्र आदि दो मासों से ऋतु को समझिए। चैत्र और वैशाख दो मास में बसन्त ऋतु होता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ दो मास में ग्रीष्म ऋतु हुआ करता है। श्रावण और भाद्रपद इन दो मासों में वर्षा ऋतु हुआ करता है। आश्विन और कार्तिक मासों में शरद् हुआ करता है। अगहन और पौष में हेमन्त ऋतु होता है तथा माघ और फाल्गुन मासों में शिशर ऋतु होता है। ये छै ऋतुये कही गई हैं जो यज्ञादि में पृथक विहित किये गये हैं। मनुष्यों के मान से सत्रह क्षय है और अट्ठाईस सहस्त्र का मान कृतयुग का है। अन्तराल में अर्थात युगों के मध्य में चार सौ वर्षों का सन्ध्याकाल होता है। सन्ध्यांश उतने से ही कहा गया है जो अन्तर्गत ईक्षित होता है।

त्रेता युग मनुष्य के बारह लक्ष वर्षों का हुआ करता है और इस युग की सन्ध्या का समय छियानवे हजार तीन सौ वर्षों का हुआ करता है। उसके अन्दर तीन सौ सन्ध्यांश कहा गया है। प्रमाण से चौंसठ हजार लक्ष और आठ वर्ष का द्वापर का नाम वाला युग होता है उनमें दो सौ की सन्ध्या होती है। दो वर्ष का सन्ध्यांश अन्तर्गत ही अभीष्ट हुआ करता है। चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग का समय होता है। वर्षों का मान होता है और एक सौ वर्ष की सन्ध्या का काल होता है। इसके अनन्तर में एक-एक सौ वर्ष का सन्ध्यांश है। इस रीति से कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग मानुषमाण से चार युग हुआ करता हैं। ये चारों युग सैंतालीस लाख वर्षों के मान से हुआ करता है। बीस सहस्त्र वर्षों की इन सबकी सन्ध्या का अंश हुआ करता है जो कि उस सन्ध्यांश से संयुत है।

रात्रियों के सहित देवों का दिन मनुष्यों का एक वत्सर होता है। इस प्रकार से क्रम की गणना करके मनुष्यों के चारों युगों से देवों के बारह सहस्त्र वर्ष कीर्त्तित किये गए हैं। देवों के बारह सहस्त्र वर्षों का दैविक युग हुआ करता है। वह मनुष्यों के चार युग हैं जिसमें सन्ध्या और सन्ध्याँश भी सम्मिलित होता है। देवों के कृतयुग में त्रेता, द्वापर

की व्यवस्था से युग व्यवहार नहीं है और धर्म आदि की भिन्नता भी नहीं है। किन्तु मनुष्यों का चतुर्युग अर्थात् चारों युग सदा देवों का युग होता है। इकहत्तर देवों के युगों से एक मन्वन्तर हुआ करता है। देवों के दो सहस्त्र युगों का ब्रह्माजी का एक अहोरात्र हुआ करता है। मनुष्यों के मान से दो सहस्त्र चारों युग होते हैं। एक ब्रह्माजी के दिन में चौदह मनु होते हैं। इस प्रकार से ब्रह्मा के मान से तीन सौ दिनों से आठों से वत्सर होता है जैसे मनुष्यों का है वैसे ही ब्रह्मा का वर्ष होता है। ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्मा के पाँच सौ वर्षों से परार्ध कीर्त्तित किया गया है। वह ईश्वर का दिवस है और उतनी ही रात्रि कही जाती है।

ब्रह्माजी के एक शत वर्ष का काल दूसरा परार्धक होता है द्वितीय परार्ध के व्यतीत हो जाने पर जो ब्रह्मा का है, प्रलय होता है। पर ब्रह्मा के लीन हो जाने पर जगतों का आधार, अव्यय और पर से भी पर है। उस ब्रह्मा के स्वरूप के दिवारात्र का जो होता है उससे हर नाम उसका आधा परार्ध कहा जाता है। जगत् के स्वरूप वाले भगवान् परमात्मा का अक्षर और अव्यय होता है। जो स्थूल से स्थूलतम और जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम माना गया है उसका दिवारात्रि का व्यवहार नहीं होता है और वत्सर ही है। किन्तु पूर्व पौराणिकों के द्वारा और उस प्रकार के हमारे भी द्वारा सृष्टि और प्रलय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अहर्निश कल्पित किया जाया करता है। वह ही रात्रि है, वही वर्ष है और वह क्षिति है तथा सृष्टि के करने वाला हर है। वह विष्णु के रूप वाले पुराण पुरुष हैं। उसी से यह समस्त उसी की भांति विभात होता है। यह शाश्वत परमात्मा ब्रह्म के लीन होने पर यह सम्पूर्ण जगत् क्रम से ही उसके रूपत्व के लिए गमन किया करता है अर्थात् उसी का स्वरूप बन जाया करता है।

ब्रह्मा के सौ वर्ष के अन्त में रुद्रदेव के स्वरूप वाले भगवान जनार्दन स्वयं इस जगत का अन्त करके परमरूप में लीनता को प्राप्त हो जाते हैं। सबसे प्रथम तो सवित अपनी परम तीक्षण किरणों से स्थावर और जंगम सम्पूर्ण जगत् के जल का शोषण करके स्वयं ग्रहण

कर लेंगे। शुष्क वृक्ष, तृण, गण, प्राणी तथा पर्वत चूर्ण होकर दिव्य सौ वर्ष में विकीर्ण हो जायेंगे। फिर बारह सूर्यों की बहुत ही अधिक प्रबल किरणें हुईं और जगत के भोग्य से उपवृंहित द्वादश आदित्य हुए थे। द्यौ और मेदिनी उष्णता को प्राप्त हो गये थे। इसके उपरान्त सम्पूर्ण स्थावर और जंगम के विनष्ट जाने पर आदित्य की किरण से रुद्ररूपी देव जनार्दन उन्नत हो पाताल नदी को प्राप्त हो गये थे।

सात पाताल के संस्थानों को नाग, गन्धर्व और राक्षसों को, देवों को, ऋषियों को और शेष को नर शूल के धारण करने वाले ने हनन कर दिया था। इसी प्रकार से स्वर्ग में, पाताल में, पृथ्वी में और सागरों में जो भी प्राणधारी जीव थे उन प्रभु जनार्दन ने उन सबको मार दिया था। इसके पश्चात मुख से महावायु का रुद्रदेव ने स्वयं सृजन किया था। वह अव्याहत गति वाला वायु दृढ़ता से संसार के तीनों भुवन के गर्भ में गमन करने वाला सौ वर्ष तक भ्रमण करता हुआ जो भी कुछ था उस सबको तुला राशि के ही समान उसको उत्साहित कर दिया था। सभी ओर जगत में रहने वाले सम्पूर्ण को समुत्साहित करके वेग में अत्यधिक वह वायु बारह आदित्यों में प्रवेश कर गया था। उनके मण्डल में प्रवेश करके उनके तेज के साथ वायु गुरुदेव के द्वारा प्रतियोजित होते हुए महान मेघों का उसने समारम्भ कर दिया था। फिर प्रेरित हुए वे मेघ जो उस वेग वाले वायु के द्वारा ही प्रेरित किये गये थे अतिरौद्र के द्वारा मेघों ने स्थल को घेर लिया था।

सम्वर्त नाम वाले महामेघ जो भिन्न अञ्जन के समूह के समान थे। उनमें कुछ तो धूम्र वर्ण वाले थे, कुछ शुक्ल और कुछ चित्र विचित्र वर्ण वाले महाभीषण थे। कुछ मेघ पर्वत के तुल्य आकार से युक्त थे, कुछ नाम के समान प्रजा के समन्वित थे, कुछ बड़े विशाल प्रासाद के समान थे और कुछ क्रौंच के वर्ण वाले महान भीषण थे। वे महामेघ गर्जन करते हुए सौ वर्ष से भी अधिक समय तक महान शब्द करने वाले वे मेघ तीनों लोकों का प्लावन करते हुए वर्षा करते थे। इसके अनन्तर स्तम्भ (खम्भा) के प्रमाण वाले धाराओं के पास से खूब दृढ़

धारासार से जो कि बहुत ही महान थी तीनों भुवनों को पूरित कर दिया था। आधुवस्थान को प्राप्त करके जल समूह के स्थित होने पर रुद्ररूपी प्रभु जनार्दन ने अपने मुख से वायु का सृजन किया था। उस वायु के ओघ से क्षित मेघ सौ वर्ष तक अव्याहत गति वाले वायु के द्वारा फिर ध्वस्त हो गये थे। उन मेघों के विनिष्ट हो जाने पर फिर दया से सहित रुद्रदेव ने ब्रह्मभुवन तक जानलोक आदि का विध्वंस कर दिया था।

समस्त भुवनों के विध्वस्त हो जाने पर और विशेष रूप से ब्रह्मलोक के विध्वस्त होने पर गुरुदेव द्वादश अरुणों के समीप गये थे। वे हरि महान वेग के साथ द्वादश आदित्यों के समीप में पहुँचे थे और उनको ग्रसित कर लिया था फिर उन गर्भ में स्थित दिवाकरों के द्वारा अत्यन्त प्रज्वलित हो गए थे। इसके उपरान्त कालान्तक के समान महान बलवान रुद्रदेव ब्रह्माण्ड में प्राप्त हुए थे और वह सबको मुष्टिपेष चूर्ण कर दिया था। ब्रह्माण्ड चूर्ण करते हुए उन्होंने पृथिवी को भी चूर्णित कर दिया था। उन हरि ने योग के बल से समस्त जलों को धारण कर लिया था। जो जल पूर्व में सब और ब्रह्माण्ड से बाहर स्थित था अथवा जो अभ्यन्तर में रहने वाला जल था वह सब एक-रूपता को प्राप्त हो गया था। सब ओर सर्वव्यापी जनों के एकीभूत हो जाने पर ब्रह्माण्ड के खण्डों में पूर्णोध वह नौका की ही भाँति प्लवन करते हुए थे। इसके अनन्तर पृथ्वी का सार गन्ध तन्मात्रक से क्रम से जल ने ग्रहण कर लिया था और सम्पूर्ण पृथ्वी विनष्ट हो गई थी।

फिर उन रुद्रदेव ने गर्भ में स्थित तेजों को अपने शरीर से निकाल दिया था। पुनः भीषण रूप से वे पुन्जीभूत हो गये थे। उन तेजों ने छोर तक स्थित सबको ग्रहण कर लिया था और भीतर, बाहर ब्रह्माण्ड से जो तेज था तथा अन्य से गया हुआ था उस सबको ग्रहण किया था। जगत में रहने वाले सम्पूर्ण तेज का ग्रहण करके एक ही स्थान के जलते हुए ने रौद्र ब्रह्माण्ड के खण्डों को जल में त्रिर्दोष कर दिया था। ब्रह्माण्ड के चूर्णों का दाह करके वे तेज उज्ज्वलित हो गये थे फिर जलों से जो उनकी रस तन्मात्रा थी जो कि सारभूत थी उसका ग्रहण

कर लिया था। रूप तन्मात्रा के ग्रहण किये जाने पर सम्पूर्ण तेज विनष्ट हो गये थे और अनादित वायु प्रबल हो गया था। इसके अनन्तर वायु महान शब्द वाले को प्राप्त करके अग्नि की भाँति प्रज्वलित होते हुए रुद्रदेव संक्षुब्ध हो गये थे और उस समय में आकाश को गया था।

उससे संक्षुब्ध आकाश की वायु ने ग्रहण कर लिया था। उसके अन्दररूप की तन्मात्रा को लेकर फिर वायु भी नष्ट हो गया था। वायु के नष्ट हो जाने पर यह रुद्रदेव उस समय ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश कर गये थे। उस अवसर पर ब्रह्मशरीर आकुल, निराधार और निराकुल हो गया था फिर शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान विष्णु के शरीर में उसने प्रवेश किया था। इसके उपरान्त महान् तेजस्वी भगवान कृष्णा ने अपना पञ्च भौतिक शरीर जो अच्युत और शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाला था सबसे सार का आदान करके अपनी शक्ति के द्वारा शीघ्र ही त्याग दिया था। जो बिना आधार वाला तथा आकार से रहित, निःसत्त और निरवह था। जो आनन्द से परिपूर्ण, अद्वैत, द्वैत से हीन और बिना विशेषण वाला था उसका त्याग कर दिया था।

जो न तो स्थूल और न सूक्ष्म ही है जिसका ज्ञान नित्य एवं निरञ्जन है। वह एक ही परब्रह्म है जो सभी ओर से अपने द्वारा ही प्रकाश वाला है। जो न तो दिन है और न रात्रि ही है। न आकाश है और पृथ्वी है। वह तप भी नहीं था और अन्य ज्योति भी नहीं था। श्रीत्रादि और बुद्धि आदि से उपलभ्य एक प्राधानिक ब्रह्म है। उस समय में पुमान् था। इस प्रकार से जब तक यह सृष्टि स्थित थी तब तक ही सृष्टि का बलाबल था। एक ही परतत्व था फिर उससे सृष्टि प्रवृत्त होती है। क्योंकि सभी तन्मात्राओं का संचय प्रकृति में संस्थित था जो प्राकृत लय था उसके अहंकार और महत्तत्व गत हो गये थे। जो अतीत प्रलय वाला अव्यक्त था वह भी प्रकृति में संस्थित था इसी कारण से प्रत्येक यह संज्ञा प्राकृत संज्ञा वाला है और ऐसा कहा जाया करता है। हे विप्रो! यह प्राकृत नाम वाला महान लय आपको बतला दिया है। मेरे द्वारा पुनः इस आदि सृष्टि का आप लोग श्रवण कीजिए।

आदि सृष्टि का वर्णन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह काल नाम वाला स्वयं देव ही है जो सृजन, पालन और संहार करने वाला है। उसके किसी भाग से सृजन और प्रलय अविच्छिन्न है। लय भाग के व्यतीत हो जाने पर सृजन करने की इच्छा समुत्पन्न हुई थी और ज्ञान के स्वरूप वाले उस समय परब्रह्म विभु को ही सृजन की इच्छा उत्पन्न हुई थी। इसके अनन्तर उसके द्वारा प्रकृति स्वयं ही भली भाँति धृति के द्वारा सँक्षोभित हुई थी। वह संक्षुब्ध होकर त्रिगुण के स्वरूप वाली (सत्व, रज, तम ये तीन गुण हैं) वह प्रकृति सभी कार्य करने के लिए हुई थी। जिस प्रकार से सन्निधि मात्र से ही गन्ध क्षोभ के लिए हुआ करती है उसी भाँति लोकों के कर्ता होने से यह परमेश्वर मन का होता है। हे ब्रह्मण वह भी क्षोभ के करने वाला है और वही क्षोभ करने के योग्य होता है। वह संकोच और विकास के प्रधान होने पर भी स्थित है। परमेश्वर प्रभु को पुराण पुरुष अपनी केवल इच्छा के करने ही से सृष्टि की रचना करने के लिए कारण हुआ करता है। इसके अनन्तर उन जगतों के स्वामी ने फिर भी संक्षोभ किया था। फिर गुणों के अर्थात् सत्व, रज और तम इन गुणों के सामान्य होने से जो कि क्षेत्र के ज्ञाता में अधिष्ठित थे उस स्वर्ग अर्थात् सृजन के काल में गुणों के व्यञ्जन की उत्पत्ति हो गई थी।

ईश्वर की इच्छा से समीचीन प्रधान तत्व से प्रथम ही अद्‌भुत महतत्व प्रधान को समावृत किया था। प्रधान के द्वारा आवृत्त उस महतत्व से अहंकार उत्पन्न हुआ था। यह अहंकार वैकारिक, तैजस और तामस भूतादि था। सबसे आगे अर्थात् पहले तो अहंकार समुत्पन्न हुआ था। वह तीन प्रकार का था वह सनातन भूतादि का और इन्द्रियों का हेतु था। उस महत् ने अर्थात महतत्व ने उत्पन्न होते ही अहंकार को समावृत्त कर लिया था। उस समावृत अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ समुत्पन्न हुई थीं। सबसे पहले शब्द तन्मात्रा और फिर रसतन्मात्रा एवं पाँचवीं गन्ध तन्मात्रा क्रम से ही समुत्पन्न हुई थीं। उन सभी तन्मात्राओं में प्रत्येक तन्मात्रा को अहंकार ने समावृत्त कर लिया था। फिर उन

परमेश्वर प्रभु ने शब्द के लक्षण वाले आकाश को शब्द की तन्मात्रा से सृजित किया था। उस प्रकार से शब्द मात्रा को उस भूतादि ने समावृत्त कर लिया था।

शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रा से शब्द से समन्वित स्पर्श गुण वाला वायु समुत्पन्न हुआ। आकाश और वायु से संयुत रूप तन्मात्रा से देदीप्यमान तेज हुआ था जो सभी ओर से समन्वित हुआ था इसके उपरान्त वायु तेज से युक्त विपत से जल की उत्पत्ति हुई। वह रत तन्मात्रा से भली-भाँति सभी ओर से उसके द्वारा व्याप्त हो गया था। जल को भी जो अपरमिति वाले भगवान विष्णु की आधार शक्ति है। उसने निराधार और अनिल के द्वारा आन्दोलितों को धारण किया था। सबसे प्रथम परमेश्वर प्रभु ने उनमें बीज का सृजन किया था। यह बीज हेमअंड हो गया था जिस अण्ड की प्रभा सहस्त्रांशु के ही समान थी। महत्तत्व के आदि लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सबसे समावृत होकर आरम्भ किया था। जल, अग्नि, अनिल, आकाश, तम और भूतादि से समावृत्त जिस तरह से महान से भूतादि होते हैं वह अण्ड दश गुणों से समावृत्त था। जिस रीति से वाह्य दलों में बीज व्याप्त होता है ठीक उसी भाँति से ही हे द्विजो! यह तोय आदि से अतुल ब्रह्माण्ड व्याप्त था।

उस अण्ड के मध्य भगवान विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा के स्वरूप वाले शरीर को रखकर दिव्यमान से वह एक वर्ष पर्यन्त स्थित होकर उन्होंने अपनी बुद्धि से बीजगण को ग्रहण किया था। ध्यान के द्वारा उस अण्ड को स्वयं ही दो भागों में करके वह एक क्षणभर उसमें संस्थित रहे थे। उसी समय इसी के द्वारा सृष्टि गन्धोत्तर समस्त तन्मात्राओं के समूह हुए थे और यह स्पर्श, शब्द, समस्त का रूप गन्ध और रस की आधारभूत थी और समस्त उन तन्मात्राओं के समुदाय से सम्पूर्ण पृथ्वी आधार की गयी थी। उनके उत्थित हुओं से यह कनकाचल समुत्पन्न हुआ था और जटायुओं से पर्वतों का संचय हुआ था। गन्धोदकों से सात सागर हुए और दो स्कन्धों से त्रिदशालय अर्थात देवों के निवास

का स्थान हुआ था। दूसरे देश में उत्पन्न दो स्कन्धों से वे सात नागों को गृह हुए थे। जिनकी संज्ञा पाताल है और जो महान सुखप्रद है जहाँ पर महेश स्वयं रहते हैं। उसके तेज समूहों से यह लोक उत्पन्न हुआ था जो कि महर्लोक इस नाम से श्रुत हुआ था। गर्भ से मरुत् जनलोक नाम वाला हुआ था और ध्यान से परम श्रेष्ठ तपोलोक उत्पन्न हुआ था। उस अण्ड की ऊर्ध्वगति में सत्यलोक समुत्पन्न हुआ था। उस ब्रह्माण्ड के खण्ड के भगवान अच्युत विष्णु हैं जिनको धीर पुरुष परमपद कहते हैं और जो ज्ञान के ही द्वारा जानने के योग्य वीर परिनिष्ठित रूप से समन्वित है।

इसी रीति से सबसे प्रथम विष्णु स्वरूप वाले हुए थे और वे ही स्थिति अर्थात् पालन के लिए हुए। क्योंकि ये स्वयं ही समुत्पन्न शरीर वाले थे अर्थात् इनकी उत्पत्ति स्वयं अपनी इच्छा से ही हुई थी और इनको किसी ने उत्पन्न नहीं किया था। अतएव उन भगवान विष्णु ने 'स्वयम्भू' यह प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इसके अनन्तर भगवान विष्णु यज्ञ वाराह के रूपधारी हुए थे जो भूमि के समुद्धरण करने के लिए परमाधिक पीन थे। उन वराह के रूपधारी प्रभु ने मध्य में निमग्न होती हुई इस पृथ्वी का भेदन करके अत्यधिक वेग से अन्दर चले गये थे। अपनी दाड़ के अग्र भाग में पृथ्वी को रखकर वे सम्पूर्ण जल का अतिक्रमण करके ऊपर आगत हो गये थे। इसके अनन्तर यह सात फनों से सयंत अनन्त की मूर्ति होकर इस पृथ्वी को धारण करने के लिए प्रकट हो गये थे। शेषनाग ने भी अपने फन को फैलाकर और उसने एक फन पर धरित्री धारण करके जल में संस्थित होते हुए जल के ऊपर उसको रख दिया था और यज्ञ वाराह ने भी पृथ्वी को त्याग दिया था। उन शेष ने भी फनों को फैला दिया था। उनमें से एक फन तो पूर्व दिशा की ओर था तथा दूसरा फन पश्चिम में था और अन्य फन दक्षिण और उत्तर दिशा की ओर थे। उनका एक फन ऐशानी दिशा में और दूसरा फन आग्नेय दिशा में था। एक फन पृथ्वी के मध्य में था और उसका तनु नैर्ऋत्य दिशा में था। वहाँ पर वायव्य दिशा शून्य

थी। फिर नम्र भूमि स्थित थी। वह दीर्घ तनु जल में था जिसको अनन्त न धारण कर सके थे। उस समय हरि कर्म के रूप वाले हो गये थे और अनन्त के काम को उन्होंने धारण किया था।

उस कच्छप ने अपने चरणों से नीचे ब्रह्माण्ड का आक्रमण करके वायव्य दिशा में ग्रीवान्वित के पृष्ठ में अनन्तर को धारण किया था। विशाल शरीरधारी भगवान अनन्त देव ने कूर्म के पृष्ठ पर नौ वेष्टनों (लपेटों) से अपने शरीर को देखकर सुख से ही पृथ्वी को धारण किया। उसके अनन्तर अनन्त देव के फन पर चलती हुई पृथ्वी स्थित हुई थी। वराह भगवान ने इस पृथ्वी को अचल बनाने का प्रयत्न किया था और उसको अति सुदृढ़ अचलायमान कर दिया था। मेरु पर्वत को अपने सुरों के द्वारा प्रहत करके पृथ्वीतल में गाड़ लिया था फिर उसका भेदन करके वह पृथ्वी के अन्दर प्रवेश कर गये थे। वराह भगवान के चरणों के प्रहारों से वह महान पर्वत सोलह सहस्त्र योजन तक रसातल में प्रवेश कर गया था। हे द्विजोत्तमो! मेरु पर्वत का शिर उससे बत्तीस हजार योजन के विस्तार वाला हो गया था।

रुद्र और ब्रह्मा का नाम विभाजन

इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने महान् ओज वाले वराह भगवान को प्रणाम किया था और देवों के देव अर्धनारीश्वर को शरीर से समुत्पन्न किया था। पहले ही उत्पन्न होने के साथ वह महान ध्वनि वाले वे रूदन करने लगे थे। ब्रह्माजी ने उनसे कहा था कि तुम क्यों रो रहे हो। उन महेश्वर ने उत्तर दिया था कि उनका नाम रखो। रुदन करने से वे रुद्र नाम वाले हुए थे। उन ब्रह्माजी ने कहा–हे महाशय! आप रूदन मत करो। इस प्रकार से कहे हुए वे रुद्र सात बार रोये थे अर्थात् सात बार उन्होंने रुदन किया था। फिर ब्रह्माजी ने इसके उपरान्त सात दूसरे नाम किये थे। शर्व, भव, भीम और चौथा नाम महादेव किया था। पाँचवाँ नाम उग्र, छठवाँ नाम ईशान और परम पशुपति ये नाम किए थे। ब्रह्माजी ने कहा–मेरे द्वारा जिस प्रकार से आपका विभाग किया गया

है वैसे ही आप अपने आपको विभक्त करिए। आप भी बहुत सृष्टि के ही लिए हैं और आप भी प्रजापति हैं।

इसके अनन्तर ब्रह्माजी दो भागों में विभक्त हो गये थे। वे अपने आधे भाग में पुरुष हुए थे और आधे भाग में नारी हो गए थे और उसमें प्रभु ने विराट का सृजन किया था। उसको भगवान ब्रह्माजी ने कहा था–हे प्रजापते! सृष्टि की रचना करो। उस विराट् ने भी तपश्चर्या का तपन करके उसने स्वायम्भुव मनु का सृजन किया था। उस स्वायम्भु मनु ने भी तप करके ब्रह्माजी को परितुष्ट कर दिया था। उसके द्वारा तुष्ट हुए ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करने के लिए अपने मन से दक्ष का सृजन किया था अर्थात् दक्ष को मन से ही उत्पन्न कर दिया था। दक्ष के सृष्ट हो जाने पर मनु के द्वारा दशावतार ब्रह्मा प्रणत हुए थे और फिर भी और मानस पुत्रों की सृष्टि की थी। उन पुत्रों के नाम ये हैं–मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद। इन सबका उत्पादन करके जो कि मन के ही द्वारा हुआ था फिर स्वायम्भू मनु से उन्होंने कहा था कि आप सृजन करो, यही कहकर लोकों के ईश ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये थे।

वाराह भगवान ने इसके अनन्तर पौत्र से द्वारा सात सागरों को खोदकर परमेश्वर ने पृथिवी को उनको वलय के आधार वाले बनाकर सृजन किया था। इसके उपरान्त इन्होंने सात बार भ्रमण करने के द्वारा सात सागरों की रचना करके सात द्वीपों को अवछिन्न करके वे फिर पृथ्वी के अन्दर चले गये थे। लोकालोक पर्वत को इस पृथ्वी का वेष्टना बना करके स्थित कर दिया था। उसको सुदृढ़ रूप से भित्ति प्रान्त में गृह की ही भाँति स्थापित कर दिया था। हे विप्रगणो! मैंने आप लोगों के समक्ष में यह आदि सृष्टि का वर्णन कर दिया है। हे महर्षियों! प्रतिसर्ग में मैं इसको बतलाऊँगा उसे आप श्रवण करिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–यह आप लोगों ने वाराह सर्ग का श्रवण कर लिया है क्योंकि यह वाराह से ही अधिष्ठित है। आप सबने प्रतिसर्ग का भी श्रवण किया है जो दक्ष आदि के द्वारा पृथक् किया

गया था। विराट्, रुद्र, मनु, दक्ष और मरिचि आदि मानस पुत्रों ने जिस-जिस सर्ग का पृथक किया था वह प्रतिसर्ग भी कहा गया है। विराट सुत ने वंश में होने वाले मनुओं का सृजन किया था। जिनके द्वारा यह जगत् वितत किया गया है। मनु ने सात मनुओं की रचना करके बहुत सी प्रजा को बना दिया था अर्थात् बहतु अधिक प्रजा की सृष्टि कर दी थी। प्रजा की सृष्टि की इच्छा वाले मनु ने जो स्वायम्भुव नाम वाले थे उन्होंने दूसरे सुत छः मनुओं का सृजन किया था। उन छः मनुओं के नाम ये हैं—स्वरोचिष, आँत्तभि, तामस, रैवत, चाक्षुष और महान तेज से संयुत विवस्वान। स्वयम्भुव मनु ने यश, राक्षस, पिशाच, नाग, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, अप्सरायें, सिद्ध, भूतगण, मेघ जो विद्युत के सहित थे, वृक्ष, लता, गुल्म, तृण आदि मत्स्य, पशु, कीट, जल में समुत्पन्न होने वाले और स्थल में समुत्पन्न इन सबकी रचना की थी।

इस प्रकार के सबको स्वयम्भुव मनु ने अपने सुतों के सहित सृष्ट किया था। वह इसका प्रति सर्ग प्रकीर्त्तित किया गया है। अन्य जो छः मनु थे उन्होंने भी अपने-अपने अन्तर में स्वयं प्रतिसर्ग को चराचर में प्राप्त किया करते हैं। यज्ञ का यज्ञयूप और प्राग्वंश हुआ था तथा वाराह की भाँति धर्म और अधर्म एवं सब गुणों की सृष्टि की थे। देवर्षि दक्ष ने परम श्रेष्ठ बहुत से सुतों का समुत्पादन करके सोमय आदि महर्षियों को और पितृगणों को उत्पन्न किया था तथा सृष्टि को प्रवृत्त किया था यह इसका प्रतिसर्ग कहा गया है। हे विप्रो! विप्र उसके मुख से उत्पन्न हुए थे और क्षत्रिय दोनों बाहुओं से समुत्पन्न हुए थे। उरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई थी तथा शूद्र पादों से समुत्पन्न हुए थे। चारों वेद ब्रह्माजी के चार मुखों से निःसृत हुए थे। यह ब्रह्माजी का प्रतिसर्ग है जो ब्रह्मसर्ग इस नाम से कहा गया है। मरीचि ऋषि से कश्यप ऋषि ने जन्म ग्रहण किया था। और कश्यप से यह सम्पूर्ण जगत समुत्पन्न हुआ था। जिसमें देव, दैत्य और दानव सभी उत्पन्न हुए थे। यह उसका सर्ग कीर्ति हुआ था।

अत्रि ऋषि के नेत्रों से चन्द्रदेव ने जन्म धारण किया था और तभी

से यह चन्द्रवंश हुआ। उस चन्द्रवंश से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हैं और वह इसका ही सर्ग कीर्त्तित किया गया है। अथर्वाङ्गिरस के रस पुत्र और बहुत से दूसरे पौत्र हुए। जो भी मन्त्र और तन्त्र आदि हैं वे सब अंगिरस कहे गए हैं। पुलस्त्य का प्रतिसर्ग है जो बल और वेग से समन्वित था। काक्रदेव, गज, अश्व आदि बहुत अधिक प्रजा हुई थी। यह सर्ग प्रलह ने किया था अर्थात् इसकी सृष्टि की थी। अतएव यह इसका ही सर्ग कहा गया है। क्रतु ऋषि के बालखिल्य पुत्र हुए थे जो सभी कुछ के ज्ञान रखने वाले और परमाधिक तेज से संयुक्त थे। ये अट्ठासी हजार थे जो कि जाज्वल्यमान सूर्य के ही समान हुए थे। प्रचेता के जो सब पुत्र हुए थे वे सब प्राचेतस इस नाम से प्रथित हुए थे। ये छियासी हजार संख्या में थे और अग्नि के सदृश तेजस्वी हुए थे। वशिष्ठ ऋषि के सुत सुकालिन थे और दूसरे योगी थे। ये अरुन्धती से समुत्पन्न पचास आरुन्धतेय कहलाये थे। यह वशिष्ठ अर्थात वशिष्ठ मुनि का सर्ग कहा जाया करता है।

भृगु ऋषि से जो उत्पन्न हुए थे जो दैत्यों के पुरोहित थे। वे कवि और बहुत विशाल बुद्धि वाले हुए थे। उनसे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। नारद से तारकों ने जन्म प्राप्त किया था तथा विमान हुए थे एवं अन्य प्रश्नोत्तर से नृत्य, गीत और कौतुक हुए थे। इन दक्ष और मरीचि आदि ने दाराओं के ग्रहण करने वाले बहुत से पुत्रों का समुत्पादन कर, इस पृथ्वी को और देवलोक को पूरित कर दिया था। उनके सबके पुत्रों को भी पुत्र हुए और फिर उन पुत्रों के भी पुत्र हुए थे। ये समुत्पन्न पुत्र आज भी भुवनों में प्रवृत्त हो रहे हैं। भगवान् विष्णु की आँखों से सूर्यदेव और मन से चन्द्रमा का उत्पन्न होना बताया गया है। श्रोत से वायु समुद्भव हुआ था तथा भगवान विष्णु के मुख से अग्नि ने जन्म प्राप्त किया था। यह प्रतिसर्ग विष्णु है। उसी भाँति दश दिशाएँ भी हुई थीं। पीछे सृष्टि की रचना करने के लिए चन्द्रमा अग्नि नेत्र से अवतरित हुआ था। भगवान भुवनभास्कर कश्यप से समुत्पन्न हुए थे जो भार्या के संयुत थे।

बहुत से रुद्र उत्पन्न हुए और चार प्रकार के भूतग्राम हुए थे। शृगाल, वाराह और उष्ट्र रूप वाले प्लव, गोमायु, गोमुख, रीछ मार्जर के मुख वाले थे तथा दूसरे सिंह और व्याघ्र के मुख वाले थे। सभी अनेक प्रकार के शस्त्रों के धारण करने वाले थे तथा विभिन्न और अनेकों रूप वाले थे एवं महाबल से युक्त थे। हे द्विज श्रेष्ठों! यह प्रतिसर्ग आपको बतला दिया गया है। अब दैनन्दिन अर्थात दिनों दिन में होने वाली प्रलय को कल्प शेष से आप लोग श्रवण कीजिए।

सृष्टि कथन

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह मन्वन्तर मनु का काल होता है जितने पर्यन्त वह मनु प्रजाओं का पालन किया करता है वह एक ही मनु होता है और वह काल मन्वन्तर इस नाम से प्रसिद्ध होता है। यह देवों के इकहत्तर युगों से यहाँ पर होता है। तात्पर्य यह है कि एक मन्वन्तर में अर्थात् एक ही मनु के काल में देवगणों के इकहत्तर युगों का समय हुआ करता है ऐसे चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है जो ब्रह्माजी का एक दिन हुआ करता है। ब्रह्माजी के दिन के अन्त में उनको सोने की इच्छा उत्पन्न होती है और फिर महामाया योगनिद्रा ब्रह्मा जी के निकट आ जाया करती है। इसके अनन्तर वे लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने अपरिमित तेज वाले भगवान विष्णु के नाभि के पद्म में प्रवेश करके वे सुख से शयन किया करते हैं। उसके पश्चात भगवान विष्णु स्वयं रुद्ररूपी जनार्दन होकर उन्होंने पूर्व की ही भाँति सम्पूर्ण तीनों भुवनों का विनाश कर दिया था। वायु के साथ वह्नि ने महाप्रलय कालों में जैसे ही वैसे ही सम्पूर्ण तीनों जगतों का दाह कर दिया था। प्रताप से आर्त्त होकर महर्लोक के निवासी जन जनलोक को प्रयाण किया करते हैं। क्योंकि जब तीनों लोकों के दाह होने के समय उस दारुण अग्नि से जन प्रपीड़ित हो गये।

इसके अनन्तर कालान्तर महामेघों जिनकी गर्जना की महाध्वनि थी, समुत्पादित करके महावृष्टि से तीनों भुवनों को आपूरित करके चलती

हुई तरंगों वाले जलों के समूह से जो ध्रुव के स्थान पर्यन्त संगत थे और घोर वृष्टि की थी। फिर वह जनार्दन प्रभु इन तीनों लोकों को अपने उदर में रखकर वे परमेश्वर शेष के पर्यंक पर शयन किया करते हैं। वे जगत् के गुरुदेव ब्रह्मा को अपनी नाभि के कमल में शयन किए हुए संस्थापित करके इन तीनों लोकों को श्री के सहित दग्ध करके और भक्षण करके नारायण के स्वरूपधारी ब्रह्मशरों की शय्या में शयन किया करते हैं अर्थात् शेषशय्या पर सो जाते हैं। त्रैलोक्य के ग्रास से गृहित वे प्रभु योगनिद्रा के वशीभूत हो गये हैं। जिस समय में कालाग्नि ने सम्पूर्ण त्रिलोकी को दग्ध कर दिया था उसी विष्णु के समीप में समागत हो गये थे। उनके द्वारा त्यागी हुई पृथ्वी एक ही क्षण में नीचे की ओर चली गयी थी और वह कूर्म के पृष्ठ भाग पर पतित होकर उस समय विकीर्ण सी हो गयी थी। कूर्म ने भी बड़े भारी प्रयत्नों से जल में चलती हुई पृथ्वी को पैरों से ब्रह्माण्ड पर आक्रमण करके पृष्ठ पर धरा को धारण किया था।

ब्रह्माण्ड के खण्डों से संयोग से वह पृथ्वी चूर्ण हो गयी थी इससे भगवान् कूर्म रूपधारी जनार्दन ने उसको परिग्रहीत कर लिया। चलते हुए जल के समूह में संसर्ग से चलती हुई धरा से उस समय में कूर्म पृष्ठ बहुतर वरण्डी से विततीभूत अर्थात् विस्तृत कर दी थी। अनन्त भगवान उस समय में क्षीरोद सागर में गये थे वहाँ पर उन्होंने देखा कि भगवान जनार्दन प्रभु अपनी श्री के साथ शयन कर रहे थे। मध्य में रहने वाले फन से त्रैलोक्य के ग्रास से उपबृहित हो धारण कर रहे थे। महान बल वाले ने पहले फन को चौड़ा कर ऊर्ध्व में पद्म बनाकर उन शेषनागधारी ने परमेश्वर भगवान विष्णु को समाच्छादित कर दिया था। अनन्त ने अपने दाहिने फन को उनका उपधान (तकिया) बना दिया था। महान् बलवान उन्होंने उत्तर फन को चरणों की ओर तकिया बना दिया था। उस समय में उन शेष ने पश्चिम फन को तालवृत्त कर दिया था। शेषरूपधारी ने शयन करते हुए जनार्दन प्रभु का व्यंजन किया था। महान बलधारी उन्होंने ऐशानी फन से शंख, चक्र, नन्दक, असि और दो इषुधीयों को और गरुड़ को धारण किया था।

गदा, पद्म, शाधनुषंग तथा अनेक आयुधों को जो भी अन्य उनके अस्त्र थे उनको आग्नेय दिशा वाले फन से धारण किया था। उस समय में भगवान हरि के शयन अर्थात् शय्या के लिए अपने स्वकीय शरीर को बनाकर जल से मग्न पृथ्वी का अधरकाय से आक्रमण करके स्थित हुए थे। त्रैलौक्य ब्रह्म के सहित तथा लक्ष्मी से समन्वित, सामासंग, जगत् के बीज स्वरूप और जगत् के कारण के भी कारण जनार्दन प्रभु को धारण किया था। वे जनार्दन प्रभु नित्य आनन्द स्वरूप हैं, वेदों से परिपूर्ण हैं, ब्रह्मण्य हैं जगत् के कारण के भी कारण हैं, जगत के कारण कर्ता हैं, परमेश्वर हैं, भूत, भव्य और भव के नाथ हैं, बराबर गति से संयुत हैं ऐसे हरि को शिर से धारण किया था और अपने शरीर को भी धारण कर लिया था। इस रीति से अव्यय नारायण हरि भगवान् ब्रह्माजी ने दिन के प्रमाण से निशा और संध्या को अभिव्याप्त करके शयन किया करते हैं। यह प्रलय जिससे ब्रह्मा के दिन दिन में होती है। इसी कारण से पुरातत्व के ज्ञानीजन इसको दैनन्दिन ख्यापित किया करते हैं अर्थात कहा करते हैं।

उस निशा के व्यतीत हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी निद्रा को त्याग करके पुनः सृष्टि की रचना के लिए समुत्थित हो गये थे अर्थात् जागकर खड़े हो गये थे। उन्होंने देखा कि तीनों लोक जल से परिपूर्ण भरे हुए हैं और भगवान पुरुषोत्तम शयन किये हैं। भगवान विष्णु को जगन्मयी महामाया का उन्होंने निरीक्षण किया था फिर ब्रह्माजी ने भगवान हरि के अंग में विराजमान योगनिद्रा की स्तुति की थी। ब्रह्माजी ने कहा—चित्तशक्ति अर्थात् ज्ञान की शक्तिरूपा, विकारों से रहित, परब्रह्म के स्वरूप वाली, सनातनी महामाया योगमाया को मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवी! आप योगियों की विद्या हैं, आप ही गति, मति और स्तुतिरूपा हैं। आप सृष्टि, स्थिति, स्वाहा, स्वधा और आप ही गीतिका हैं। आप सामवेद की नीति हैं और आप ह्रीं, श्रीं और सरस्वती हैं। आप महामाया, योगनिद्रा, मोहनिद्रा और आप ईश्वरी हैं। आप कान्ति हैं, सर्वशक्ति हैं और आप वैष्णवी शिवातनु हैं। आप

समस्त लोकों की धात्री हैं और आप शरीरधारियों की अविद्या हैं। आप जाधर शक्ति देवी हैं और आप ही इस ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली हैं। आप ही समस्त जगतों की तीन गुणों के स्वरूप वाली अर्थात् सत, रज और तम से संयुत प्रकृति हैं।

आप सावित्री और गायत्री तथा आप सौम्य से भी अत्यधिक शोभना हैं आप नित्य भगवान हरि की सृजन की इच्छा हैं। आप सुषुप्ति अर्थात शयन करने की इच्छा हैं। आप पुष्टि, लज्जा, क्षमा, शान्ति हैं और आप परमेश्वरि द्युति हैं। आप ही भूमि के स्वरूप से इस सम्पूर्ण चराचर को धारण किया करती हैं। आप अर्थात जल हैं और आप जलों को जन्म देने वाली माता हैं। आप सबके अन्दर रहकर संचरण करने वाली हैं। आप स्तुति, स्तुत्य, स्तोत्री हैं तथा आप ही स्तुति की शक्ति हैं। मैं आपकी क्या स्तुति करूँगा, हे परमेश्वरि! आप प्रसन्न हो जाइए। हे जगत की माता! आपको नमस्कार है। अब आप भगवान जनार्दन को प्रबोध करा दो अर्थात् उनको जगा दीजिए। इस प्रकार से लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी के द्वारा महामाया की स्तुति की गयी थी। फिर उसकी नासिका, मुख, बाहु हरि के हृदय से निकले थे और उनके राजसी मूर्ति का समाश्रय ग्रहण करके वह ब्रह्माजी के दर्शन में स्थित हो गई थी। इसके उपरान्त जनार्दन शेष की शय्या पर निद्रा लेते हुए थे उस निद्रा से एक ही क्षण में उठकर खड़े हो गये थे और फिर सृष्टि की रचना करने की वृद्धि की थी। फिर वाराह के स्वरूप से जल में निमग्न हुई पृथ्वी को शीघ्र ही समुद्धत करके उसको जल के ऊपर रख दिया था।

उस जल के समुदाय के ऊपर वह बड़ी विशाल भाव की ही भाँति स्थित हो गयी थी। देह के बहुत विशाल एवं विस्तृत होने से वह मही संप्लव को प्राप्त नहीं हो रही थी। फिर भगवान हरि स्वयं वहाँ पर उपस्थित हुए थे और अपनी माया से जल से समूह का संहार करके जन्तुओं की स्थिति के लिए स्वयं की प्रभु प्रवृत्त हो गये थे। पूर्व में जैसे थे उसी के समान भगवान अनन्त भी वहाँ पर भूमि के तल प्रदेश में

जाकर कूर्म के ऊपर संस्थित हो गये थे और पृथ्वी को धारण कर लिया था।

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने सभी प्रजापतियों को भली-भाँति उत्पादन करके समस्त लोकों के पितामह ने इस जगत् को उत्पादित कर लिया था अथवा ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं जबकि अन्य भी सृष्टि किया करते हैं। जो परब्रह्म के रूप वाले हैं वे स्वयं निरन्तर अनुग्रह किया करते हैं और प्रकृतियाँ व महाभूतों को अनुग्रहीत किया करती हैं।

पुरुष तथा महदादिक भी अनुग्रह किया करते हैं जो ईश्वर की इच्छा के अनुसार अष्ट संचय अधिष्ठान पुरुष से अनुग्रहीत किया करते हैं। पुरुषों के अधिष्ठान से और महाभूतों के गुण से उसी भाँति से महदादि का और महात्मा काल के अधिष्ठान से तथा प्रधान के अधिष्ठान से जो कुछ समुत्पन्न होता है। स्थावर अर्थात् अचर और जंगम अर्थात चेतन स्थिर अथवा अद्‌भुत हे द्विजश्रेष्ठों! सभी कुछ अधिष्ठान से उत्पन्न होता है। जैसा कि पूर्व में दिखाया था वह सब आपको बतला दिया था। जिस प्रकार से इस जगत् के प्रपंच की परा असारता दिखलाई थी और जहाँ पर सार दिखलाया है। हे द्विजों! वह आप मुझसे श्रवण करिये।

सारासार निरूपण

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह सम्पूर्ण जगत् सारहीन है, अनित्य है और महान दुःखों का पात्र अर्थात् आधार है। यह एक ही क्षण में तो उत्पन्न होता है और एक ही क्षण में विपन्नता को प्राप्त हो जाया करता है। यह निस्सार जगत शीघ्र ही उस भाँति सार से उत्पन्न होता है और फिर महाप्रलय के संगम में उसमें विलीन हो जाया करते हैं। भगवान हरि ने उत्पत्ति और प्रलयों से जगत की निःसारता शम्भु के लिए भाव से जगतों के पति ने दिखलाई थी। एक शिव, शान्त, अनन्त, अच्युत, पर से भी पर, ज्ञान से परिपूर्ण, विशेष अद्वैत, अव्यक्त और अचिन्त्य रूप ही सार है उससे अन्य सार नहीं है। जिससे यह उत्तम जगत् अर्थात्

विश्व उत्पन्न होता है जिससे महास्थिति को प्राप्त होता है और पीछे लीन हुआ करता है। मेघों के जल को आकाश की ही भाँति वृत्ति से जो इस विश्व को धारण किया जाता है वह तत्व सार है। योगी के द्वारा योगी जिसकी प्राप्ति के लिए इच्छा करता हुआ सदा ही आत्मरूप को पवित्र किया करता है और जिसको प्राप्त करके वह निवृत्त हो जाया करता है। इस लोक में निश्चय ही अन्य कुछ सार नहीं हैं।

द्वितीय सार धर्म है जो नित्य ही प्राप्ति के लिए होता है। जो निवर्त्तक नाम है वहाँ पर असार प्रवर्त्तक हैं। धर्म का धीरे-धीरे संचय करना चाहिए जिस प्रकार से वाल्मीक मिट्टी का संचय किया करता है। इस धर्म का संचय परलोक से सहायता के लिए और पूर्व में किए गये पापों की विमुक्ति के लिए होता है। संसार के समस्त कर्मों में एक धर्म ही परमश्रेय होता है और दूसरे तीनों अर्थात् अर्थ, काम और मोक्ष धर्म से ही समुत्पन्न हुआ करते हैं। तात्पर्य यही है कि धर्म ही सबसे अधिक एवं प्रमुख होता है। प्राणों का त्यागकर देना श्रेष्ठ है तथा शिर का काट देना ही अच्छा है किन्तु धर्म का परित्याग करना उचित नहीं है। ऐसा करना लोक और वेद में बुरा होता है। धर्म से ही लोक को धारण किया जाता है और धर्म से जगत् को धारण किया जाता है। धर्म के द्वारा ही सब सुरगण पहले सुरत्व को प्राप्त हुए थे। चार चरणों वाला भगवत् धर्म निरन्तर इस जगत का पालन किया करता है वह ही पुरुष मूल है जो 'धर्म' इस नाम से कहा जाता है।

इस लोक में सभी कुछ क्षरित हो जाया करता है किन्तु धर्म कभी भी च्युत नहीं हुआ करता है। जो पुरुष धर्म से कभी विचलित नहीं होता है वही 'अक्षर' यह कहा जाता है। यह ही हमने आपको सार बतला दिया है और यह सम्पूर्ण जगत सार से रहित है। जिस प्रकार से भगवान शम्भू ने अपने अन्तर में ज्ञान से देखा था। जगतों के पति भगवान विष्णु ने यहीं दिखलाया था और शंकर ने स्वयं ही ध्यान के द्वारा मन से आत्मा को ग्रहण किया था। जो सार-तत्व, परम, निष्फल है और मूर्ति से हीन हैं वही यह मूर्तिमान धर्म है। यह अन्यसार है, सार

है और इसके अतिरिक्त अन्य सब सारहीन है। इसी प्रकार से इसका ज्ञान प्राप्त करके महा बुद्धिमान नित्य ही गमन किया करते हैं।

ऋषियों ने कहा–जो भगवान शम्भु के द्वारा पूर्व में चार प्रकार के भूत ग्राम सृष्ट किये थे अर्थात जो चार तरह के भूत ग्रामों का पूर्व में सृजन किया था वे किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए समुत्पन्न हुए थे और किस तरह से उनको अनेकरूपता हुई थी? उनका आधा शरीर तो वाराह का है और आधा दन्ताबल है। कुछ-कुछ गणों के अवयव तो सिंह, व्याघ्र के शरीर से हुए थे। वे गण किस कारण से महान क्रूर थे और महान ओज वाले थे। किन भागों वाले थे यह सब हम लोग श्रवण करने की इच्छा रखते हैं हे द्विजश्रेष्ठ! हमारी ऐसी ही इच्छा है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–हे मुनियों! अब लोग श्रवण कीजिये कि जिस रीति से भगवान शम्भु के गण हुए थे ओर आप जिसके लिए वे समुत्पन्न हुए थे और जिस कारण से वे एकरूप वाले नहीं थे। यह विषय बहुत ही अधिक गोपनीय है और यह धर्म, अर्थ और काम के प्रदान करने वाला है। यह परम तेज है और निरन्तर परम तप है। इस महान आख्यान का श्रवण करके पुरुष इस लोक में और परलोक में दुःख नहीं प्राप्त किया करता है। यह आख्यान यश देने वाला है, धर्म से युक्त है, आयु की वृद्धि करने वाला है और परम तुष्टि तथा पुष्टि का प्रदान करने वाला है।

ईश्वर ने कहा–हे विभो! आपने जिसके वाराह के स्वरूप को कल्पित किया था वह आपने पूर्ण कर दिया है कि आपने इस पृथ्वी को यथावत् स्थापित कर दिया है। आपके ही प्रसाद से सब सागरों का संस्थान और नदियों का तथा क्षिति का संस्थान हुआ था और ब्रह्मा के द्वारा की हुई सृष्टि भी उत्पन्न हुई थी। आप सबसे परिपूर्ण हैं, यज्ञमय हैं तथा तेज से परिपूर्ण हैं आप समस्त गुरुओं के भी गुरु हैं तथा आप पर से भी पर हैं। हे जगत्पते! विकीर्ण हुई पृथ्वी आपको वहन करने में समर्थ नहीं है। पहले आपके द्वारा स्थापित शैलों के संघातों से यन्त्रित यह पृथ्वी है। उस कारण से हे जगतों के स्वामिन्! इस वाराह

के शरीर को त्याग दीजिए। यह जगत से परिपूर्ण, जगत् के रूप वाले और जगत के कारणों का भी कारण है। हे विभो! आपके वाराह के शरीर को धारण करने में अन्य कौन समर्थ हो सकता है ? विशेष रूप से आपके द्वारा ही यह सकाम पृथ्वी जल में घर्षित हुई है। यह स्त्री के रूप वाली ने आपके तेजों से दारुण गर्भ को धारण किया था। हे जगत्पते! रजस्वला इसमें समर्थ होती हुई जिसने गर्भ को धारण किया था। उससे जो समय होने वाला है यह भी दुर्यश का आदान करेगा।

यह असुरों के भाव को प्राप्त करते ही देवों और गन्धर्वों की हिंसा करने वाला होगा। यह लोकेश ने मुझसे दक्ष की सन्निधि में कहा था। मालिन के साथ रति से समुत्पन्न यह आपका अनिष्ट करने वाला दुष्ट है। हे लोकेश! इस वाराह के कामुक स्वरूप का आप त्याग कर दीजिए। आप ही लोकों के भावन करने वाले हैं और सृष्टि, स्थिति और संहार के करने वाले हैं। हे महाबलवान आप लोकों के हित के सम्पादन करने के लिए इस शरीर को त्याग करके पुनः समय के सम्प्राप्त होने पर अन्य काम को पौत्र करेंगे। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–महान आत्मा वाले भगवान् शंकर के इस वचन का श्रवण करके वाराह की मूर्ति को धारण करने वाले भगवान ने महादेव जी से कहा। श्री भगवान ने कहा–हे परमेश्वर! जैसा आप कर रहे हैं उस वचन का मैं पूर्णतया पालन करूँगा और इस यज्ञ वाराह के शरीर का मैं त्याग कर दूँगा। उसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। समय के प्राप्त हो जाने पर फिर अन्य उत्तम वाराह के रूप को धारण करूँगा जो अत्यन्त दुराधर्य है और लोकों के पावन करने के लिए हैं।

इतना कहकर महान कार्य वाले वे वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गए थे जो इस जगत के गुरु हैं और इस जगत के सृजन करने वाले हैं जो जगत् के धाता हैं और जगत् के स्वामी हैं। उन देव के अन्तर्धान हो जाने पर देवों के देव महेश्वर प्रभु देवगणों के तथा अपने गणों के साथ ही अपने स्थान को गमन कर गये थे। भगवान वाराह भी लोकालोक नामक पर्वत पर स्वयं चले गये थे और वहाँ पर वे अपनी पत्नी वाराही

के साथ रमण करने लगा गये थे जो कि परमसुन्दर स्वरूप वाली पृथ्वी थी। वह उस उत्तम पर्वत में बहुत लम्बे समय तक रमण करते हुए वह लोकेशपौत्री और परमाधिक कामुक तोष को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात् रमण करने घर भी उनको संतोष नहीं हुआ था। पौत्री के स्वरूप वाली पृथ्वी के साथ रमण किए जाने वाले से तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजोत्तमो! आप अब उनके नामों को भी श्रवण करिए। वे सुवृत्त, कनक और घोर नामों वाले थे जो कि सभी महान बल से समन्वित थे। वे शिशु ही सुवर्ण के मेरु पर्वत के पृष्ठ पर व प्रस्तर में, गह्वरों में और सरोवरों में परस्पर में संसक्त हुए रमण करते थे।

हे द्विजो! वह वाराह उन पुत्रों से परिवृत्त अपनी भार्या के साथ रमण करने वाले थे और उस समय में उन्होंने शरीर के त्याग करने का कुछ भी ध्यान नहीं किया था। किसी समय में महान बलवान् वह कर्दमों के अन्तर में शिशुओं के साथ संश्लिष्ट होकर भार्या के साथ कर्दम क्रीड़ा किया करता था। कीच के लेप से संयुत मधु पिंगल वराह शोभित हुए थे। जिस प्रकार से सन्ध्या का मेघ जल का क्षरण किया करता है उसी भाँति वह भी जल का क्षरण करने वाले थे। वह पुत्रों के सहित और पृथ्वी भार्या के साथ परम प्रीत और वह मध्य में निम्न हो गये थे। सुवृत्त ने और घोर तथा कनक ने सुवर्ण के व प्रपोत्र पातों से विदारित कर दिया था। मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर सुरों के द्वारा जो भी सुवर्ण द्वारा रचित हुए थे उसके पुत्रों ने यत्नपूर्वक उनको भग्न कर दिया था।

मानस आदि तो देवों के सरोवर थे उस समय में उसके पुत्रों ने अर्थात् शिशुओं के पौत्र धात्रों से सब ओर आविल अर्थात् यतिन कर दिए थे। वनिता के स्वरूप वाली पृथ्वी ने पौत्रिण से रमण किया था और स्थावर रूप से सुदृढ़ सुख को प्राप्त किया करती हैं। सुवृत्त आदि के द्वारा सभी ओर सागरों का अवगाहन करके पत्रौद्यों के द्वारा विकीर्ण रत्न वाले सब ही आकुलकृत हो गये थे। उस समय में इधर-उधर क्रीड़ा करने वाले पौत्री शिशुओं के द्वारा वहाँ पर जगतों को तथा

नदियों को सौर कल्प द्रुमों को भग्न कर दिया था। जगत के भरण करने वाले वाराह ने स्वयं ही जगत् की पीड़ा को जानते हुए भी सुतों के स्नेह से उनका निवारण नहीं किया था। सुवृत्त कनक और घोर जब दिव्यलोक में आगमन करते हैं उस अवसर पर देवों का समुदाय परमभीत होकर दशों दिशाओं में भाग जाया करते हैं। इस प्रकार से अपने पुत्रों के तथा भार्या के साथ जो यज्ञ पौत्री था वह क्रीड़ा करता हुआ भी किसी भी समय में कोई तुष्टि के प्राप्त करने वाले नहीं हुए थे अर्थात् उनको सन्तोष नहीं हुआ था। नित्य-नित्य ही उनकी कामवासना बढ़ती ही जाती है और ऐसा प्रदिष्ट हो गये थे कि वह अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा नहीं किया करते हैं।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर सब देवगणों ने देव योनियों के साथ और रुद्रदेव के सहित मिलकर भली-भाँति जगत के हित के लिए सलाह की थी। फिर मुनियों के साथ शक्र (इन्द्र) आदि उन सबने निश्चय करके शरण्य, विभु, अज भगवान नारायण की शरणागति में गये थे। उन गोविन्द, वासुदेव जगत के स्वामी के समीप में पहुँचकर सब देवों को प्रणाम किया था और फिर भगवान गरुड़ध्वज का स्तवन किया था। देवों ने कहा—हे देवेश्वर! हे देव! हे जगत के कारण को करने वाले! हे काल के रूप वाले! हे प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाले! हे भगवान! आपकी सेवा में हमारा सबका प्रणिपात समर्पित है। हे स्थूल और सूक्ष्म! हे जगत व्याप्त रहने वाले! हे परेश! हे पुरुषोत्तम! आप ही समस्त प्राणियों के कर्ता हैं अर्थात सबका सृजन आप ही के द्वारा हुआ करता है और वही सबका पालन करने वाले रक्षक हैं तथा आप ही सबका विनाश करने वाले हैं। आप अपनी माया के स्वरूप के द्वारा इस जगत को सम्मोहित किया करते हैं। जो भी कुछ हो गया है, जो इस समय में हो रहा है और जो भविष्य में होनेवाला है। हे परमेश! वह सब स्थावर हो या जंगम हो आप ही हैं। आप अर्थ के अर्थियों के अर्थ हैं तथा आप जो भी काम के इच्छुक हैं उनके काम हैं।

आप धर्म के चाहने वालों के लिए धर्म हैं और जो निर्वाण पद के चाहने वाले हैं आप ही मोक्ष हैं, आप कामुक हैं, आप ही अर्थ हैं और आप ही सदा गति धार्मिक हैं। आपके मुख से ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं और आपकी बाहुओं से क्षत्रियों ने जन्म ग्रहण किया था, आपके उरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई है तथा आपके चरणों से शूद्र निकले हैं अर्थात् आप ही के भिन्न-भिन्न अंगों से चारों वर्णों का समुत्पादन हुआ है। हे विभो! सूर्यदेव आपके नेत्रों से समुत्पन्न हुए हैं तथा चन्द्रमा आपके मन से जायमान हुआ है। आपके काम से वायु की उत्पत्ति हुई है तथा दूसरे दश प्राण भी आप ही से हुए हैं। वायु के प्राण अपान आदि दश स्वरूप होते हैं। ऊपर की ओर जो स्वर्ग आदि भुवन हैं वे सब आपके मस्तक से ही उत्पन्न हुए हैं। आपकी नाभि से आकाश ने जन्म लिया है तथा आपके पाद तल से पृथ्वी समुद्भव हुई है। आपके कानों से सब दिशायें उत्पन्न हुई हैं आपके जठर (उदर) से यह सम्पूर्ण जगत प्रादुर्भूत हुआ है। आप ही माया के स्वरूप से निश्चय ही जगत को सम्मोहित किया करते हैं। आप गुणों से रहित होते हुए भी गुण गण से समन्वित हैं आप परम शुद्ध, एक और पर से भी पर हैं। आप उत्पत्ति और स्थिति से रहित हैं और आप अच्युत अर्थात् क्षीण न होने वाले गुणों से अधिक हैं। हे जगत के स्वामिन! आप ही आदित्यों के द्वारा, वसुओं के द्वारा, देवों के, सतियों के, पक्षों के मरुद्गणों के द्वारा मुनियों के द्वारा और मुमुक्षुओं के द्वारा चिन्तन किये जाया करते हैं अर्थात् सभी के चिन्तन करने का विषय केवल आप ही होते हैं।

विशेष विज्ञानवाले विगत भोग से संयुत मुनिगण चित्त (ज्ञान) और आनन्द से परिपूर्ण आप को ही समझते अर्थात जानते हैं। आप ही इस संसार रूपी वृक्ष के बीज हैं, जल हैं, स्थान हैं और फल हैं। आप पद्मा से पद्माकर विभात होते हैं। आप वरदान, खड्ग, चक्र, कमल और धनुष के धारण करने वाले हैं। आप ही नित्य ताक्ष्य प्रतिभाव होते हैं। जिस प्रकार से स्वर्णाचल पर जल से समन्वित शब्द

हुआ करता है। आप ही पीताम्बर शंकर कमल से समुत्पन्न हैं। यह सब आप ही हैं और अन्य कुछ भी नहीं है। आपके गुण गण हमारे द्वारा चिन्तन करने के योग्य नहीं है। विधाता, हर और दिक्पालों के भी गुण चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं। भय से और भक्ति से आप आपकी शरणागति से प्राप्त हुए हैं। हे विष्णो! आप हमारी रक्षा करिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से देवों के देव, भूतों के भावन करने वालों के भी भावन इस रीति से स्तुति किए गए थे जो इन्द्रदेव के सहित देवगणों के द्वारा स्तवन किए गये थे। मेघ के समान ध्वनि वाले प्रभु ने उन सबसे कहा था। श्री भगवान ने कहा–जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आप लोग यहाँ पर समागात हुए हैं अथवा जो भी कुछ भय आपको हुआ है अथवा वहाँ पर जो भी कुछ कार्य मुझे करना चाहिए हे देवों! वह शीघ्र ही बतलाइए। देवों ने कहा–यह पौत्री अर्थात् यज्ञ वाराह से क्रीड़ा से यह वसुधा अर्थात् पृथ्वी नित्य विकीर्ण हो रही है और सभी लोक विशेष रूप से क्षुब्ध हो रहे हैं और वह उपसान्त्वना प्राप्त नहीं कर रहे हैं। जिस प्रकार से सूखा हुआ तुम्बी का फल धातों से जर्जरता को प्राप्त हो जाता है ठीक उसी भाँति यह भूमि यज्ञ वाराह के खुरों के प्रहारों से जर्जरित हो गई है।

उसके जो तीन कालाग्नि के तेज से समान पुत्र हैं जिनके नाम सुवृत्त, कनक और घोर हैं उनके द्वारा भी यह सम्पूर्ण जगत आपतित हो रहा है। उनकी कर्दम लीलाओं से हे जगतों के पति! मानस आदि सब सरोवर भग्न हो गये हैं और अभी भी प्राकृतिक स्वरूप को प्राप्त नहीं होते हैं। महान बल वाले उनके द्वारा मन्दार आदि देवों के तरु भग्न कर दिए गए हैं। हे देव! वे आज तक भी प्ररोह को प्राप्त नहीं हो रहे हैं। जिस समय से वे सुवृत्त प्रभृति तीनों त्रिकूट पर्वत पर समारोहण किया करते हैं। हे महाबाहो। वहाँ से वे प्लुति करके क्षीर सागर में गिर जाया करते हैं। उस समय में क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के जल के समुदायों से यह सम्पूर्ण भूमि प्लावित हो जाया करती है। उस समय में सभी मनुष्य उत्प्लवन को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जल से

निमग्न हो जाया करते हैं और देशों दिशाओं में जहाँ कभी भी जीवन की रक्षा करते हुए परिभ्रमण करने लगते हैं। जिस समय में यज्ञ वाराह के पुत्र त्रिविष्ट अर्थात् स्वर्ग को गमन नहीं किया करते थे। हे जगत्पते! सभी पर्वत उस वाराह के पुत्रों ने शिखर पर क्रीड़ा करते हुए अधिक भाग नीचे की ओर गया हुआ कर दिया था। इस प्रकार से विशेष क्रीड़ा करते हुए उनकी क्रीड़ाओं से सम्पूर्ण जगत् हे वैकुण्ठ! नाश के भाव को प्राप्त हो जाता है। हे जगत् के प्रभो! उससे आप रक्षा कीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–भगवान जनार्दन ने इस प्रकार से कहते हुए उनके वाक्य का श्रवण करके भगवान ने देव शंकर से और विशेष रूप से ब्रह्माजी ने कहा। जिसके लिए सभी देवगण और ये समस्त प्रजा महान दुःख को पा रहे हैं और यह सम्पूर्ण जगत शीर्ण हो रहा है। हे शंकर! मैं इस वाराह के शरीर को त्याग करने की इच्छा कर रहा हूँ। निर्वेश में शक्त उसका त्याग करना स्वेच्छा से नहीं हो सकता है। हे शंकर! अब आप यत्न से उसका त्याग कराइए। हे ब्राह्मण! आप भी अपने नेत्रों से पुनः समर के विनाशक शिव को आप्याप्ति कीजिए तथा सब देवगण भी शंकर को आप्यादित करें कि वे इस पौत्री का हनन करने को उद्यत हो जावें। रजस्वला के संसर्ग से तथा विप्रगण के मारने से यह शरीर पापों के करने वाला हो गया है। इस समय में उसका त्याग करना युक्त होता है। यह पाप प्रायश्चितों के द्वारा ही दूर होता है। अतएव मैं प्रायश्चित करूँगा। उसके लिए मेरा शरीर यत्न से साम्यता को प्राप्त होवे।

मुझे सदा ही प्रजा का पालन करना ही चाहिए। वह प्रजा नित्य ही दुःखित हुआ करती है और वह मेरे ही द्वारा दुःखित हो रही है अतएव प्रजा की भलाई के लिए मैं शरीर का त्याग कर दूँगा। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–इस रीति से वे दोनों ब्रह्मा और शंकर उस समय में वासुदेव प्रभु के द्वारा कहे गये थे। तब उन्होंने वासुदेव प्रभु के कहा था कि जैसा भी आपने कहा है वही मुझे सब करना ही

चाहिए। भगवान वासुदेव ने भी उन सब देवगणों को विदा करके वाराह के तेज का आहरण करने के लिए वे फिर ध्यान में परायण हो गए थे। जब धीरे धीरे माध्व प्रभु उस तेज का अपहरण करते हैं तो उस समय में वह वाराह का देह सत्व से हीन हो गया था। जब सभी देवों ने उस देह को तेज से हीन समझ लिया था उसी समय में देव अद्भुत यज्ञ वाराह के समीप में प्राप्त हुए थे। ब्रह्मा आदि समस्त देव उमा के स्वामी महोदव के समीप में गये थे कि उस समय में उस तेज को कामदेव के शासन करने के लिए अधीन करें। फिर इसके अनन्तर सभी देवों के समुदाय ने अपना-अपना तेज भगवान वृषभध्वज में समायोजित कर दिया था उससे वे भगवान शम्भु बहुत ही अधिक बलवान हो गये थे।

इसके अनन्तर शरभ के वाले रूप उसी क्षण में गिरीश हो गये थे। वे ऊपर और नीचे के भाग से आठों पादों से युक्त अत्यन्त भैरव हो गये। वह वाराह का शरीर दो लाख योजन ऊँचाई वाला था और डेढ़ लाख योजन के विस्तार से युक्त था। ऊपर की ओर वह वाराह का शरीर एक लाख योजन के विस्तार वाला था। आधा लाख योजन पाश्वर्व में विस्तृत था। उस समय में ऐसा वह वाराह शरीर वर्तमान हो गया था। इसके अनन्तर उस यज्ञ पौत्री ने शिर पर चन्द्र का स्पर्श करने वाले शरभ के रूप वाले उमापति महादेव का दर्शन किया था। उनका स्वरूप लम्बी नाक, और नखों वाला था तथा काले अंगार के समान प्रभा से युक्त था। उनका मुख दीर्घ था, महान शरीर से समन्वित था और उसमें आठ दाढ़ें थीं, जटायें धारण करने वाली पूँछ थी तथा लम्बे कानों वाला परमाधिक भयानक स्वरूप था। उसके चार पद पृष्ठ भाग में थे तथा चार अधर में थे। वह महान घोर शब्द कर रहे थे तथा बारम्बार उछाल खा रहे थे। इसके अनन्तर आगमन करते हुए उनको देखकर तो तुरन्त ही क्रोध से दौड़ लगा रहे थे। सुवृत्त, कनक और घोर वहाँ पर क्रोध से मूर्छित होते हुए प्राप्त हो गये थे।

फिर वे तीनों भाई महान शरीरधारी शरभ के समीप में आ गये थे

और उन्होंने एक ही साथ पौत्र घातों से उत्क्षेप किया था जो कि महान बल से समन्वित थे। वे सब जितने प्रमाण वाले शरभ था उतने ही प्रमाण वाले उस समय में हो गये थे। वे तीनों पौत्री माया के द्वारा शरभ के उत्पक्षेप के अवसर पर बन गये थे। वह शरभ पृथ्वी के भाग में गहन जल के सागर में पतित हो गया था। मकरों के निवास स्थान सागर में सुवृत्त कनक और घोर के गिर जाने पर वाराह भी अपने पुत्रों के स्नेह से वशीभूत होकर और क्रोध से हे द्विजसत्तमो! उछाल खाकर सहसा उस जल से समुदाय वाले सागर में गिर गया था। उस समय में वे सब वाराह और शरभ उछाल खाते हुओं ने दिव्यलोक में सब देवों का और समस्त नक्षत्रों का भग्न कर दिया था। उनमें कुछ देवगण तो निहित हो गए थे और कुछ भूमि में नियति हो गये थे और उनमें कुछ देवज्ञान से समन्वित थे जो महर्लोक का समुपाश्रय ग्रहण करके वहाँ पर संस्थित हो गये थे।

हे द्विज श्रेष्ठों! नक्षत्र विमान से महीबल में पतित हो गये थे वे सब ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल दिखलाई दे रहे थे। उनके उत्पतन में जो वेग था वह बहुत ही अधिक दारुण था। उनसे अत्यधिक वेग वाला वायु उत्पन्न हो गया था जो बहुत ही अधिक दारुण था। उस वायु से प्रेरित हुए पर्वत पृथ्वीतल में गिर गये थे और कुछ पर्वत पुनः ही पर्वतों में पतित हो गये थे। वह वृक्षों का और जन्तुओं का विभर्दित करके बारम्बार निपातित हो गये थे। कुछ तो पर्वतों के आघातों से महीतल में नृत्यमान हो रहे थे। उन पर्वतों ने गमन करते हुओं ने बहुत सी प्रजाओं का भग्न कर दिया था। वायु के वेग से भूतल में पर्वत दिखलाई दिए थे। उनसे सदृश्यमान होते हुए अर्थात् रगड़ खाते हुए अन्य पर्वत गमन करते हुए से प्रतीत हो रहे थे। अम्भीनिधि में पतित हुए वाराहों से और शरभ से दिखाई दे रहे थे। महान ऊँचे पर्वतों से जल की राशियाँ उत्क्षिप्त हो गयी थी।

एक ही क्षण में सब सागर बिना जल वाले हो गये थे क्योंकि वे सब जल की राशियों समुत्पिक्षप्त होकर पृथ्वी जल में समागत हो गईं

थीं। उत्प्लावित हुई समस्त प्रजा एक ही क्षण में क्षय को प्राप्त हो गयी थी। प्लवमान होती हुई अर्थात् डुबकियाँ खाती हुई प्रजा सभी ओर से क्रियमाण हो गयी थीं। उस समय में बहुत ही अधिक करुण दृश्य हो गया था। मरने वाले लोग परस्पर में विलाप कर रहे थे। कुछ लोग कह रहे थे हा पिता, हा माता! हा तात! हा सुता! इस प्रकार से कहते हुए परमभीत और आर्त्त मनुष्य करुणापूर्वक विलाप कर रहे थे। जिस देश में वाराहों के साथ शरभ निपातित हुआ था यहाँ पर ही अधोभाग में गई हुई पृथ्वी पादों के वेग से विदारित हो गई थी। दूसरा पृथ्वी का प्रान्त पर्वतों के साथ उत्थित हुआ था जन लोकों में उनके प्रभञ्जनों सृजन किया था। उस समय में शरभ ने जन लोकों में संयुक्त पृथ्वी को पोत्रियों कचला भी सम्बद्धा को निःश्रेणी की ही भाँति देखा था। वह विस्मय से आविष्ट हुआ भीतर भ्रान्त एवं पीड़ित था। इसके अनन्तर पौत्रीगण वे सब पौत्राघात से युद्ध करने लगे थे तथा उन्होंने खुरों के प्रहरों के द्वारा दाढ़ों से और महान दारुण गात्र से क्षेत्रों से ही युद्ध किया था।

इसके अनन्तर एक ही उस महान शरभ उन चारों पौत्रियों के साथ एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त एकान्त में दाढ़ों के अग्रभागों से, तीक्ष्ण नक्षों से, खुरों से, लांगुल के प्रहारों के द्वारा और महान शब्द वाले तुण्डाघातों से चारों उन पौत्रियों के साथ लड़ा था अर्थात् उसने युद्ध किया था। उनके प्रहारों से, वेगों से, भ्रमणों से और गमनागमनों से, आस्फोटितों से तथा अरावों से पृथक-पृथक देह के पातों से पाताल में समस्त पन्नग कद्रुजों के साथ विनिष्ट हो गये थे। इसके उपरान्त वे सब सागर का परित्याग करके पृथ्वी के मध्य में समागत हो गये थे। ये परस्पर युद्ध करते हुए रहे थे फिर यह पृथ्वी सम हो गई थी। शेष भगवान भी बड़े भारी यत्न से बल के द्वारा कच्छप को अवष्टब्ध करके भग्नशीर्ष वाले प्रत्यापित होते हुए बड़े दुःख के साथ इस पृथ्वी को धारण करने वाले हुए थे अर्थात् बड़ी कठिनाई से उन्होंने पृथ्वी को धारण किया था। अनन्त के वामनीभूत होने पर और पृथ्वी तल के समत्व को प्राप्त हो जाने पर सागरों के और पर्वतों के चलायमान होने के समस्त जन्तुओं

के विनिष्ट हो जाने पर त्रिपौत्रि शरभों के युद्धमान होने पर सागरों के द्वारा सम्पूर्ण जगत के आलुप्त होने पर उस समय में जलमय में चिन्ता से आविष्ट सुरश्रेष्ठ पितामह भगवान हरि से बोला–हे भगवान्! सुर-असुर और मनुष्यों के सहित समस्त भुवन विध्वंस हो गया है, यह पृथ्वी विशीर्ण हो गई हे और स्थावर तथा जंगम (चेतन) नष्ट हो गये हैं।

देव, गन्धर्व, दैत्य, सरीसृप के ही धन वाले मुनिगण सब, हे जगतों के नाथ! इस समय में विध्वंस हो गये हैं। आप ही सबके पालन करने वाले हैं और आप ही जगत के प्रभु अर्थात् स्वामी हैं। इस कारण से आप हम सबका और इस पृथ्वी का, हे जगत् के स्वामिन! पालन कीजिए। आप ही वाराह का शरीर हैं आप स्वयं ही इसका उपसंहार करिए। हे महाबाहो! चर और अचरों के साथ इस पृथ्वी को संस्थापित करिए। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा– उन भगवान जनार्दन ने इस ब्रह्माजी के वचन का श्रवण करके अच्युत प्रभु ने उस समय में सबकी संस्थापना करने के लिए यत्न किया था। इसके उपरान्त भगवान हरि रोहित मत्स्य के रूप को धारण करने वाले होकर इस समय में वेदों के सहित सात मुनियों को धारण करने वाले हुए थे। वे श्रुति की रक्षा के परायण होकर जगत के हित के साधन करने के लिए सभी श्रुति के श्रेष्ठ कोविदों का धारण किया था। उन मुनियों के शुभ नाम बतलाये जा रहे हैं, उन मुनियों में वशिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र, गौतम मुनि और महती तपश्चर्या में संस्थित जमदग्नि तथा तप के निधि भरद्वाज मुनि थे। इन सबको अपने पृष्ठ भाग पर रखकर जल के मध्य में महान नौका में मुनीन्द्र को बिठाकर स्थित हुए थे। इसके अनन्तर शिव को सान्त्वना देने के लिए भगवान जनार्दन वहाँ पर गये थे जहाँ पर उन्होंने पौत्रियों के साथ युद्ध किया था।

अति पौत्र पहनों से वराही के साथ भ्रान्त, निष्पीडित, प्याप्त (खुले) मुख से संयुत तथा श्वासों को लेते हुए हरि को देखकर समागत हुए थे वाराह ने पूर्व में होने वाली नृसिंह भगवान की मूर्ति का

स्मरण किया था। उनके द्वारा स्मरण किए हुए वाराह ने सखा वाराह के हित में भगवान नृसिंह समागत हुए थे। उस अवसर पर आए हुए उन भगवान नृसिंह का वीक्षण करके उनके कामों को अपने ही तेज में ले लिया था। वाराहों के साथ शरभ ने देखा था कि वह तेज सबके तुल्य विष्णु भगवान के अन्दर प्रवेश कर गया था। तेज से रहित भगवान नृसिंह का ज्ञान प्राप्त करके वाराह ने निःश्वासों के समूह को छोड़ा था अर्थात् वे बहुत कुछ निःश्वास लेने लग गये थे। फिर तो बहुत से वाराह समुद्‌भूत हो गये थे जिनका बहुत बड़ा आकार था और अद्‌भुत एवं तीक्ष्ण दाढ़ों वाले थे। वे वाराह शरभगिरीश मायाधारी और भय रहित होते हुए पीड़ित करने वाले थे। उस समय में भी नृसिंह भगवान के साथ युद्ध किया था और बहुत अधिक गिरीश का मर्दन किया था। एक क्षण में तो पक्षियों के समान स्वरूप वाले थे और क्षण में गौऐं, तुरंग और मनुष्य हो जाते थे। एक ही क्षण में नृसिंह वाराह के रूप वाले थे और वे किसी क्षण में गोमायु (शृंगाल) और वैकृतिक अर्थात् बिगड़े हुए हो जाते थे। उस युद्ध में वाराहों में अनेक भाँति के महाभयंकर स्वरूप वितन्यमान किए थे।

इस अवसर पर भर्ग को उनके द्वारा निपीड़ित देखकर उन गिरिश के समीप में भगवान् माधव आ गये थे। भगवान विष्णु ने अपने कर कमल से गिरीश का स्पर्श किया था और फिर उसने अपना तेज पुनः उनमें निर्धारित कर दिया। इसके अनन्तर प्रभाविष्णु भगवान विष्णु के कर से स्पर्श होते हुए ही वह अत्यधिक प्रसन्न हृष्ट और बलवान हो गये थे। इसके अनन्तर शरभ में बहुत ऊँचा, बलवान और दृढ़नाद (गर्जन की ध्वनि) किया था जिससे ये चौदह भुवन भर गए थे अर्थात् चौदह भुवनों में फैलकर पहुँच गया था। इस रीति से नाद करने वाले उसके मुख से जो भी सीकर अर्थात् जल के कण निकले थे उनसे महान शरीरों से धारण करने वाले तथा विशाल ओज से समन्वित समुत्पन्न हो गये। जिस प्रकार से वाराह के निःश्वास से नाना रूपों को धारण करने वाले गुण हुए थे। ये वैसे ही वाराह थे प्रत्युत उनसे भी

अधिक बलवान थे। श्वान, वाराह, उष्ट्र के रूप वाले, प्लव, गोमायु और गौ के मुख से संयुत, रीछ, मातंग, मार्जार और शिशुमार के स्वरूप वाले कुछ सिंह और व्याघ्र के मुख वाले और कुछ सर्प और भूकक के समान मुख वाले थे, हंस की सी ग्रीवा से युक्त हय के समान वाले तथा दूसरे महिष के समान आकृति वाले थे।

दूसरे मनुष्य के समान आकार वाले थे और फिर मृग तथा मेघ के सदृश मुख से समन्वित थे। कुछ केवल कबन्ध ही थे जिनके मुख नहीं थे। कुछ बिना हाथों वाले और कुछ बहुत हाथों से युक्त थे। उनके कुछ शरभ के सदृश आकारवाले थे और दूसरे कृकलास के जैसे मुख से संयुत थे। कुछ मत्स्य के सदृश मुख से युक्त थे और कुछ ग्राह के से मुख वाले थे, कुछ बहुत छोटे, कुछ बहुत बड़े बल वाले तथा कुछ कृश थे। कुछ ऐसे थे जिनके चार पैर थे, कुछ आठ पैरों से युक्त और कुछ तीन एवं दो पैरों वाले थे। कुछ एक ही पैर वाले थे और कुछ बहुत अधिक हाथों से संयुक्त थे। कुछ यक्ष तथा किंपुरुषों के समान थे। कुछ पशुओं के समान आकार वाले थे तो कुछ पंखों से संयुत थे। कुछ लम्बे उदर वाले थे तो कुछ महान उदर से संयुक्त थे। कुछ ऐसे थे जिनके उदर दीर्घ थे तथा स्थूल केशों से समन्वित एवं कुछ बहुत कानों वाले तथा कुछ बिना ही कानों वाले थे। कुछ उनमें ऐसे थे जिनके स्थूल अधर थे तो कुछ बिना ही कानों वाले थे। कुछ उनमें ऐसे थे जिनके स्थूल अधर थे तो कुछ दीर्घ दाँतों से समन्वित थे और दूसरे बड़ी लम्बीदाढ़ी मूँदों वाले थे। हे विप्रो! सभी ओर चौदह भुवनों में जो प्राणधारी थे वे उनके रूप की समानता को प्राप्त हुए थे। इस भुवन में कोई भी जन्तु अथवा स्थावर या जंगम नहीं था जिनके समान रूप से भगवान् शंकर के गण उत्पन्न न हुए हों। वे सब भिन्दिपाल, खग, परिघ और तोमरों से समन्वित थे।

शकुल, आस और गदाओं से, पाशों से खट्वांग से, त्रिशूलों से, कपालों से, शक्तियों से, दोत्रों से, क्षुणियों से, ईषाग्रों से, यष्टियों से, त्रिकण्टकों से, पाशों से, परशुओं से, बाणों से और कोणदण्डों से

महान भीषण थे। सभी महान बल वाले और जटा और चन्द्रकाल से युक्त थे। कुछ मार्ग के रूप से, वाहन से और भूषणों तुल्य जटा, अर्धचन्द्र और शुभ्रांशु और शुभ्रशीर्ष वाले महा बलवान थे। उनमें कुछ अर्धनारीश्वर थे और कुछ ऐसे ही थे जैसे रुद्रदेव ही होंवे। कुछ तो अपने सुन्दर रूप से तथा मोहने वाले स्वरूप से कामदेव के तुल्य थे जो वनिताओं के समुदाय के साथ रति करने में समुत्सुक थे। सभी आकाश में चरण करने वाले थे और सभी स्वतन्त्रता से गमन करने वाले थे। उनमें कुछ नीलकमल के सदृश श्याम वर्ण वाले थे तो कुछ शुक्ल और लोहित थे। कुछ रक्त, पीत तथा विचित्र वर्ण से संयुत और दूसरे हरि एवं कपिल थे। कुछ आधे पीत, आधे रक्त, आधे भाग में नील और दूसरे धवल थे।

कुछ कृष्ण और पीत वर्ण से युक्त थे तथा कपितय अर्द्धकृष्ण और शुक्ल वर्ण से रञ्जित थे। एक ही वर्ण वाले, कतिपय दो वर्णों से संयुत तथा दूसरे तीन वर्णों से समन्वित थे। कुछ चार पाँच और छः वर्णों से युक्त थे और हे द्विजो! कुछ दश गुणों वाले थे। सभी गज वादन करने वाले थे जिनमें कुछ डिण्डिम, पट्टह, शंख, भेरी, आनक, सकहल, गोमुख, मण्डूक, झर्झर, झर्झरी, समर्दल, वीणा, तन्त्री, पञ्चतन्त्री, शकर और दर्दर, कुण्ड, सतालकर तलिकाओं को वादन करते हुए सभी गण बार-बार हँसने वाले थे। वे सब वाराह की ओर मुख वाले होते हुए स्थित हो गये थे। उन सबसे वृषभध्वज भगवान शरभ ने कहा। इन वाराह के गणों का विहनन कर दो। ये निश्चय ही अपने क्रूर कर्मों द्वारा, क्रूर दृष्टि से, क्रूर युद्धों के द्वारा क्रूर होकर महान बल वाले थे। इसके अनन्तर वे सब गण अनेक आकार वाले और नाना श्रेष्ठ आयुधों से समन्वित थे। उन क्रूर दिखलाई देने वालों ने वाराह के गणों के साथ युद्ध किया था।

ये सभी आकाश में सञ्चरण करने वाले थे उन्होंने जल से पूर्ण तीनों जगतों का परित्याग करके दोनों पक्ष के गण आकाश में ही युद्ध कर रहे थे। इसके पश्चात भगवान हर के प्रमथों ने वाराह के गणों को

एक क्षण में महान वायु जिस तरह से मेघों को हटा देता है और विनष्ट कर दिया करता है वैसे ही महान बल के रखने वाले सभी वाराह के गणों को मार दिया था। उस सब वाराह के वीर गणों के निहित हो जाने पर वराह ने चिन्तन किया था कि वह क्या पहले और पीछे ऐसा वृत्त उपस्थित हुआ है। उसके उपरान्त चिन्तन करते हुए उसके हृदय में भगवान जनार्दन ने गमन करके वह सभी कुछ वाराह वपु के हित को विज्ञापित कर दिया था। इसके अनन्तर उस समय में देह का परित्याग करने के लिए महान बलशाली ने नरसिंह को दाढ़ों के अग्रभाग के घातों से विभक्त कर दिया था। शरभ भगवान भर्ग ने मध्य में दो भागों में कर दिया था। नरसिंह के दो भागों में विभक्त होने पर उसके नर भाग से नर ही समुत्पन्न हुआ था जो दिव्य रूपशाली महान ऋषि था। उसके पाँच मुखों के भाग से नारायण श्रुत हुआ था।

वह महान तेज वाले महामुनि जनार्दन हो गये थे। नर और नारायण दोनों महती मति वाले इस दृष्टि के हेतु हो गये थे। उन दोनों का प्रभाव बहुत ही दुर्धर्ष था और शास्त्र में, वेद में और तपों में सब उनका प्रभाव सहन करने के योग्य नहीं था। मत्स्य मूर्ति रक्षक के स्वरूप वाली नौका में उन दोनों को निर्धारित किया था और फिर वाराह हरि देव शरभ के समीप में प्राप्त हुए थे। मुझे समस्त जगतों के हित के सम्पादन करने के लिए वपु का त्याग अवश्य ही करना चाहिए। यह पूर्व में मैंने प्रतिज्ञा की थी उसी के लिए यह समुद्यम किया जा रहा है। वह समुद्यम भगवान हरि के द्वारा, शम्भु के द्वारा और ब्रह्म के द्वारा किया जा रहा है। ऐसा भली-भाँति चिन्तन करके उस समय में परमेश्वर शूकर के शरभ महान बलवान देव महादेव से कहा था—हे महादेव! आप मुझे परित्याग कर दो। मैं बिना किसी संशय के इस शरीर का त्याग करूँगा। यह मेरे शरीर का ज्ञात समस्त जगतों के और देवों के तथा ऋत्विजों के हित के सम्पादन करने के ही लिए हैं। मेरे देह के प्रतीकों के समूहों से यज्ञ का यूप प्रकल्पित करके, हे महाभागे! पृथक-पृथक शामित्र के सहित स्रुवा आदि की कल्पना की है।

इसके अनन्तर तीन पुत्रों के द्वारा वे उनका जगतों के हित के लिए निबंध करें। इस जगत से परिपूर्ण को सुवृत्त, घोर और कनक से रक्षा करो। यज्ञ से देव और प्रजा, यज्ञ से अन्य नियोगी यह सभी कुछ यज्ञ से ही सदा होने वाला है। यह सब जगत यज्ञों से परिपूर्ण है। मालिनी पृथ्वी पुनः जिससे इस गर्भ को धारण किया था वह देवी स्वयं उस समुत्पन्न पुत्र का भली-भाँति रक्षण करेगी। जिस समय में काल प्राप्त होता है उसी समय में देवी आयुष्मान बोलती है। उसके वध के विषय में जब काम से अत्यन्त आर्त्त होती है तभी इसका वध करेगी। जिस समय में भग्न हुई भारती पृथ्वी को नीचे की ओर होगी तभी भृंगी वाराह के रूप से उसी समय मैं उसका उद्धार करूँगा। तब आपका पुत्र अपने शरीर को कृतकृत्य अर्थात् सफल समझकर उसका त्याग कर देगा। इस प्रकार से यज्ञ वाराह के कहे जाने पर जो कि बलवान थे एक महान तेज जो ज्वालाओं की महामालाओं से दीप्त था, महाकाल था वह तेज करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान था और महान अद्भुत था। वह उस समय में वाराह के शरीर से निकलकर भगवान हरि के शरीर में प्रवेश कर गया था। हे द्विजो! उन भगवान विष्णु में वाराह के तेज से प्रविष्ट होने पर फिर भगवान हरि ने सुवृत्त, कनक और घोर से तेज से प्रविष्ट होने पर फिर भगवान हरि ने सुवृत्त, कनक और घोर से तेज को स्वयं ही आदान कर लिया था। उनके शरीर में भी तेज का भाग अलग-अलग निकलकर ज्वालाओं की माला से अत्यधिक दीप्त हो गया। वह भगवान हरि के शरीर में प्रवेश कर गया था जैसे उनका पिता को ठीक वैसे ही प्रविष्ट हो गया था। इसके अनन्तर भगवान हरि, ब्रह्मा और महादेव वराह के उस वचन की प्रतिज्ञा करके और बार-बार 'ओम' यह कहा था। 'ओम्' यह स्वीकृति के लिए प्रयुक्त होता है। उनके शरीर के परित्याग करने में उत्तम यत्न किया था। उसके उपरान्त शरभ के तुण्ड के प्रहारों से कुछ के मध्य में वाराह से शरीर का भेदन करके उसे जल में गिरा दिया था। उसका प्रथम पतन करके उसी भाँति सुवृत्त, कनक और घोर को कण्ठ भाग में भेदन कर-करके हनन कर दिया था।

प्राणों के परित्याग कर देने वाले वे सब महार्णव के जल में गिर गये थे। जल में पात करने के अवसर में घोर ध्वनि का विस्तार करते हुए कालानल के समय कान्ति वाले हो गये थे। वाराहों के पतित हो जाने पर ब्रह्मा, विष्णु तथा हर फिर समागत होकर सृष्टि की रचना करने के लिए चिन्तन करने लगे थे। उस अवसर पर हर के समस्त गण भर्ग के समीप में समागत हो गये थे। वे महाभाग चार भागों में विभाजित होकर उपस्थित हुए थे। हे द्विज सत्तमों! वे प्रथम छत्तीस सहस्त्र थे। वहाँ पर एक भाग में सोलह सहस्त्र संस्थित हुए थे। जो निश्चित रूप से अनेक स्वरूपों के धारण करने वाले थे। वे जटा जूटों में चन्द्रमा के अर्धभाग के द्वारा विभूषित थे। वे सभी सम्पूर्ण ऐश्वर्य से समन्वित थे और ध्यान में तत्पर हो रहे थे। वे सब योगी थे तथा मद, मात्सर्य, दम्भ और अहंकार से रहित थे। उनके समस्त पाप क्षीण हो गये थे और महान भाग वाले भगवान शम्भू के अत्यधिक प्रीति के करने वाले थे। उन्होंने परिग्रह रोग की कभी भी आकांक्षा नहीं की थी। वे सभी संसार से विमुख थे और योग से तत्पर योगी थे।

ध्यान की अवस्था में विराजमान् इन भगवान् महादेव को परिवारित करके धृत व्रत थे। वे रुचि से एक परिषद का निर्माण करके क्लम से रहित होते हुए स्थित थे। जिस समय में ही अम्बिका देवी के स्वामी परमज्योति का चिन्तन किया करते हैं उसी समय में वे समस्त उनको वेष्टित कर लिया करते हैं। जो यति व्रत वाले थे वे सोलह करोड़ कहे गए हैं। वे सब सिंह और व्याघ्र आदि के समान रूप वाले और अणिमा आदि सिद्धियों के द्वारा संयुत थे। अन्य कामुक शम्भु के सचिव अर्थात् प्रणय विधान के मन्त्री थे। भगवान् हर के ही समान रूप से वे वृषभध्वज विशद हो रहे थे तथा वे उमादेवी के तुल्य सुन्दर स्वरूप वाले प्रमदाओं से समागत थी। विचित्र माल्यों के आवरणों से युक्त थीं तथा हिमस्त्रक् की गन्ध से मण्डित थीं। उमा देवी की सहायता से संयुत और क्रीड़ा करते हुए भगवान शम्भु के पीछे भूषित होती हुई अनुगमन कर रही थीं। शृंगार और वेष के आभरण वाले वे

आठ करोड़ गण थे। उनमें अन्य अर्ध नारीश्वर थे जो हर के समीप थे।

भगवान शंकर ने ही सदृश रूप वाले ध्यान में संस्थित में प्रवेश कर गये थे जिस समय में उमादेवी के साथ भगवान हर सुख के सहित रमण किया करते थे। वे द्वारपाल भी अर्ध नारीश्वर हैं जो नित्य ही आकाश के मार्ग के द्वारा गमन करते हुए उनके पीछे ही अनुगमन किया करते हैं। ध्यान में संस्थित करने वाले ईश्वर का सलिल आदि के द्वारा परिचर्या किया करते हैं। अनेक शास्त्रों के धारण करने वाले शम्भु भगवान के वे गण प्रमथ किया करते हैं। वह महान बलवान शूर संख्या में नौ करोड़ थे। दूसरे गायन करने वाले थे जो ताल मृदंग आदि के द्वारा वादन किया करते हैं तथा नृत्य करते हैं और मधुर स्वर में गाते हैं। वे अनेक रूपों के धारण करने वाले वे संख्या में तीन करोड़ थे। वे निरन्तर विचरण करने वाले महेश्वर भगवान के पीछे गमन किया करते हैं। वे सभी मायावी, शूर थे और सब शास्त्रों के अर्थ के पारगामी ज्ञाता थे। सब जगह सभी कुछ के ज्ञान रखने वाले और सभी सर्वत्र सदा गमन करने वाले थे।

वे सब मूहूर्त मात्र में सम्पूर्ण भुवन में जाकर फिर गति के द्वारा पुनः भव को प्राप्त हो जाया करते थे। वे सब महान बल से युक्त थे तथा अणिमा महिमा आदि आठों प्रकार के ऐश्वर्यों से समन्वित थे। दूसरे रुद्र नामों वाले जरा और अर्धचन्द्र से मण्डित थे। वे देवेन्द्र के आदेश से सदा ही स्वर्ग में रहा करते हैं। उनकी संख्या एक करोड़ थी और वे सब विशेष बलवान थे। वे सदा ही हर के गण भगवान शम्भू की सेवा किया करते हैं तथा जो धर्मिष्ठ हैं अर्थात धर्म का समादर करने वाले हैं उनका पालन किया करते हैं। जो पाशुपत व्रत के धारण करने वाले हैं उनके ऊपर निरन्तर अनुग्रह किया करते हैं। जो प्रयत आत्माओं वाले योगीजन हैं उनके विघ्नों का निरन्तर हनन किया करते हैं। ये भगवान हर के गण जो कि समस्त संख्या में छत्तीस करोड़ थे। ये गण वाराह के गणों के नाश करने के लिए तथा समस्त जगतों के

हित सम्पादन करने के लिए और भगवान शंकर की सेवा के लिए समुत्पन्न हुए थे। वाराह के गणों को देखकर तथा नसिंह हरि को अवलोकित करके स्वयं शरभ के स्वरूप वाला होता हुआ और ध्यान करते हुए उस समय में नाद किया था।

उनके सीकरों से (जल कणों से) जो उत्पन्न हुए थे इसी कारण से उनके स्वरूप भी बहुत थे। क्रूर दृष्टि से, क्रूर गति से, क्रूर युद्धों से, क्रूर कृत्यों से वाराह के इन गणों का हनन करने वाले थे क्योंकि भगवान् कपर्दी (शिव) ने कहा है। अतएव वे क्रूर कर्मों के करने वाले और भयंकर समुत्पन्न हुए थे। वे महान ओज वाले सदा क्रूर हैं। वे कर्मों को नहीं किया करते हैं। दृष्टिमात्र से ही वे क्रूर हैं वे कार्यों से क्रूर नहीं थे। वे फल, पुष्प, जल, पाक तथा मूल को भोग करते हैं। वनों पर्वतों की शिखरों में फलादि जो निवेदित किये जाते हैं उनका ग्रहण करते हैं और आहरण करने के जो पत्र पुष्पादिक हैं उनका प्राशन किया करते हैं। भर्ग का जो भोग होता है उसी भोग वाले वे महान ओज वाले भी थे। चैत्र की चतुर्दशी को छोड़कर वे आमिषों का प्राशन नहीं किया करते हैं। फिर सब गण भी वहाँ पर आमिषों का उपभोग किया करते हैं।

वाराह के गणों के निहत हो जाने पर वे गण मार्ग के समीप में पहुँचकर स्वयं चारों भागों वाले होकर भूतकर्म का गान करते थे। चार भाग वाले में उनका भूतत्व उस समय में हो गया था। जो पूर्व में लोक और वेद में विदित भूतग्राम चार प्रकार का था क्योंकि यह उनसे भी अधिक था। अतएव वह भूतग्राम कहा जाया करता है। यह सब आपको बतला दिया है जिस तरह से शम्भु के गणभूत हैं। वे जो भी आहार वाले हैं, जैसे आकार वाले हैं और जो कृत्य करने वाले हैं वे महान ओज से युक्त हैं। जो इस महान अद्भुत आख्यान का नित्य श्रवण किया करता है वह दीर्घ आयु वाला, सदा उत्साह से सम्पन्न और योग से युक्त होता है।

श्री वाराह यज्ञोत्पत्ति वर्णन

ऋषियों ने कहा–यज्ञ वाराह का देह यज्ञत्व को कैसे प्राप्त हुआ था। और वाराह के तीन पुत्र त्रेतात्व कैसे प्राप्त हुए थे? यह अकालिक प्रलय भगवान ने कैसे किया था और महात्मा वाराह ने महान घोर जनों का क्षय कैसे किया था। किस प्रकार से भगवान शार्गधारी से मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदों का त्राण किया था अर्थात् वेदों की सुरक्षा करके उनको सुरक्षित रखा था? फिर दुबारा यह सृष्टि की रचना कैसे हुई थी और इस भूमि को किसने समुद्धृत किया था? वह देह कैसे प्रवृत्त हुआ था, यह सब हे महामते! हमको बतलाइए। हे द्विज शार्दूल! इस सबका हाल आपने प्रत्यक्ष रूप से देखा। हे महती मतिवाले! आज हम सब इसके श्रवण करने वाले हो रहे हैं। अतएव हमको आप बतलाने की कृपा कीजिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–हे द्विज शार्दूलों! जो मैंने यहाँ पर एक अद्भुत सृजन किया था उसको सुनिए। आप सब परम सावधान हो जाइए और इस समस्त वेदों के फल को प्रदान करने वाले को सुनिए।

यज्ञों में देवगण सन्तुष्ट होते हैं और यज्ञ में सभी कुछ प्रतिष्ठित है। यज्ञ के द्वारा ही पृथ्वी धारण की जाती है और यज्ञ से ही प्रजा का त्ररण किया करता है। अन्न के द्वारा प्राणी जीवित रहा करते हैं और उस अन्न की उत्पत्ति मेघों के द्वारा होती है। वे मेघ यज्ञों से हुआ करते हैं। इसलिए यह सभी कुछ यज्ञ से ही परिपूर्ण है। वह यज्ञ भगवान शम्भु के द्वारा विदीर्ण किए हुए वाराह के शरीर से ही हुआ था। हे द्विजो! जैसा भी मैं आपको कहता हूँ उसको आप लोग परम सावधान होकर श्रवण कीजिए। मर्म के द्वारा वाराह के शरीर के विदारित होने पर उसी खण ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवगण ने जल से समुद्धृत करके उस शरीर को वे आकाश के प्रति ले गये थे। उसके भेदन करने वाले भगवान विष्णु के चक्र के द्वारा वह शरीर खण्ड-खण्ड कर दिया गया था। उसके अंग की सन्धियाँ जो थीं वे यज्ञ पृथक्-पृथक् समुत्पन्न हुए थे। हे महर्षियों! जिस अंग से जो समुत्पन्न हुए थे उनका सब आप लोग

श्रवण कीजिए। भौंह और नासिका की सन्धि से महान अध्वर यज्ञ ज्योतिष्टोम नाम वाला उत्पन्न हुआ था। ठोड़ी, कान की सन्धि से वह्निष्टोम नामक यज्ञ समुद्भुत हुआ था। चक्षु और भौहों की सन्धि व ओष्ठों से पौनर्भवष्टोम व क्रत्यष्टोम यज्ञ समुत्पन्न हुआ।

जिह्वा के मूल से वृद्धष्टोम और वृहत्तृष्टोम दो यज्ञ उत्पन्न हुए थे। नीचे जिह्वा के अन्तर्भाग से अतिरात्र और सर्वराज नाम वाले यज्ञों ने जन्म ग्रहण किया था। अध्यापन, ब्रह्म, यज्ञ, पितृ, यज्ञ, तर्पण, होम, दैव, बलि, भौत, नृयज्ञ, अतिथि पूजन स्नान और तर्पण पर्यन्त नित्य यज्ञ सर्वकण्ठ सन्धि से समुत्पन्न हुए थे तथा समस्त विधियाँ जिह्वा से उत्पन्न हुई थीं। वाजिमेध, महामेध तथा नरमेध ये तथा जो अन्य हिंसा के करने वाले यज्ञ हैं वे सब पादों की सन्धि से समुत्पन्न हुए थे। राजसूय यज्ञ अर्थकारी तथा वाजपेय यज्ञ पृष्ठ की सन्धि से समुद्भूत हुए थे और उसी भाँति जो ग्रहण यज्ञ थे वे भी समुत्पन्न हुए थे। प्रतिष्ठा सर्ग यज्ञ तथा दान श्रद्धा आदि यज्ञ हृदय की सन्धि से पैदा हुए थे। इसी तरह से सावित्री यज्ञ भी उत्पन्न हुआ था। समस्त सांसारिक अर्थात् संस्कार करने वाले अथवा संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाले यज्ञ और जो यज्ञ प्रायश्चित करने वाले हैं। (पापों की शुद्धि के लिए जो भी व्रत, दान, होमादि किए जाते हैं वे प्रायश्चित कहे जाते हैं।) ये सब मेढ्र की सन्धि से उत्पन्न हुए थे।

रक्ष सत्र अर्थात् राक्षस यज्ञ, सर्प सत्र और सभी जो भी अभिचारिक यज्ञ हैं अर्थात् अन्य प्राणियों के मारणात्मक हैं वह सभी उनके खुरों से हुए थे। माया सृष्टि, परमेष्टिग्रीष्यति, भोग सम्भव तथा अग्निष्टोम यज्ञ लाँगूल की सन्धि में समुद्भूत हुए थे। जो नैमित्तिक यज्ञ हैं जिनको कि संकालि आदि पर्वों पर कीर्त्तित किया गया है वे और द्वादश वार्षिक सभी लांगुल सन्धि में समुत्पन्न हुए हैं। तीर्थ, प्रयोग, साम, संकर्षण यज्ञ, आर्क, आकर्षण यज्ञ ये समस्त नाड़ियों की सन्धि से उत्पन्न हुए थे। ऋचोत्कर्ष, क्षेत्रयज्ञ, ये सब जानु में समुदत्पन्न हुए थे। हे द्विजसत्तमो! इस रीति के एक सहस्र आठ यज्ञ समुद्भुत थे। निरन्तर

यज्ञों के लोक जिनके द्वारा इस समय में भी विभावित किए जाते हैं, उत्पन्न हुए थे। इसके पौत्र से स्रुक् उत्पन्न हुई थी और नासिका से स्रुव हुआ था। अन्य जो भी स्रुक् और स्रुव के भेद अभेद हैं वे पौत्र और नासिका से समुद्भुत हुए थे।

हे मुनि सत्तमो! उसके ग्रीवा के भाग से प्राग्वंश समुद्भूत हुआ था। इष्टा पूर्त्ति, जयु धर्म्म श्रवण के छिद्र से उत्पन्न हुए थे। दाढ़ों से यूप, कुशा और रोम समुत्पन्न हुए थे। उद्गाता, अध्वर्यु, होता और शामित्र ने जन्म ग्रहण किया था। ये अग्र, दक्षिण, वाम अंग, प्रचात् पादों में संगत हैं। पुरोडाश चरु के सहित मस्तिष्क के सञ्चय से समुद्गत हुए थे। खुर से यज्ञ केतु ने जन्म ग्रहण किया था। रेतोभाग से आज्य और स्वधा मन्त्र समुद्गत हुए थे। यज्ञ का आलय पृष्ठभाग से और हृदय कमल से यज्ञ समुत्पन्न हुआ था। उसकी आत्मा यज्ञ पुरुष है उनकी भुजायें कक्ष से समूद्भुत हुई थीं। इसी प्रकार से जितने भी यज्ञों के भाण्ड हैं और हवियाँ हैं वे सभी यज्ञ वाराह के शरीर से हुए थे। इस रीति से उन यज्ञ वाराह का शरीर यज्ञता को प्राप्त था।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने इस प्रकार से यज्ञ को करके वे फिर यत्नों में तत्पर हुए सुवृत्त, कनक और घोर के समीप में प्राप्त हुए थे। इसके अनन्तर उनके शरीरों को पिण्ड बनाकर पृथक्-पृथक् तीनों देवों ने तीन शरीरों को मुख की वायु से अर्थात् फूँक लगाकर विशेष रूप से धमन किया था। स्वयं ही जगत के सृजन करने वाले फिर दक्षिणाग्नि हो गए थे। भगवान केशव ने कनक के शरीर का धारण किया था। फिर पञ्च वैतान के भोजन करने वाला गार्हपत्याग्नि हुआ था। फिर वाह्ववानीय अग्नि उसी क्षण में समुद्भूत हो गया था।

इन तीनों से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया था और वह समस्त जगत् तीन मूलों वाला है। हे द्विज श्रेष्ठों! जहाँ पर ये तीनों नित्य ही स्थित रहते हैं वहाँ पर समस्त देवगण अपने अनुचरों के साथ निवास किया करते हैं। यह तीनों का स्वरूप नित्य ही कल्याण का स्थान है और यही तीनों का स्वरूप है। यह त्रयी की विधि का स्थान हैं और यह परम

पुण्य का करने वाला है। जिस जनपद में ये तीनों वह्नियों का हवन किया जाता है उस जनपद में नित्य ही चतुर्वर्ग विद्यमान रहा करता है। चारों वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष होते हैं। हे द्विज श्रेष्ठो! जो मुझसे आपने पूछा है वह मैंने सब ही आपको बतला दिया है। जिस प्रकार से यज्ञ वाराह का देह यज्ञत्व को प्राप्त हुआ था और जिस तरह से उनके पुत्रों के देह से वह्नियाँ हुई थी।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस कारण से भगवान ने आकालित यह प्रलय किया था हे महाभागो! उस वाराह लोक संक्षय का आप श्रवण कीजिए। अथवा जिस तरह से भगवान शार्गंधारी ने मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदों का त्राण अर्थात् रक्षा की वह मैं सब पापों के विनाश करने वाला आख्यान आप लोगों को बतलाऊँगा।

कपिल अवतार आख्यान

प्राचीन समय में ईश्वर भगवान विष्णु महामुनि सिद्ध कपिल हुए थे जो स्वयं साक्षात् हर थे और सिद्धों के उत्तम मुनि हुए थे। इस प्रकार से सिद्ध का ध्यान करते हुए यह सम्पूर्ण जगत् स्वतः ही समुत्पन्न हुआ था क्योंकि यह भगवान हरि के शरीर से समुद्गत हुआ था इसी कारण से वह कपिल कहे गये हैं। वह एक बार स्वायम्भुव मनु के अन्तर में होकर मुनि श्रेष्ठ से यह वाक्य कहा था। कपिल देव ने कहा—हे स्वायम्भुव! आप तो मुनियों में बहुत ही अधिक श्रेष्ठ हैं। हे महापते! आप तो ब्रह्मा के ही रूप से समन्वित हैं इस समय में आप प्रार्थना करने वाले मेरे ही अभीष्ट को मुझे प्रदान करिए। यह सम्पूर्ण जगत आपका ही है और आपके द्वारा ही परिपालित है। आपने ही इस सम्पूर्ण जगत् की रचना की है और आप ही इन जगतों के स्वामी हैं। स्वर्ग में, पृथ्वी में और पाताल में, देव, मनुष्य और जन्तुओं में आप ही स्वामी हैं, वरदान देने वाले हैं। रक्षा करने वाले हैं और आप ही एक सनातन हैं अर्थात सर्वदा से चले आने वाले हैं। आप ही धाता, विधाता हैं और आप ही सब ईश्वरों के ईश्वर हैं आप में ही सब कुछ प्रतिष्ठित

है। इस कारण से आप कृपा करके ऐसा स्थान प्रदाए करिए जो तीनों लोकों में महान दुर्लभ होवे। मैं समस्त प्राणियों में होकर प्रत्यक्षदर्शी हूँ। मैं ज्ञानरूपी दीपिका का निर्माण करके इस जगत जात का अर्थात् पूरे जगत् का उद्धार करूँगा। इस समय अज्ञानरूपी सागर में मग्न इस सम्पूर्ण जगत को ज्ञानरूपी प्लव अर्थात् सन्तरण का साधन प्रदान करके मैं तीनों का तारण करूँगा। हे प्रभो! आप हमारे नाथ हैं। पूजा के योग्य हैं और जगत के पालक हैं। महात्मा कपिल के द्वारा इस रीति से कहे गए उन मनु ने फिर उन संशित व्रतों वाले महात्मा कपिल को उत्तर दिया।

मनु ने कहा—यदि आप समस्त जगत का भला करने के लिए ज्ञान दीपिका के करने की इच्छा वाले हैं तो फिर आपको इस स्थान की प्रार्थना से क्या करना है ? आपने पहले हिरण्यगर्भ के महान अद्‌भुत तप का तपन किया था जो बहुत ही अद्‌भुत स्वरूप वाला था। हे द्विज! उसने मुझसे किसी भी स्थान के लिए याचना नहीं की थी कि जहाँ पर तपश्चर्या की जावेगी। भगवान शम्भु तो सम्भोग के सर्वथा शून्य हैं उन्होंने देवों के भाव से वर्षों तक अर्थात् दस हजार वर्षों तक तपश्चर्या की थी किन्तु उन्होंने भी स्थान की कभी इच्छा नहीं की थी। देवेन्द्र, नीतिहोत्र, शमक, राक्षसों का स्वामी, यादवों के पति, मातरिश्वा तथा धनाध्यक्ष कुबेर इन सबने तीव्रतम तप किया था। जो दिक्‌पाल के पद की इच्छा रखने वाले थे अर्थात् दिक्‌पाल के पद की प्राप्ति के ही लिए इन सबने तपस्या की थी। हे महामुने! उन्होंने भी किसी भी स्थान के अनुसन्धान करने की इच्छा नहीं की थी। हे कपिल! देवों के आलय, तीर्थ, स्थल, क्षेत्र तथा पवित्र सरितायें बहुत से पुण्य परिपूर्ण स्थान इस भूमि में स्थित हैं उनमें से आप किसी भी एक स्थान को प्राप्त करके तपश्चर्या करते हैं। हे ब्रह्मन्! क्या वहाँ पर तपश्चर्या की सिद्धि नहीं होगी! फिर मुझसे किसी भी स्थान की प्रार्थना करना केवल आपका विकत्थन ही है। यह ऐसा विकत्थन करना तपस्वियों को धर्म युक्त नहीं होता है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–स्वायम्भव मनु के इस वचन का श्रवण करके सिद्ध कपिल बहुत अधिक कुपित हुए थे और उस समय उन्होंने मनु से कहा। कपिल देव बोले–शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने के लिए मैंने आपसे स्थान की प्रार्थना की थी किन्तु आप तो बहुत से हेतुओं के द्वारा मेरे ही ऊपर आक्षेप कर रहे हैं। आपके इस अत्यन्त उग्र वचन को मैं सहन करने में असमर्थ हूँ। आप स्वयं तीनों भुवनों के अध्यक्ष हैं यही आपका ऐसा गर्व है। आप मुझे आपका यह वचन क्षमा करने के योग्य नहीं है कि आप मेरी की हुई प्रार्थना को विकत्थन कह रहे हैं। ऐसा जो आप कहते हैं उसका यह फल प्राप्त करिए। यह तीनों भुवनों जिसमें देव, असुर और दानव निवास किया करते हैं इनका अब हत-प्रहत और विध्वंस बहुत ही शीघ्र हो जायेगा।

जिसने इस पृथ्वी का उद्धार दिया था अथवा जिसके द्वारा यह पुनः स्थापित की गयी थी, जो इसका अन्तकर्ता है अथवा जो इसकी परिरक्षा करने वाला है वे ही सब सम्पूर्ण चराचर की हिंसा करे। हे मनुदेव! आप शीघ्र ही इन तीनों भुवनों को जल से पूर्ण देखेंगे। आपके गर्व के कारण यह सब हत-प्रहन और विध्वंस हो जायेगा। तपों के निधि मुनीन्द्र कपिलदेवे यह वचन कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये थे और फिर वे मुनि उसी समय ब्रह्माजी के स्थान को चले गये थे। कपिल देव के इस वचन को सुनकर मनु का मुख विषाद से युक्त हो गया था। वह होनहार है, ऐसा समझकर उस मनु ने कुछ भी नहीं कहा था। इसके अनन्तर परम बुद्धिमान स्वायम्भुव मनु ने तपस्या करने के लिए ही मन में धारणा की थी। वे समस्त जगतों की भलाई के लिए भगवान गरुड़ध्वज के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा वाले हुए थे। वे गंगा द्वार के समीप में परम विशाल बद्रीविशाल को गमन कर गए थे। वहाँ पहुँचकर जत के धर्ता स्वायम्भुव मनु ने स्वयं ही पापों के विनाश करने वाली पुण्यतोया बदरी का वहाँ पर दर्शन किया था। जो सदा फलों वाली थी और नित्य ही कोमल शाद्वल की मञ्जरी से समन्वित थी, जो सुन्दर छाया वाली, मसृण और सूखे हुए यंत्रों से रहित थी।

वह गंगा के जल की राशि से संसिक्त शिखा और मूल सम्पूर्ण मध्य भाग से समन्वित थी, जो निरन्तर अनेक मुनियों और तपस्वियों के द्वारा उपासना की गई थी। वह स्थान सभी प्रकार से परम शुभ था और नाना मृगों के समुदाय से संयुक्त था जिसके जल में विकसित कमल थे, वह परमाधिक रमणीक था। उस स्थान में प्रवेश करके लोकों के भावन करने वाले मुनि ने तपश्चर्या करने के लिए यत्न किया था। वे वहाँ पर नियत आहार वाले परम समाधि से संयुत हो गये थे। वहाँ पर उन्होंने भगवान हरि की समाराधना की थी जो जगत् के कारण के भी कारण हैं तथा समस्त जगतों के नाथ हैं और नीले मेघ तथा अञ्जन की प्रभा के समान से युक्त थे। मनु ने जिस भगवान के स्वरूप का ध्यान किया था उसी का वर्णन किया जाता है। वे शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाले हैं, कमल के सदृश लोचनों से युक्त हैं, पीत वर्ण के वस्त्र के धारण करने वाले हैं जो देव गरुड़ के ऊपर विराजमान हैं। जो जगत् से परिपूर्ण हैं, लोकों के नाथ हैं तथा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं, जो इस जगत् के बीज हैं और सहस्त्र नेत्रों वाले तथा सहस्त्र शिरों से समन्वित प्रभु हैं, जो सबमें व्यापी, सबके आधार, अज, विभु और नारायण हैं। मनु ने सर्व वेदों से परिपूर्ण इस परम मन्त्र का जाप किया।

उस मन्त्र का अर्थ यह है—हिरण्यगर्भ पुरुष, प्रधान अव्यक्त रूप वाले, शुद्ध ज्ञान के स्वरूप वाले भगवान वासुदेव के लिए नमस्कार है। इस प्रकार के मन्त्र का जाप करने वाले स्वायम्भव मनु के ऊपर जगत् के स्वामी भगवान केशव शीघ्र ही प्रसन्न हो गए थे। अब जिस रूप से भगवान ने मनु को दर्शन दिया था उसका वर्णन किया जाता है, फिर एक क्षुद्रझष (मत्स्य) होकर वे सामने प्राप्त हुए थे जो दुर्वादल के समान प्रभा से युक्त थे, जो कर्पूर कलिका के जोड़े के तुल्य नेत्रों से युगल से मुक्त परम उज्ज्वल थे। उस समय में एक बहुत छोटे मत्स्य के स्वरूप से युक्त भगवान जनार्दन तपस्या करते हुए स्वायम्भुव मुनि मनु के सामने आये थे जो मनु महान आत्मा वाले थे।

वे प्रभु उस समय में महान् आत्मा वाले, कारुण्य से युक्त, सुमन्त्रस्त अर्थात भययुक्त गद्गदता से समन्वित उन स्वायम्भुव मनु से बोले–हे तपोनिधि! हे महाभाग! आप डरे हुए मेरी रक्षा करने के योग्य होते हैं। विशाल मत्स्यों से मैं परमभीत (डरा हुआ) हूँ जो मुझे कहीं खा न जावें इसीलिए मैं नित्य ही उद्वेग वाला रहता है। हे महाभाग! प्रतिदिन की बड़े-बड़े मत्स्य मुझे खाने के लिए मेरे पीछे दौड़ लगाया करते हैं। सभी ओर से बड़ी संख्या में बड़े मत्स्य मुझे खाने के लिए आया करते हैं। हे नाथ! आप मेरी रक्षा करने के लिए समर्थ हैं।

आज बड़े-बड़े रोमों वालो से, बड़े और बहुतों के द्वारा मैं विदारित किया गया हूँ। सबसे छोटा थक गया हूँ और भागने में परम असमर्थ हूँ। मैं अपने प्राणों के रक्षित करने की इच्छा वाला हूँ। आप महान आत्मा वाले हैं ऐसे मुनि मैं आपकी शरणागति मैं प्राप्त हुआ हूँ। यह आपका परम अनुग्रह हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए। भय से उद्भ्रान्त मन वाला मैं चंचल तरंगों वाली परम चंचल इस वृक्षों की छाया का अवलोकन करके मत्स्य की ही भाँति डर रहा हूँ। मार्कण्डेय मुन ने कहा–इसके अनन्तर इस अनेक वचन का श्रवण करके स्वायम्भुव मनु परमाधिक कृपा से समन्वित होकर उनसे बोले थे कि मैं आपकी रक्षा करने वाला हूँ। फिर हाथ में जल लेकर उस मत्स्य को उसमें निधापति करके समक्ष में उस परमक्षुद्र मत्स्य के विहार का अवलोकन करने लगे थे। इसके अनन्तर परम दयालु मनु ने सुन्दर स्वरूप वाले उस मत्स्य को जल से पूर्ण विपुल योग वाले अलिञ्जर में रखा दिया था। वह मत्स्य उन मणिक में दिन-दिन में बढ़ता हुआ सामान्य रोहित के शरीर वाला शीघ्र ही हो गया। वह महात्मा प्रतिदिन दश घट जल से परिपूर्ण उस मणिक को बढ़ाते रहे थे और मत्स्य को वर्धित कर दिया था। अर्थात् वह मत्स्य बड़ा होता चला गया था और बड़े-बड़े नेत्रों वाला एक बालक मत्स्य थोड़े ही समय में उस मणिक के जल के मध्य में लोमों से युक्त पीन देह वाला हो गया था।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–स्वायम्भुव मनु ने उस प्रकार से स्थूल

शरीर वाले उस मत्स्य का अवलोकन स्वयं करके उसको अपने हाथ से ग्रहण करके वे विकसित कमलों से संयुक्त सरोवर को चले गये थे। वह सरोवर वहाँ पर परम पुण्य नर नारायण के आश्रम में बहुत विस्तृत था। वह एक योजन के विस्तार वाला तथा डेढ़ योजन आयताकार था। उसमें उनके भीत गण थे। उस सरोवर में उस मत्स्य को डाल करके उस समय में मनु ने वहाँ पर निर्धारित कर दिया था। उस मत्स्य का उन्होंने अपने पुत्र की ही भाँति परम अनुग्रह से युक्त होकर पालन किया था। वह मत्स्य बहुत ही थोड़े समय में परमाधिक स्थूल और विस्तृत हो गया था। हे श्रेष्ठ द्विजों! वह मत्स्य उस सरोवर में भी समाया नहीं था। क्योंकि बहुत ही बड़ा हो गया था। वह मत्स्य एक बार पूर्व और उत्तर दोनों किनारों पर अपना शिर और पूँछ रखकर ऊँचे शरीर वाला हो गया था फिर वह स्वायम्भुव महात्मा से चिल्लाकर बोला—मेरी रक्षा करो। मनु ने उसको स्थूल पूँछ वाला समझकर वह उस समय में उस महामत्स्य के समीप पहुँचे और अपने हाथ के द्वारा उसको उन्होंने ग्रहण किया था।

मैं विपुल रोमों वाले अतीव अद्भुत आपका उद्धार करने के लिए समर्थ नहीं होता हूँ, ऐसा भली चिन्तन करते हुए भी उन्होंने हाथ से उसको धारण कर लिया था। विश्व के आत्मा भगवान् जनार्दन भी जिन्होंने मत्स्य का स्वरूप धारण कर रखा था स्वायम्भुव मनु के कर को प्राप्त करके फिर छोटे स्वरूप का उपाश्रय ग्रहण कर लिया। फिर मनु ने करों से उसको उठाकर अपने कन्धे पर धारण किया था और शीघ्र ही उसे सागर में ले गये थे और वहाँ जल में उसको रख दिया था। उन्होंने उस मत्स्य को कहा था—वहाँ आप अपनी इच्छा के अनुसार बढ़िये यहाँ पर कोई भी आपका वध नहीं करेगा और आप शीघ्र ही सम्पूर्ण देह को प्राप्त करिए। यह कहकर समस्त प्राणधारियों में परमश्रेष्ठ वह महान भाग वाले ने उसकी लघुता (छोटेपन) का चिन्तन करते हुए ही परमाधिक विस्मय को प्राप्त हो गये थे। वह मत्स्य भी तुरन्त ही उस समय में महान् पूर्ण शरीरवाले हो गये थे और अपने

देहादिक के द्वारा सभी ओर से उस महासागर को उन्होंने भर दिया था। तात्पर्य यह है कि उन्होंने इतना अधिक अपने शरीर को बढ़ा लिया था कि वह पूरा सागर उससे भी गया था। उस महासागर के जल को भी अतिक्रमण करके अत्यन्त उन्नतपूर्ण शरीर वाले का अवलोकन करके जो कि शिलाओं से घिरे हुए, लम्बा चौड़ा मानसाचल के तुल्य था।

सम्पूर्ण सागर को रोकने वाले और अपने देह के विस्तार से अचल करके श्रीमान स्वायम्भुव मनु ने उस समय उनको मत्स्य नहीं माना था। उस अवसर पर स्वायम्भुव मनु ने उस मत्स्य से फिर शान्तिपूर्वक पूछा था जबकि उनकी अद्भुत मूर्ति का दर्शन किया था और उनके छोटेपन को देखा था। मनु ने कहा–हे परमश्रेष्ठ! मैं केवल आपको मत्स्य ही नहीं मानता हूँ। आप कौन हो, यह मुझे स्पष्ट बतलाने की कृपा करिए ? हे सुमहत्तप! मैं आपके महत्व को और छोटेपन कर चिन्तन करते हुए ही आपको सामान्य मत्स्य ही नहीं मानता हूँ। आप ब्रह्मा हैं अथवा विष्णु हैं या आप शम्भु हैं जिन्होंने यह मत्स्य का स्वरूप धारण किया है। यदि इसमें कुछ गोपनीयता न हो तो, हे महाभाग! हे महामते! मुझे यह स्पष्ट बतलाने की कृपा करिए। मत्स्य भगवान ने कहा–आपके द्वारा मेरी नित्य ही आराधना करनी चाहिए जो सनातन हरि भगवान हैं वही मैं हूँ। इस समय आपकी कामना की सिद्धि के ही लिए में समादित होकर प्रकट हुआ हूँ। हे भूतों के स्वामिन्! आप जो भी मुझ मीन की मूर्ति वाले से जो भी कुछ चाहते हैं वही आज करूँगा। मेरी इस मूर्ति को मन ही समझिए। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–अपरिमित तेज के धारण करने वाले भगवान विष्णु के इस वचन का श्रवण करके और प्रत्यक्ष रूप के केवल भगवान् विष्णु का ज्ञान प्राप्त करके मनु प्रसन्न हुए थे।

स्वायम्भुव मनु ने कहा–हे हरे! इस जगत के पर और अपर के आप स्वामी हैं। आप अविनाशी हैं तथा अग्नि, सूर्य और चन्द्र इनको ही तीन नेत्रों को धारण करने वाले हैं। आपकी सेवा में मेरा प्रतिपात निवेदित है। हे सर्वज्ञ! आप जगत के कारण हैं, जगत के धाम हैं, हे

हरे! आप पर हैं। आप पर और अपर स्वरूप वाले तथा जो पार जाने वाले हैं उनको पार पहुँचाने के कारणरूप हैं। अपनी आत्मा से ही आत्मा को धारण करके हे हरे! आप धरा का रूप धारण करनेवाले हैं। हे त्रिविक्रम्! आप आधार स्वरूप वाले हैं और आप समस्त लोकों का भरण किया करते हैं। हे सुरेश्वर! आप समस्त वेदों से परिपूर्ण एवं श्रेष्ठ हैं। धाम के कारण के भी आप कारण हैं। आप देवों के समुदाय के परम ईशान हैं और नारायण हैं। आपका कोई भी जन्मदाता नहीं है और आप इस जगत की योनि अर्थात् उत्पादक हैं। आप पादरहित हैं तो सदा गति वाले हैं। आप तेज और स्पर्श से रहित हैं। हे ईश्वर! आप सभी के स्वामी हैं। आपका कोई भी आदिकाल नहीं है और आप ही सबके आदि हैं। आप नित्य अनन्तर हें जो हेम का अण्ड है और इन सब जगतों का बीज हैं और ब्रह्माण्ड की संज्ञा से युक्त है। उस ब्राह्मण्ड के बीज आपका ही तेज होता है। आप ही सबके आधार रूप हैं और आप स्वयं बिना आधार वाले हैं। आप स्वयं तो बिना हेतु वाले हैं किन्तु सबके कारण स्वरूप हैं।

हे विश्व के स्वामिन्! हे प्रभो! आप ही समस्त लोकों के प्रभाव अर्थात् जन्म स्थान हैं अथवा जन्म देने वाले हैं। आप सृष्टि, स्थिति और संहार के हेतु हैं। आप विधाता, विष्णु और आत्मा के धारण करने वाले हैं। आपकी सेवा में बारम्बार नमस्कार है। आपकी मूर्ति दस प्रकार की है और वह मूर्ति ऊर्मि षट्क आदि से रहित है। आप ज्योति के स्वामी हैं आप ही अम्भोधि अर्थात् सागर हैं उन आपके किए बारम्बार प्रणाम समर्पित हैं। हे परेश! कौन हैं जो आपके भाव का वर्णन करने में समर्थ हो अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है। जो आप स्थूल से भी स्थूल हैं, अर्थ वर्ग से भी अणु रूप वाले हैं। जो नभ से परे आदित्य के वर्ण वाले थे आज उनके ही मिले मेरा नमस्कार है। जो पुरुष सहस्र शीर्षों वाले हैं तथा सहस्र चरणों वाले हैं, सहस्र चक्षुओं से युक्त हैं और इस पृथ्वी के सभी ओर हैं, जो दश अंगुल के समान परिमाण वाले स्थित थे वही उग्र भगवान् विष्णु यहाँ मेरे ऊपर प्रसन्न

होवें। हे भगवन्! आप तीन की मूर्ति धारण करने वाले हैं। हे हरे! आपको नमस्कार है। हे जगत् के आनन्द स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। हे भक्तों के ऊपर प्रेम करने वाले! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—स्वायम्भुव मनु के द्वारा वे भगवान् मत्स्य के स्वरूप धारण करने वाले प्रभु की इस रीति से भली-भाँति स्तुति की गई थी। उस अवसर पर भगवान वासुदेव मेघों के सदृश परम गम्भीर ध्वनि से संयुत होकर बोले थे।

श्री भगवान ने कहा—आज मैं आपकी इस तपश्चर्या से परम प्रसन्न हूँ और आपके द्वारा बड़ी ही भक्ति की भावना से बारम्बार मेरी स्तुति भी की गयी है। मुझे आपकी पूजा से और दान से भी परम सन्तोष हुआ है। हे सुव्रत! अब आप वरदान माँग लो। आपका जो भी अभीष्ट अर्थ होगा आपको मैं दूँगा। इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। स्वायम्भुव मनु ने कहा—हे विष्णो! आज यदि मुझे कोई वरदान देना है जो कि तीनों लोकों की भलाई करने वाला ही हो तो आप मुझे वरदान देवें। उसको मैं बतलाऊँगा उसमें आप मुझसे श्रवण कीजिए। पूर्व में कपिल मुनि ने मेरे लिए शाप दिया था कि सम्पूर्ण जगत अर्थात् तीनों भुवन हत प्रहत और विध्वंस हो जायेंगे। जिसने इस पृथ्वी को उद्धृत किया है और जिसके द्वारा यह पृथ्वी प्रतिपालित की गई है और जो इसका संहार करेंगे उन्हीं के द्वारा इसका इस समय में प्लावन होवे। इसके उपरान्त मैं दीन हृदय वाला आपकी ही शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ। जिस रीति से यह त्रिभुवन जल से प्लुत (डुबा हुआ) न होवे एवं हत-प्रहत और विध्वंस्त न होवे आप वही वरदान मुझे प्रदान कीजिए। श्री भगवान् ने कहा—हे मनुदेव! मुझसे कपिल कोई भिन्न नहीं है और उसी भाँति मेरे द्वारा ही कहा हुआ समझिए। इस कारण से उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य है। मैं आपकी सहायता करूँगा। हे स्वायम्भुव! इसको आप समझ लीजिए।

इस तीनों भुवनों के हत, प्रहत और विध्वंस होने पर एवं जल में निमग्न हो जाने पर में श्यामल शृंग समन्वित होऊँगा और आप उस

समय में मुझको जान लेंगे अर्थात् आपको मेरा ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। हे मनुदेव! जब तक यह जल का प्लवन रहे तभी तक जो भी कुछ आपको करना चाहिए वह अब आप परम सावधान होकर श्रवण कीजिए जो कि परम पथ्य अर्थात् हितकर है वहीं मैं कह रहा हूँ। सब यज्ञ सम्बन्धी कोष्ठों के समूह के द्वारा एक नौका निर्माण कराइये। उस नौका को मैं ऐसी परम बना दूँगा जिससे कि जलों से वह भिदी हुई न होवे। नौका ऐसी होनी चाहिए कि वह दश योजनों के विस्तार से युक्त होवे और तीस योजन पर्यन्त आयत अर्थात् चौड़ी होवे, जो सम्पूर्ण बीजों के अर्थात् बीज के स्वरूप में रहने वालों के धारण करने वाली हो और तीनों भुवनों के वर्धन करने वाली होवे। समस्त यज्ञों से सम्बन्ध रखने वाले वृक्षों के तन्तुओं से निर्मित की जावे। जो नौ योजन तक दीर्घ होने तथा व्यास त्रय तक विस्तृत होवे अर्थात् तीन व्योमों के विस्तार से युक्त होवे। हे मनुदेव! आप शीघ्र ही वृहती वरीरिका बटी करिए जो जगत की धात्री जगत की माया, लोकों की माता और जगतों से परिपूर्ण वह उस रज्जु (रस्सी) को सुदृढ़ कर देंगी जो किसी प्रकार से भी त्रुटित न होवे। इस वर्तमान जल के प्लवन होने के समय उस नौका में सब बीजों को अर्थात् बीज स्वरूपों को रखकर तथा समस्त वेदों को और सात ऋषियों को बिठाकर आप भी उसमें निषण्ण हो जाइए।

हे मनुदेव! आप दक्ष के साथ मिलाकर मेरा स्मरण करेंगे उसी समय में स्मरण किया हुआ मैं आपके समीप में आ जाऊँगा। मैं श्यामल शृंग से समन्वित होऊँगा। उसी समय में आपको मेरा ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। जिस समय पर्यन्त यह तीनों भुवन हत, प्रहत, विध्वंस रहेंगे तभी तक मैं अपने पृष्ठ भाग के द्वारा उस नौका के वहन करने वाला रहूँगा। इसमें लेशमात्र भी संशय का अवसर नहीं है। मेरे शृंग के जल में प्लवित हो जाने पर उस नौका को उस समय में आप वरीरिका से दृढ़ता के साथ सन्धन करेंगे। मेरे शृंग में नौका के निबद्ध हो जाने पर देवों के परिमाण से एक सहस्र वर्षों तक जल का शोषण

करते हुए उस नौका को प्रेरित करूँगा। हे मनुदेव! फिर जलों के शुष्क हो जाने पर हिमालय पर्वत के बहुत ऊँचे शिखर पर उसमें नाव को बाँधकर जिस जाप के योग्य मन्त्र के द्वारा आपने मेरी आराधना की है उस मन्त्र के द्वारा जो मुझे सन्तुष्ट करता है उसको सभी प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार के वरदान देकर वह मत्स्य उनके द्वारा नमस्कृत हुए थे अर्थात् उसने मत्स्य को प्रणाम किया था। फिर वह जगत् के स्वामी लोकों पर अनुग्रह करने वाले अन्तर्धान हो गये थे। स्वायम्भुव मनु भी भगवान हरि के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान हरि ने जैसा कहा वैसी ही नौका और रज्जु का निर्माण कराया था। उस समय में स्वायम्भुव मनु ने समस्त यज्ञों से सम्बन्धित वृक्षों को छेदन कराकर उनको उद्धृत करके वस्यादि के द्वारा नौका का निर्माण कराया था। उन वृक्षों के वल्कल (छाल) से समुद्भुत सूत्रों के समूहों से पूर्व में कथित परिमाण से मनु ने वरीरिका की रचना कराई थी। उसके अनन्तर बहुत अधिक काल तक भगवान यज्ञ वाराह विष्णु का, शम्भ का और हर का महान अद्भुत युद्ध हुआ था। इसके उपरान्त जल से प्लावन होने पर तथा तीनों के विध्वंस हो जाने पर उसी समय में रज्जु से नौका को बाँध करके बीजों का आदान करके मनु ने वेदों को और ऋषियों को लाकर उस नौका में रखकर चराचर सबके जल में मग्न हो जाने पर उसी सवार पर मनुदेव ने नाव में स्थित होते हुए मत्स्य मूर्ति भगवान् हरि का स्मरण किया था। इसके अनन्तर शिखर से संयुक्त पर्वत के ही सदृश जलों के ऊपर भगवान् मत्स्य समागत हो गये थे।

मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु एक शृंग से समन्वित वहीं पर समागत हो गये थे और तनिक भी विलम्ब नहीं किया था जहाँ पर नाव से मनुदेव संस्थित हो रहे थे। उस महान भयंकर और बहुत ही विस्तृत जल के समुदाय में नौका पर समारूढ़ होकर जब तक जल चलाचल था तभी तक उस जल के पृष्ठ भाग पर नौका को

निधापित कर दिया था। जल के प्रकृति में समापन्न होने पर वरीरिका को शृंग में बाँधकर एक सहस्र देवों ने वर्षों तक उस नौका को सम्प्रेरित किया था। परमेश्वर प्रभु ने अपनी नाव को अवष्टन्ध करके धारण किया था। जगत् की धात्री योगनिद्रा उस बटीरिका में समासीन हो गयी थी। फिर धीरे-धीरे चिरकाल में जल के शोषण हो जाने पर उस जल के मध्य में पश्चिम हिमालय पर्वत का शिखर सुमग्न हो गया था। हिमालय प्रभु के जो दो सहस्र योजन ऊंचा था उसके पचास सहस्र उच्छ्रिष्ट (ऊँचा) शृंग था। फिर उस शृंग में उस नाव को बाँधकर मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले हरि जो जगतों के स्वामी थे उन जलों शोषण करने के लिए तुरन्त गये थे। इसी रीति से भगवान् शार्गंधारी विष्णु ने मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदों की रक्षा की थी। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—कपिल मुनि के शाप से यह आकालिक लय किया गया था। क्योंकि यह अकालिक लय भगवान् के द्वारा ही किया गया था। हे द्विज सत्तमों! यह जैसा हुआ था वैसा ही हमने आपको वर्णन करके बतला दिया है।

श्रीकूर्म अवतार कथा

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस अकाल प्रलय के होने के पश्चात् पुनः जिस प्रकार से सृष्टि की रचना हुई थी। हे द्विजसत्तमो! जिसने इस पृथ्वी का उद्धार किया था उसका अब आप लोग श्रवण कीजिए। उस प्रलय के व्यतीत हो जाने पर उस महान बलवान कूर्म के स्वरूप वाले विष्णु भगवान् ने पर्वतों के सहित पृथ्वी को उद्धृत करके अपने पृष्ठ भाग पर धारण कर लिया था और परमेश्वर ने पूर्व की ही भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी को समान कर लिया था। शरभ और वाराह का और उनके पुत्रों से पदक्रम से जो भी भूमि विशीर्ण हो गई थी कर्मठ देव ने उसको भी सम कर दिया था। परमेश्वर ने पूर्व की भाँति पृथ्वी को सम करके फिर पृथ्वी के तल में संस्थित अनन्त भगवान् को धारण किया था। इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और हर परमेश्वर ने वहाँ पर

समागत होकर नौका के बीच में विराजमान सात मुनियों को स्वायम्भुव मनु को और दोनों पर नारायणों को और दक्ष को कहने लगे थे—समस्त मुनिगण, पर नारायण, दक्ष और स्वायम्भुव मनु आप सब लोग श्रवण करिए कि जो भी कुछ इस समय में हम बतलाते हैं। वाराह और शरभ के युद्ध से परिपूर्ण सृष्टि विनष्ट हो गई है। अतएव हमको जिस रीति से सृष्टि की रचना करनी चाहिए उसे आप लोग श्रवण करिए।

ये दोनों नर और नारायण सृष्टि की रचना करने के ही लिए समुपस्थित हो गये हैं। देवों की संस्थापना करने के लिए परम तप का तपना करें। जनलोक में रहने वाले देवों को ये दोनों आप्यापित करके अपरों को यहाँ समानीत करें और निरन्तर बहुत से गणों का भली-भाँति सृजन करें। हे मुने! नक्षत्रों की, ग्रहों की और उनके स्थानों का सृजन करें। इन दोनों की तपश्चर्या से पूर्व की ही भाँति स्थिरता को प्राप्त होवें। यह महाभाग जनार्दन प्रभु सूर्य के रथ का संस्थान तथा चन्द्रमा के रथ की संस्थत को स्वयं ही करें। हे स्वायम्भुवन मनु! आप पृथ्वी में सब चीजों का चयन करें और पृथ्वी सभी ओर सैशस्यों से परिपूर्ण हो जावे। समस्त औषधियाँ वृक्ष-लता और बल्लियों का सभी ओर आप पुरोहण करें। प्रजापति दक्ष सप्त मुनीन्द्रों के साथ यज्ञ के द्वारा भगवान हरि का अभ्यर्चन करें और वाराह के पुत्रों से समुत्थित इन तीनों अग्नियों का भी यजन करें। आह्वनीय आदि तीन अग्नियाँ होती हैं।

यह यज्ञ सृष्टि की रचना के ही लिए वाराह भगवान् के देह से समुद्भूत हुआ था। इसी यज्ञ के द्वारा दक्ष इस सृष्टि की रचना का विस्तार करें। नर और नारायण से तथा सात मुनियों से, दक्ष और आप से भी, यज्ञ से तथा दोनों अग्नियों से इस सृष्टि को स्वर्ग, पाताल और भूमि में सम्पूर्णता को प्राप्त होवे और सृष्टि को आप्यापित करके जिस प्रकार से भी यह सुसम्पन्न हो जावे, यत्न उसी भाँति का करेंगे। आप नित्य ही सृजन का कार्य करिये। इस अनन्तर यह सृष्टि जैसे पहले थी ठीक वैसी ही सुसम्पन्न हो जावे। हे मनु देव! सबसे प्रथम आप इस समय में बीजों का प्ररोहण करें। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस रीति

से महाभाग विधाता विष्णु और वृषभध्वज समस्त पर्वतों को यथास्थान पर स्थापित करने के लिए यह आदेश देकर फिर चले गये थे। उन्होंने मेरु, मन्दर, कैलाश और हिमवान आदि पर्वतों में समस्त देवों के पुरों को पृथक्-पृथक् कर दिया था। इसके अनन्तर उस नौका या परित्याग करके और वसुन्धरा को अवधृत करके स्वायम्भुव मनु ने सम्पूर्ण सम्पदा के लाभ के लिए भूमि में बीजों का वपन किया था।

इसके अनन्तर वृक्ष, लता, बल्ली, गुल्म और वन, शस्य धान्य उसी भाँति औषधियों, बीजकाण्ड, प्ररोह, घ्रतान और जलज अर्थात कमल, प्रफुल्ल, अशोक और फल, कन्द तथा बल एवं सबके प्राणों की वृद्धि के लिए शाद्वल ही हुए थे। सम्पूर्ण पृथ्वी शस्यों से सम्पन्न थी। वे वृक्ष और शुभ शाद्वल जिस प्रकार के पहले देखे थे जो कि चित्त में हर्ष करने वाले मनु ने अवलोकन पहले किया था। इसके उपरान्त महायोगी नर से महत्तम तप का तपन किया था और महामति वाले नारायण ने देवों के भावन के लिए तपश्चर्या की थी। नारायण और नर ये दोनों ही परम ऋषियों के समान थे। इन्होंने अनामय अर्थात् आमय से रहित तेज से परिपूर्ण परमेश की तप के द्वारा आराधना की थी। वे जनगणों को, वेदों को और देवर्षियों व श्रेष्ठों को लाये थे जो पूर्व में मृत हुए अमर थे। उनके गणों को पृथक-पृथक उन दोनों मुनियों ने महान तप के बल से सृजन किया था। सूर्य और चन्द्र दोनों देवों को तथा दश दिक्पालों को और पाताल तल में निवास करने वालों को भगवान जनार्दन ने स्वयं ही उत्पन्न किया था।

भगवान अच्युत ने सूर्य और चन्द्रमा को यथास्थान किया था अर्थात् रचना की थी। पूर्व की ही भाँति इनको योजित कर दिया था और उन दोनों को दिन और रात्रि में स्थित किया था। औषधियों से समुद्गत हो जाने पर और देवों में पृथक्-पृथक् होने पर दक्ष प्रजापति ने महान अध्वर (यज्ञ) करने के लिए प्रारम्भ कर दिया था। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, वि श्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भारद्वाज ये अमूल सात ऋषि थे। ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति ने इन पूर्वोक्त सप्त ऋषियों

के द्वारा द्वादश वर्ष पर्यन्त महायज्ञ करने का समाचरण किया था। हे द्विजोत्तमों! वहाँ पर ही तीनों अग्नियों में बारम्बार हवन किये जाने पर और उस समय में द्विज के द्वारा यज्ञ स्वरूप वाले वाराह के अभ्यर्चन किए जाने पर उस यज्ञ से ही चार प्रकार की प्रजा पुत्रियाँ समुत्पन्न हुई थीं जो रूप लावण्य से सुसम्पन्न थीं और सृष्टि के रचना करने के लिए अमित प्रजावली थीं। दक्ष ने उन तेरह पुत्रियों को महान् आत्मा वाले कश्यप मुनि के लिए प्रदान कर दिया था। उससे बहुत-सी सन्ततियाँ समुद्भूत हुई थीं जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया था।

उन समस्त प्रजाओं को कश्यप मुनि ही जन्म प्रदान करने वाले अर्थात् जनक हुए थे। हे द्विज शार्दूलो! यह निश्चित है कि कश्यप मुनि ने ही यह सम्पूर्ण जगत समुत्पन्न हुआ था। उनके नाम और उनसे समुत्पन्न होकर पृथक्-पृथक् सब प्रजाओं की आप समस्त मुनिगण सब अब श्रवण कीजिए जिनको मैं भली-भाँति कह रहा हूँ, मुझसे ही आप उनका ज्ञान प्राप्त करिए। अब उन तेरह कन्याओं के नामों को बतलाया जाता है—अदिति, दिति, काला, दतायु, सिंहिका, मुनि, क्रोध, प्रथा, वरिष्ठा, विनता, कपिला और कद्रू ये दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियाँ कीर्त्तित की गयी थीं। ध्यान करने वाले विधाता के दक्षिण अंगुष्ठा से मुन से यह सम्पन्न हुआ था इसी कारण से देवों और मनुष्यों में यह दक्ष इस नाम से कहा जाता है। ब्रह्माजी के मानस अर्थात् मन से उत्पन्न हुए दश पुत्र पूर्व में वर्णित किए गये हैं। उनमें छः सृष्टि रचना करने वाले हुए थे। उनके नाम ये हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलय, क्रतु। मरीचि का पुत्र लोकमानव कश्यप उत्पन्न हुआ था। इसकी ही दक्ष की कन्याओं से बहुत-सी प्रजा उत्पन्न हुई थी। इसकी जाया से समुत्पन्न हुई प्रजाओं के अब आप नामों का ज्ञान प्राप्त कर लो।

धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, सोम, भर्ग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु हुए। अदिति के ये द्वादश सुत हुए थे। जो आदित्य इस नाम से कीर्तित हुए थे इनमें जो कनियान् अर्थात् छोटा था

वह गुणवान था जो सदा प्रजाओं को तप देता है। वह ही आपका मुख्य वंश के करने वाला कहा जाता है जो कि दिवाकर है। दिति एक पुत्र था वह गुणवान था जो सदा प्रजाओं को तप देता है। वह ही आपका मुख्य वंश के करने वाला कहा जाता है जो कि दिवाकर है। दिति का एक पुत्र था जो महान बलवान हिरण्यकशिपु नाम वाला हुआ था। उस हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे जो परम हृष्ट और मद तथा बल से समन्वित थे। उनके नाम प्रह्लाद, सलुयाद, वाण्क और शिव थे। प्रह्लाद के तीन पुत्र हुए थे उनमें जो सबसे आदि में हुआ था उनका नाम विरोचन था। कुम्भ, निकुम्भ, बलवान ये तीनों ही प्रह्लादि कहे गये थे। विरोचन के एक सुत समुद्भूत हुआ था जो दान देने में परम श्रेष्ठ एवं विख्यात था उस महान् का नाम बलि था और जो बलि का पुत्र हुआ था वह महान बल वाला वाण नाम से कहा गया था। श्रीमान् शम्भु का अनुचर हुआ था और वह महाकाल नाम वाला था। वाण के एक सौ पुत्र हुए थे जो कुसुम्भ, मकर आदि नाम वाले थे।

दनु के चालीस पुत्र हुए थे उनके नाम बतलाये जाते हैं—शम्बर, नमुचि, प्रलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अप, शिर अश्वशीर्ष, क्षप शंकु, वियन्मूर्धामहा, बल, वेगवान, केतुमान, स्वर्भानु, अ श्व, परि, कुण्ड, वृष, पर्वाजक, अश्वग्रीवा, सूक्ष्म, तरुण्ड, माण्डल, उर्ध्वबाहु, एकचक्र, विरूपाक्ष, हर, आहर, नियन्त्र, निकुम्भ, सूर्य, चन्द्रमा, अन्य ये तीनों पुत्रों के पुत्र थे तथा सूर्य और चन्द्रमा, (दिवाकर, निशानाथ) दोनों देवपुंगव थे। उनके पुत्र और पौत्र तथा उनके पुत्र बहुत से थे। इस सबसे यह जगत् व्याप्त हो रहा है जो कि ये सब बल और वीर्य से समन्वित थे।

दनायु के विशेष बलवान चार पुत्र हुए थे। उनके नाम ये हैं—वीरभद्र, विक्षर, वत्स और वृत्त। हे द्विजोत्तमों! इन चारों के बहुत से पुत्र समुद्भुत हुए थे जो सब ही रूप एवं बल से समन्वित थे और इन एक-एक के सौ-सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे चारों दानवों के स्वामी महान् वीर्य, पराक्रम वाले और परम विख्यात हुए। विनाश, क्रोध तथा

क्रोधहन्ता और क्रोधशक्र ये काला के पुत्र बताये गए हैं। सिंहिका का पुत्र राहु उत्पन्न हुआ था जो चन्द्र और सूर्य का मर्दन करने वाला है। सुचन्द्र, चन्द्रहन्ता, चन्द्रविमर्दन, वेगवान्, केतुमान, अयः, सुर्भानु, अश्जोद्यपति, क्रष्टु, अष्टपर्वा, जरु ये सब पुत्र हुए थे। क्रोधा के जो पुत्र हुए थे वे क्रूर कर्मों के करनेवाले थे। सिंहिका और क्रोधा ये दो पुत्रियाँ हुई थीं जो सदा ही क्रूरिकायें थीं। उन दोनों से जो वंश समुद्भूत हुआ था इसलिए वह क्रूरतर कहा गया है।

एक ही मुनि का पुत्र उत्पन्न हुआ था जो शुक्र नाम वाला था और महान् कवि हुआ था। यह दैत्य, दानव और कालेय आदि का वह सदा ही गुरु था। उसके चार सुत समुत्पन्न हुए थे जो असुरों को यजन कराने वाले थे। उनके नाम त्वष्टाचार, अत्रि, सौकल और वाग्मी थे। ये तेज में सूर्य के ही सदृश हुए थे। क्रोधात्माओं के तथा सिंहिका के पुत्र की सूति और प्रसूतियों के द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत व्याप्त हो रहा है। अर्थात् इनके पौत्र प्रपौत्र आदि इतने अधिक थे कि यह सब जगत उनसे व्याप्त हो गया था। हे द्विजो! उनके जो सन्ततियां क्रम से बढ़ी थीं उनकी अत्यधिक संख्या थी कि बहुत समय लगाकर भी उसकी गणना नहीं की जा सकती है। विनता के पुत्र ताक्ष्र्य, अरिष्टनेमि, अनूप, गरुड़, आरुणि, वारुणि ये सब समुत्पन्न हुए थे। शेष वासुकिराज, तक्षक कुलिन, कर्म, सुमना ये सभी काद्रवेय नाम कहे गये हैं।

भीमसेन, उग्रसेन, सुवर्ण, गरुड़, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्य, वर्चा, वीर्यवान्, अर्क, दृष्ट, प्रयुक्त, विश्रुत, सुश्र, भीम, चित्र, रथ, विख्यात, सर्वविद्, वली, शालिशीर्ष, पर्जन्य, कलि, नारद ये सब देव, गन्धर्व देव और मुनि पुत्र कीर्त्तित किये गए हैं। अनवधा, सानुरागा, संवरा, मार्गणा, प्रिया, असूया, सुभगा और भीमा इस कन्याओं को प्रसूत किया था। समस्त गुणों के समुत्थान स्वरूप तप के ही धन वाले कश्यप मुनि से प्राधा ने विश्वावसु, सुचन्द्र, सुवर्ण, सिद्ध, वह्नि, पूर्ण, पूर्णांक, ब्रह्मचारी, रतिप्रिय और भानु ये दश पुत्रों को जन्म दिया था जो कि प्राधापुत्र कहे गए हैं। ये सब देव गन्धर्व थे जो निरन्तर पुण्य लक्षणों वाले थे।

अलम्बुषा, मिश्रकेशी, गामिनी, मनोरमा, विद्युतपन्ना, पनघा, रम्भा, अरुणा, रक्षिता, अतुला, सुबाहु, सुरता, मुरजा, सुप्रिया, वपु, तिलोत्तमा ये सब प्रमुख अप्सरायें कही गयी हैं। अति, बाहु, तुम्बरु, हाहा, हूहू, ये सब गन्धर्वों में मुख्य हुए हैं जो देवों के ही तुल्य कीर्तित किये गये हैं। अमृत, ब्राह्मण, गौऐं, मुनिगण, अप्सरायें ये कपिलातनय कहे गये हैं जो महान् भागों वाले और महान उत्सवों वाले हैं। इस प्रकार से ये दख प्रजापति की सुताओं के पुत्र कश्यप ऋषि से समुद्भूत हुए बताये गये हैं। उनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण स्थावर, जंगम अर्थात् जड़-चेतन व्याप्त हो रहा है। इस प्रकार से यज्ञ के स्वरूप वाले यज्ञ वाराह के पतन से तीन अग्नियों से उन महात्मा मनु स्वायम्भुव उत्पन्न हुए थे। सात मुनियों से ओर कश्यप आदि से नर नारायण से अकालिक लय से व्यतीत हो आने पर पुनः पहले अनेक रूप वाले हरि के द्वारा प्रजा का सृजन किया गया था। उन नर नारायण के स्वरूप वाले तथा सृष्टि-स्थिति और संहार के करने वाले भगवान हरि के प्रसाद से पुनः यह सृष्टि हुई थी।

शरभ काया त्याग का वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठों! ईश्वर ने शरभ शरीर को यत्नपूर्वक जिस तरह से परित्याग किया था उसे कहने वाले मुझसे पुनः आप लोग श्रवण कीजिए। यज्ञ वाराह के निहित हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने शरभ के समीप में जाकर साम से युक्त अर्थात् परमशान्तिपूर्वक जगत् के हित की बात कही। ब्रह्माजी ने कहा था कि आपके देह के उपभोग अर्थात् विस्तार से बहुत से योजन तक यह स्थल पूरित हो गया है। इस कारण से आप लोकों को भय देने वाले शरीर का उससे हरण कीजिए। आपके युद्ध से ही यह सम्पूर्ण तीनों भुवन नष्ट हो गये। आज भगवान जनार्दन भयभीत हो रहे हैं। इस कारण से आप ऊपर के लोकों की भलाई के लिए इस शरीर का परित्याग कर दीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा--सुरों में सबसे बड़े ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके भगवान शंकर ने उसी क्षण से जल के ऊपर ही शरभ शरीर को त्याग दिया था। महात्मा शंकर ने त्याग किये हुए उस देह के आठ पद अष्ट मूर्ति के आठों में सेवित किए थे। सबसे आदि में होने वाला दक्षिणपाद शीघ्र ही आकाश को चला गया था। उसके वाम पाद को मिहिर ने सेवित किया था और पीछे दक्षिणज विधि में रहा था। वाम पाद ने ज्वलन का सेवन किया था। पदगत पृष्ठाग्र ने क्षिति का सेवन किया था जो पृष्ठ का अग्र वाम था उसने सलिल का सेवन किया था। इसके पश्चात् वह दक्षिण को गया था। वामपाद ने सर्वतोमुख होता का सेवन किया था। इस प्रकार से उन अष्टमूर्तियों ने उसी क्षण में आठ पादों में उसी भाँति सेवन किया था ओर अपने अपने तेज ने पद को प्राप्त किया था। मध्य जो शरभकाय का था वह महात्मा शंकर चण्ड स्वरूप वाला परम दुरापद कपाली भैरव हो गया था। वे अग्नि में मस्तिष्क भेद से युक्त माँस का हवन करते हैं। ब्रह्मकपाल के पात्र में स्थित सुराओं से देव पूजन किया करते हैं। मनुष्य के माँस के बलि देते हैं और सदा रुधिर का पान किया करते हैं। यज्ञ में सुरा से पारण करते हैं तथा कपालोद्भर को धारण करते हैं। व्याघ्रचर्म का परिधान और त्रिवली वृत धारण करते हैं। जो कपाल वृत के धारण करने वाले हैं। उनका कपाली भैरव देव नित्य ही पूज्य हुआ करता है। जो यह श्मशान भैरव है और महाभैरव के नाम वाला है।

वह भैरव कैसे स्वरूप वाले हैं, यह भी बतलाते हैं। उनका बालसूर्य के समान प्रकाश होता है, सदा अठारह बाहुओं को विभ्राजमान रहते हैं, उनके नेत्र रक्तवर्ण वाले हैं, वे सर्वदा नायिकाओं के समूहों के साथ नित्य क्रीड़ा किया करते हैं जिनमें काली और प्रचण्डा मुख्य हैं। वे तुरन्त ही दग्ध करके माँस का प्रशन किया करते हैं। लोहित आहार करने वाले और सदा प्रेत के आसन पर विराजमान रहा करते हैं। उनका मुख स्थूल तथा ओष्ठासम्व हैं और ह्रस्व स्थल पद के आलय वाले हैं। वे परम विनोद करने वाले तथा लोक में वादन वाले

और अट्टहास से युक्त भैरव हुआ करते हैं और वे महादेव इस प्रकार से भैरव के स्वरूप को धारण करने वाले हैं। महान भुजाओं वाले वे मध्य शरम्भ काय के द्वारा काम को धारण करते थे। वह देव फिर हर के प्रथमों की ओर गये थे। वह भैरव अपने गणों के साथ आकाश में क्रीड़ा किया करते हैं।

कामाख्या देवी वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–वह श्रीमान् राजा नरक जो चिरंजीवी और महान् भुजाओं वाला था। मानुष भाव से ही चिरकाल पर्यन्त राज्य किया था। त्रेता युग के व्यतीत हो जाने पर द्वापर के शेष में शोणितपुर में बाण नाम वाला महान् असुर हुआ करता था। उसका अग्नि दुर्ग नगर तथा और वह बलवान् शम्भु का सखा था। उसकी एक सहस्त्र बाहु थीं और वह बहुत दुर्धर्ष था तथा राजा बलि का प्रिय पुत्र था। उसकी नरक के साथ बड़ी मित्रता हो गई थी। नित्य ही गमन और आगमन से तथा परस्पर अनुग्रह से उन दोनों में पवन और अनल की भाँति महती प्रीति हो गई थी। उस बाण ने जगत के प्रभु भगवान् शम्भु की समाराधना की थी और वह बिना भय वाला होकर असुर भाव से विचरण किया करता था।

हे द्विजो! वह फिर ब्राह्मणों का पूजन नहीं करता था जैसे कि पहले भी नहीं किया करता था और वह यज्ञों और दान देने में भी पूर्व की भाँति प्रसन्न नहीं होता था। पूर्व की तरह भगवान् विष्णु के समीप गमन नहीं किया करता था और वह पृथ्वी का भी अर्चन नहीं करता था। उस अवसर पर कामाख्या में उस भाँति की भक्ति उसकी नहीं हुई थी। इस बीच में विधाता के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ कामाख्या का दर्शन करने के लिए प्राग्ज्योतिष पुर में गये थे। दुर्ग के अन्दर व्यवस्थित उस नीलकूट देवी का दर्शन करने के लिए जाने को वसिष्ठ मुनि को नरक की निन्दा करते हुए कठोर वचन बोले। वसिष्ठ मुनि ने कहा–कैसे पृथ्वी का पुत्र और वराह का सुत अचानक ही ब्राह्मण

को देवी के दर्शन करने के लिए स्वागत नहीं करता है । हे धरा के पुत्र! तेरे कुल में उचित कर्म क्या है ? जिसको तू कर रहा है । प्राग्ज्योतिष पुर में जाकर मैं देवी का पूजन करूँगा । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके उपरान्त उस मुनि ने कुपित होकर राजा नरक को शाप दिया था ।

वशिष्ठ मुनि ने कहा—हे वराह के कुल को कलंकित करने वाले! हे पापी! जिससे अभी उत्पन्न हुआ है । उसी मानुष रूप से मारण को प्राप्त होगा । तेरे मृत हो जाने पर जगतों की प्रभु महादेवी कामाख्या को मैं पूजित करूँगा । हे पापी! तुम यहाँ स्थित रहो मैं अपने निवास स्थान को चला जाऊँगा । हे पापी! जब तक जीवित रहेगा तब तक जगत् की स्वामिनी यह कामाख्या देवी भी सब परिकरों के साथ अन्तर्धान हो जावे । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वह ब्रह्माजी के पुत्र मुनि इतना कहकर अपने स्थान को चले गये थे । उस भूमि के पुत्र के द्वारा निरस्त किए हुए मुनि वसिष्ठ बहुत ही अधिक कुपित हो गये थे । वसिष्ठ मुनि के चले जाने पर नरक शीघ्र ही विस्मय से संयुक्त होकर नीलकूट महान् गिरि पर देवी के भवन में चला गया था । वहाँ जाकर उसने कामरूप वाली कामाख्या देवी को नहीं देखा था । उसके योनिमण्डल को और सब परिकारों को भी नहीं देखा था । इसके उपरान्त वह बहुत ही उदार हो गया था और माता पृथ्वी का उसने स्मरण किया था । नरक ने अविनाशी जगत् के नाथ प्रभु पिता का भी स्मरण किया था ।

हे द्विजो! उस समय वे दोनों ही उसके सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं हुए क्योंकि वह समय का व्युत्क्रमण करने वाले और शम्भु के लिए नीति से विहीन हो गया था । उस समय वज्रध्वज वह विष्णु भगवान् और पृथ्वी को न प्राप्त करने वाला होकर शोक से युक्त हो अपने घर में चला गया था । अपने घर को जाते हुए भूमि के पुत्र ने अपनी पुरी को देखा था जो अपनी पूर्व की श्री से परित्यक्त थी और मलिन वनिता के ही समान हो रही थी । उस देवी के अन्तर्धान हो जाने पर उस पुर को उसने वेद-वाद से रहित और पवित्र दाराजनों के स्वल्प रह जाने वाला ही पाया था । वहाँ पर न तो देवगण जाते हैं और न

प्रिय तथा महर्षि गण की जाया करते हैं। उसका नगर बहुत ही कम यज्ञों की क्रिया तथा उत्सवों वाला हो गया था। बहुत सी ईतियाँ उस समय हो गई थीं (विनाश करने वाली ६ प्रकार की ईतियाँ होती हैं) और बहुत से जन मर गये थे। उस समय में लौहित्य नदों का राजा भी बहुत कम जल वाला हो गया। उस समय बहुत से विपरीत होने वाले कार्यों को देखकर वह नरक ब्राह्मण के पुत्र के शाप से आपने आप का मरण भी आया हुआ मानने लगा था।

इसके अनन्तर प्राग्ज्योतिष नगर का स्वामी नरक शोक से विह्वल चेतना वाला होकर मन से चिन्तन करता हुआ बलि के पुत्र अपने मित्र बाण के समीप में चला गया था। वह इसको प्राणों के समान रखा था। ये दोनों निरन्तर परस्पर एक दूसरे की रक्षा करने में तत्पर रहा करते थे। ये दोनों बाण और नरक स्वर्ग के वैद्य अश्विनी कुमारों के ही सदृश थे। इसी बीच शम्भु का सखा बलवान् मित्र बाण महान् बुध था और मन्त्र प्रदान के द्वारा अनुकूल रहने वाला था। इस वज्रकेतु की उस समय से ऐसी अचल मति हुई थी। उसने बाण ने नरक की ओर दीप्ति दूत को प्रेषित किया था। वह शीघ्र गमन करने वाले रथ का वृन्तात शीघ्र ही बाण के लिए निवेदन कर दिया था। जिस प्रकार से वसिष्ठ मुनि ने शाप दिया था और जैसे अम्बिका अन्तर्धान हो गई थी और जैसे प्राग्ज्योतिष नाम वाले पुर में विघ्न उत्पन्न हो गया था। भूमि और माधव का समय जिस तरह से व्यतिक्रान्त हुआ था अर्थात् समय का अतिक्रमण दिया गया था–यह सब भूमिपुत्र के उस दूत ने बलि के पुत्र बाण से कह दिया था।

उसके समान आकार वाले मित्र का यह पराभव जो दैव के ही द्वारा हुआ था उसे भली भाँति जानकर वह ईश्वर नरक को समझने अर्थात् सान्त्वना देने के लिए वहाँ स्वयं ही गया। वह सुवर्ण से रचित विचित्र अंगों वाले, तीन सौ अश्वों से युक्त, लोहे के पहियों वाले, व्याध्र, मधुर ध्वज से भूषित, सुवर्ण के दण्ड वाले सितछत्र से समाच्छादित, किंकिणी गणों से समन्वित, अनेक रत्नों से समूह से

निर्मित महान् रथ पर वह समारूढ़ हुआ था। वह एक सहस्त्र भुजाओं वाला–श्रीमान् चतुरंगिणी सेनाओं से युक्त होकर भौम (नरक) के पुर प्राग्ज्योतिष में शीघ्र आ पहुँचा। उसके समीप पहुँचकर महाबाहु बाण ने प्राग्ज्योतिष में शीघ्र आ पहुँचा। उसके समीप पहुँचकर महाबाहु बाण ने प्राग्ज्योतिष नगर के स्वामी को पूर्व श्री से हीन मित्र को और उस नगर को देखा था। पृथ्वी के सुत द्वारा यथा उचित रीति से वह पूजित किया गया था अर्थात् उसका समुचित सत्कार किया था। और उसने पूछा था कि किस कारण से तुम्हारा यह पुर श्रीहीन हो गया था। बाण ने कहा–आपका यह शरीर भी जैसा पहले था वैसा शोभित नहीं हो रहा था। आपका मन भी पहले के समान प्रसन्न नहीं है–इसमें क्या कारण है, वही मुझे कृपा कर बतलाइये।

नरकासुर उपाख्यान

मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इस प्रकार से बहुत से प्रश्न पूछे गये। भूमि के पुत्र उस नरक को जिस तरह से वशिष्ठ मुनि ने शाप दिया था वह सभी उसको कह दिया था। भूमि के पुत्र से जो भी सुना था वह पहले ही दूत के द्वारा आवेदित था। भूमि के पुत्र से जो भी सुना था वह उस वज्रध्वज से पुनः बोला। बाण ने कहा–आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। शरीरधारियों को सुख और दुःख चक्र की ही भाँति परिवर्तित हुआ करते हैं अर्थात् सुख के बाद दुःख से कोई भी हीन हुआ करता है। परन्तु धीर पुरुषों को विभूति के लिए उसमें प्रतिकार करना ही चाहिए। आपको भी अब उसका प्रतिकार करना योग्य हे अर्थात् आपको भी प्रतिकार करना ही चाहिए। पृथ्वी में यह मनुष्य असाधारण विभूतियों से वर्धित होता है। ऐसा सभी को होता है चाहे कोई दानव हो दैत्य हो अथवा असुर हो, राक्षस हो अथवा किन्नर हो। इन्द्र भी उसको सहन नहीं किया करता है और जिस किसी भी प्रकार से उसकी श्री को भ्रष्ट करके उसे विनष्ट कर दिया करता है। उसके परम इष्टतम देव सनातन विष्णु भगवान् हैं। वे इन्द्र का थोड़ा सा भी अनिष्ट कभी नहीं किया करते हैं।

इन्द्र का अनिष्ट करने वाला जो कोई भगवान विष्णु की समाराधना किया करता है उसको सच्छिद्र वरदान देकर उसका विनाश करते हैं। चिरकाल आराधना किए हुए भगवान् विष्णु अभीष्ट काम प्रदान करते हैं और शरीर से कष्ट सहकर पूजा करने पर वे परम प्रसन्न हो जाया करते हैं। इष्ट देवता की भी पूजा के बिना कौन पुरुष अतुल विभूति को प्राप्त किया करता है अर्थात् कोई भी नहीं। पुराने समय में ऐसा कहीं भी कोई पुरुष नहीं सुना गया है। तुमने पूर्व में ब्रह्मा अथवा भगवान् विष्णु की आराधना नहीं की है। इसी कारण तुमको आप ही विघ्न समुत्पन्न हुए हैं। भगवान् विष्णु जो स्वभाव से ही अनुकम्पा करने वाले हैं तुम्हारे पालन करने वाले नहीं हो रहे हैं किन्तु तुमने पृथिवी के कथन से पुनः उनकी आराधना की थी। आपको द्विजों का अपराध नहीं करना चाहिए अन्यथा इससे आप हतश्री हो जायेंगे– ऐसा हमने सुना हैं। आपने परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि का अपराध किया है। हे भूप! इसीलिए उस स्मरण मात्र से पृथिवी और विष्णु नहीं पधारे।

हे मित्र! इस कारण से आप भगवान् की बुद्धि की कुटिलता को समझ लीजिए। हे भौम! इस समय आपकी उदासीन आकृति का होना ठीक नहीं। जो तुम्हारे मन में यह है कि यह मेरे तात हैं ऐसा विश्वास है तो दूसरे लोक में चले गये हैं क्योंकि वाराह ही आपके पिता थे। वह चले गये हैं। वाराह भी हरि भगवान् का ही अंश है जिनका आप सेवन किया करते हैं। शम्भु भगवान् के प्रसन्न होने पर ये सभी शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायेंगे। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–उस समय बाण के वचन से नरक को पूर्ण विश्वास हो गया था। वह बहुत ही प्रसन्न होकर धीरता से घर्घर ध्वनि करता हुआ यह वचन बोला।

भौम ने कहा–हे मित्रों पर प्यार करने वाले! जो भी अपने कहा है वह मेरा हितकर है अर्थात् भलाई करने वाला है। अब मैं तुरन्त ही उत्तम तपश्चर्या करूँगा। मुझे भगवान् विष्णु की आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसमें हेतु बतला दिया है। उसी भाँति शम्भु भगवान की भी आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे मेरे पुर में अन्तर्गुप्त हैं।

इस कारण ब्रह्माजी की ही आराधना करनी चाहिए ऐसा ही हे मित्र! आपका भी कथन है। हे महाबाहो! उनके पुत्र लौहित्य के जल की सन्निधि में आपके द्वारा में अध्यापति किया गया हूँ जिस तरह से गुरु के द्वारा शिष्य को पढ़ाया जाता है। हे धीर! जैसे मित्र को मित्र परम वाल्यु साम से किया करता है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा–इतना बाण से कहा–इतना बाण से कहकर महाबाहु वज्रध्वज ने यथावत उस मित्र की पूजा की क्योंकि वह मित्रों पर प्यार करने वाला था। क्षिति की पूजा की क्योंकि वह मित्रों पर प्यार करने वाला था। क्षिति के पुत्र नरक ने यथोचित् रूप से अर्चन करके और बलि के पुत्र को विदा करके अत्यन्त उग्र रूप से ब्रह्माजी की आराधना करने की इच्छा की थी। वह महात्मा लौहित्य के तट पर जो कि नदों का राजा था ब्रह्माचल पर स्थित होकर तप श्चर्या करने के लिए उपस्थित हो गया। उस क्षिति के पुत्र ने मनुष्यों के मान से सौ वर्ष तक जन के आहार के व्रत से पितामह की अर्चना की थी।

लोकों के पितामह सौ वर्ष तक तप करने के अन्त में परम सन्तुष्ट हुए थे और प्रत्यक्ष नरक के सामने समुपस्थित हो गये। हे सुव्रत! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुमको वरदान दूँगा। जो भी चाहो वर माँग लो। उन भगवान् कमलासन ने इस अवसर पर नरक से कहा था। उस नरक से समस्त लोकों के स्वामी कमलासन प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन करके उसने उनको प्रणाम किया था और फिर दोनों को कर जोड़ विनय से अवनत कन्धरा को करके बोला हे सुरश्रेष्ठ! आप मुझे एक वरदान यह दीजिए कि मैं देवों असुरों से–राक्षसों से और सभी देव योनियों में अवध्य होऊँ अर्थात् वध होने के योग्य न रहूँ। मेरी सन्तति भी विच्छिन्न न होवे और वह तब तक रहे जब तक ये चन्द्र दिवाकर रहें। हे लोकेश्वर! तभी तक मेरी सन्तति कायम बनी रहे–यही मेरा दूसरा वरदान है। तिलोत्तमा आदि जो देवियाँ सुन्दर रूप और गुणों से समन्वित हैं वे–वे सब सोलह सहस्र मेरी दयिता हो जावें। मुझे अजेयत्व की प्राप्ति होवे अर्थात् मैं किसी विजित न होऊँ और श्री मुझको कभी भी परित्याग न

करें। हे पितामह! ये मेरे पाँच वर हैं जो आपसे मैंने आज वरण करने की इच्छा प्रकट ही है।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह नरक माया से मोहित हो गया था और मुनि के शाप को विस्मृत कर दिया था। मुनि का शाप उसी भाँति स्थित था। उसने अन्य वरदानों की याचना की थी। पितामह ने 'ऐसा ही होवे'— ऐसी रीति से उन सब वरों को देकर यह कहा था—द्वापर के अन्त में सन्ध्या में तिलोत्तमा आदि सुर कन्याएं भूतल में तेरी पत्नियाँ होंगी। हे वृषध्वज! जब तक देवर्षि नारद तेरे पुर में नहीं जाते हैं। हे क्षिति के पुत्र! तब तक आपको उनके साथ मैथुन कर्म नहीं करना चाहिए। इतना ही कहकर सब लोकों के ईश एक ही क्षण में अन्तर्धान हो गये थे। नरक भी परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान को गया। इसके अनन्तर वह उस प्रसन्न लोगों वाले नगर को चला गया था। वह नगर श्री से निषेवित था और सदा ही उत्साह से परिपूर्ण था तथा ईतियों के विघ्नों से रहित था। वह नगर देवराज की दयिता अमरावती ही के समान पशुओं के समुदायों से ओर अश्व-गज कुम्भकों से परिपूर्ण हो गया था। बाण ने नरक को उत्तीर्ण तप वाला तथा दिये हुए वरों वाला श्रवण करके उस समय में वह वज्रध्वज के समीप में पुनःस्वयं समुपस्थित हो गया था।

उस बाण ने नरक के प्राग्ज्योतिष नामक नगर में गमन करके फिर अपने मित्र नरक से तपश्चर्या का हाल पूछा। आपने तप कहाँ किया था अथवा आपने किन व्रतों को किया था। आपने किस प्रकार का वर प्राप्त किया था यह सभी आप मुझ से कहने के योग्य हैं। अब मैंने आपके पुर को सम्पूर्ण रूप से प्रसन्न जनों से संकुल देखा है। अश्व, गज और रत्नों के समूहों से तथा मंगल ध्वनियों से भरा है। आज आपके द्वारा पालन के योग्य प्रजा एवं भूमि शस्त्रों से परिपूर्ण और रोगरहित देखी जा रही है। आप बतलाइए ब्रह्माजी ने कैसे आपको वरदान दिया था ? नरक ने कहा—पर्वत के रूप को धारण करने वाले ब्रह्माजी स्वयं कामेश्वरी को धारण करने के लिए यहाँ पर अवतीर्ण हुए

थे। वहीं पर में अकेला जल के बाहर करने वाला सौ वर्ष तक तपस्या करने वाला रहा। लौहित्य का तट प्राण वायु से सेवित था वह परम मनोहर था और प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला था। वहीं पर तपस्या करने में प्रवृत्त हुए मुझे सुखपूर्वक सौ वर्ष एक वर्ष की ही भाँति समागम हुए थे।

इनके उपरान्त ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये थे और प्रत्यक्ष होकर उन्होंने मेरे हित के वचन कहे। उन्होंने मेरे सामने होकर मुझ से कहा था—मैं तुझ पर प्रसन्न हो गया हूँ और जो भी तुझे अभीष्ट होगा वही पर तुझको दूँगा—तुम मुझसे वर ग्रहण कर लो। मैंने उनसे पाँच वरदानों की याचना की थी—सुर योनि से मेरी अवध्यता होवे, मेरी सन्तति कभी भी छिन्न न होवे, अजेयता मुझे प्राप्त रहे, विभूति सदा ही बनी रहे और कभी भी तेरा परित्याग न करे और परम श्रेष्ठ नवयौवन से समन्वित मेरी नारियाँ होवे, यही पाँच वरदान मैंने माँगे थे। उन्होंने भी सभी वरदानों को प्रतिश्रुत किया था और फिर वे अपने स्थान को चले गए थे। इसके उपरान्त मैं प्रसन्नता से अपने नगर में प्राप्त हो गया था। फिर मैंने मन्त्रियों में श्रेष्ठों के सहित पुनः उन नगर निवासियों को गणों के सहित दान और भोजन के द्वारा प्रसन्न किया था। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह उसके वचन श्रवण करके बलि का पुत्र उस क्षण प्रसन्न नहीं हुआ और उस समय उसने भूमि के पुत्र से यह वचन कहा था वह वचन उस काल के युक्त था। वाण ने कहा—हे मित्र! उस समय विधाता के आगे आपकी बुद्धि मुनि ने शाप का अतिक्रमण करने की नहीं हुई थी। यहाँ पर आपका कल्याण कैसे होगा। हे भूमिपुत्र! जो होनहार है वह नित्य ही अश्वयम्भावी है। दैव से अधिष्ठित कर्म का कारण नहीं है। जो होनहार है वह अवश्य ही होगी, उसमें ब्रह्मा भी बाधक नहीं हो सकते।

इस कारण आप बहुत महान् वीर असुरों को सन्धि करके उन्हें आगे करो और मन्त्रियों के पदों पर उनको नियुक्त करो। जो देवों को भी दुरापद हों ऐसे वीरों को द्वार पर संस्थापित करो। आप यदि वरदान

प्राप्त किए हुए हैं तो देवेश्वर का भी अतिक्रमण करो। विधाता ने जो वर दिया है आपके लिए वह परीक्षण है। अपुत्र आपो जाया में आत्मजा को जन्म दो। इतना कहकर वाण पूजित होकर वहाँ से चला गया। नरक ने भी अपने मित्र द्वारा कहे वचनों के अनुसार ही कार्य करना आरम्भ किया।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–काल के सम्प्राप्त होने पर भूमि के पुत्र भगदत्त, महाशीर्ष, मदवन्त और सुमाली इन चार पुत्रों को समुत्पन्न किया था जो कि महान सत्व वाले, महान वीर्य, पराक्रम वाले और अन्य वीरों के द्वारा दुरासद थे। इसके अनन्तर वाण के वचन के अनुसार हयग्रीव तथा मुरु को बुलाकर उसके साथ सन्धि करके अपनी सेना के अधिपत्य पदों पर अभिषिक्त कर दिया था। भौम के द्वारा नियुक्त किए हुए मुरु और हयग्रीव को सुनकर उस समय में जो-जो भी भूमि पर असुर थे वे भी सब संगत हो गये। नरक के द्वारा समागत मुरु और हयग्रीव को सुनकर सेना के सहित निमुन्द और नाम वाले तथा दैत्य विरुपाक्ष उस समय में ये सभी समागत हो गये थे इसके अनन्तर उस नरक ने सेना के साथ पश्चिम द्वार पर मुरु को द्वार पर नियुक्त किया। पूर्व द्वार पर निसुन्द को और विरुपाक्ष को दक्षिण द्वार पर नियुक्त किया।

मध्य में पंचजन सुन्द को सेनापति के पद पर नियुक्त किया था। मुरु, क्षुरान्त और पाशों को छः सहस्त्रों को योजित किया था। द्वार पर भूमि पुत्र के द्वारा पुर की रक्षा के लिए इनका सत्कार किया गया। इस प्रकार से जो पूर्व में थे तथा उससे भी पहले थे उन अच्छे मन्त्रियों को हटा दिया था। वह असुर निरन्तर असुरों ही साथ से परम प्रसन्न हुआ था। उस भूमि के पुत्र ने पूर्व में ग्रहण किए हुए भाव का परित्याग कर दिया था। वह असुर भाव प्राप्त कर देवों को बाधा दिया करता था। वह न तो देवों को, न मुनियों को और न किन्हीं की सेवा किया करता था। सुरेश्वर को शीघ्र ही उसने हयग्रीव की सहायता से जीत लिया। इस प्रकार से वह आसुर भाव को बढ़ाता हुआ ही पृथ्वी पर विचरण

किया करता था। वाण के वचन से यह हयग्रीव की सहायता से देवों के स्वामी इन्द्र को बाधा देता था और मुनियों को भी बाधा दिया करता था। देवेश को तीन प्रकार से जीतकर अदिति के दो कुण्डलों को जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं भूमि के पुत्र नरक ने मुनि के शाप से निर्भीत होकर उन कुण्डलों का हरण कर लिया था। इस तरह से देवी को, मुनियों को और विप्रों को बाधा करता हुआ उस भूमि के पुत्र ने पाँच सहस्र वर्ष तक प्राग्ज्योतिष में राज्य का शासन किया था। इसी बीच में महान् भार से पीड़ित हुई पृथ्वी देवी ब्रह्मा-विष्णु प्रमुख देवों की शरणागति में अपनी रक्षा के लिए गई थी। वहाँ पृथ्वी ने ब्रह्माजी और विष्णुजी को प्रणाम करके यह कहा–दानव, राक्षस और दैत्य जो हरि के द्वारा सूदित कर दिए गये थे वे सब राजाओं के मन्दिर में इस समय में बल से गर्वित होकर समुत्पन्न हो गये। उनका अधिक भार है कि उसको सहन और वहन करने में समर्थ नहीं हूँ उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उन सबकी संख्या बतलाने में भी असमर्थ हूँ और मुझे उत्साह नहीं होता है कि मैं बतलाऊँ। उनमें मुख्य महान् बल वाले आठ सौ सहस्र हैं। उनमें भी अत्यधिक बल है। मैं इस समय में उनका भार वहन करने में असमर्थ हूँ। वाण-बलि का पुत्र वीर कंस, धेनुक अरिष्ट, प्रलम्ब, सुनामा, मुरु, शल, मल्ल, चारण और मुष्टिक महान् बलशाली जरासन्ध, नरक, हयग्रीव, निसुन्द और सुन्द हैं।

विरुपाक्ष, पाञ्चजन्य, हिडम्ब, बक, बल, जटासुर, किर्मीर, मनायुध, अलम्बुष, सौमाख्या, जरासन्ध, बानर, द्विविद, श्रुतायुध, महादैत्य शतायुध, ऋष्य, शृंग सुत, सुबाहु, अति बाहुक, कालकस्य हिरण्य पुरवासी दैत्य इन सबके पदों के क्षोभो से मैं दिनों दिन विशीर्ण हो रही हूँ। हे सुरोत्तमो! मैं लोकों का वहन करने में असमर्थ हो रही हूँ। आप इनका विनाश करिए। यदि सुरश्रेष्ठ मेरी रक्षा नहीं करोगे तो मैं परमाधिक विशीर्ण होकर इस समय अवश होकर पाताल चली जाऊँगी। इसके अनन्तर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और महेश्वर ने उनके वचन का श्रवण करके कि पृथ्वी के भार का विमोचन हम करेंगे ऐसा

कहा था। पृथ्वी देवी को विदा करके सभी देवगण सनातन माधव को भूमि के भार के उतारने के विषय में विचार करने लगे।

प्रभु ने परम प्रसन्न होकर समस्त सुरों से कहा कि वे सब भूमि भार को उतारने के लिए अपने-अपने अंशों से अवतरित होवें। इतना कहकर प्रभु स्वयं भी यहाँ पर भार के अवतारण में देवकी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे। स्वयं भगवान् विष्णु को अवतीर्ण जानकर, जो कि सनातन हैं, उन देवगणों ने रम्भा और तिलोत्तमा आदि देवियों को उत्पादित कर दिया था। वे सब परम श्रेष्ठ नारियाँ हिमालय के पृष्ठ भाग पर क्रीड़ा करने वाली थीं। उनको भूमि के पुत्र नरक ने देखा था और बलपूर्वक उसने हरण कर लिया। उस नरक ने उन सबको घर्षित किया था और अपने प्राग्ज्योतिष नरक में उन सबको ले आया था। नरक ने मैथुन के समय उनसे प्रार्थना की थी। उन्होंने कहा हे भौम! जब तक देवर्षि नारद तेरे नगर की ओर आते हैं तब तक आप हमारी रक्षा करें और मैथुन के प्रति हमको छोड़ देवें। वे शीघ्र ही हमारी प्रात अनुग्रह करके हे वीर! आपके समीप में आयेंगे। उनके द्वारा देखी गयीं हम सब तुम्हारे साथ संगम करने के लिए आ जायेंगी।

उनके द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर नरक ने उस अवसर पर ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण करके 'ऐसा ही होवे'-यह उसने कहा था। इसी बीच में लोकों की रक्षा करने वाले भगवान् देवकी के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे और नन्द के घर में पालित होकर बड़े हुए। उन प्रभु ने कंस, केशी और प्रलंब आदि अनेक दैत्यों को मार कर जल से अन्दर सागर में बसी हुई द्वारका पुरी में निवास किया। वहाँ पर उन्होंने अपने धर्म से आठ कन्याओं को स्वीकार किया था। उनमें मानवी के रूप वाली कालिन्दी थी वह रमणी, नग्नजित् की पुत्री थी। सत्या, चारुहास वाली लक्ष्मणा, परम सुशील और शील से सम्पन्न सती जाम्बवती थी। बलदेव के मित्र को इन नारियों में अनुराग करते छत्तीस वर्ष व्यतीत हो गये। हे द्विज श्रेष्ठो! उसके महान् बल वाले इस प्रकार से प्रद्युम्न, साम्ब जिनमें प्रमुख थे ऐसे पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो शास्त्र में और शस्त्र विद्या में परम पण्डित थे।

उस समय जो भूमि के भार स्वरूप थे ऐसे अनेक दैत्यों को निहत कर दिया। फिर परम प्रसन्न होकर क्रीड़ा करते हुए उन्होंने द्वारका में निवास किया था। इसके अनन्तर उत्पीड़ित होकर वहाँ पर आये और द्वारका में भगवान् के दर्शन के लिए ही उपस्थित हुए। वहाँ लोकों के द्वारा वन्दित प्रभु कृष्ण का स्मरण करके उनके द्वारा पूजित होते हुए वह सुवर्ण के आसन पर विराजमान हो गये। इन्द्रदेव ने भगवान् हरि के लिए नरक का जो विकेष्टि था वह सब कह दिया था। जो पूर्व में हुआ था और उस समय में हो रहा है वह सभी इन्द्र ने निवेदन कर दिया था। हे महाबाहू! हे श्रीकृष्ण! जिस प्रयोजन के लिए मैं यहाँ आया हूँ उसका आप श्रवण कीजिए। मैं वह सभी कुछ निवेदन करूँगा। उसमें आप कुछ भी शंका न करिये।

एक भूमि का पुत्र नरक नाम वाला असुर है जो सुरों का मर्दन करने वाला है। वह चिरंजीवी है और पहले भगवान् विष्णु और क्षिति के द्वारा पालित हुआ है। इस समय में क्षिति और भगवान् विष्णु की अवज्ञा करके वाण के वचन से उसने तप के द्वारा ब्रह्माजी को परितुष्ट कर लिया है। ब्रह्माजी से वरदानों को प्राप्त करके वह अत्यन्त घमण्डी हो गया है। वह इस समय ऐसा दर्पित हो गया है कि न तो उसने माधव का और न पृथ्वी का कभी स्मरण किया है। पूर्व में वह धर्मात्मा था, सुरों की अराधना की थी और वह व्रतधारी था किन्तु इस समय वह असुर भाव का आश्रय लेकर सबको बाधा दिया करता है। अदिति के अमृत से समुद्भुत दोनों कुण्डलों को मोह से उसने हरण कर लिया और देवगणों और ऋषियों को बाधा देता हुआ विप्रों के अप्रिय कर्म में वह रत रहता है। कामगामी, दुरासद वह मुझको भी नित्य बाधा देता है। वह सुरों और दैत्यों का जीतने वाला है तथा कोई भी देहधारी उसका वध करने में समर्थ नहीं है। आपका भी वह अन्तर पेक्षी है, उस पापी का भूमि की रक्षा के लिए वध कीजिए। सब देवगणों ने आपके लिए देवों और गन्धर्वों की कन्यायें पहले मुख्य पर्वत पर हिमालय में अवतारित की थीं। ये सोलह सहस्र हैं। वरदान के घमण्ड से भरे हुए

पापी उसने वे सभी कन्याएँ बलपूर्वक हरण कर ली हैं। वह दुराधर्ष हैं और हयग्रीव की सहायता वाला है।

सागर में भी असुरों तथा मनुष्यों का प्रमथन करके उसने लौहित्य तीर्थ के तट पर मणि पर्वत बनाया है उस पर्वत में अलका नाम वाली रम्यपुरी की रचना करके देवों और गन्धर्वों की नारियों को उसने बसाया है। वे सब एक वेणी को धारण करने वाली हैं और सम्भोग से वर्जित हैं। वे सब आपकी ही प्रतीक्षा कर रही हैं। हे कृष्ण! आप उन सबको सनाथ करें। जब तक आपके पुर में नारद मुनि आगमन करें। हे भौम! तब तक उसके साथ मैथुन करने का तुम प्रयत्न नहीं करोगे। यही दुरात्मा नरक के साथ उनकी शर्त थी। जिस समय नारद मुनि प्राग्ज्योतिष पर पहुँचे उसी समय आप नरक के हनन करने के लिए गमन करेंगे। इस कारण से उस पाप कर्म करने वाले नरक के ही सदृश नरक को मार दीजिए क्योंकि वह बहुत दुरासद है और देवों तथा मनुष्यों का कण्टक है।

उसके वध कर देने से देवी पृथिवी पुत्र के शोक को प्राप्त होगी क्योंकि उसने स्वयं ही उसके वध करने के लिए देवताओं से प्रार्थना की थी। इस कारण से उस महान् पापी पुरुष नरक का वध करिए। उसका हनन करके स्त्री रत्नों को तथा अन्य रत्नों का उद्धार कीजिए। महान् आत्मा वाले इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से जगतों के नाथ से कहा गया तो उन्होंने पृथ्वी के पुत्र नरक के हनन करने के लिए प्रतिज्ञा की और उसी समय मार देने का वचन दिया था। इन्द्र के साथ भगवान् केशव ने उसके बध करने की प्रतिज्ञा कर उसी समय प्राग्ज्योतिष पुर की ओर यात्रा कर दी थी। भगवान् कृष्ण ने गरुड़ पर समारोहण किया था और उनके साथ दूसरी सत्यभामा भी थी। वे प्राग्ज्योतिष की ओर मुख करके चले गये थे और इन्द्रदेव स्वर्ग में गमन कर गये थे। देवलोक का आक्रमण करके गमन करते हुए इन्द्र और श्रीकृष्ण को जो महतीद्युति से सम्पन्न थे। यादवों ने वहाँ पर सूर्य और चन्द्र के समान ही देखा। वे दोनों गन्धर्व-देव और अप्सराओं के गणों के द्वारा स्तवन

किए हुए थे। श्रीकृष्ण और इन्द्र क्षण भर में ही आकाश में अदृश्य हो गये थे।

फिर क्षण भर में ही जगत् के स्वामी गरुड़ द्वारा नरक से वशीकृत परम रम्य प्राग्ज्योतिष पुर में पहुँच गये। वह दुर्ग छह सहस्त्र भयंकर रौरव पाशों से और क्षुरान्तों से वेष्टित था और पार्श्व में मृत्यु पाशों के समान उच्छ्रिट था। उन्होंने उस पुर से उसी समय में निकलते हुए नारद को देखा था। वह देव मुनि श्रीमान् जब नरक के प्रति गये थे उस नारद को देखा था। वह देव मुनि श्रीमान् जब नरक के प्रति गये थे उस समय प्राग्ज्योतिष में गमन करके वे नारद मुनि उसके द्वारा सत्कार को प्राप्त हुए थे। उन्होंने नरक से योषितों के साथ संगम करने में उस समय कह दिया। आज चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी है। हे धरापुत्र! नवमी तिथि में तुम महान् आपदाओं को प्राप्त करते हो। उस समय में चतुर्दशी में यदि ये योषितें सुस्नात हों उसी समय में तुमको सुखपूर्वक सुरतों में प्रयुक्त करनी चाहिए। देवर्षि नारद जी के इस वचन का श्रवण करके नरक भय से मोहित हो गया था। उसने आसार और प्रसार नगर में निवेदित कर दिया था।

भौम (नरक) ने राक्षसों से सुरक्षित नगर को सभी ओर से राज्य को सुरक्षित कर दिया था। उस अवसर में भगवान् पश्चिम द्वार पर प्राप्त हुए थे। छ:सहस्त्र पाशों के क्षुरों को अनेक प्रकार से भली भाँति छेदन करके उन्होंने गणों के साथ और बान्धवों सहित मुरु दैत्य का हनन कर दिया था। जो छः सहस्त्र महान् वीर दानव द्वार पर संस्थित थे। मुरु को मार कर दूसरे जो छ:सहस्त्र उसके पुत्र थे उस समय उनको चक्र से मार गिराया था और अन्य दानवों को भी खण्ड-खण्ड कर दिया था। इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक जो शिलाओं के संघ थे उन सबका अतिक्रमण करके भगवान् जनार्दन ने गणों के सहित और अनुचरों से संयुक्त निसुन्द को मार गिराया था। जिसने अकेले सहस्त्र वर्ष तक देवों से युद्ध किया था और महान् पराक्रम वाला वीर था उसने इन्द्र पर आक्रमण किया था।

भगवान् केशव ने आक्रमण करके उस हयग्रीव का हनन किया था। महान् बलवान् भगवान् देवकी पुत्र ने मध्य में लौहित्य नामक की औदका में विरुपाक्ष और सुनन्द का हनन किया था। उसके अनन्तर फिर परमेश्वर ने वीर पञ्चजन को मारा था। इस महान् शरीरों वाले तथा महान् वीर्य वाले दुरासदों का वध करके फिर जगत् के नाथ प्राग्ज्योतिष पुर में गये थे। आकाश में स्थित देवों तथा महात्मा नारद के द्वारा जय-जयकार की ध्वनि से संस्वतवन किये गए ईश्वर ने प्रवेश किया था। उन भगवान् विष्णु ने श्री समन्वित, देदीप्यमान, प्रकाश अट्टालिकाओं से विभूषित उस नगरी को ऐसा ही समझा था कि क्या यह इन्द्र की अमरावती है। वहाँ पर महान् युद्ध हुआ था। जो डरपोकों को भय देने वाला था और शूरों के हर्ष को बढ़ाने वाला था। जैसा कि देवासुर युद्ध हुआ था ठीक उसी प्रकार का यह युद्ध भी हुआ था। फिर गरुड़ पर विराजमान महान् बाहुबलों वाले जनार्दन प्रभु शार्ंग नामक धनुष से छोड़े गये बाणों के द्वारा उन बहुत से दानवों का हनन कर दिया था। महान् बाहुओं से समन्वित प्रभु आठ सौ सहस्त्रै असुरों को मार नर नरक के समीप में पहुँच गये थे।

इसके अनन्तर उस नरक ने बहुत से असुरों को मृत सुनकर गरुड़ पर स्थित महा बलवान् महाबाहु भगवान कृष्ण का दर्शन किया था। उसने वशिष्ठ मुनि के शाप तथा माधव के समय का स्मरण किया था। उसने देवर्षि नारदजी के वचन और विधाता के वर के छेदन का भी स्मरण किया। काल के प्राप्त हो जाने वाले ने श्रीभगवान् के साथ समागम किया था। उस समय वाण के वचन का स्मरण करते हुए उसने युद्ध करना ही परम कर्त्तव्य मान लिया था। वह सुवर्ण के रथ पर समारूढ़ हुआ था जो वज्र की ध्वजा वाला श्रेष्ठ था। वह रथ लोहे के आठ चक्रों (पहियों) से युक्त था। उस रथ में एक हजार अश्व थे ओर व्रज की ध्वजा से सुशोभित था। उस रथ में अनेक प्रकार शस्त्रास्त्र विद्यमान थे तथा बहुत तूणीर भी रखे थे। ऐसे रथ में बैठकर पृथ्वी का पुत्र नरक समर करने के लिए शीघ्र ही चला। वह जब युद्ध के

लिए जा रहा था तो उसने शीघ्र ही मानुषभाव को अर्चित किया था और हरि के पूर्व वचन का स्मरण करते हुए उसने असुरभाव की निन्दा की।

क्षण भर में ही उसने भगवान् कृष्ण का गरुड़ पर विराजमान हुए का दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् कृष्ण शंख, गदा, शार्ग, धनुष, वर और असि (खड्ग) को धारण किए हुए थे। वे अच्युत थे, किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले थे और उन के वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न था। कौस्तुभ मणि से समुद्भास्ति वक्षःस्थल से युत, पीताम्बरधारी हरि का उसने दर्शन किया था। उन भगवान विष्णु के साथ उस वीर ने युद्ध किया था जिसके निकट युद्ध करते हुए कलिका के समान कालिका को देखा था जिसके लाल नेत्र और मुख था, विशालकाय थी, वह उस समय में खड्ग और शक्ति को धारण किए हुए थी। उसने धात्री और मोहिनी कामाख्या का भी वह वहाँ दर्शन किया था। उस समय में जगत् को प्रसूत करने वाली उस देवी का दर्शन करके वह भय से भीत होकर बहुत विस्मित हो गया था। युद्ध तो करना ही है अतएव उस समय में नरकासुर ने युद्ध किया था। उस अवसर पर भगवान् कृष्ण ने उसके साथ ऐसा अद्भुत युद्ध किया जैसा युद्ध पहले देवों में और मनुष्यों में कभी भी नहीं हुआ था।

इसके अनन्तर उस भौम के साथ भगवान् माधव ने युद्ध क्रीड़ा चिरकाल करके देवेन्द्र को हर्षित करते हुए उसका हनन कर दिया। उस समय भगवान् हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसे दो भागों में छेद कर मार गिराया था। वह नरक खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिर गया था। वह खण्ड ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे वज्र से भिन्न पर हुआ गैरिक पर्वत होवे। तनय के गिर जाने पर देवी पृथिवी ने उसके पतित शरीर का अवलोकन करके शोक के वेग को सहन कर लिया क्योंकि उसने समागत काल का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। काश्यपी अर्थात् पृथ्वी अदिति के दोनों कुण्डलों को लेकर स्वयं उपस्थित हुई थी और भगवान् गोविन्द से यह वचन कहा था—आपने वराह के रूप से पहले मेरा उद्धार किया था। उसी समय आपके गात्र के स्पर्श से यह नरक

मेरा पुत्र गर्भ में स्थित हुआ था। वह आपसे ही उत्पन्न व प्रतिपालित हुआ और अब वह सुत आपने ही मार गिराया है। अब आप अदिति के इन दोनों कुण्डलों को ग्रहण कीजिए जो कि सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और अब आप उसकी सन्तति का हे गोविन्द! नित्य ही प्रतिपालन कीजिए।

श्री भगवान् ने कहा–हे देवी! पहले भार के अवतरण करने के लिए आपने नरक के वध की प्रार्थना की थी। इसीलिए मैंने इसका वध किया हैं। हे देवि! आपके वचन से मैं इसकी सन्तान का प्रतिपालन करूँगा इसके नाती भगदत्त का मैं प्राग्ज्योतिष में अभिषेक कर दूँगा। इस तरह कहकर भगवान् ने अन्तःपुर में प्रवेश किया था जो कि नरक के धन का आलय था। वहाँ पर उन वीर ने अनेक प्रकार के रत्न देखे थे। वे सब शुद्ध रत्न समुदाय में एकत्रित हो रहे थे जैसे कोई पर्वत शोभायमान होवे। वहाँ पर मुक्तामणि और प्रवालों तथा वैदूर्यमणि का एक पर्वत-सा ही लग रहा था तथा रत्नकूट और वज्रकूट भी माधव प्रभु ने देखे थे। सुवर्ण के सञ्चित ढेरों को, रुक्मदण्डों को और परिपूर्ण ध्वजों, विचित्र वाहनों, यानों और शयनों को देखा था। ये सभी स्वर्ण और रत्नों से संचित थे, ये महान् मूल्य वाले और बहुत बड़े थे। जो-जो भी देखा और जितना धन, रत्न और मणियाँ थीं उस प्रकार की उतनी नरक आलय के अतिरिक्त अन्य स्थान में कहीं भी नहीं देखे गये थे।

जितना धन और जितने रत्न नरक के आलय में थे वैसे और उतने कुबेर, इन्द्र, यम और वरुण के यहाँ पर भी नहीं थे। भगवान् केशव वहाँ पर ही देवर्षि नारद के साथ आये हुए थे। उस अन्तःपुर के धन का अवेक्षण करके जो सार तथा सारतर था पर वीरों के हनन करने वाले ने ग्रहण करने योग्य बहुत उनमें से ले लिया था। भगवान् विष्णु ने जो वैष्णवी शक्ति दी थी उसको भौम को हनन करके देवकीसुत ने वापस ग्रहण कर लिया। पृथ्वी देवी और देवर्षि नारद के सहित उस अवसर पर भगवान् केशव ने भगदत्त भौम के सुत को प्राग्ज्योतिष पुर में अभिषिक्त करके उस पुर के मध्य में निवेषित कर दिया था। पृथ्वी

ने उसी भगदत्त को अभिषिक्त देखकर अपनी मुक्ति के लिए भगवान् केशव से उसी भक्ति की याचना की थी। भगवान् केशव ने भी नारदजी की अनुमति प्राप्त करके क्षिति के कहने से सुप्रसन्न मन से उस भक्ति को भगदत्त के लिए दे दिया था।

जिस छत्र को वरुण को पराजित करके भौम पहले ले आया था जो कि काञ्चनका नाम से संयुक्त था उस छत्र को भगवान् हरि ने लिया था। जो आठ भार सुवर्ण को प्रतिदिन स्रवित किया करता था, जो एक कोस तक विस्तीर्ण और आधे योजन तक ऊँचा था। केशव भगवान् ने समस्त उत्तम रत्नों, तथा चार दाँतों वाले गजों और चौदह हजार पूजित प्रमदाओं को दैत्यों के समुदायों के द्वारा द्वारका के प्रति भेज दिया था। पूर्व में जो देव कन्यायें नरक के द्वारा लायी गई थीं और बलपूर्वक उनका हरण किया गया था उनके लिए हृषीकेश भगवान् ने वेणीबन्ध विमोक्षण किया था। उनको अनेक वस्त्र और दिव्य-भूषणों से सत्कृत किया था उनको विमान में बिठाकर सुदृढ़ और बली रक्षकों से रक्षित करके वे सब मुनि से अधिष्ठित द्वारका की जो भेज दी गई थीं।

जो सुर कन्याओं के लिए भूमिसुत ने मणियों का पर्वत बनाया था। वह पर्वत मणियों और रत्नों के समूह से परिपूर्ण था और सूर्य के ही समान प्रभा से समन्वित था। जगन्नाथ प्रभु ने उसको उखाड़ कर गरुड़ की पीठ पर स्थापित कर दिया था। सबको समारोपित करके सत्यभामा के साथ ही सुप्रसन्न हरि समासीन होकर जगत्पति भगदत्त और पृथ्वी से सम्भाषण करके आकाश के मार्ग से ही शीघ्र ही द्वारका की ओर प्रस्थान कर गये। गरुड़ काञ्चनस्रविछत्र को, मणिपर्वत को और सत्यभामा के सहित भगवान् केशव को लेकर आकाश में से गमन करता हुआ चला गया था। शत्रुओं के हनन करने वाले केशव भगवान् क्षणभर में द्वारका पहुँच कर सब बान्धवों और गणों के साथ परमानन्द को प्राप्त हुए थे।

इसी रीति से महामाया जगन्मयी कालिका नाम वाली काली,

जगतों के नाथ, भगवान् विष्णु को जो जगत के कारणों के करने वाले हैं, ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य हैं और जगत् से परिपूर्ण हैं उसी भाँति सम्मोहित किया करती है जो अनुराग और विराग दोनों से ही समन्वित है। जो मित्र हैं उन पर अनुग्रह किया करते हैं और जो शत्रु हैं उनको हनन किया करते हैं। वे नारियों में गूढ़ होकर रमण किया करते हैं और द्वन्दों से भी मोहित होते हैं।

हे विप्रो! यह आपके सामने मैंने कह दिया है जैसे नरक असुर हुआ था और जिस तरह से वरदानों का लाभ उसको हुआ था और जैसा भी कुछ उसका विचेष्टित अर्थात् कृत्य था।

नारद आगमन वर्णन

ऋषियों ने कहा कि गिरि की पुत्री काली कैसे जगतों को प्रसूत करने वाली हुई थी। दक्ष की पुत्री ने तनु का त्याग करके हर को फिर अपना पति किस प्रकार से प्राप्त कर लिया था ? उसने पति की प्रभुता का आधा शरीर कैसे हरण किया था—यह सब हम पूछने वाले हैं। हे महामते! आप भली भाँति यह सब वर्णन कीजिए।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे मुनि शार्दूल तो आप लोग श्रवण कीजिए कि जिस तरह से दाक्षायणी सती हुई और फिर गिरि की पुत्री ने जैसे पूर्व में आधा शरीर किया था। पूर्व में दाक्षायणी सती ने शरीर का त्याग किया था। उसी समय में हिमवान् गिरि को मेनका मन से उत्पन्न हो गई थी। जिस समय हिमाचल पर दक्षकन्या हर के साथ खेलती थीं उस समय में मेनका उसी हितैषिणी हुई। हे द्विजो! मैं उसकी सुता होऊँ, यह मन में धारण करके उसी समय देवी ने प्राण त्याग दिये और वह हिमवान् की पुत्री हुई। जिस समय पहले दक्ष के ऊपर क्रोध करके दाक्षायणी ने प्राणों का त्याग किया था, उसी समय मेनका देवी शिवा की आराधना करने की इच्छा वाली हुई थी।

उसने महामाया, जगत् की धात्री, सनातनी, योगनिद्रा, मोहिनी जो सब प्राणियों को मोहन करने वाली है और सब स्वर्गवासियों की

रक्षिका है उसी शिवा का आराधना किया था। उसने अष्टमी में उपवास करके नवमी तिथि में मोदकों, बलियों, पिष्टों और पायसों तथा गन्ध और पुष्पों से चैत्र मास से आरम्भ करके सत्ताईस वर्ष तक प्रतिदिन शुचि होकर पुत्र की इच्छा से भली भाँति पूजा की थी। गंगा में औषधियों के प्रस्थ में मृतिका से परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण करके पूजा करती थी। किसी समय तो बिना ही आहार के रह जाती थी और किसी समय व्रत धारण करने वाली होती थी। शिवा में अपने मन को विन्यस्त कर देने वाली उस मेनका देवी ने जो परम भक्ति की इच्छा रखने वाली थी, सत्ताईस वर्ष व्यतीत किए थे। सत्ताईस वर्षों के अन्त में जगत् की माता जगन्मयी परम प्रसन्न हो गई थी और प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर बोली।

देवी ने कहा–हे देवी! आपने जो प्रार्थना की थी वह अब मुझसे याचना करो। मैं तुमको सभी कुछ दे दूँगी जो भी तुम्हारे हृदय में वांछित मनोरथ होवे। इसके अनन्तर मेनका देवी ने प्रत्यक्ष में समागत हुई कालिका का दर्शन करके उसने देवी को प्रणाम किया था। इसके अनन्तर वह बोली। देवी, मैंने इस समय आपके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया है। हे शिवे! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। इसके अनन्तर सबको मोहित करने वाली कालिका 'माता'–यह कहकर फैली हुई बाहुओं से मेनका का उसने आलिंगन किया था। इसके उपरान्त उन मेनका देवी ने अभीष्ट वाणियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में विराजमान शिवा का स्तवन किया था। मेनका ने कहा–जगत् के धामों को प्रेरणा करने वाली, लोकों को धारण करने वाली चिण्डका जगत् की धात्री और सब कामों और अर्थ को धारण करने वाली को मैं प्रणाम करती हूँ। नित्य आनन्द वाली, ज्ञान से परिपूर्ण योगनिद्रा, जगत् को प्रसूत करने वाली, शूद्रा, शिवा, विधाता, शौरि और शिव के स्वरूप वाली को मैं प्रणाम करती हूँ। मायामती, महामाया, भक्तों के शोक का विनाश करने वाली, काम की वनिता, चिति, शिवा आपको मैं नमस्कार करती हूँ।

सत्त्व के उद्रेक से मिथ्या जो यहाँ पर होने वाली है और जो नित्य प्राणियों की बुद्धि के स्वरूप वाली है वही आप यतियों के बन्धन को छेदन करने हेतु हैं। ऐसा कौन है जो मुझ जैसे द्वारा आपका प्रभाव कहने के योग्य होवे। अर्थात् प्रभाव को कोई भी मुझ सरीखा नहीं कह सकता। जो आप सामों की सिद्धि की शक्ति हैं तथा जो आप अथर्ववेद की हिस्सा हैं वह आप नित्यकामा हैं और मेरे इष्ट को करें। नित्या नित्य, भागहीन, पुरस्थ जिन तन्मात्राओं से भूतों का स्वर्ग पतित होता है उनकी सदा नित्यरूपा शक्ति आप ही हैं। कौन सी स्त्री है जो आपके योग्य कथन करने से समर्थ हो। आप जगत् को धारण करने वाली हैं जिनके द्वारा ब्रह्मा वश में किया जाता है वह आप नित्या मुझ पर, हे माता! प्रसन्न होवें। आप जगत वेद में रहने वाले शक्ति के स्वरूप वाली हैं, सूर्य के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं, आप चन्द्रिका की आह्लाद करने वाली शक्ति हैं आपका मैं स्तवन करती हूँ और अम्बिका को प्रणाम करती हूँ। योषित् के प्रेमियों की आप योषा हैं, आप ऊर्ध्वरेताओं की विद्या हैं, आप समस्त जगतों की वाञ्छा हैं और आप ही भगवान् हरि की माया हैं। जो नित्य ही अनेक स्वरूपों को धारण कर के सृष्टि और प्रलय करने वाली हैं। आप ही ब्रह्मा, अच्युत और शिव के शरीरों के हेतु हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए। मैं आपको पुनः प्रणाम करती हूँ।

इसके अनन्तर वह जगतों की माता कालिका पुनः मेनका देवी से बोली थी कि जो भी आपका अभीष्ट वर हो उसका वरण कर लो। इसके अनन्तर यशस्विनी मेनका ने सबसे प्रथम तो सौ पुत्रों के उत्पन्न होने का वरदान माँगा था जो पुत्र वीर्य, पराक्रम और आयु से संयुक्त होवें और ऋषि-सिद्धि से भी युक्त होंगे। इसके अनन्तर एक कन्या के उत्पन्न होने का वरदान चाहा था जो सुन्दर रूप वाली गुण गणों से शोभायमान, दोनों कुलों का आनन्द करने वाली और तीनों भुवनों में दुर्लभ होवे। इसके पश्चात् मुनियों के समान मेनका से भगवती ने कहा था जो मन्द मुस्कान पूर्वक उसके मनोरथ को पूर्ण करती हुई थीं। देवी

ने कहा—आपके एक सौ पुत्र होंगे जो बल वीर्य से समन्वित होंगे। उनमें मुख्य एक बलवान् सबसे प्रथम होगा। और आपकी पुत्री देवों, मनुष्यों और राक्षसों के हित के लिए तथा सम्पूर्ण जगतों की भलाई के लिए मैं होऊँगी। आप सुखपूर्वक प्रसव करने वाली तथा नित्य ही पतिव्रता, अम्लान रूप से सम्पन्न और सुभगा होंगी।

इस रीति से इतना कहकर जगत् की धात्री वहीं पर अन्तर्धान हो गई थी। मेनका परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान में प्रवेश कर गई थी। इसके उपरान्त काल के सम्प्रात होने पर मेनका ने अचलों में अत्युत्तम मैनाक पर्वत को प्रसूत किया था। जो आज तक पंखों के सहित सागर के मध्य निवास किया करता है। ये सभी पुत्र महान् वीर्य वाले महान् सत्त्व से समन्वित और सभी गणों से सुसम्पन्न थे। इसके उपरान्त वह जगन्मयी योगनिद्रा कालिका देवी जिसने पूर्व में सती के रूप का त्याग कर दिया था जन्म ग्रहण करने के लिए मेनका के समीप में गयी थीं। भय के अनुसार मेनका के उदर से शिवा ने समुद्भुत होकर सागर से लक्ष्मी की ही भाँति समुत्पत्ति ग्रहण की थी। बसन्त के समझ नक्षत्र के योग से नवमी तिथि में देवी आधी रात्रि में राशि के मण्डल से गंगा के ही समान समुत्पन्न हुई। उसके समुत्पन्न होने पर सभी दिशाएं प्रसन्न हो गयीं थी।

उस अवसर पर परम शुभ सुगन्धित और गम्भीर वायु बहने लगी। उस समय पुष्पों की वर्षा हुई थी और जल की वृष्टि भी हुई। जो अग्नियाँ शान्त थीं वे प्रज्वलित हो गई थीं और घन गम्भीर गर्जन करने लगे थे। उस देवी के समुत्पन्न होने मात्र से सबने स्वास्थ्य की प्राप्ति की थी। नील कमलों के दलों के समान समुत्पन्न हो श्यामा थी, देवी मेनका अतीव हर्षित होकर परम आनन्द को प्राप्त हुई थी और देवों ने भी उस समय बारम्बार अतुल हर्ष की प्राप्ति की। गन्धर्व और अप्सराओं के समुदाय आकाश में स्थिर होकर स्तवन कर रहे थे। हिमवान् की सुता को 'काली' नाम से बुलाया था तथा काली नाम से गिरिनन्दनी कीर्त्तिका की गई थी। इसके उपरान्त वह वर्षा के समय गंगा तथा शरत्काल में चाँदनी के समान बड़ी होने लगी।

प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुई वह सुन्दरी चन्द्रबिम्ब की कला ही की भाँति शोभा धारण करने लगी अर्थात् वह दिनों दिन विशेष सुन्दरी होती चली गयी थी। वह बालिका भाव को प्राप्त हुई क्रीड़ा करती सखियों के साथ परम प्रसन्नता को प्राप्त होती थी। जिस प्रकार से सरिताओं के समुदायों से कालिन्दी विपुलता को प्राप्त किया करती हैं। षड्गुणों ने स्वयं ही उस देवी के पूर्व जन्म के वशीकृतता को प्राप्त कर लिया था। हे द्विज श्रेष्ठों! वे षड्गुण वर्षा को कालिका के ही समान स्वयं ही उसके समीप आ कर उपस्थित हो गये थे। उस देवी ने अपने गुणों से देवी की कन्याओं का भी अतिक्रमण कर दिया था अर्थात् देव कन्याओं से भी अधिक गुणों वाली हो गई थी। अपने रूप लावण्य से अब अप्सराओं से भी अधिक थी। वह बाल्यकाल में ही निरन्तर बन्धु वर्ग की प्रिय और शुभ थी। उसने सद्गुणों के द्वारा अपने बन्धुओं के द्वारा अपने बन्धुओं को माता और पिता कर दिया था। वह जगन्माता नित्य ही अपनी माता का स्तवन करने वाली थी और अपने पिता के यजन करने में तत्पर रहा करती थी। वह सर्वदा अपने भाइयों के साथ रहने वाली, वह सम्पूर्ण जगती की माता सर्वदा कन्या के स्वरूप में समुपस्थित हुई थी। जिस तरह से विभावसु के समीप में कालिन्दी निवास किया करती है उसी भाँति वह भी सदा अपने पिता के समीप निवास किया करती है।

इसके अनन्तर एक बार हिमवान् गिरि उसे अपने पास रखकर अपने पुत्रों के साथ संगत होकर परम कौतुक से स्थित हुए थे। इसके उपरान्त देवलोक से नारद मुनि वहाँ पधारे। उन्होंने हिमवान् को सुतों के साथ सुखपूर्वक आसीन देखा था। उनके निकट उन्होंने सूर्य से कालिका के समान ही काली का भी अवलोकन किया था जैसे चन्द्रमा की चाँदनी हो जो कि शरत्काल की रात्रि में भली भाँति बढ़ी हुई हुआ करती है। उस गिरिराज के द्वारा उन नारद मुनि का अभ्यर्चन किया गया था और उनको आसन आसीन होने के लिए दिया गया। उस आसन पर बैठे हुए देवर्षि नारदजी ने सबसे प्रथम उस पर्वतराज से

कुशल प्रश्न और वृत्तान्त पूछा। बोलने में महान् कुशल देवर्षि नारदजी ने जब सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया तो बहुत ही हर्षित हो मेनका से बोले—यह आपकी पुत्री बहुत सुन्दर है और चन्द्रमा की आद्यकाल के ही समान वर्धित हो गई है। हे शैलराज! यह आपकी कन्या समस्त सुलक्षणों से शोभायमान है। यह सदा हर के अनुकूल भगवान् शम्भु की दयिता होने वाली है। यह तपस्विनी चित्त को अपने वश में कर लेगी और वे भगवान् शम्भु भी इसके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ विवाह नहीं करेंगे। इन दोनों का जैसा प्रेम है वैसा दूसरे किसी का नहीं होगा। इसके द्वारा बहुत से सुरों के कार्य होंगे। हे गिरियों में श्रेष्ठ! इसी के द्वारा भगवान् हर अर्ध नारीश्वर हैं। और इसी को चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के ही तुल्य परम सौहार्द होगा। वह भगवान् शिव के आधे शरीर को अपने आस्पद में करेगी। तप के द्वारा भगवान् हरि के प्रसन्न होने पर यह विद्युत के समान तुम्हारी पुत्री काली हो जायेगी। इसके पीछे यह गौरी इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त करेगी। शिव के अतिरिक्त अन्य किसी के भी लिये इसके प्रदान करने को आप अपना मन करने योग्य नहीं है।

देवर्षि नारदजी के वचन का श्रवण कर विशारद हिमवान् ने मुनि से कहा—वे महादेवजी सङ्ग को त्याग किये हुए हैं और संयत आत्मा वाले हैं। वे तो देवों के अगोचर उपांशु तप का समाचरण कर रहे हैं। हे देवर्षि! वे ध्यान के मार्ग में समाधिस्त है और अपना मन परब्रह्म में अर्पित कर रखा है। वे उससे किस प्रकार भ्रष्ट होंगे। इसमें मुझे बड़ा भारी संशय हो रहा है। वह परब्रह्म अक्षर हैं और प्रदीप की कालिका के ही समान हैं। वे सर्वत्र अन्दर ही देखा करते हैं और बाहर के पदार्थों को कभी भी नहीं देखते हैं। हे द्विज! यह बात नित्य ही किन्नरों के मुख से सुनी जाती थी। जिनका अन्तःकरण इस प्रकार का है वे हर कैसे ध्यान भ्रष्ट किए जा सकते हैं। विशेष रूप से यह सुना गया है कि भगवान् शम्भु ने दाक्षायणी के साथ पूर्व में प्रणयन किया था। उसे मैं कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए। शिव ने दाक्षायणी से कहा था।

हे प्रिये! हे सति! तुम्हारे बिना मैं अन्य किसी भी वनिता को अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण नहीं करूँगा। यह सर्वथा सत्य है जिससे मैं आपको बता रहा हूँ। अब उस सती के मृत को जाने पर वे कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करेंगे।

देवर्षि नारदजी ने कहा हे गिरिराज! इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपकी पुत्री सती ही उत्पन्न हुई है और यह हर के लिए ही जन्म धारण करने वाली हुई है। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इतना कहकर ही देवर्षि नारदजी ने गिरिराज से यह सभी कहकर सुना दिया था जिस तरह से सती मेनका के उदर से समुत्पन्न हुई थी। गिरिराज ने वह सब पूर्व में घटित वृत्तान्त नारदजी के मुख से श्रवण किया तो वह अपने पुत्रों और द्वारा के सहित संशयहीन हो गये। उस अवसर पर काली ने नारद जी के मुख से यह कथा का श्रवण किया था और वह लज्जा से नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और मन्द मुस्कान में विस्तृत सुख वाली हो गई थी। गिरि हिमवान् ने उस सती को हाथ से पकड़कर और मुख को ऊपर की ओर उठाकर उसके मस्तक पर आघ्राण करके उसको अपने ही आसन पर बिठा लिया था। इसके अनन्तर नारदजी ने पुनः शैलराज की पुत्री से कहा था। जिससे गिरिराज और तनयों के सहित मेनका को बड़ा हर्ष हो रहा था। हे शैलराज! आपके इस सिंहासन से इनको क्या होगा। इसका आसन तो सदा ही भगवान् शम्भु के उरु होगा। अर्थात् आपके द्वारा दिया हुआ सिंहासन का आसन इसके लिए कोई महत्व की बात नहीं है क्योंकि यह तो शम्भु के ऊरुओं पर बैठने वाली होगी। हे गिरि! हर के ऊरुओं का आसन प्राप्त करके इसे अन्य किसी भी आसन पर तुष्टि की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। देवर्षि नारदजी ने परम आदर वचन शैलराज से कहा था और देवयानों के द्वारा वे उसी क्षण स्वर्ग चले गये। गिरिपति भी चिन्ता, हर्ष और सम्मोह से संयुत होकर अपनी अचला भार्या के सहित पद्म गर्भ अन्तःपुर में प्रवेश कर गये।

भगवान शिव का हिमवान में निवास

वहीं पर परम से पर अक्षर अपने आत्मा को तथा नित्य ही ज्ञानमय चित्त एवं निरामय और निराकुल ज्योतिरूप, प्रदीप की आभा वाले, जगन्मय, द्वैत से हीन, विशेष रूप से एकाग्र होकर भर्ग भगवान् शिव चिन्तन करने लगे। कुछ दूसरे नन्दी, भृङ्गी आदि जो गण थे वे महाभाग द्वारों पर स्थित थे किन्तु ध्वनि नहीं होती थी। वे सभी शब्दहीन होते हुए संस्थित थे अन्य गण वहाँ से सुदूर अन्तर पर स्थिर होकर क्रीड़ा कर रहे थे। कुसुमों, दलों, भक्तों और गिरि के झरनों से रत्नों को खोजते हुए गैनिकों से भूषित वे गण थे। गिरिराज गणों के सहित गए हुए भगवान् हर का विलोकन करके गणों के सहित अपने स्थान औषधिप्रस्थ से निर्गत होकर पूजा के लिए उपस्थित हुए थे और यथोचित रूप से उनका अभ्यर्चन किया था। भगवान् शम्भु ने भी पराश्रद्धा से संयुक्त होकर उसकी अर्चना ग्रहण की थी। ध्यान योग में स्थित मुस्कराते हुए से उस गिरिराज से ईश्वर ने कहा–मैं आपके इस प्रस्थ पर तप का समाचरण करने के लिए ही इस एकान्त स्थल में समागत हूँ। मेरे समीप में कोई भी न आये ऐसी व्यवस्था कर दीजिए। आप महान् आत्मा वाले हैं आप जगत् के धाम है और मुनियों के सदाश्रय हैं। देवों, राक्षसों, यक्षों और किन्नरों तथा द्विजातियों के सद् आवास, हे गिरिश्रेष्ठ! मैंने वहाँ पर आश्रय ग्रहण किया है सो अब जो योग्य हो वह सब करिये। इतना कहकर जगतों के स्वामी वृषभध्वज चुप हो गये थे। उसी समय गिरिराज ने भगवान शम्भु से प्रणय पूर्वक यह कहा था। हे परमेश्वर! आप तो जगतों के स्वामी हैं। आपने मुझे पवित्र कर दिया है कि आपने इस मेरे देश में समागम किया है। इससे आगे जो भी मेरा कर्त्तव्य हो वह मुझे उपदेश कीजिए। आप तो महान् तप के द्वारा यत्नों में परायण देवों के द्वारा भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं। हे जगन्नाथ! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप स्वयं ही यहाँ पर पदार्पण कर उपस्थित हो गये हैं। मैं तो यही समझता हूँ कि मुझसे अधिक धन्य कोई भी नहीं हैं। और न मुझसे अधिक कोई पुण्यशाली

ही है। जो कि आप तपश्चर्या करने के लिए हिमवान् के प्रस्थ पर स्वयं ही समुपस्थित हो गये हैं। हे परमेश्वर! मैं तो अपने आपको देवेन्द्र से भी अधिक मानता हूँ कि गणों के सहित आपके द्वारा स्वेच्छा से जिस समय में मैं प्राप्त हो गया हूँ। इतना कहकर गिरिराज पुनः अपने घर में आ गये थे। और उसने नियम के लिए अपने परिवारों को तथा गणों को आदेश दिया था।

आज से कोई भी गंगावतरण पर नहीं जायेगा। मेरे शासन के बिना जो कोई भी वहाँ पर गमन करेगा उसको मैं दण्डित करूँगा। उस गिरिराज हिमवान् ने इस रीति से अपने लोगों को नियमित करके तिल, पुष्प, कुशा और फल लेकर शीघ्र ही अपनी ही पुत्री के साथ भगवान् शम्भु के समीप गमन किया था। इसके अनन्तर ध्यान में परायण जगन्नाथ शम्भु के समीप में गमन करके सब गणों से समन्विता काली अपनी पुत्री से प्रणाम करवाया। जो तिल पुष्प आदि थे वह सभी उससे उनके आगे रख दिया था। फिर अपनी पुत्री को आगे करके उस शैलों के राजा ने भगवान् शम्भु से यह कहा–हे भगवान्! मेरी पुत्री आपकी आराधना करने के लिए समादिष्ट है और आपकी आराधना की इच्छा से यहाँ पर लाई गई है। यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है तो आप इसको सेवा करने के लिए अनुज्ञा प्रदान कीजिए। इसके अनन्तर भगवान् शंकर ने उसका अवलोकन किया था कि वह प्रथम यौवन में आरुढ़ थी और उसके विकसित कमलों के सदृश एवं उसका मुख पूर्णचन्द्र के समान था।

वह समग्र केशों के समूह से वेश विजृम्भिका को प्राप्त हुई थी। उसकी ग्रीवा कम्बु के समान थी। उसके नेत्र विशाल थे और उसके दोनों कानों का जोड़ा परम सुन्दर एवं उज्जवल था। मृणाल के सदृश आयत पर्यन्त बाहुओं के युग्म से वह परम मनोहर थी। उसके कुण्डलों के स्थान में कमल थे और पीन एवं उन्नत स्तनों से शोभित थी। सुन्दर और क्षीण मध्यभाग के धारण करने वाले थी और उसके दोनों पादों से वह परम मनोरम थी। मध्य भाग से क्षीण, महान् सत्त्व वाली स्थूल

और धन वृत्त से उज्जवल थी। उसकी जंघायें सुन्दर थीं। नाग के समान उसकी नासिका थी तथा वह निम्न नाभि से भूषित थी। उसकी जंघाओं के अग्रभाग सुवृत और सुन्दर थे। तीन संस्थाओं में गम्भीर और छः स्थानों में समुन्नत थी। सभी सुलक्ष्णों से सम्पन्न वह तीनों लोकों में दुर्लभ थी। ध्यान के पिंजर में बंधे हुए मुनियों के मन को भी दर्शन करने ही से भ्रष्ट करने में समर्थ वह योषितों के समूह की शिरोमणि थी। उस मनोहर को देखकर तपश्चर्या के लिए नित्य ध्यान करने वालों को विघ्नों का हेतु और अनुराग को बढ़ाने वाली तथा कामरूपी थी।

उस गिरिराज के वचन से उसकी पुत्री को भगवान् शंकर ने जो गौरव से भी गौरव थे सेवा करने के लिए स्वीकार कर लिया था। भगवान् शम्भु ने कहा था कि शैलराज! यह आपकी पुत्री अपनी सखियों के साथ नित्य ही मेरी सेवा करने के लिए निर्भीक होकर स्थित रहे। यह कहकर भगवान् हर ने उस देवी को सेवा के लिए ग्रहण कर लिया था। यही महान् धैर्य है कि विघ्न बाधा न कर डालें। विघ्न रहित विघ्न के हेतु को पराभूत करके जो प्रवृत्त होता है, वह तपों का महत्व है और तपस्वियों की धीरता है। इसके अनन्तर गिरिराज अपने परिचारकों के सहित अपने पुर में आ गया था और भगवान् शम्भु ध्यान के योग से परेशा का चिन्तन करने के लिए स्थित हो गये। काली अपनी सखियों के साथ महादेव चन्द्रशेखर की सेवा करती हुई गमन और आगमनों के द्वारा स्थित हो गयी थी। किसी समय वह सखियों के सहित भगवान् शंकर के आगे शुभ गीत का विस्तार करती हुई पञ्चम स्वर में गान किया करती थी।

किसी समय वह भगवान् हर के लिए कुश, पुष्प, आदि समिधा और जन से सखियों के सहित स्नान का सत्कार करती हुई उस समय वहाँ पर निवास करती थी। किसी समय नियत रूप से शिव के मुख का वीक्ष्णा करती हुई सकाम होकर उनके विषय में चिन्तन करती थी तब भी वह हर के मुख का चिन्तन किया करती थी। किस समय यह भूतेश्वर मेरा पाणिग्रहण करेंगे और अनेक सद्भावों की भावनाओं से

मेरे साथ रमण करेंगे। इसी चिन्ता में परायण होती हुई काली स्वप्न में परमेश्वर का अर्चन करती हुई सदा नहीं परम प्रभु की चिन्ता में तत्पर रहा करती थीं। आगे काली जब महेश्वर का ध्यान करती थी तब भगवान् भूतेश ने उसको स्वभाव में परिस्थित हुए जाना था। किन्तु उस समय में गर्भवत बीजों से युत देह वाली है। इससे उस समय में उसको गिरीश ने अधृत व्रत वाली को भर्या बनाने के लिए ग्रहण नहीं किया था।

महादेवजी ने उस समय उसे देखकर यही सोचा था कि यह गिरि की पुत्री किस प्रकार से तपश्चर्या के व्रत को करेगी। किए हुए व्रत से और संस्कारों से गर्भबीज से वर्जित काली को जो निजा और अति दूषिता है अपनी प्यारी भार्या के रूप में ग्रहण करूँगा। व्रत से और संस्कारों से गर्भ के बीज की विमुक्ति होती है। इससे जैसे भी यह काली व्रत करे, यह कैसे युक्त होवे। भूतेश शम्भु यह चिन्तन करते हुए समय में मन लगाने वाले होकर संस्थति हो गये थे। ध्यान में समासक्त होने से अन्य कोई भी चिन्ता न हुई थीं। काली प्रतिदिन भक्तिभाव से शम्भु की अत्यधिक सेवा किया करती थी और उस महात्मा के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन किया करती थी। ध्यान में परायण हर नित्य ही प्रत्यक्ष हुई काली को भूलकर पूर्व वृत्तान्त को देखते हुए भी नहीं देखते थे।

इसी बीच में दैत्यों का राजा तारक ब्रह्माजी के वरदान से बहुत ही घमण्डी होकर देवों और सभी लोकों को बाधा दे रहा था। तीनों लोकों को अपने वश में करके वह स्वयं ही इन्द्र बन गया था। उसने सब देवों को भगा कर उनके पदों पर अपने दैत्यों का नियोजन कर लिया था। उसके राज्य में यम अपनी इच्छा से लोकों का नियोजन नहीं करता था। उसके भय से सूर्य भी लोक को ताप नहीं दिया करता था। चन्द्रदेव तो अपनी किरणों के द्वारा उनका नम्र साचिव्य किया करता था अर्थात् दास होकर वह रात-दिन उनकी सेवा में ही निरत रहता था। वायु सदा ही सुगन्ध गम्भीरता और शीतलता से एवं स्निग्धता से समन्वित होकर उस नृप के शासन से उसको वीजित करता हुआ ही वहन किया करता

था। कुबेर भी तारक की इच्छा से यत्नपूर्वक सावधान होकर उसकी सेवा किया करता था। तारक के शासन से अग्नि रसोइया हो गया था उस समय उसकी इच्छा से ही सदा भोज्य व्यञ्जनों को दिया करता था। निर्ऋति समस्त राक्षसों के सहित निरन्तर भय से अश्व, गज और वाहनों को चराता था।

वह तारक सुरों से द्वेष रखता था और नृत्य करती अप्सराओं के स्तवन करने वाले सूत और मागधों का गान करने वाले गन्धर्वों के साथ भली भाँति क्रीड़ा किया करता था। इस रीति से तीन लोकों में देवों के जो भी सार-सार थे उन सबका उसने ग्रहण कर लिया था। उस सभी देवों को जिनमें इन्द्र प्रमुख थे अभिवाधित कर दिया था। तब सब देवगण अनाथ होते हुए भी उत्तम नाथ ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हुए थे। उन देवों ने प्रणाम करके जिन सब में पुरहूत अगुआ थे महान् आत्मा वाले सब लोकों के पितामह से यह बोले। देवों ने कहा—हे लोकों के स्वामिन्! दैत्य तारक आपके दिये हुए वरदान से बहुत ही घमण्डी हो गया है। बलपूर्वक उसने हम सबको निरस्त करके हमारे देशों को स्वयं ही ग्रहण कर लिया है। हम लोग जहाँ-तहाँ पर स्थित हैं वह हमको दिन-रात बाधा दिया करता है। हम लोग भागे हुए हैं और सभी दिशाओं में तारक को ही देखा करता है। अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु और मनुष्य धर्म वाला सब परिकारों से युक्त है।

हे ब्रह्मन्! ये सब देवगण उसके द्वारा पीड़ित हैं और उसके ही शासन से उसके ही अनुजीवी होकर उसके कार्यों में इच्छा न होने पर भी निरत रहा करते हैं। जो स्वर्ग में देवों की वनितायें, अप्सराओं के समुदाय तथा लोकों में सार पदार्थ है इन सबको तारक दैत्य ने ग्रहण कर लिया है। इस समय न तो यज्ञ ही हो रहे हैं और न तापसगण तपश्चर्या ही किया करते हैं तथा दान धर्म आदि कुछ भी लोकों में प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं। उसका सेनापति पापी कौञ्च दानव है। वह पाताल में जाकर प्रजा को रात-दिन बाधा दिया करता है। हे पितामह! उस तारक ने यह सम्पूर्ण त्रिभुवन को हृत कर लिया है। यह सम्पूर्ण जगत् उसी

के द्वारा हरण किया हुआ है। इस पापी से आप हमारा परित्राण करिए। हम लोग जहाँ पर जाकर स्थित रहेंगे उस स्थान को बतालइए। हे लोकनाथ! आप तो जगत् के गुरु हैं उनके द्वारा हम सब स्थान से भ्रष्ट कर दिए गए हैं। आप ही हम लोगों की गति हैं, शास्ता हैं, आप ही हमारे रक्षक पिता और प्रसूत करने वाले हैं। आप ही भुवनों के स्थापक, पालन करने वाले और कृती हैं। हे प्रजापते! जब तक हम लोग तारक नाम वाली अग्नि में भस्म होकर दग्ध न होवें अब आपको वैसा ही करना समुचित है अर्थात् वैसा ही करने के लिए आप योग्य हैं।

ब्रह्मलोक में पितामह ने सुरों के इस वचन का श्रवण कर उन समस्त सुरों से कहा। ब्रह्माजी ने कहा—मेरे ही वरदान से तारक समृद्ध हुआ है। हे देवगणों! अब मेरे ही वरदान से मरण मुझ से होना युक्त नहीं होता है। आपका भी प्रतिकार होना ही चाहिए किन्तु मैं आपके द्वारा प्रेरित होकर भी भली भाँति कुछ भी प्रतिकार कर नहीं सकता हूँ। इस कारण से जैसे भी तारक स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो वैसा आप लोग मुझसे समझ लेवें। मैं तो उपदेश ही कर देने वाला हूँ। मेरे द्वारा तारक वध नहीं होगा और वनमाली प्रभु के द्वारा भी वह वध के योग्य नहीं होगा, न हर के द्वारा तथा अन्य सुरों और मनुष्यों के द्वारा वह मारा जा सकता है। उसको तपश्चर्या करते हुए ही वरदान मैंने दे दिया था। हे सुरोत्तमो! इसका एक उपाय मैंने सोच लिया है उसे ही आप करिये।

पूर्व समय में सती दाक्षायणी ने देह का त्याग कर दिया था और अपने जन्म धारण करने के लिए शैलराज की मेनका देवी के यहाँ गयी थी। गिरिराज ने उसको मेनका के उदर में समुत्पादित किया था। वह पहले साक्षात् लक्ष्मी की ही भाँति प्रसिद्ध हुई थी कि महादेव अवश्य उसका पाणिग्रहण कर लेंगे। हे सुरो! जिस प्रकार से वह शीघ्र ही उसमें अनुराग करने वाले हो जावें, उसी भाँति आप करें। उनका तेज ही आप सबका प्रतिकार करने वाला है। वे शम्भु भगवान् ऊर्ध्वरेता हैं। उनके वीर्य को वह प्रच्युत करने वाली है। उसी की ऐसी सामर्थ्य

है दूसरी कोई भी अन्य बाला ऐसी शक्तिशाली नहीं है। उससे जो भी पुत्र उत्पन्न होगा वह ही इस तारक नामक राक्षस का हनन करने वाला है, अन्य कोई भी नहीं है। वह गिरिराज की पुत्री इस समय में समारूढ़ यौवन वाली अर्थात् पूर्ण युवती है। गिरि के प्रस्थ पर तपश्चर्या नित्य ही करने वाले उन भगवान् के वाक्य से ही अपनी सखियों के साथ ध्यान में स्थित परमेश्वर सर्वज्ञ की वह सेवा कर रही है।

अपने आगे विद्यमान रहने वाली तीनों लोकों में वरवर्णिनी के ध्यान में समासक्त महादेव मन से भी यही चाहते हैं। चन्द्रशेखर जिस रीति से भी उस काली को अपनी माया बनाना चाहें, हे देवगणों! आप लोग वैसा ही यत्नपूर्वक शीघ्र ही करें। आप लोगों को स्वर्ग अपना स्थान है। उससे मैं तारक को भी निवृत कर दूँगा। मैं उसके साथ संगत होऊँगा। आप लोग दुःखों से रहित होकर ही यहाँ से गमन कीजिए। इतना कहकर सब लोकों के स्वामी तारक नामक दैत्य के पास उपस्थित हुए थे। उसके समीप जाकर यह वचन उन्होंने कहा। हे तारक! आप स्वर्ग के राज्य को शासन करें। उसके लिए आपने पहले तपस्या नहीं की थी। मैंने भी ऐसा वरदान नहीं दिया था कि मेरे द्वारा आप स्वर्ग के राजा होवें। इस कारण स्वर्ग का परित्याग करके भूमि पर भी राज्य के शासन को करें। हे असुर! देवों के योग्य भोगों का उपभोग करने के लिए आपको वहीं पर भूमि में सब पदार्थ प्राप्त होंगे। इतना कहकर सब लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जी वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे।

वह तारक भी स्वर्ग का परित्याग करके इसके उपरान्त भूमि पर समागत हो गया था। वहाँ पर ही संस्थित होकर वह नित्य ही देवों को बोधित किया करता था। उसने इन्द्र को कर देने वाला बना दिया था और उस महान् बलवान् को अपने निर्देश में स्थित कर दिया। इन्द्र देव उसको निरन्तर देवों के भोगने के योग्य पदार्थों को समर्पित करते हुए भी सेवा करके उस ईश्वर को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ था। इस रीति से उसके द्वारा उत्पीड़ित हुए और क्रोध से परिपीड़ित होते हुए देवों ने विधाता के उपदेश से भगवान् शम्भु के वंश में यत्न किया था।

शम्भु सुतोत्पत्ति हो जावे, इस कार्य के सम्पादन करने में देवगण प्रयत्नशील हो गये थे। इसके अनन्तर इन्द्र देव के साथ संङ्गत होकर ऐसा निश्चय कर लिया था कि शम्भु को सुतोत्पत्ति के लिए उद्यत किया जावे। इन्द्र देव ने कामदेव को बुलाकर उससे यह वचन कहा था। इन्द्र देव ने कहा—आपके द्वारा इस विश्व की प्रसूति की जाती है और आपके ही द्वारा विश्व का पालन किया जाता है। पहले आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की प्रीति का हेतु हुए थे। ब्रह्माजी ने किसी समय में प्रीति से जिस प्रकार से चरित व्रत वाली सावित्री का ग्रहण कर लिया था। भगवान् माधव ने लक्ष्मी का ग्रहण किया था और भगवान् हर ने दाक्षायणी का ग्रहण कर लिया था। पहले समय में देवेशों की प्रीति के लिए जैसे उनको वर दिया था उसी भाँति अब मेरी भी प्रीति करिये। आप तो सदा ही प्राणधारियों की प्रीति के करने वाले हैं।

हे काम! आप स्वर्ग, पाताल और भूमण्डल में किसके प्रिय नहीं है। आप जंगल के प्राणधारियों का सभी का अभिमत हैं। देव, दानव, यक्ष, राक्षस और मनुष्यों के आप पालक तथा कर्त्ता हैं और आप सब सम्पूर्ण जगतों के हित के सम्पादन करने के लिए विशेष चेष्टा कीजिए। जिससे देव, दानव, यक्ष और महात्मा तथा मनुष्यों का हित हो वही करिये। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मकरध्वज ने यह इन्द्र का वचन श्रवण करके उसके वचन रूपी अमृतों से बहुत ही प्रसन्न होकर देवराज से कहा। जहाँ मेरी ईशता है, हे शुक्र! वह कर्म आपको ज्ञात ही है इस कारण जो मैं कर सकता हूँ उसे मैं करूँगा। आप इसका निर्देश कीजिए। मेरे पाँच ही बाण हैं जो बहुत ही कोमल पुष्पमेघ हैं। मेरा चाप भी पुष्पों से परिपूर्ण हैं और उस चाप की डोरी भ्रमरों के स्वरूप वाली हैं। रति मेरी प्यारी जाया हैं। बसन्त मेरा सचिव है। मलय से सम्भूत वायु यन्ता है और मेरा मित्र सुधानिधि चन्द्रमा है।

मेरी सेना का अधिक शृंगार हैं और हाव तथा भाव मेरे सैनिक हैं। ये सभी मेरे सहयोगी क्रूरता से रहित और कोमल हैं और मैं भी वैसा ही मृदु हूँ। आप तो धीमान् है मेरे करने का जो भी समुचित कार्य

हो उसका भी योजित कर दीजिए। इन्द्र देव ने कहा—जिसके कराने की इच्छा कर रहा हूँ हे मनोभव! आपसे जो भी कराना चाहता हूँ, वह आपका समुचित कर्म है। उसमें आप परिवृत हैं। आप उसमें कृतकर्मा हैं, आपको उस कर्म का अनुभव हैं। हे मनोभव! आप कृती हैं। आपको छोड़ कर अन्यों से वह कर्म दुस्साध्य है। इसी से मैं आपका नियोजन करता हूँ। यह सुना जा रहा कि हिमालय के प्रस्थ में वृषभध्वज ध्यान में स्थित हैं और वधू के लिए वे आकांक्षा से रहित हैं। पिता के वचन से काली सखियों के सहित नित्य ही हर की अनुमति में होकर अब सेवा किया करती है। वे शम्भु तपश्चर्या कर रहे हैं। यद्यपि वह समारूढ़ यौवन वाली युवती है, स्त्रियों में रत्न के समान परम दिव्य हैं और अत्यधिक सुन्दरी भी हैं किन्तु महादेवजी ध्यान में ऐसे आसक्त हैं कि उसको मन से भी नहीं चाहते हैं। अतः जिस रीति से भी आप यह कार्य करिये। इनमें देवों का और जगतों का परमहित हैं यही जानकर आप ऐसा करें।

वृषभध्वज जिस प्रकार से भी उस सती के साथ अनुराग वाले होकर रमण करें, वैसा ही करें। उसके रमण करने पर हर का जो तेज प्रच्युत होगा और उससे जो भी पुत्र समुत्पन्न होगा वही हमारा इस तारक से उद्धार करेगा। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर कामदेव ने देवराज के वचन का श्रवण करके पहले ब्रह्माजी के दिये हुए शाप का काल प्राप्त हो गया है। यह स्मरण किया था। सन्ध्या करने वाले विधाता पर जिस समय अपने शस्त्र की परीक्षा की थी जो उस समय कामदेव ने पुष्प के वाणों से प्रहार किया था और उसी अवसर पर विधाता ने उसको शाप दे दिया था। हे द्विजोत्तमो! विधाता ने कहा कि तू शम्भू के नेत्र की अग्नि से दग्ध हो जायेगा। जिस समय भगवान् हर गिरि की पुत्री को पाणिप्रणीता भार्या करेंगे उसी समय आप शरीर के द्वारा सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेंगे। इस विधाता के शाप का स्मरण करके भयभीत कामदेव ने शुक्र के वचन से हर को काली के साथ योजित कर देने के कार्य को स्वीकार कर लिया था। और फिर उस काल के सदृश कामदेव से यह वचन कहा था।

मदन ने कहा—हे इन्द्र देव! मैं आपके वचन को पूर्ण करूँगा और गिरिजा के साथ भगवान् शम्भु को संगन कर दूँगा जैसा कि पहले दाक्षायणी के साथ किया था। किन्तु शम्भु के मोहन करने में आप मेरी एक सहायता करें। जिस समय में सम्मोहन के द्वारा हर का सम्मोहन करूँ उस अवसर पर आप मेरी सहायता करें। मैं सुरभि के द्वारा प्रवेश करके अर्थात् शंकर के आश्रम में शीघ्र ही प्रविष्ट होकर सर्वप्रथम दर्पण के द्वारा मन से विकार समुत्पन्न करके फिर सम्मोहन के द्वारा दृढ़ता से वृषध्वज को मोहित कर दूँगा। आप काल के प्राप्त होने पर मेरा स्मरण करोगे और पालन का ध्यान रखोगे। हे बलसूदन! वह कार्य करने के लिए मैं जाता हूँ। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इतना कहकर वह कामदेव शंकर के आश्रम में गया। इन्द्र ने भी उस अवसर पर सब देवों से यह कहा था कि जहाँ पर कामदेव जाता है वहाँ पर आप लोग इसकी सहायता करें। वहाँ-वहाँ पर अनुगमन करके समय-समय पर मुझको बताओगे।

जिस सम्मोहन के द्वारा यह कामदेव भगवान् शंकर को सम्मोहन करेगा हे सुरगणो! उस समय में मैं भी वहाँ पर जाऊँगा—ऐसा मुझको जान लो। इस प्रकार इन्द्रदेव द्वारा कहे गये देवगण कामदेव के पास चले गये थे। वह कामदेव भी गमन कर गया था जहाँ पर शम्भु गिरि के गंगावतरण स्थल में हिमाचल के शिखर पर थे। उसने सुरभि को नियोजित कर दिया था। इसके अनन्तर सुरभि के वहाँ पर पहुँचने पर जिसका कि वह लक्षण था कि शीघ्र ही भाँति-भाँति के तरु-लता और गुल्मों में पुष्प खिल गये थे। वहाँ पर किंशुक विकसित थे और मञ्जुल के तरु भी पुष्पित हो गये थे। सभी सरोवर खिले हुए पद्मों से शोभायमान हो गये थे तथा सभी तन्तुओं को विकार हो गया था। 'उस समय सुगन्धित वायु बहने लगी थी जिसमें पुष्पों के रेणु सम्मिलित थे। जो धीरे-धीरे सुखकर होकर मन को आकर्षित कर रहा था। सभी पक्षीगण, मृगवर्ग और जो भी प्राणधारी जीव थे और सिद्ध एवं किन्नरगण ने एकान्त भाव को विस्तृत किया था और वे नूतन बौरों के

गुच्छों से भूषित हो गये थे। अशोक, पाटल और नागकेशर सभी विकार से समन्वित थे।

हे द्विजो! भगवान् शम्भु के गण भी प्रत्यक्ष में विकार वाले हो गये थे किन्तु शम्भु के भय से इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे। उस अवसर पर वहाँ भ्रमर कुसुमों से अद्भुत रस का पान करते हुए गुञ्जार करने वाले थे। इस प्रकार से सुरभि के प्रवृत्त हो जाने पर शृंगार ने अपने गणों के साथ हाव-भावों से संयुत होकर हर के समीप प्रवेश किया था। वहाँ पर कामदेव तो अपने गणों के सहित चिरकाल तक निवास करने वाला हो गया था। उस समय कोई भी ऐसा छिद्र शम्भू में नहीं देखा था जिससे वह उस समय में वह भय से विमोहित हो गया था। मदन आगे गमन करने वाला नहीं हुआ था क्योंकि रति के द्वारा वह वारित कर दिया गया था। हे द्विजसत्तमो! इस प्रकार उसको बहुत सा समय व्यतीत हो गया था। उस समय उन यति शम्भू में उसने कोई भी छिद्र नहीं प्राप्त किया। प्रज्वलित अग्नि सदृश और लाखों सूर्यों के समान प्रभा वाले ध्यान में स्थित भगवान् शंकर के पास पहुँचने के लिए कौन समर्थ था अर्थात् किसी की भी ऐसी शक्ति नहीं थी।

इसके अनन्तर एक बार गिरि की पुत्री काली उनके सामने हुई थी जो करने के योग्य सेवा थी उसे करके वह सखियों के साथ प्रणत होकर स्थित हो गई थी। भगवान् शंकर भी अपने ध्यान का त्याग करके उसी क्षण समास्थित हुए थे। कृत्य में अपने गणों को योजित करते हुए वे ज्योतिस्वरूप चिन्ता से रहित थे। कामदेव ने वहीं छिद्र प्राप्त करके सबसे प्रथम हर्षण वाण के द्वारा पार्श्व शम्भु को हर्षित किया था और शृंगार सुरभि के साथ में कामदेव की सहायता कर रहा था। हर्षिणी वाण के द्वारा वे अति हर्षित होते हुए शृंगार आदि के द्वारा निषेवित हुए थे। भगवान् शंकर ने विशेष अभिप्राय के सहित काली के मुख को अच्छी तरह से अवलोकन किया था। कामदेव ने उसी छिद्र को प्राप्त करके पुष्प को चाप में नियोजित किया था। पुष्प से वृत तथा पुष्पमाला सहित सम्मोहन को छोड़ा था। उस समय उसके

दक्षिण पार्श्व में रति थी और वाम में पुष्प से वृत तथा पुष्प माला सहित प्रीति थी। पीछे की ओर सुन्दर बसन्त तूणीर और पौष्प का समादान करके स्थित था।

जिस समय कामदेव ने संयत होकर पुष्प चाप को कानों तक खींच कर प्रस्तुत था उसी समय उसके समीप में वायु समुपस्थित हो गया था और इन्द्रिय के विकार समुत्पन्न होने वाले होकर संगम के लिए ग्रहण करने की इच्छा वाले हो गये थे। इन्द्र के सहित सब देवगण उस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने कामदेव को परम सभ्य माना था क्योंकि वह देवों के कृत्य में निवेशित हो रहा था। इसके अनन्तर महादेवजी ने संस्मरण करके और उस अवसर पर मानसिक विचार को रोककर जो कि इन्द्रिय का हुआ था उन्होंने तुरन्त ही यह चिन्तन किया था। गिरिराज योनिजा और तपोव्रत से रहित हैं। मैं बलपूर्वक इसको पकड़ने की कैसी इच्छा कर रहा हूँ और क्यों संगम की कामना करने वाला हो गया हूँ। तप के व्रत से पवित्र अंगों वाली और तप के समाचरण से संस्कृत सती को दाक्षायणी की ही भाँति मैं स्वयं ही ग्रहण कर लूँगा। मैं इस समय में इच्छा न करते हुए भी विकारयुक्त कामवासना वाला हो गया हूँ। मैं किसी के द्वारा संगमोद्भव करने की इच्छा वाले से समाकृष्ट हो गया हूँ।

इस प्रकार से इन्द्रिय के विकार के हेतु की खोज करते हुए उन्होंने बाण को संहित किए हुए कामदेव को देखा था। इसी बीच में ब्रह्मा जी समय को विज्ञात करके सुरों को देखकर अनुग्रह से अपने स्थान से उस बाण समागत हो गये। इसके अनन्तर का सन्धान किये हुए कामदेव को देखकर के शम्भु अधिक कुपित हो गये थे। वे अग्नि के समान ही प्रज्वलित हो गये थे और सबको बलपूर्वक दग्ध कर देने की इच्छा वाले हो गये थे। यह काम समय का ज्ञान करने मुझको मोहित करने की इच्छा करता है। मेरे मन को अपने वश में करना चाहता है इसलिए इसको यम को पहुँचाता हूँ। इस प्रकार चिन्तन करते हुए भगवान् शम्भु के नेत्र से उपजा तेज से जो कि बढ़ रहा था उसने अग्नि

होकर नेत्र से क्रोध की उत्पत्ति की थी। क्रोध से निकलने वाली जातवेदा के स्वरूप वाली का ज्ञान प्राप्त करके कामदेव पुरुषों के भाग को निष्क्रमण करके कामदेव के बाणों को जान कर शक्ति से प्राणों को तथा आत्मा का आकर्षण करके विधाता ने पालन किया था और इन पितामह ने उस समय में बसन्त को उत्साहित किया था।

उस समय अपनी शक्ति के द्वारा कामदेव को शम्भु के क्रोध से रक्षित करते हुए महेश्वर को क्रोधित देखकर देवगण जो आकाश में स्थित थे उन्होंने प्रार्थना की थी कि हे जगतों के नाथ! प्रसन्न होइए और कामदेव पर क्रोध का त्याग कर दीजिए। जिस प्रकार से पहले आपने शम्भुरूप में कर्म के द्वारा सृजन किया था और जिसने कर्म को आयोजित किया था उसी को कामदेव कर रहा है। इस कारण से हे शम्भो! कामदेव पर जो आपकी क्रोधाग्नि है उसका उपसंहार करिए।

हे समस्त भूतों के स्वामिन्! आप प्रसन्न हो जाइए! हम लोग बड़ी ही भक्ति के भाव से आपके चरणों में प्रणत हुए हैं। इस भाँति वे देवगण कह रहे थे कि उनके कहते हुए हुओं के सामने ही शम्भु के ललाट की चक्षु से समुद्भूत अनल ने कामदेव को भस्म कर दिया था। ज्वालाओं की मालाओं से अत्यन्त दीप्त उस वह्नि ने कामदेव को दग्ध कर दिया था और वह फिर हर के समीप नहीं जा सका था। कामदेव ने भी कामदेव के शरीर से समुत्पन्न उस भस्म को लेकर अपने समस्त अंगों में उसी समय में भस्मे का लेप कर लिया था। जो लेपन करने से बची हुई भस्म थी उसका हर ने आदान कर लिया था।

विधाता के द्वारा सम्मत होने पर शम्भू काली को त्याग कर गणों के सहित अन्तर्धान हो गये थे और ब्रह्माजी ने समस्त देवों को दहन करने वाली शम्भु की क्रोध की अग्नि को बड़वा कर रूप वाली देवों के आगे ही उस समय में कर लिया था। उस अवसर पर सौम्य, शुभ ज्वालामुखी बड़वा को देखकर पूर्व पीड़ित देवगण निर्विघ्न मन वाले हो गये थे। उसी समय विधाता उस ज्वालामुखी बड़वा को ग्रहण करके जगतों के स्वामी के लोकों के हित के लिए सागर में चले गये।

ब्रह्माजी सागर पर गमन कर वहाँ परिपूजित होते हुए बोले—हे विप्रेन्द्रो! महेश का क्रोध बड़कावा स्वरूप धारण करने वाला होवे और तुमको जब तक मैं विनय न करूँ तब तक ज्वालामुखी होकर सदा कार्य करना चाहिए। हे सरिताओं के स्वामिन्! जिस समय मैं समागत होकर कहूँ उस समय इस बड़वामुख क्रोध का आपको परित्याग करना चाहिए। आपका जल ही इसका भोजन होगा कि इसको यत्नपूर्वक नाप के धारण करना चाहिए कि यह किसी अन्तर को प्राप्त न होवे। इस तरह से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए सिन्धु ने उस समय उस क्रोध को अंगीकार कर लिया था।

भगवान् शम्भु का अशक्य भी क्रोध को बड़वा के मुख में ग्रहण करने के लिए बड़वा का मुखपात्रक जलधि में प्रविष्ट हो गया था। ज्वाला की मालाओं से अत्यन्त दीपित उस अग्नि ने जल के समूहों का भली भाँति दाह करते हुए जिस समय में वह शम्भु के नेत्र से अद्भुत हुआ था उसी समय में उसने कामदेव को दग्ध कर दिया था। उस महान् शब्द से काम का दाह क्षण भर में करने वाले से समस्त आकाश परिपूरित हो गया था। ऐसा ही महान् शब्द उस समय में हुआ था। उस समय काली अपनी सखियों सहित शोक से संयुत होकर बहुत ही अधिक भयभीत हो गई थी। उस शब्द से हिमवान् भी अतीव विस्मित और चकित हो गया था। वह हिमवान् शीघ्र ही भगवान् शम्भु के आश्रम में गई हुई अपनी पुत्री काली के समीप गया। वहाँ पर पुत्री को भय और शोक से व्याकुल रुदन करती हुई अचलराज ने देखा जो शम्भु के विरह से बहुत ही आकुल हो रही थी।

उस शोकाकुल दशा में अपनी पुत्री के समीप पहुँच कर हिमाचल ने अपने हाथ से उसके दोनों नेत्रों का मार्जन करते हुए कहा था—हे कालि! डरो मत और रुदन भी मत करो। यह कहकर उसको ग्रहण कर लिया था। अचलों के राजा हिमवान् उस अपनी पुत्री को अपनी गोद में बिठाकर अपने घर ले आये और उसको सान्त्वना दी।

भगवान् शम्भु के अन्तर्धान हो जाने पर उनके विरह से युक्त होती

हुई निरन्तर पिता के घर में निवास करती हुई भी बहुत चिंतिन्त हुई थी और मोह को प्राप्त हो गई। शैलों के राजा, मेनका, मैनाक और दोनों सखियों ने उस अदीनसत्व वाली को सान्त्वना दी थी तो भी उमा ने भगवान् शम्भु का विस्मरण नहीं किया था।

गौरी परीक्षा वर्णन

इसके बाद देवर्षि नारदजी जो अपनी इच्छा से ही परम गमन करने वाले थे इन्द्र के द्वारा जियोजित होते हुए उस अवसर पर हिमवान् के मन्दिर में समागत हुऐ थे। वे वहाँ पर अचलराज द्वारा पूजित हुए थे जो हिमवान् महान् आत्मा वाले थे। उसे हिमवान् को छोड़कर वे देवर्षि एकान्त में उस काली के समीप गये। उस मुनिवर ने काली के समीप पहुँच कर उस ज्ञानशालिनी को सम्बोधित करके समस्त जगतों का हित करने वाला परम तथ्य वचन कहा था। देवर्षि ने कहा–हे काली! मेरे इस वचन का श्रवण करो और उसको परम सत्य समझो। तुमने तपश्चर्या के बिना ही उन भगवान् शम्भु की सेवा की है। वे महादेव उससे अनुराग करनेवाले भी हैं किन्तु महादेव ने तुमको त्याग दिया था। तुम्हारे बिना वे शिव दूसरी किसी को भी ग्रहण नहीं करेंगे। इस कारण से आप तपश्चर्या से संयुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त महादेव जी की आराधना करो। जब तुम तप से संस्कार वाली हो जाओगी तो वे तुमको अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे। हे सुभगे! उसका यह मन्त्र है, आप श्रवण करिये जिसके द्वारा शीघ्र ही प्राप्त होंगे।

आराधना किए हुए वे महेश्वर आपको प्रत्यक्ष होकर दर्शन देंगे। 'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र सर्वदा भगवान् शंकर का प्रिय है। आप इनके स्वरूप का चिन्तन करती हुई नियम में स्थित रहकर छह अक्षरों वाला इस मन्त्र का जप करिए। हे गिरिजे! इससे शिव सन्तुष्ट हो जायेंगे। महात्मा नारदजी द्वारा यह कहने पर काली ने उस समय अपना कर्तव्य जान लिया था क्योंकि उनका वचन सर्वथा तथ्य और हितकर था। उस समय नारदजी काली को तपश्चर्या हेतु समुद्यत अनुमान कर

स्वर्ग गमन कर गये थे और उसकी बुद्धि व्रत करने में निश्चित हो गई। इसके अनन्तर देवर्षि के गमन करने पर काली मेनका के समीप पहुँची थी और मेनका से तप करने को बतलाया था। काली ने कहा—हे माता! मैं महेश्वर की प्राप्ति के लिए तप करने के लिए गमन करूँगी। आज तप के लिए तपोवन को गमन करने के लिए आप मुझे आज्ञा करिए। मेरे तप करने का निश्चय आप पिताजी से-शीघ्र ही निवेदन कर दीजिए। हे जननि! जब तक मैं भूतेश्वर के विरह की अग्नि से दग्ध न होऊँ इससे पूर्व ही मैं तप करना चाहती हूँ।

काली के इस वचन को श्रवण करके माता शोक से, कर्षित हो गयी थी। उसने अपनी पुत्री का आलिंगन करके उससे कहा था—हे वल्लभे! तपस्या मत करो। हे बेटी तुम्हारा शरीर बहुत ही कोमल है, तपश्चर्या जैसे कठोर कर्म करने के लिए गमन मत करो, तपस्या के कष्ट को सहन करने के लिए मुनियों का शरीर ही समर्थ होता है। तुम्हारा शरीर क्लेश को सहन करने की क्षमता नहीं रखता है। हे पुत्री! आपका वन में निवास करना तो शत्रुगणों को कभी अभीष्ट नहीं हैं। इसी कारण से वन में तप के विचार का परित्याग कर दो। तुम्हारे शरीर के जो अनुरूप हो वही तप करो जो हित के सम्पादन करने वाला होवे। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस गिरिजा ने माता के वचन का श्रवण किया और वह हीन मन वाली हो गई थी। और वे तपस्या के यत्न में परायण हुई उस समय उसने माता से यह वचन कहा था—मुझे निषेध मत करो। मैं आज तप के लिए तपोवन गमन करूँगी। यदि आपके द्वारा मुझे आज्ञा नहीं दी गई तो मैं छिपकर चली जाऊँगी। मेनका ने कहा—हे पुत्री! गृहों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवगण निरन्तर ही निवास किया करते हैं। इस कारण से तुम जो भी देव अभीष्ट हो उनका घर में ही अभ्यर्चन करो। अपने स्वामी के रहित होकर स्त्रियों की तपोवन में गति का होना कभी नहीं सुना गया है। इस कारण से हे पुत्री! वन की ओर गमन करके तपश्चर्या की यात्रा करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

क्योंकि मेनका के द्वारा तपस्या के लिए वन में जाना निरस्त कर दिया था अर्थात् निषेध कर दिया गया था उस समय में सती उमा ने सोमा—यह नाम प्राप्त कर लिया था। उस अवसर पर हिमाचल की पुत्री ने माता की अवज्ञा करके सखियों के द्वारा तप करने का उद्यम पिता के ज्ञापित किया था। उस गिरियों के स्वामी ने तप के लिए समाचरित उद्यम का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न मन वाला न होते हुए ही अपनी पुत्री को अनुमति दे दी थी। उसी समय सती ने पिता को अनुज्ञापित करके जहाँ पर कामदेव शम्भु के द्वारा दग्ध किया था उसी गंगावतरण की ओर वह चली गयी। गंगावतरण को काली ने भगवान् हर के रहित ही देखा था। उस समय में उसकी चिन्तो से संयुत हो गई थी। पहले जहाँ स्थित होकर शम्भु बहुत ध्यान वाले हुए थे। वह काली वहाँ पर स्थित होकर विरह से पीड़ित हो रही थी। गिरि की पुत्री वहाँ पर 'हाहा' कहती हुई चिन्ता और शोक से समन्वित तथा अत्यन्त दुःख से पीड़ित हो विलाप करने लगी थी।

क्षण भर तक काली ने विलाप किया था फिर उसी समय में उसको पूर्व उद्भव का स्मरण हो गया था। कमलों के समान नेत्रों वाली उमा ने हर के हार्द को और मोह को प्राप्त किया था। इसके पश्चात् चिरकाल उस भामिनी ने धीरता से मोह का संस्तम्भन किया था और वहीं पर नियम के लिए वह रुक गई थीं और हिमवान् की सुता नियम के लिए दीक्षित हो गई थी। उसका प्रथम नियम फलों का ही भोजन करके रहना था। पञ्च अग्नियों की तपस्या ही उसकी चर्या थी, शाम्भवी अर्थात् शम्भु से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता थी तथो सम्बन्धित जप था। यज्ञिय अर्थात् यज्ञ में काम आने वाले सूखे काष्ठों से चारों वह्नियों की स्थापना करके जो वैश्वानर की दृष्टि के द्वारा की गई थी। उनके मध्य में स्थित होती हुई वल्कलों के वस्त्रों वाली सूर्य के बिम्ब का वीक्षण करती थी। ग्रीष्म ऋतु को अग्नि के मध्य में और शिशिर में वह जल से वास करने वाली हुई थी। प्रथम समय फलों के द्वारा और द्वितीय समय केवल जल से व्यतीत किया था। तीसरा

समय हिमवान् की पुत्री ने क्रम से से पर्णों को भी छोड़ दिया।

बिना आहार के व्रत वाली होकर वह तपश्चरण से क्षीण हो गई क्योंकि हिमवान् की पुत्री ने आहार में पर्णों का भी त्याग कर दिया था। इसी से देवों ने पृथ्वी तल में उसको अपर्णा कहा था। पाँच अग्नियों के ताप व्रत से और जल में प्रवेशों के द्वारा उसने तप किया था। वह हिमाचल की पुत्री बसन्त में एक ही पाद से स्थित हुई थी। छः अक्षरों वाले मन्त्र का जप करती हुई उसने चिरकाल महान् तप का समाचरण किया था। वह चीरों और वल्कलों से शरीर को ढांपने वाली थी। वह जटा-जूटों के समूह रखने वाली थीं उसके सब अंग कृश हो गये थे परन्तु वह चिन्तन करने में शक्त थी। उसने ऐसा तप किया था कि मुनियों को भी जीत लिया। उस तपस्या के समाचरण में उसकी रक्षा स्वयं भगवान् शम्भु ने की थी। वे भगवान् शम्भु उसको सदा ही आप्यायित करते थे और हर्षित होकर उसकी भय से भी रक्षा किया करते थे। इस प्रकार से काली को तपोवन में तीन सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये। तब वह स्वयं वीक्षण से संस्कृत हो गई थी और दैव के द्वारा वह देवी हर के योग्य हो गई थीं।

तिरेसठ सहस्त्र वर्षों के अन्त में जहाँ पर भगवान शम्भु ने तपस्या की थी, वहाँ पर क्षण भर स्थित होकर भामिनी ने चिन्तन किया था। महादेव क्या इस समय नियमों में संस्थित मुझको नहीं जानते हैं कि कारण से बहुत अधिक काल पर्यन्त तप में रत हुई का मुझे अनुज्ञान नहीं किया है। क्या मुनियों के द्वारा स्तवन किये गये गिरीश लोक में यहाँ पर नहीं हैं। देवी के द्वारा तो हर सब कुछ के ज्ञान रखने वाले, सर्वस्त्र गमन करने वाले देव कहे जाया करते हैं। वह सर्वत्रगामी, सर्वज्ञाता, सबकी आत्मा, सबके हृदय में रहने वाले, सबके विभूति प्रदाता और सर्व भावनों के भी भगवान देव हैं। मैं सती और मेरी माता मेनका है। यदि मैं वृषभध्वज में अनुराग से युक्त हूँ और अन्य में मेरा अनुराग नहीं है तो वह शंकर मुझ पर प्रसन्न हो जावें। यदि नारद के मुख से निकला हुआ छः अक्षरों वाला मन्त्र भक्तिभाव से मैंने जप

किया है तो इससे हरि मुझ पर प्रसन्न हो जावें। यदि वास्तव में मैंने सत्य किया है सत्यतापूर्वक मैंने हरि की आराधना की है, यदि तप सत्य है तो इससे भगवान हर मुझ पर प्रसन्न हो जावें।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–वह काली इस प्रकार से विशेष चिन्तन करती हुई जब भगवान् के आश्रम में संस्थित हुई थी जिसका मुख नीचे की ओर था, दीन वेश था और वह जटा तथा वल्कलों से मण्डित थे। उस समय में कृष्ण मृग की छाला के उत्तरीय से शोभित, कमण्डलु और दण्ड धारण किए हुए, ब्रह्माजी श्री ये देदीप्यमान और परम शोभित ब्रह्मचारी परिवीत जटाओं से उद्रिक तनु को धारण करनेवाला था। ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु उसी समय द्विज ने उससे सम्भाषण किया था। उस समय प्रत्यक्ष रूप से अनुराग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए और उसके मुख से वचन का श्रवण करने के लिए इच्छा करते हुए उस वाग्मी ने विचित्र वाक्य के द्वारा गिरिजा से पूछा था। ब्राह्मण ने कहा–हे कल्याणी! आप कौन है और किसकी पुत्री हैं ? इस विजन वन में किस लिए प्रत्यतात्मा मुनियों के साथ वह दुर्धर्ष तप कर रही हैं ? आप न तो बाला हैं और न वृद्धा ही है। आप तो अत्यन्त शोभन तरुणी हैं, बिना पति के निरन्तर क्यों यह इस समय में तपस्या कर रही हैं ?

हे भद्रे! अथवा क्या आप किसी तपस्वी की पत्नी हैं वह तपस्वी पुष्पादि का संमाहरण करने के लिए यहाँ से अन्य स्थल में चले गये हैं ? यदि आपको कोई गोपनीयता न हो तो यह मुझे आप सब बतलाइए। मैं उसको हटाने के लिए समर्थ हूँ। उस विप्र के द्वारा इस रीति से कही हुई गिरिजा ने अपनी सखी को उसको उत्तर देने के लिए कटाक्ष के द्वारा नियोजित कर दिया था। विजया सखी, उस समय उसके वचन से गिरिजा के मुख को देखती हुई यथातथ्य से बोली। हे द्विजोत्तम! यह इसी गिरिजा की पुत्री है और यह पार्वती नाम से प्रख्यात है और काली के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह किसी भी द्वारा कही नहीं गयी है। वह वृषभध्वज शंकर को अपना दयित पति चाहती

हुई तीव्र तप का समाचरण कर रही है। तीन सहस्त्र वर्ष हुए यह भामिनी तपस्या कर रही हैं किन्तु भगवान् शंकर इस गिरिजा की पुत्री को प्राप्त नहीं हो रहे हैं।

भगवान् शंकर सर्वत्र गमन करने वाले परमेश्वर देवों, मुनिगणों और तपस्वियों के द्वारा कहे जाया करते हैं। क्या वे इसको नहीं जानते हैं। क्या वे पर्वत के शिखर पर विराजमान नहीं है? यह आज इसी चिन्ता में दुःखित हैं और इसको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। हे सुव्रत! आप भगवान् शंकर से इसका संगम कर दीजिए। उस द्विज ब्रह्मचारी ने उस समय उसके इस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए उस पार्वती को यह वचन बोला था। ब्राह्मण ने कहा–मैं अमोघ दर्शन वाला हूँ और मैं भगवान् हर को लाने के लिए भी समर्थ हूँ। किन्तु मैं आज एक बात कहता हूँ–मेरे निश्चित मत का श्रवण करिए। मैं महादेवजी का जानता हूँ, मैं उनको बोल भी दूँगा किन्तु मुझ से सुन लो, वृषभध्वज महादेव विभूति के वेष वाले हैं और जटाधारी हैं। वे बाघम्बार के वस्त्र धारण करने वाले, एकाकी और मृग के चर्म से ढके हुए रहते हैं। वे कपालों को धारण करते हैं तथा सर्पों के समुदायों से वेष्टित रहा करते हैं।

उन शम्भु का गला विष से दग्ध हो रहा है उनके तीन नेत्र हैं–वे विरुपाक्ष हैं और विभीक्षण हैं अर्थात् विशेष रूप से भयंकर हैं। उनका जन्म भी अव्यक्त है अर्थात् उनके जन्म से विषय में कुछ भी किसी को ज्ञान नहीं है वे निरन्तर गृहस्थाश्रम के भोग से रहित हैं। शंकर ज्ञानिजन तथा बन्धुजनों से हीन हैं और भक्ष्य भोज्य से भी वर्जित हैं। शम्भु निरन्तर श्मशान में निवास करने वाले हैं और संग से परिवर्जित रहा करते हैं। गर्जन करने वाले, विकृत स्वरूपधारी और तीक्ष्ण भूत गणों से सदा घिरे हुए रहा करते हैं। शंकर शृंगार रस से रहित हैं तथा उनके न कोई भार्या है और न पुत्रादि ही हैं। किस कारण से आप उनको अपना भर्ता बनाना चाहती हैं। मैंने पूर्व में होने वाला भी उनका एक दूसरा कृत्य सुना है। आप उसका श्रवण करिये मैं आज आपको

बतलाता हूँ। यदि आपको अच्छे लगे तो ग्रहण कीजिए। प्रजापति दक्ष की पुत्री सती परम साध्वी थी उसने पहले वृषभध्वज को अपना पति वरण किया था। यह भाग्य की ही बात थी वह पति सम्भोग से रहित थे। यह कपाली की जाया है इसी से वह सती दक्ष के द्वारा परिवर्जित कर दी गई थी। यज्ञ में भाग लेने के लिए शम्भु को भी वर्जित कर दिया गया था। उसी अपमान के होने से सती अत्यधिक शोक से आकुल हो गई थी।

उस सती ने अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग कर दिया था, भगवान् शंकर भी त्याग कर दिए गये थे। आप तो स्त्रियों में रत्न के ही समान अत्युत्तम हैं। अपका पिता हिमवान् सभी पर्वतों का राजा है। फिर किस कारण से उस प्रकार के पति के प्राप्त करने की इस उम्र में तप के द्वारा इच्छा कर रही हैं? देवों का स्वामी, धनेश, पवन, वरुण, अग्नि अथवा कोई अन्य देव अथवा सब वैद्य अश्विनीकुमार, विद्याधर, गन्धर्व, नाग अथवा मानुष जो भी रूप और यौवन से सुसम्पन्न आपका पति होने योग्य है। जिसके द्वारा आप बहुत रत्नों के समूह से पूरित बहुमूल्य माल्य प्रवरों से संयुत धूप के चूर्णों से सुवासित, कोमल आस्तारण से समन्वित, सुमनोहर, सुविस्मृत, सुरम्य प्रासाद के मध्य में स्थित सुवर्ण के द्वारा विशेष रूप से चित्रित शय्या के बल में समासादन करके संस्थित रहने वाला ही आपका योग्य पति होगा। हे सुभगे! इस भाँति ज्ञान प्राप्त करके भी यदि आप शंकर को ही अपना बनाना चाहती है तो फिर आपको इन तपस्याओं से क्या प्रयोजन है मैं अपने आप ही उनके साथ योजित किये देता हूँ।

यह सुनकर काली क्रोधित हुई। इस ब्राह्मण को उसने उत्तर के रूप में बहुत ही अल्प और तथ्य कहा था। काली ने कहा—तुम देवेश्वर हर को नहीं जानते ही बल्कि व्यर्थ ही आपने कह डाला है। जिन प्रभु के भाव को इन्द्रादि और ब्रह्मा प्रभृति सुर भी नहीं जानते हैं। उनके भाव को तुम शिशु होते हुए, हे विप्रसुत! क्या जान सकोगे। आपने जो भी नीचों के मुख से भाषित सुना है वह बहुत तुच्छ हैं।

आप इधर-उधर से सुनकर ही ऐसा भाषण कर रहे हैं। आपने उनका कभी भी दर्शन नहीं किया है। इस कारण से मैं आपसे वरदान नहीं चाहती हूँ और न पति के विषय में जानना चाहती हूँ। गिरिजा ने उन विप्र को इतना ही कहकर अपनी सखी का मुख देखकर उस अवसर पर संशय में समारूढ़ होकर यह कहा था। इसलिए मैं इस समय स्तुति वाक्य के द्वारा उसका प्रायश्चित् करूँगी। जो भी कोई महान् आत्मा वालों की निन्दा का श्रवण करता है अथवा बुराई किया करता है उन दोनों का अपराध समान ही होता है, ऐसा मैंने अपने पिताजी के मुख से पूर्व में श्रवण किया है। इसी कारण से में इसको दूर करूँगी सो विप्र को निषेध कर दो अर्थात् रोक दो। उस काली ने यह सखी से कहकर अपराध के सम्मार्जन करने के लिए भगवान् शम्भु का स्तवन करना आरम्भ कर दिया।

काली ने कहा—शान्त और कारणत्रय के हेतु अर्थात् सृष्टि स्थित और संहार इन तीनों के कारण स्वरूप शिव के लिए नमस्कार है। हे परमेश्वर! मैं अपने आपको निवेदन करती हूँ और आप ही मेरी गति हैं। विज्ञान, सौभाग्य और सुहृत में गत, प्रपञ्च से रहित हिरण्यबाहु, नारायण के नाभि पद्म से समुत्पन्न प्रधान बीज, जगत् के हितरूप आपके लिए नमस्कार।

इस भाँति स्तवन करती हुई उसको यह द्विज पुनः उस समय कुछ कथन करने के लिए उद्यत होने वाला है यह समीक्षण करके काली को यत्न कर दिया था और गिरिराज की पुत्री ने समझ करके सखी से कहा था। यह द्विज कुछ कहना चाहता है और उग्र हर को नहीं जानता। अतएव यह उनकी निन्दा कर रहा है। किन्तु मैं प्राणों के हरण करने वाली शिव की निन्दा सुनने में समर्थ नहीं हूँ।

हे सखी! इस समय जब तक इसके वचनों का श्रवण नहीं करूँ तब तक मैं दूर देश को गमन करती हूँ। हे मत्प्रिये! वहाँ पर दूर देश में समुपस्थित रहूँ। इतना कहकर वह काली हिमवान् की पुत्री उसी सखी के सहित प्रस्थान कर गई थी और द्विज को हठात् छोड़कर

उठकर चली गयी थी। इसके अनन्तर निज रूप प्रकट होकर शंकर ने रूदन करती हुई हिमवान् की सुता के पीछे गमन किया था। शिव ने कहा—मैं ही महादेव हूँ और हर हूँ! क्या अब आप मेरा स्तवन नहीं करती है।

हे काली! हे शांकरि!! मेरे सम्मुख होकर मुझे समाश्वासित करो। इतना कहकर वे महादेव काली के आगे गमन कर उपस्थित हो गये थे। उन्होंने दोनों हाथों को फैलाकर उस काली की गति का अवरोध किया था। वह गिरिराज की बेटी शम्भु के मुख को देख कर उसी क्षण बरबस नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी जिस तरह से वायु से चकित तडित हो जाया करती है। प्रीति की लज्जा से मन्द नेत्रों वाली होते हुए उस समय में वह जड़ की ही भाँति हो गयी थी वह भामिनी बोलने की इच्छा वाली होती हुई भी बोलने में समर्थ न हो सकी थी।

हे द्विजोत्तमो! मनोरथों की सिद्धि को जानने से उनका शरीर सुधा से पूरित के समान हो गया था और आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था। नौ सहस्त्र वर्ष तक उस काली ने तपश्चर्या का क्लेश प्राप्त किया था। किन्तु उसी क्षण में उस सम्पूर्ण क्लेश का त्याग करके वह आनन्द से हर्षित हो गई थी। उस प्रकार से अवस्थित उसको प्रणय वाली देखकर वृषभध्वज भस्मीभूत कामदेव के द्वारा जो कि गात्र में विद्यमान था, मोहित हो गये थे। इसके अनन्तर विरह से उद्रिक होकर वृषभध्वज साथ में आकर सम्बोधन करते हुए आनन्द से यह चाटु वचन कहने लगे थे। हे सुन्दरी! क्या मुझसे कुछ भी कहना नहीं चाहती हैं? तप के क्लेश का स्मरण करती हुई क्या इस समय में मुझ पर कुपित हो रही हैं। हे सुभगे! तुम्हारे बिना मैं परितप्त हो रहा हूँ। मेरे समय से जो आपने तप श्चर्या करने का सामारम्भ किया था। हे प्रिये! मैं अनुराग से युक्त हूँ। मैं संस्कार करके तुम्हारे साथ होऊँगा। मैंने जो प्राण किया था, व्यतीत हो गया।

आप भी तप के लिए समुद्यत हुई थीं और उस तप से ही आप भली भाँति संस्कृत हो गई हैं। आपने भली-भाँति चिन्तन किया, तीव्र

जप किया और सदा तप किया था। आपने यह सब करके बड़ी भारी कीमत के द्वारा मुझे खरीद लिया है। अब मैं आपका दास गया हूँ मुझे नियोजित कीजिए। आप अपने अंग-संस्कार करके जटाओं के प्रसाधन में मेरा नियोजन करें। शरीर से वल्कल को हटाकर सुन्दर वस्त्रों का निवेशन करने में, हार नूपूर और काञ्ची आदि के परिधान करने में, हे शुभे! शीघ्र ही नियोजित करिए। मैंने जो कामदेव को दग्ध कर दिया था वह भस्म रूप से मेरे शरीर में स्थित है। मेरा प्रतिकार करके ही मुझे तुम्हारे ही सामने दग्ध कर देना चाहता है। हे मनोवर! अपने अंग के अमृत के दान के द्वारा उस कामग्नि से मेरा उद्धार करिये। हे दरिते! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।

काली-हर समागम वर्णन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भगवान् शम्भु ने वचन का श्रवण कर गिरिजा अत्यन्त हर्षित हो गई थी और उसने उस समय में शम्भु को अपना प्राप्त हुआ पति मान लिया था। काली ने सखी के मुख से भगवान् शंकर से कहा था। जिस रीति से शम्भु सुनने की इच्छा करते हुए वाक्य का श्रवण कर रहे हैं। यहाँ पर सन्धि में अति भेद से सज्जक प्रवृत नहीं होते हैं। शंकर हर मर्यादा से मेरे उस पाणि का ग्रहण करें। कन्या पिता के द्वारा दत्त हुआ करती है तप से दत्त (दी हुई) नहीं होती है। इससे हिमवान् पिता की भली भाँति प्रार्थना करके भगवान् हर वैवाहिक विधि से ही मेरे पाणि का ग्रहण करें। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अन्तर काली लज्जा से समन्वित होती हुई विराम को प्राप्त हो गई थी। उस अवसर पर भगवान् शम्भु ने भी उसके वचन को सर्वथा सत्य और तथ्य एवं उचित ही ग्रहण किया था। इसके उपरान्त भगवान् शम्भु अपने गणों के सहित ही वहाँ निवास करने लगे थे। जिस प्रकार से पहले रहते थे उसी भाँति इस समय भी उस गंगावतरण शिखर पर रहते थे। वह काली अपनी सखियों के साथ घिरी हुई अपने पिता के घर में चली गयी। वह सती दीन होती हुई

गुरुजनों के मुख का अवलोकन नहीं कर रही हैं। इसी बीच सात ऋषियों का मरीचि जिनमें प्रधान थे उन मुनियों का चन्द्रशेखर प्रभु ने उस समय काली का प्रार्थना करने के लिए चिन्तन किया था। उसी क्षण में कामदेव के अरि शम्भु के द्वारा चिन्तन किये हुए मुनिगण किसी के द्वारा आकृष्ट हुए की ही भाँति उनके समीप में समागत हो गये थे। भगवान् शम्भु ने मुनियों को दीपित सात अग्नियों के ही समान देखा था और वसिष्ठ मुनि ने समीप में सती अरुन्धती को भी देखा था। शिव ने मुनियों द्वारा भी न वर्जित किया हुआ योषित् का ग्रहण करना धर्म मान लिया था। फिर उन समस्त मुनियों ने वृषभध्वज की पूजा करके स्मरण से समाकर्षित हुए प्रहर्ष से यह उन्होंने प्रिय बोला था।

ऋषियों ने कहा–जो प्रत्यक्ष शुद्ध रूप दिखाई देता है वह चन्द्र से प्रसिद्ध और चन्द्र के खण्ड से उपशोभित है। अन्तर में प्रज्ञ मुनियों का वह भावित स्वरूप है। युक्तों के द्वारा भाग्य के उदय होने से भाग्य देखा गया है। प्रज्ञा के अधीन, ध्यान, तन्त्र, नित्य ध्यान करने के योग्य, नित्य और स्वप्रकाश है अर्थात् अपने ही से प्रकाश वाला है। वाह्य तत्त्व से निरन्तर पुञ्जीभूत और समुचित प्राप्त करने के योग्य भगवान् शम्भु का उदार धाम है। नेत्र के सहित जिसके अग्रभाग को देख कर ही सूर्य के समान दर्शन ही परित्राण के लिए होता है। यह स्थान शर्व का नित्यधाम है। स्तुति करने के योग्य शम्भु के उस देह को भक्ति से नमस्कार है। जो प्रथम आदि भाग से प्रकाश करता है, जो वाम भाग स्थित है वह यहाँ पर ही नेता हैं, भगवान् हर के ललाट में विशेष रूप से शक्ति धारण किये हुए वह हमारी अपनी सिद्धि के लिए प्रथम होवे। जो प्रधान के स्वरूप वाला सत्त्व, रज और तम से समन्वित है वह पुरुष समस्त जगतों का हर हमारे ऊपर प्रसन्न होवे। इस प्रकार से मुनिगण ने विनय से अवनत होते हुए देवों की भली-भाँति स्तुति करके कहा कि आपने किस प्रयोजन के लिए हम लोगों का स्मरण किया है उसे आप बताइये। उस मुनियों के उस वचन का श्रवण करके भगवान् शंकर ने हास करते हुए उन मुनियों से सबको पृथक्-पृथक् सम्भाषण करके कहा था।

ईश्वर ने कहा–समस्त जगतों की भलाई के लिए तथा अपने आपको सम्भोग करने के लिए एवं सन्तान की वृद्धि के हेतु मैं दाराओं के ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ। इस समय में आप लोग मेरी सहायता कीजिए और मेरे लिए आप लोग तुहिनाचल से काली की याचना करिए। काली महान् तप के द्वारा शीघ्र ही मुझ को अपना पति प्राप्त करे, किन्तु मैं उसको विधिपूर्वक ही ग्रहण करूँगा। इस कारण से उस गिरिराज से याचना करें। जिस तरह से शैलराज स्वयं काली को प्रदान करने का उत्साह करें। वैसे–वैसे आप करिए क्योंकि आप लोग तो वाणी के वैभव से समन्वित हैं अर्थात् बोलने में बहुत ही कुशल हैं।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–मुनि गण ने भगवान् हर का सम्बोधन किया फिर गिरिराज के गृह को चले गये थे। गिरिराज ने उनका अभ्यर्चन किया था फिर मुनियों ने गिरिराज से कहा कि जो मस्तक में चन्द्र धारण करने वाले देव हैं और जो देवों के भी देव माने गये हैं। जो शाप देने तथा अनुग्रह करने में समर्थ हैं। जो एक ही जगतों के स्वामी हैं। जो समस्त जगतों का प्रलय काल आने पर संहार किया करते हैं, जो भक्त को विभूति (वैभव) के प्रदान करने वाले और अनेक स्वरूपों के धारण करने वाले परम सुन्दर हैं। वे ही शंकर आपकी पुत्री को अपनी भार्या के रूप में ग्रहण करने की इच्छा कर रहे हैं। यदि आप उनको अपनी पुत्री के समान सुयोग्य वर देखते हो तो हे गिरवर! उन शम्भु के लिए अपनी पुत्री को दे दो। उनके द्वारा इस भाँति कहे हुए अचलराज अपने हृदय में स्थित दुहिता के प्रिय को चिरकाल पर्यन्त समझकर और सद्वचन से आनन्द प्राप्त करके फिर प्रकाश में यह कहा–हे मुनियो! में शार्दूल के ही समान अर्थात् परमाधिक श्रेष्ठ आप लोगों ने पधारकर ही मुझे पवित्र कर दिया है और आपने मेरा भी अभिप्राय परिपूर्ण कर दिया। आप लोगों ने जब मुझे आदेश दिया है तो मैं अपनी पुत्री को भगवान् शम्भु के लिए अवश्य ही समर्पित कर दूँगा। इसने पूर्व तपस्या का समाचरण करके

उसके द्वारा ईश्वर को अपना पति चाहा था। यह तो विधाता का ही नियोजन है। इसको अन्यथा करने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् इसके विरुद्ध करने की शक्ति किसी में भी नहीं। बिना शम्भु के अन्य कौन है जो मेरी पुत्री की प्रार्थना करने में समर्थ हो। जिसको हर ने ग्रहण कर लिया है उसका ग्रहण करने का अन्य कौन उत्साह करेगा। और वह काली भी अपने मन से मन्त्र को ग्रहण कर अन्य किसी की इच्छा ही नहीं कर रही हैं।

इतना कहकर मेनका के साथ शम्भु के लिए अपनी पुत्री को देने के लिए अंगीकार करके उनको विदा किया गया था और फिर वे महेश्वर के समीप में पहुँचे। उस सब मुनियों ने जिनमें मरीचि प्रधान थे, हे द्विजो! वहाँ से गमन किया था।

जो कुछ भी शैलराज ने कहा था उन्होंने भगवान् शंकर से कह दिया था। हे हर! शैलराज तो अपनी कन्या को आपके लिए प्रदान करने को समुत्साहित हो रहा है। इस समय जो कुछ आप करना समुचित समझते हैं, वही आपको करना चाहिए। हे हर! अब हम लोगों को अपने आश्रम गमन करने की आज्ञा दीजिए। भगवान् हर ने साधन करने के योग्य कार्य सिद्धि समझ करके उन सब मुनियों को विदाई दे दी थी। एक-एक मुनि यथोचित रूप से सम्भाषण करके ही क्रम से विदा किया था। काली के साथ जब विवाह हो उस अवसर पर आप मेरे समीप में आइये। इस प्रकार से भगवान् हर के कहे हुए वचन की प्रतीक्षा करके ऋषिगण वहाँ से अपने आश्रमों को चले गये थे।

माघ मास में-शुक्ल पक्ष में पञ्चमी तिथि और गुरुवार के दिन में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में भरणी आदि में रवि के स्थित होने पर वहाँ पर मुनिगण जिनमें मरीचि प्रधान थे वहाँ पर समागत हुए और ब्रह्मा आदि देवगण भी आ गये थे। उसी भाँति सब दिक्पाल मुनिगण शक्ति के सहित इन्द्र देव, ब्रह्माणी आदि मातायें, ब्रह्माणी के पुत्र देवर्षि नारदजी भी वहाँ पर गये थे। इन परिचरों के साथ आप अपने गणों के द्वारा आप्यायित भगवान् शम्भु ने विवाह सम्बन्धी विधि के साथ गिरिवर की

पुत्री को ग्रहण किया था। गिरिजा और शम्भु के विवाह में जो आठ सर्प शम्भु के शरीर में स्थित थे वे उस समय में सुवर्ण से सन्नद्ध अलंकार हो गए थे। महादेव दो भुजाओं वाले हो गये थे और जटायें सुन्दर केशों के स्वरूप में ही हो गयीं थीं। शम्भु के शिर में संस्थित चन्द्रमा का खण्ड जो था वह भी किरणों से प्रज्वलित हो गया था। हे द्विजो! उस अवसर पर व्याघ्र का जो चर्म था वह भी विचित्र वस्त्र के रूप वाला हो गया था। इनका जो भस्म का विलेपन था वह उस समय में परम सुगन्धित मलय चन्दन हो गया था। उस समय में भगवान् शम्भु सुन्दर स्वरूप से समन्वित होकर अद्भुत दर्शन वाले बन गये थे। इसके अनन्तर समस्त देवगण, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और गण सभी आश्चर्य से संयुत हो गये थे।

ते सभी लोग भगवान् शम्भु को उस प्रकार के स्वरूप वाले हुए देखकर बहुत ही आश्चर्य में पड़े गये थे। हिमवान् भी अपने पुत्रों के सहित और अपनी पत्नी मेनका के साथ बहुत ही प्रसन्न हुए थे। सब हर का दर्शन करके जो कि बहुत ही मनोहर थे, यही कहने लगे थे कि वह तो साक्षात् ब्रह्माजी ही हैं। क्योंकि सब ही वेश शिव अर्थात् कल्याण करने वाला मंगलमय है इसी कारण से यह लोकों में यह अधिक शिव है इसलिए 'शिव' इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। जो पुरुष महेश्वर को उमा से युक्त इस प्रकार वाले का हृदय से स्मरण किया करता है उसका निरन्तर ही कल्याण होता है और जो भी कुछ मनोवांछित होता है वह भी हो जाता है। इसी प्रकार से महामाया योगनिद्रा जगत् को प्रसूत करने वाली काली पूर्व में दाक्षायणी अर्थात् दक्ष प्रजापति की पुत्री होकर पीछे गिरिजा हिमवान् की सुता हुई थी। काली स्वयं हर के सम्मोहित करने में समर्थ होती हुई भी उसने तथापि जगतों के लिए शिव ने उग्र तपश्चर्या का समाचरण किया था। इसी रीति से कालिका ने चन्द्रशेखर प्रभु को सम्मोहित किया था।

हे द्विजो! जो कोई इस परम पुण्यमय कालिका देवी के चरित्र का कीर्तन करता है और उसको आधियाँ (मानसिक चिन्ताएं) और

व्याधियाँ नहीं होती हैं और वह दीर्घायु हो जाता है । यह परम पवित्र है और कल्याण करने वाला है। इसका एक बार भी श्रवण करके मनुष्य शिवलोक का गमन किया करता है। जो श्राद्ध में आमन्त्रित विप्रों को इस महत् कालिका चरित्र का श्रवण कराता है उनके पितृगण कैवल्य को प्राप्त किया करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। आप लोगों के सामने यह परम पुण्यमय और समस्त पापों का विनाशक कह दिया है। हे सत्तमो! अब आप लोगों को जो भी रुचता हो, जो भी कुछ अन्य हो उसका श्रवण करिए।

गौरी-शिव विहार वर्णन

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन्! यह काली और हर का समागम अतीव विचित्र आपने वर्णन किया है जो यह परम पुण्यमय, पापों का हरण करने वाला, नित्य और श्रेष्ठ तथा श्रवण करने में सुख प्रदान करने वाला है। अब आप पुनः शिव का उत्तम तनु का अर्धभाग काली अथवा गौरी ने कैसे हरण किया था। वह कालिका किस प्रकार की है। हे मुनियों में श्रेष्ठ! हे द्विजो में उत्तम! किस कारण से शीघ्र ही काली गौरीत्व को प्राप्त हो गई। हमको यह तात्विक रूप से कहिए। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस महान् आख्यान को इस समय में आपके समाने कहूँगा। हे महर्षि गणों! इस परम शुभ देने वाले का आप लोग सब श्रवण कीजिए। यही बात पहले समय में राजा सगर ने और्व मुनि से पूछी थी। उन्होंने जिस प्रकार से कहा था वही मैं आप लोगों को बतलाता हूँ। प्राचीन समय में सोमवंश में एक सगर राजा हुआ। वह बलशाली, श्रीमान्, दक्ष और शास्त्रों के अर्थों का पारगामी विद्वान् था। वह राजा अपने एक ही रथ के द्वारा समस्त नृपों को जीतकर चक्रवर्ती हो गया था।

उस राजा सगर को अभिनन्दित करने के लिए मुनिगण समागत हुए थे। पूर्व दिशा, उत्तर, दक्षिण तथा पश्चिम के मुनिगण और ब्राह्मण नृप के दर्शन करने के लिए समागत हुए थे। सबके समागत

होने पर अग्नि के समान आत्मा वाले श्रीमान् और्व मुनि नृप का अभिनन्दन करने के लिए आये थे। उन मुनिवर का दर्शन करके जो जलती हुई अग्नि के सदृश थे, राजा सगर ने उनका अभ्यर्च्चन किया था। अर्घ्यपूर्वक पाद्य और आचमनीय देकर उन मुनिश्रेष्ठ को राजा ने श्रेष्ठ आसन पर निवेशित किया था। फिर उस सागर राजा ने महात्मा और्व से समुचित रीति से प्रणाम करके पूछा था कि आपका कुशल तो हैं। और मुनि श्रेष्ठ ने कहा था कि हे नरराज, मेरा सदा ही सर्वत्र कुशल है। मैं आपका दर्शन करने के लिए कुशलता के साथ उत्साह कराता हूँ।

आप समस्त राजाओं में कुशली हैं जिस एक ने ही आने पर बहुत शीघ्र ही समस्त राजाओं को जीत लिया था। हे राज नरोत्तम! आपका कुशल नित्य ही बढ़े। हे भूपते! नीति के अनुसार सद् आचरणों के द्वारा पृथिवी का शासन करिये। आपके समृद्ध होने पर जगत् की वृद्धि है अतएव उसी भाँति आप वृद्धि के लिए ही चेष्टा करिये जैसे चन्द्र की वृद्धि हुआ करती है। हे नृप! सबसे प्रथम सद्गुणों से समन्वित अपनी आत्मा को योजित करिये। इसके उपरान्त उसके गुणों से समन्वित भार्या को महिषी बनाइये। यदि वनिता को नित्य ही संयोजित किया जावे तो वह स्वयं ही अपने गुणों के विषय में प्रवेक्षण करने वाली होती हुई महती और व्रतधारण करने वाली हो जाती है। ऐसा सुना जाता है कि शम्भु में संगम सम वाली होती हुई हिमवान् की पुत्री बहुत सी क्रिया और अभ्युपायों के द्वारा शम्भु के द्वारा प्रायोजित कही गई थी। इसके अनन्तर शम्भु के अत्यधिक प्रेम से सती पार्वती ने उनकी ही अनुमति से उनके आधे शरीर का हरण कर लिया था। तभी से भगवान् शंकर अर्धनारी श्वर हो गये थे। हे नृप शार्दूल! उन्होंने फिर अन्य भार्या का ग्रहण नहीं किया था। इस कारण से, हे राजेन्द्र! आप भी अपनी जाया को उत्तर आत्मा से गुणों के द्वारा संयोजित कीजिये उसके उपरान्त लघु सुत को संयोजित करें।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर भी इस और्व के द्वारा भाषित

का श्रवण करके हर्ष से समन्वित हो गया और मन्द मुस्कान से संयुत होकर उसने मुनि से यह पूछा—उस सती गिरिजा देवी ने शंकर भगवान् के शरीर का आधा भाग कैसे हरण किया था ? हे द्विजश्रेष्ठो! उसे ही मैं श्रवण करना चाहता हूँ । जिस नीति से अपनी आत्मा का अर्थात् अपने आपका भार्या का अथवा सुत का योजन करना चाहिए उस नीति का और सदाचार संहिता का भी मैं श्रवण करना चाहता हूँ। हे द्विज, राजनीति, सत्पुरुषों की नीति और अन्य कृतात्माओं की नीति का मैं पृथक्-पृथक् श्रवण करने की इच्छा वाला हूँ। मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ। हे ब्रह्मन! यदि यह परम गोपनीय हो तो भी मैं सुनना चाहता हूँ। मैं उस भाँति से आपको कोई आज्ञा नहीं दे रहा हूँ और उसके ही समान मैं श्रवण करने का इच्छुक हूँ। कृपा करके आपको मुझे बतलाना चाहिए यदि वह बतलाने के योग्य हो तो हे मुनिवर! आप कहिए ।

द्विजो में परम श्रेष्ठ और्व ने भी उस राजा पर कृपालु होते हुए उस महान् आत्मा वाले के प्रति कहा। और्व ने कहा—हे राजन् आप श्रवण कीजिए। आपने यहाँ पर जो-जो भी पूछा है उसे मैं आप को बतलाऊँगा। पहले पुराने समय में हिमवान् की पुत्री ने जिस रीति से भगवान् हर के शरीर का आधा भाग का हरण किया था। हे नृपोत्तम! जहाँ पर आपको जैसी नीति करना चाहिए उसे और सबका सदाचार जो भी होना चाहिए इसे क्रम से ही मैं बतलाऊँगा यह आप श्रवण कीजिए। जिस समय में महात्मा शंकर ने हिमवान् की पुत्री के साथ विवाह किया था। वह उस समय कितने काल पर्यन्त वहाँ पर उमा के साथ रहे थे अर्थात् कितना समय व्यतीत किया था। शिखर पर कुन्ज में और पर्वत की दरियों में उसके साथ रमण करते हुए भगवान् हर ने पार्वती को प्रसन्न करते हुए वहाँ पर चिरकाल तक विहार किया था। काल के समाप्त होने पर भगवान् शम्भु अपने गणों के सहित और अपनी भार्या के साथ स्वर्ग के समान कैलास पर्वत पर चले गये थे। उमा के साथ क्रीड़ा करते हुए ध्यान और आत्मा का चिन्तन त्याग दिया

था और उमा के मुखचन्द्र पर ही अपने नेत्रों को चकोर के ही भाँति बना लिया था अर्थात् वे सर्वदा उसके ही मुख का अवलोकन किया करते थे।

किसी समय गिरिजा के लिए पुष्पों का समाहरण करके भगवान् शंकर अत्यन्त सुन्दर माला बनाया करते थे जो कि उसके सर्व अंगों में नीचे तक लटकने वाली होवे। किसी समय दर्पण में एक हीं साथ अपना मुख और उमा देवी का मुख वृषभध्वज देखा करते थे। किसी अवसर पर कस्तूरिकाओं के द्वारा गन्धपत्रकों के विलेपनों से दोनों स्तनों पर भगवान् शंकर विलेपन किया करते थे। भगवान् शम्भु अम्बिका के शरीर पर गन्धसार का विलेपन करते थे और ललाट पर लगाकर उसे सुन्दर किया करते थे। चन्द्र के सामन घनी सन्धियों वाले उमा देवी के निर्मांश से संसक्त केशपाशों में चित्रक लिखा करते थे। चन्दन, अगरु (गूगल), कस्तूरी और कुंकुम के विलोपनों के द्वारा विचित्र कर दिया करते थे। जिससे उन देवी का केशपाश विशेष रूप से शोभायमान हो जाता था। जो केशपाश नृत्य करने के लिए अवतीर्ण मयूर के पुच्छ की समता का धारण करने वाला हो जाया करता था। वृषभ ध्वज सुवर्ण से परिपूर्ण मनोहर कुण्डल आदि अलंकारों को उमादेवी के देह में समाकर्षित किया करते थे। उन सुवर्ण से विनितयोजित अलंकारों से गिरिजा देवी का शरीर जलदों से आपूर्ण तड़ित गणों से कालिका की ही भाँति शोभित हो रहा था। सम्पूर्ण दिव्य अलंकारों, अनेक प्रकार के रत्नों तथा सुन्दर वस्त्रों से पूर्ण रूप से मण्डित हुई काली ने प्रकृति देवी की सदृश्यता को धारण किया था।

इस प्रकार से जगत् के पति भगवान् शम्भु सर्वदा उस काली में अनुराग से युक्त हो गये। उन्होंने जगत् के हित के लिए काली के साथ क्रीड़ा की थी। जगतों की माता, महामाया, जगन्माया काली, योगनिद्रा, जगत् की बुद्धि विद्या और अखिलविद्या के स्वरूप वाली थी। वह परमाभूति-प्रकृति और सर्ग-स्थिति और संहार के करने वाली थी। वह जगतों की हित की इच्छा करने वाली इसी कारण के भगवान् शंकर

का सम्मोहन करके सुधांशु के साथ चन्द्रिका की भाँति उनके साथ उस देवी ने रमण किया था।

वेताल भैरव उत्पत्ति

औंर्व मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वे काल क्रम से ही महान् बल वाले प्रवृद्ध हो गये थे। वे शस्त्रों और अस्त्रों के ज्ञान में कुशल थे और शास्त्रों के अर्थों में परिनिष्ठित थे। वे यौवन के सम्प्राप्त करने वाले थे तथा परम दीप्त एवं परिपन्थियों के द्वारा दुर्धर्ष थे अर्थात् शत्रुगण उनके तेज को सहन नहीं कर सकते थे। वे धर्म और अर्थ के ज्ञान में परम प्रवीण थे तथा ब्रह्मण्य एवं सत्यवादी थे। वहाँ पर प्रीति से वेताल और भैरव सर्वदा सहचर थे। अलर्क, दमन और उपरिचर ये तीन थे। चन्द्रशेखर भाई सदा नित्य साथ में चरण करने वाले थे। राजा के तीन पुत्रों में जो उपचार प्रभृति थे उनमें अधिक ममत्व उसका था। किन्तु दो नित्य अधिक प्रीति और स्नेह वाले थे। चन्द्रशेखर नृप की वेताल और भैरव में भी वैसी प्रीति नहीं थी जैसी उनमें होती थी। वह चन्द्रशेखर नृप उन दोनों को देखकर कभी भी निरन्तर आह्लादित नहीं होता था अथवा पुत्र की बुद्धि से चाहता भी नहीं था। वे दोनों वीर धर्म में कुशल थे और महान् बल तथा पराक्रम से समन्वित थे। वे दोनों लोकों के विजय करने में दक्ष थे तथा शास्त्रों एवं अस्त्रों की विद्या में पारगामी थे।

नृप उन दोनों से डरा करता था कि ये दोनों वेताल और भैरव किस समय में मुझे—सुतों को अथवा राज्य को नष्ट कर देंगे। इसी चिन्ता में राजा नित्य ही वेताल और भैरव इन दोनों पुत्रों को भली भाँति प्रणत भी देखा करता था। इसके अनन्तर राजा ने उपरिचर को युवराज्य पद पर अभिषेक कर दिया था। वह सबसे बड़ा और समस्त राजाओं के गुणों से संयुत औरस पुत्र था। जो पीछे नीतियों के द्वारा समस्त राजाओं को योजित करेगा। उपरिचर नाम वाला समस्त शास्त्रों के अर्थों में पारंगत था। राजा ने दमन के लिए तथा अलर्क के लिए

दान दिया जिसमें बहुत धन रत्न थे तथा अधिक आसन और रथ थे। भाग के द्वारा उतना धन, रत्न आदि दास व वित्त उन दोनों के लिए नहीं दिए थे जो कि भैरव के लिए थे। इसके अनन्तर उन दोनों में क्रोध ने प्रवेश कर लिया था वे दोनों की क्रोध से अभिभूत हो गये और दोनों इधर-उधर विचरण करने लग गये। उन दोनों वीरों ने भोगों से उपभोग करने की इच्छा ही नहीं की और तपश्चर्या का समाचरण करने के लिए उद्यत हो गये। उन दोनों ने किसी भार्या से विवाह नहीं किया था अर्थात् वे दोनों अविवाहित थे तथा निरन्तर सदा ही निर्जन वन में वास किया करते थे।

उस काल में देव वेताल और भैरव पुत्रों को उस प्रकार से रहने वाले हैं, ऐसा ज्ञान था उस समय में देवी तारावती चिन्ता से समाक्रान्त हो गयी थीं अर्थात् उसे बहुत अधिक चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी। वह उपरिचर राजा से और अपने पति चन्द्रशेखर से भयभीत हो गई थी। वह सुन्दरी गुप्त रूप से दोनों का ज्ञान रखती हुई भी कुछ भी नहीं बोली थी। इसी बीच मुनियों में परम श्रेष्ठ और विद्वान कपोत चित्रांगदा के साथ सम्भोग और सुरतौत्सवों के द्वारा परम संतुष्ट होकर उस सहचारिणी एवं पुत्रों से युक्त चित्रांगदा का परित्याग करके उसने वहाँ से गमन करने की इच्छा की थी और उस अवसर पर उसने चित्रांगदा से यह वचन कहा था। मुनि ने कहा–चित्रांगदे! मैं तपस्या का समाचरण करने के लिए अब तपोवन में गमन करूँगा। वहाँ पर मैं तेरा क्या प्रिय कार्य करूँ? हे मनोहर! उसी को मुझे तुम बतला दो। चित्रांगदा ने कहा–हे सुव्रत! तुम्परु और सुवर्चा ये दो आपके पुत्र हैं। मुनिश्रेष्ठ! आप इन दोनों का जो भी उचित हो वह प्रिय करो। हे द्विज श्रेष्ठ! मुझको भी मेरी भागिनि के घर में संस्थापित करके, हे अनघ! आपको यदि रुचता है तो सभी आप तपोवन में गमन करिये।

मुनिश्रेष्ठ कपोत यह उसके वचन का श्रवण करके भली भाँति विचार करके हिरण्य (सुवर्ण) के लिए कुबेर के भवन में गये थे। उसने कुबेर से छः सौ सहस्र सुवर्ण के निष्कों की प्रार्थना की थी और

प्राप्त कर लिया था। सौभार रत्नों को लाकार विप्र ने पुत्रों को दे दिया था और विशेष रूप से भार्या को दिया था। इसके उपरान्त पुत्रों तथा बहुत से धनों के साथ चित्रांगदा तथा पुत्रों के भी मत से सुवर्चा और तुम्बरु तथा चित्रांगदा को भी आमन्त्रित करके वह मुनि शार्दूल करवीरपुर में चला था। वहाँ जाकर वह कपोत राजा चन्द्रशेखर से तथा राजा उपरिचर से यह वाक्य बोला था। हे नृप! यह ककुत्स्थ की पुत्री है और यह पहले आपकी भी जानी हुई है। ये परम शुचि व सद्योजात ये दोनों इसके उदर से समुद्भुत मेरे पुत्र हैं।

इन धनों के साथ आप मेरे दोनों पुत्रों को प्रतिपालन करें। राजोपरिचर भी यहाँ पर मेरे पुत्रों का परिपालन करें। जो पुत्रहीन होती है उसका पुत्र नृप ही होता है और जो धनहीन होता है उसका धन भी नृप ही हुआ करता है बिना माता वाले की जननी नृप हे और तात से रहित का पिता भी नृप ही हुआ करता है। अनाथ का नृप नाथ और बिना भर्ता वाले का पति नृप है। जिससे कोई भृत्य न होवे उसका भृत्य राजा ही है और नृप ही मनुष्यों में देवता है। इसलिए हे नृप! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। और्व ने कहा—इसके अनन्तर उस राजा ने द्विजोत्तम उस मुनि से इस प्रकार से कहा था कि मैं आपका वचन पूर्ण करूँगा और राजोपरिचर भी करेगा। इसके उपरान्त उस राजा ने मुनि की सम्मति से चित्रांगदा को ग्रहण कर लिया था और उसने दे दिया था। उस घरिवार ने सुवर्धा को राज्य का आधा भाग दे दिया था। और उसी भाँति उस अवसर पर तुम्बक को अपने सचिवों का अध्यक्ष बना दिया था। और कपोत भी पुत्र का अर्धभाग देखकर परम प्रसन्न हुआ और राजा का आमन्त्रण करके वह तप के लिए तपोवन को चला गया था।

मार्ग में गमन करते हुए उस कपोत ने अकेले विचरण करते हुए, परम मनोहर और चन्द्र के ही समान भगवान शम्भु के पुत्रों को देखा था और उन दोनों के मुख में बन्दर की सी-आकृति देखी थी। पूर्व में घटित कथा का स्मरण कर और उन दोनों को देखकर उस तपोधन ने उनसे पूछा था—आप दोनों कौन हैं जो कि देवगर्भ समान आभा वाले

हैं और मार्ग में उस बियाबान में एकाकी विचरण कर रहे हैं। हे नर श्रेष्ठों! यह मेरे कथित का आप उत्तर बताइये। इसके अनन्तर उन दोनों ने इनको प्रणिपात किया था और समञ्जस सम्भाषण किया था अर्थात् समुचित बातचीत की थी। उन शंकर के दोनों पुत्रों ने कपोत नाम वाले मुनि श्रेष्ठ से कहा था—हे मुनि शार्दूल! हम दोनों चन्द्रशेखर के पुत्र हैं और तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए हैं। आप हमको जान लीजिए। हम आपके पदों में प्रणाम करते हैं। हम दोनों की राजा से निरन्तर अवज्ञा देखकर क्रोध से संयुक्त होते हुए हम सदा ही अकेले ही निर्जन वनों में भ्रमण करते हैं। सर्वदा प्रणत रहने वाले आत्मज पुत्रों की अवज्ञा करके नृप किसलिए हे महाभाग! दानमात्र को भी देने की इच्छा नहीं करता है।

हे द्विज श्रेष्ठ! इसी कारण से हम दोनों तप का समाचरण करने के लिए इच्छा कर रहे हैं यदि आप उपदेश के द्वारा हमारे ऊपर अनुग्रह करते हैं। इसके अनन्तर उन दोनों के वचन का श्रवण करके मुनि श्रेष्ठ बोले। मुनि ने कहा—आप दोनों उस चन्द्रशेखर भूपति के पुत्र नहीं हैं। आप तो तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए शंकर के ही पुत्र हैं। आप दोनों महावीर्य सद्योजात हैं और वेतालत्व में समस्त हैं। आप भृंगी और महाकाल नाम वाले हैं। शाप के कारण से ही आप दोनों इस धरणीतल में समागत हुए हैं। तुम दोनों को यहाँ पर उसी कारण से वह प्रिय दान नहीं देना चाहता है। आप अपने पिता वृषभध्वज भगवान् शंकर की शरण में गमन कीजिए। वे ही शम्भु तुम दोनों को भी कुछ देंगे। इस उग्रतप से क्या लाभ है जिसका फल बहुत ही लम्बे समय में प्राप्त होता है। परम आत्मा को धारण करने वाले मुनि शार्दूल कपोत इतना कहकर जिनको अतीत वर्तमान और भविष्य का पूर्ण ज्ञान था, उन दोनों से उन सबने कहा था।

जिस प्रकार से भृंगी और महाकाल को शाप प्राप्त हुआ था और वे धरणी पर समागत हुए थे। हे नृप! जैसे भगवान् शम्भु और गौरी पृथिवी पर आगत हुए थे। पहले उस मुनि के द्वारा तारावती को शाप

दिया गया था और पुराने समय में जिस तरह से वे दोनों तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए थे। अथवा जिस प्रकार से नारदजी के द्वारा नृप के संशय का छेदन हुआ था वह सभी कुछ गिरीश के पुत्रों से कह दिया था। उस समय वे दोनों महात्मा वेताल और भैरव यह श्रवण करके परम हर्ष से संयुत हुए थे। उस अवसर पर मोह से पूर्ण होकर सुधा से सिक्त के ही भाँति वे हो गये थे। फिर वेताल और भैरव ने कपोत मुनि से पूछा था। हम दोनों के पिता महादेव हैं—यह आपने सत्य ही कहा है। हे मुनि श्रेष्ठ! वे जिस रीति से हम दोनों के द्वारा आराधना करने योग्य होवें अथवा जिस स्थान पर उनकी आराधना की जावे जिससे हम दोनों को सिद्धि होवे। जिसके द्वारा वे शीघ्र ही प्रसन्नता को प्राप्त होवें। हे महापते! वह ही हमको आप बताने की कृपा करें। हम दोनों परम धन्य हैं कि आपने हम दोनों पर परम अनुग्रह किया है। हे मुनि श्रेष्ठ! आपने यह सब विज्ञापित कर दिया है और हम दोनों के हृदय कृतज्ञ हैं कि आपने हम दोनों पर अनुग्रह किया है। हे मुनि श्रेष्ठ! आपने यह सब विज्ञापित कर दिया है और हम दोनों के हृदय का शल्य आपने उद्धृत कर दिया है। अर्थात् हमारे हृदय का शल्य की ही भाँति जो दुःख था वह दूर कर दिया है। हे मुनीश्वर! आप तो कृपा से परिपूर्ण हैं। पुनः हमारे ऊपर दया कीजिए। जिस रीति से हम शीघ्र ही भर्ग की प्राप्ति कर लेवें उसी भाँति आप हम को बताइए।

मुनि ने कहा—आप सुनिए, मैं आज बताता हूँ कि जहाँ पर आराधना किए हुए भगवान् हर शीघ्र ही आपके समक्ष में समागत हो जायेंगे। जहाँ पर नित्य ही महादेव निवास करते हुए तुष्टि के लिए होते हैं आप दोनों को उस स्थान को बता दूँगा। वह स्थान गोपनीय है। वाराणसी नाम वाली पुरी है जो परम सुन्दर भागीरथी गंगा के तट पर बसी हुई है वहाँ पर वृषभध्वज स्वयं नित्य ही निवास किया करते हैं। वे योगी सदा ही योगियों की प्रीति के करने वाले हैं। वे स्वयं योगी हैं और अध्यात्म चिन्तन करने वाले हैं। वह पुरी आकाश में संस्थित है और नित्य ही भगवान् भर्ग के योग से धारण की हुई है। वहाँ पर

जो भी अपने प्राणों को त्यागकर मृत्यु को प्राप्त करता है तो यह पुरी उसको दिव्य ज्ञान प्रदान किया करती है।

उस पुरुष को महादेव स्वयं ही संसार के आवगमन की ग्रन्थि के बन्धन का छुटकारा पाने के लिए कृपा किया करते हैं। वहाँ पर मृत होकर पुरुष दूसरे जन्म में उत्पन्न होकर परम योगी हो जाता है। भगवान् हर के द्वारा सम्मत होता हुआ वह सुलभ उपाय के द्वारा ही वह पुरुष निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वहाँ योग से युक्त महादेव सदा पार्वती के सहित निवास किया करते हैं। देव, गन्धर्व यक्षों का और मनुष्यों को नित्य ही हर ज्ञेय (जानने के योग्य) और प्रकाश है और वह क्षेत्र प्रकाशित है। वहाँ पर देव कामनाओं का प्रदान करने वाले नहीं है और शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होते हैं। चिरकाल प्रीति से आराधना किए हुए ही निर्वाण के लिए ही प्रसन्न हुआ करते हैं। वह पुरी गौरी के द्वारा विवर्जित है। वह योग का स्थान महाक्षेत्र हैं वहाँ किसी समय में शांकरी देवी गमन नहीं किया करती है। यह वाराणसी है।

कामरूपी पीठ का वर्णन

अत्यन्त तीव्र तप चिरकाल में मोक्ष के प्रदान करने वाला होता है। शीघ्र ही कामनाओं का देने वाला परम पुण्यमय क्षेत्र 'पीठ' कहा जाया करता है। पूर्व में वन्दना करने वालों के द्वारा वह क्षेत्र लोकों में चिरकाल में काम के प्रदान वाले का कहा जाता है। किन्तु जहाँ पर चिरकाल में भी ज्ञान देने वाले देव नहीं हैं। कामरूप महापीठ है जो गुह्य से भी परम गोपनीय है। वहाँ पर देव शंकर पार्वती के सहित सदा ही सन्निहित रहा करते हैं। वहाँ चिरकाल में पूजित हुए देव भी उस पीठ में प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं। वहाँ पर शिव के भक्त पर देवी पार्वती निश्चय ही अनुग्रह किया करती है। परमेश्वर अपने भक्त के लिए शीघ्र ही कामना किया करते हैं उस पीठ के विषय में मैं बताऊँगा। अब आप दोनों श्रवण कीजिए। पूर्व में जहाँ तक दिक्कर

वासिनी हैं वहाँ पर करतोया नदी है। वह तीस योजन विस्तार वाली हैं और एक शतयोजन आयत है। वह त्रिकोण कृष्ण वर्ण से युक्त तथा बहुत से पर्वतों पूरित हैं। सौ नदियों से समायुक्त है और नाम कामरूप कीर्तित किया गया है।

भगवान् शम्भु के नेत्र से भस्मीभूत हुए कामदेव ने भगवान् शम्भु के अनुग्रह से वहाँ पर रूप को प्राप्त किया था इसीलिए तभी से वह कामरूप हो गया था। उसी पीठ के मध्य भाग से वायव्य में, नैर्ऋत्य में, ऐशानी में और आग्नेयी में, मध्य में और पार्श्व में शंकर है। इन छः स्थानों में परम शोभन अपना आश्रम स्थान बना कर वहाँ पर भी पार्वती के साथ सब कार्यों को करते हुए नित्य ही शंकर निवास किया करते हैं। मध्य में देवी का गृह है। वहाँ पर उसी के अधीन शंकर हैं। वहाँ पर नील नामक श्रेष्ठ पर्वत में पार्वती विराजमान रहती हैं। ऐशानी दिशा में त्राटक शैल पर भगवान् शंकर का महान् आश्रम है। वहाँ पर नित्य ही ईश्वर निवास किया करते हैं और उनके अधीन पार्वती रहती हैं। और दूसरे हर तथा गौरी के सनातन आश्रम हैं किन्तु इन दोनों के सदृश कोई भी शंकर का आश्रम नहीं है। हे नर श्रेष्ठो! जहाँ पर आप दोनों के द्वारा महादेव आराधना करने के योग्य हैं उसी स्थान को मन से ग्रहण करके वृषभध्वज को प्रसन्न करिए।

वेताल और भैरव ने कहा–हे मुनिवर! हम कापरूप को गमन करेंगे जो रहस्य पूर्ण नाटक पर्वत है। जहाँ पर गौरी हैं। जहाँ पर नित्य ही सन्निहित हुए संस्थित रहा करते हैं। हम दोनों को वहाँ पर अवश्य ही भगवान् भूतेश्वर की आराधना करनी चाहिए। हे द्विजोत्तम! जहाँ पर आराधना करेंगे उसी भाँति आप बताइए। ऋषि ने कहा–हे नर श्रेष्ठों! पर्वतों में श्रेष्ठ नाटक पर्वत पर आप जाइए। वहाँ पर नित्य ही महादेवजी अपर्णा के साथ रमण किया करते हैं। वहाँ पर सन्ध्याचल पर ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ मुनि भगवान् शंकर की आराधना किया करते हैं आप दोनों ही वहाँ पर चल जाइए और वे ही हर के आराधना के क्रम में तन्त्र के सहित मन्त्र ज्ञापित कर देंगे जबकि आप दोनों वेताल

और भैरव उनसे पूछेंगे। अब मैं तपश्चर्या करने के लिए जाना चाहता हूँ। यह समय ऐसे बिताना युक्त नहीं हैं। इससे हे वीर श्रेष्ठों! मुझको आप छोड़ दीजिए।

इतना कहकर वह मुनिश्रेष्ठ कपोत वन में चला गया था। उन दोनों ने उस मुनि को प्रणाम किया था और फिर वह दोनों अपने भवन को चले गए थे। इसके अनन्तर उस समय में वे दोनों समय करके तपश्चर्या के लिए दीक्षित हुए थे। माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त करके भाइयों को और अन्य बान्धवों को भी ज्ञापित करके उन दोनों महामति वालों ने कामरूप के लिए प्रस्थान किया। उमा देवी के सहित भगवान् शंकर भी उन दोनों का गमन जानकर इन्द्र के सहित समस्त देवों को सान्त्वना देते हुए यह बोले। ईश्वर ने कहा–हे सुरेश्वरो! मेरे दोनों पुत्र तप करने के लिए गए हैं। वे दोनों मेरी आराधना में चित्त वाले हैं। वे सुर श्रेष्ठो! उन पर दया करो। इन दोनों पुत्रों का जो कि वेताल और भैरव नाम वाले हैं, तपस्या से संस्कार करके मैं इनको गाणपत्य में नियोजित करूँगा। हे निर्जरो! आप लोग उन दोनों का संस्कार कर दो। तप से उन दोनों के शरीर मानुषभाव त्याग कर जिस रीति से दोनों सारभाव को प्राप्त हो जावें, मैं वैसा ही करूँगा। इतना कहकर वामदेव भी पार्वती के साथ ही आकाश मार्ग से गमन करते हुए पुत्रों के पीछे स्नेह से गए थे। अपने पुत्रों के पीछे अनुगमन करते हुए भगवान् हर के पीछे-पीछे गमन करने लग गए थे। इसके अनन्तर उन दोनों ने जो इस समय कृष्ण हिरण के चर्म का धारण करने वाले थे, उनको आगे एक नदी मिली थी। वे दोनों ही तापस के भाव को प्राप्त हुए थे। वह नदी दृषद्वती थी जो कि गंगा के ही समान परम पावन थी। भगवान् त्र्यम्बक देव के द्वारा वे दोनों कामरूप नाम वाले आश्रम में समापतित हुए थे। कामरूप पहुँचकर करतोया नदी का जल मिला था। हे नृपोत्तम! उन दोनों ने नदी के जल में आचमन किया। फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे थे। वहाँ आचमन तथा स्नपन करके फिर जठाद्भवा नदी पर गमन किया था। वहाँ पर दोनों ने उपस्पर्शन किया था और वहाँ पर तप के द्वारा

घृत नन्दिकुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पिश देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन किया था। वहाँ पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को प्रणाम किया और आराधना के उपदेश के लिए कपोत वचन का स्मरण किया था।

फिर दोनों दक्षिण दिशा की ओर गए थे जहाँ सन्ध्याचल संस्थित था। वहाँ पर कान्ता नाम की नदी थी जो वशिष्ठ मुनि ने अवतारित की थी। उस नदी के तट पर एक महान शैल था जिस पर छाया वाले वृक्ष और लताएँ थीं क्योंकि ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ जी ने वहाँ पर सन्ध्या वन्दना की थी। इसीलिए देवगण उस पर्वत का नाम सन्ध्याचल गाया करते हैं वहाँ पर पहुँचकर वशिष्ठ मुनि का दर्शन किया था जो साक्षात् अग्नि के ही तुल्य थे। वे वशिष्ठ मुनि भगवान गिरीश की आराधना कर रहे थे और उनका मन ध्यान में संयुक्त था। वे तपस्या की श्री से देदीप्यमान थे और दूसरे सूर्य के ही समान प्रतीत हो रहे थे। उस अवसर पर उनके समक्ष वेताल और भैरव ने प्रणाम किया था। हे भूप! वे दोनों विनय से अवनत होते हुए हाथों को जोड़े हुए स्थित हो गए थे। उन दोनों ने यह प्रणाम करते हुए विधाता के पुत्र से कहा कि चन्द्रशेखर से हम दोनों तारावती में उत्पन्न हुए हैं। इस क्षेत्र में हम दोनों भर्ग पुत्रों को मनुष्य ही जानिए। हम कार्य की सिद्धि के लिए भगवान् शम्भु की आराधना करने की इच्छा रखते हैं।

हे सुव्रत! आप हम दोनों के अभीष्ट के विषय में अनुग्रह करें। उन दोनों के उस वचन का मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने श्रवण किया और उन्होंने कहा था कि मैंने आप दोनों का ज्ञान प्राप्त कर दिया है और सत्य में आप दोनों ही भगवान् शम्भु के आत्मज हैं। हे नरश्रेष्ठ! आप दोनों को भगवान् शम्भु की आराधना करनी चाहिए। परमश्रेष्ठ आप दोनों यहाँ पर मेरा क्या कृत्य है यह बोलिए। वृषभराज की आराधना के लिए आप दोनों का प्रयोजन है। जो उसका निमित्त है वह सिद्ध हो गया है, वह चिन्तन कीजिए। वेताल और भैरव ने कहा—जिस मन्त्र के द्वारा अविलम्ब ही भली-भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की गई

है । हे महामुने! वह हमारे ऊपर अपनी पृथ्वी में प्रसन्नता को प्राप्त होंगे, यही हमको आप बतलाइए । हे मुनि शार्दूल! जिस रीति से हम आराधना करें, जो तन्त्र है और जैसा भी क्रम है, वह सभी आप उत्तम रूप में बताने के लिए योग्य होते हैं । जिस रीति से शीघ्र ही हर को प्राप्त कर लेवें । हे मुनिश्रेष्ठ! आप अनुशासन कीजिए । हम दोनों आपके प्रणत हैं ।

वशिष्ठ जी ने कहा—आप दोनों के ऊपर भगवान वृषकेतु उमादेवी के सहित प्रसन्न हैं । यहाँ पर स्वयं शीघ्र प्रसाद को प्राप्त हो जायेंगे । समस्त देवगणों के साथ अपनी भार्या के साथ वृषभध्वज गृह से अपने पुत्रों का पालन करते हुए आकाश के मार्ग द्वारा समाक्षिप्त हैं । किन्तु आपके मनुष्य के देह का अधिवासन करके अर्थात् तपों व्रतों से संस्कार करके स्वयं ही कैलाश पर ले जायेंगे और गणपत्य दोनों का नियोजन करेंगे और मैं भी उपदेश कर दूँगा । जिससे आप दोनों ही शीघ्र ही भर्ग को प्राप्त कर लेंगे । हे पार्वती पुत्रों! उसे एकाग्रमन से श्रवण कीजिए । वे ध्यान से चिरकाल में प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ध्यान पूजन से प्रसन्न होते हैं । इस कारण से आज तात्त्विक रूप से ध्यान और पूजन बतलाता हूँ । वे तेज से परिपूर्ण हैं, सदा शुद्ध स्वरूप हैं, ज्ञानामृत से विवर्धित हैं, जगत् से परिपूर्ण, चित् (ज्ञान) और आनन्दरूप हैं। शौरि और ब्रह्मा के सदा महान् योग से संयुत हैं, ये सम्पूर्ण जगत् उनके ही स्वरूप हैं । उनका कथन करने में कौन समर्थ है । किन्तु जिन रूपों से ये भगवान् शंकर विचरण किया करते हैं उनमें से जो मेरे ज्ञान के द्वारा गम्य है उसमें जो भी अभीष्ट है आप दोनों को मैं कहता हूँ ।

हे नरश्रेष्ठ! सबसे प्रथम मन्त्र का श्रवण करो उसके पश्चात् ध्यान से साक्षात्कार को सुनिए । इसके पश्चात् पूजा का क्रम फिर क्रम से व्रत को सुनिए । समस्त स्वरों में दीर्घ शेष होता है—इस रीति से पाँच मन्त्र कीर्तित किए गए हैं । एक-एक से वहाँ पर एक-एक वक्त्र तो देव का पूजन करना चाहिए अथवा एक को समुदित करके पाँचों से पूजन करें । इसके अनन्तर प्रसाद के द्वारा पंचवक्त्र देव का यजन करना

चाहिए । सम्पद प्रभृति मन्त्रों प्रसाद परम प्रशस्त कहा गया है । क्योंकि शम्भु के प्रसादन से ही मन्त्र सफल होता है । इसी कारण से मुनियों में श्रेष्ठों के द्वारा यह प्रसाद संज्ञा वाला कहा गया है । इस कारण से समस्त मन्त्रों में प्रसाद परमप्रीति के प्रदान करने वाला है ।

सम्पद मन्त्र भगवान् शम्भु के आमोद के रहने वाला कहा जाता है । मन की प्रापूर्ति करने ही से सन्दोह कहा गया है । नाद आकर्षण करने वाला नाद होता है । गुरुत्व होने से गौरव नाम वाला है । यह व्यस्त और समस्त अर्थात् अलग-अलग और सब पिताकर भगवान् शम्भु के मन्त्र कीर्तित किए गए । पञ्चाक्षर अर्थात् पाँच अक्षरों वाला जो मन्त्र है वह पञ्चवक्त्र का कहा गया है । आप दोनों उस ही मन्त्र के द्वारा ईश्वर का समाधान करिए । हे वेताल भैरव! मैं उनका ध्यान बतलाऊँगा, उसका भली-भाँति आप श्रवण करिए । अब शम्भु के स्वरूप का ध्यान बतलाया जाता है । शम्भु के पाँच मुख हैं– महान उनका शरीर है, वे जटाजूटों से समलंकृत हैं । सुन्दर चन्द्रमा की कला से समन्वित हैं, मस्तक केवालों से विभूषित हैं, शम्भु की दश वायु हैं और व्याघ्र चर्म ही उनका वस्त्र है । कण्ठ में भगवान् शम्भु के हालाहल कालकूट विष को धारण किए हुए हैं तथा नागों के हार से उनका वक्षःस्थल विभूषित है । भुजङ्ग ही उनके कीरीट का बन्धन है तथा नाग ही बाहुओं के भूषण बने हुए हैं । सम्पूर्ण अंगों में चाँदनी से अर्पित सुन्दर कान्ति के धारण करने वाला हैं । भस्म से सम्पूर्ण अंग संलिप्त हैं । एक-एक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं । इस प्रकार से पन्द्रह ज्योतियों वाले नेत्रों से शोभित हैं । वृषभ के ऊपर विराजमान हैं और हाथी के चर्म के परिच्छादन वाले हैं ।

अब शम्भु के पाँचों मुखों के नाम बतलाये जाते हैं–सद्योजात, वामदेव अघोर, तत्पुरुष, ईशान ये पाँच मुख कीर्तित किए गए हैं । सद्योजात का वर्ण शुक्ल है और वह स्वच्छ स्फटिक के तुल्य है । वामदेव पीतवर्ण वाला सौम्य एवं मनोहर है । अघोर नीलेवर्ण वाला है और उसमें दाढ़ है जो भय को बढ़ाने वाला है । तत्पुरुष देव रक्तवर्ण

से युक्त हैं जिसकी मूर्ति परमदिव्य है और वे मनोहर हैं। ईशान श्यामल हैं और सर्वदा ही शिव स्वरूप हैं। आद्य स्वरूप का पश्चिम दिशा में चिन्तन करना चाहिए। उत्तर दिशा में द्वितीय स्वरूप का चिन्तन करें। अघोर देव का दक्षिण में तथा पूर्व दिशा में तत्पुरुष का चिन्तन करना चाहिए। मध्य भाग में ईशान का भक्ति तत्पर होकर चिन्तन करना चाहिए। दक्षिण भाग के हाथों में शक्ति, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, वरदान, अभय दान के दाता शिव का चिन्तन करना चाहिए उसी भाँति वाम भाग के हस्तों में अक्ष, सूत्र, बीजपुर, भुजङ्ग, डमरू और शुभ उत्पल का ध्यान करे। आठ ऐश्वर्यों से समायुक्त हृदय में विराजमान शिव का ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार से ध्यान में जगत् के स्वामी महादेवजी का चिन्तन करना चाहिए और द्वारपालों का चिन्तन करके गणेश आदि का पूजन करे। इसके अनन्तर पुनः पाँचों भूतों के विशुद्धि का चिन्तन करे। इसके उपरान्त आठ नामों के द्वारा आठ मूर्तियों का अभ्यार्चन करे। भवादि आठ पुष्पों का हृदय के द्वारा ही विनियोजन करना चाहिए और जो समस्त आसन्न हों उनका भी पूजन करे। नाराच मुद्रा से उसका ताड़न परिकीर्तित किया गया है और धेनु मुद्रा दिलाकर विधान से विसर्जन करे। सदा ही वृद्धि से दण्डेश्वर प्रभु का निर्माल्य धारण करना चाहिए। प्रत्येक का पांच मन्त्रों के द्वारा अंगादि प्रमार्जन करे। हे नर श्रेष्ठों! इन पूर्व में वर्णित सम्पद आदि के द्वारा इसका प्रमार्जन करना चाहिए। फिर आठ देवियों का पूजन करे। उनके नाम हैं—बाला, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, देवी, बलप्रमथिनी और सब भूतों की दमनी मनोन्मथिनी।

इन आठ देवियों का यजन क्रम से भगवान् शम्भु की प्रीति के लिए करना चाहिए। इस रीति से शम्भु का पूजन करके ध्यान में परायण मन वाला हो जावे। फिर अपने श्री गुरुदेव का और मन्त्र का ध्यान करके माला का आदान कर जप करना चाहिए। एक ही पाँच अक्षरों वाला मन्त्र अथवा एक प्रसाद होवे। उसी में समासक्त मन वाले

होते हुए जप करके शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति कर लोगे । यह आप दोनों को मन्त्र बतला दिया है तथा इनका ध्यान और पूजा का क्रम भी कह दिया गया है । अब आप लोग नाटक पर्वत पर जाइए और वहाँ पर भगवान् हर की आराधना करिए । वेताल और भैरव दोनों ने कहा–हे मुनिवर! यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र आपकी सम्मति से धारण कर लिया और इसी मन्त्र के द्वारा देवेश्वर शम्भु का आनन्द के साथ हम यजन करेंगे । हे नृप! इतना ही यह कहकर तथा वेताल और भैरव दोनों ने प्रणाम किया था और फिर वशिष्ठ मुनि की अनुमति से नाटक पर्वत पर वे दोनों चले गए थे । वहाँ पर एक परमसुन्दर सरोवर था जिसकी सुन्दरता मन को हरण करने वाली थी । उसमें सर्वदा बहुत ही स्वच्छ जल रहा करता था और सदा विकसित कमल रहते थे ।

उसी सरोवर के तट पर परम विशाल और अत्यधिक सुन्दर भगवान् शम्भु का आश्रम था । वह आश्रम सर्वदा दानवों, देवों, किन्नरों तथा प्रमथों द्वारा हे नृप शर्दूल! रक्षा किया जाता है । वे रक्षा करने वाले सदा ही नृत्य और वादन में परायण रहा करते हैं । जिस कारण से वहाँ पर ईश कौतुक में तत्पर होकर नित्य नटित हुआ करते हैं । इसी कारण से यह पर्वत इस नाम से जाना जाता है । वह शैलछत्र के आकार के तुल्य आकार वाला था, परम मनोज्ञ था और भगवान शंकर का अतीव प्रिय था । जहाँ पर सरोवर की प्राप्ति की थी । उस समय इन दोनों ने वहाँ पर गमन किया था और उन्होंने परमोत्तम भगवान् हर का आश्रम नहीं देखा था । हे नृप! वे दोनों आश्रम के स्थान पर गमन करने में असमर्थ हो गए थे । इसके अनन्तर उन्होंने भगवान शम्भु को प्रणाम किया था और सरोवर के तट पर स्थित हो गए थे । वहीं पर वशिष्ठ मुनि के द्वारा कथित क्रम से एक सुन्दर स्थण्डिल का निर्माण करके वेताल और भैरव दोनों ने भगवान हर की आराधना करना आरम्भ कर दिया था । उस समय में शंकर के आत्मज उन दोनों को जो कि भूतेश्वर की आराधना कर रहे थे, भगवान् शंकर ने उस पर्वत पर देवगणों के साथ देखकर उस पर्वत की उपत्यका में अपर्णा के साथ

ही में अपने आश्रम में निवास किया था। पर्वत की नीचे की भूमि को उपत्यका कहा जाता है। उसी उपत्यका में भगवान् ने निवास करना शुरु कर दिया।

सरोवर में तट पर नीचे के भाग में शंकर के दोनों पुत्र तपश्चर्या कर रहे थे वहाँ पर उन दोनों को स्थित हुए देखकर देवगणों के सहित भगवान् शंकर भी वहीं पर संस्थित हो गए थे। पर निरन्तर भगवान हर का जो नृत्य का शब्द हुआ करता था वे दोनों उस समय में उनका श्रवण किया करता है किन्तु वहाँ पर गमन करना और देखना प्राप्त नहीं होता था। हे भूप! वह पर्वत देवगणों के सहित भगवान् हर के द्वारा अधिष्ठित था। उस समय वे सुधर्मा की भाँति शोभित हो रहे थे। उस समय वहाँ पर भगवान् वृषभध्वज ध्यान करने वाले उनके ध्यान मार्गों में निश्चल हो गए थे। हे भूमिप! वे दोनों ही पूजा करते हुए गमन करते हुए अथवा स्थित होते हुए भगवान् शम्भु को ही ध्यान किया करते हैं और किसी समय भी चित्तों से भगवान् चन्द्रशेखर का त्याग नहीं करते थे। पाँच अक्षरों वाले मन्त्र के द्वारा वृषभध्वज का पूजन करते हुए उन दोनों ने सहस्त्र वर्षों का व्यक्तिचक्र कर दिया था। बिना आहार वाले, संयत आहार वाले और भगवान् हर में संसक्त मन वाले उन दोनों ने तपश्चर्या के द्वारा सहस्त्र वर्षों को एक ही वर्श की भाँति बिताया था।

एक सहस्त्र वर्षों के व्यतीत हो जाने पर वृषभध्वज स्वयं ही उन दोनों से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष उपागत हो गए थे। उस अवसर पर वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् शम्भु को प्रत्यक्ष विराजमान पाकर वृषभध्वज का स्तवन किया था। जिस प्रकार हर के स्वरूप का ध्यान किया था और जो तेज के द्वारा उज्जवल हृदय में स्थित थे फिर उन दोनों ने उसी भाँति वसिष्ठ मुनि के अनुमान से उनका दर्शन किया था। वेताल और भैरव ने कहा—पाँच मुखों वाले, महान् विशाल शरीर से समन्वित, सम्पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण, संसाररूपी सागर से परित्राण करने वाले भगवान् वृषभध्वज को हम दोनों प्रणाम करते हैं। आप परमात्मा

हैं और आप परेश पुरुषोत्तम हैं, आप कूटस्थ, जगत् में व्याप्त रहने वाले प्रधान परमेश्वर हैं । आप रूपात्मा हैं, आप महातत्त्व हैं, तत्त्व ज्ञान के आलय हैं, प्रभु हैं, आप सांख्य योग के आलय हैं, शुद्ध और तीन गुणों (सत्त्व-रज-तम) के विभाग के ज्ञाता हैं । आप एक और अनेक रूप वाले हैं, शान्त चेष्टा से संयुक्त और जगन्मय हैं ।

आप विकारों से रहित, निराधार, नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं तथा सनातन हैं । आप विष्णु हैं, आप महेन्द्र हैं और आप ब्रह्मा तथा जगत् के स्वामी हैं । जो रूप और रूपेश्वर रत्नों की माता हैं, सम्भूति से भूत और निरवग्रह हैं, जो काक्ष्यावतीर्ण अवगत प्रभा भी हैं, योगेश्वर, ज्ञान के गति वाले और अगम्य अर्थात् न जानने के योग्य हैं । आप प्रेमयरूप आत्मा के धराराम हैं, आप भोगीन्द्रों से बद्ध अमृतभोग तन्त्र वालें हैं । आप सूक्ष्म और अक्षर हैं, तत्वों के वेत्ता और अप्रमाथी हैं । आप देवों के भी देव और सुरगणों के रक्षक हैं । आप विकल्प और मान से परिहीन देह वाले हैं, आप शुद्ध अन्तधाम और अनुगतों की एक विद्यारूप हैं । आप वर्धिष्णु, उग्र पुरुष और परमात्मा हैं, आप इन्द्रियों के समूह की विचार बुद्धि हैं । आप नाथों के भी नाथ हैं, परों के प्रभाव अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं, आप मुनिगणों की गति हैं तथा योनियों के द्वारा जानने योग्य हैं । आप भूधर हैं, भागधर और अनन्त हैं । वे विश्वात्मा, आपके बहुत से प्रपञ्च हैं । आप ज्ञानरूपी अमृत के स्पनन्दन करने वाले पूर्ण चन्द्रमा हैं और मोहरूपी अन्धकार के परम प्रदीप हैं । आप भक्तों के पुत्रों के परम पिता हैं और कोप में पञ्चानन के रूप को धारण करने वाले हैं । आप समस्तों के समुदायों का विस्तार किया करते हैं । आप ब्रह्मा के रूप से सृष्टि किया करते हैं और आप ही भगवान् विष्णु के रूप के द्वारा परिपालन निरन्तर किया करते हैं ।

आप ही गुरुदेव के रूप से इस जगत् का अन्त किया करते हैं । इस जगत् में आपसे अन्य कुछ भी वस्तु नहीं हैं । आप चन्द्रमा हैं और आप ही सूर्य हैं। आप ही अग्नि हैं, जल हैं, पवन हैं और आप ही धरित्री हैं । आप ही नभ हैं और आप ही क्रतु के तन्त्र होता हैं, आप

ही अष्टमूर्ति हैं और अष्टमूर्ति के हो जाया करते हैं । हे अनन्त मूर्तियों वाले! आपके रूप की अन्य प्रकार से संख्या कैसे हो सकती है क्योंकि आप अष्टमूर्ति हैं । आप त्र्यम्बक हैं और आप त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं । आप शम्भु हैं, शमन हैं और विधाता हैं । आप सहस्त्रबाहु हैं, हिरण्यबाहु हैं, आप सहस्त्रमूर्ति हैं और पञ्चवक्त्र अर्थात् पाँच मुखों वाले हैं, आप बहुत नेत्रों वालें हैं और तीन नेत्रों से संयुक्त हैं । आप बहुत बाहुओं से युक्त हैं और ईश आप दश बाहुओं वाले हैं । भोग्यों के अनुसार हैं और अवग्रह से रहित हैं । नित्य और अनित्य स्वरूपों वाले के लिए, नित्यधाम रूपरूपी के लिए, परतत्व स्वरूपों वाले विश्वात्मा आपके लिए नमस्कार है । जिन आपके लिंग का अन्त ब्रह्मा और विष्णु ने भी प्राप्त नहीं किया था । हे वृषभध्वज! उनकी हम दोनों क्या स्तुति करेंगे ।

जिनके स्वरूप को देवता और दानवगण भी नहीं जानते हैं । हे परमेश्वर! हम दोनों बालक किस प्रकार से आपका स्तवन करेंगे । हे वृषभध्वज! हे देवेश! हम दोनों केवल भक्ति से ही, हे गौरीश! प्रणाम करते हैं । पुनः आपको बारम्बार नमस्कार है । और्व ने कहा–इस प्रकार से महान् आत्मा वाले वेताल द्वारा महादेवजी की स्तुति की गई थी । हे राजेन्द्र! भैरव ने भी स्तवन किया था । उस समय में वे प्रसन्न होकर उन दोनों देवों से बोले–हे पुत्रों! मैं आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ अब अपना वाँछित वरदान माँगिए । मैं तपोव्रतों से परम प्रसन्न हूँ, तुम दोनों का अभीष्ट दे दूँगा । हे सुतो! आपकी स्तुतियों, संयम तथा एकान्त चिंतनों से बार-बार जो किए गए थे उनसे मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ, आप दोनों को जो भी अभीष्ट होगा उसे दे दूँगा । वेताल, भैरव, दोनों ने कहा–यदि सचमुच ही आप हम दोनों के ऊपर प्रसन्न हैं, यदि हम दोनों सचमुच ही आपके पुत्र हैं । हे वृषभध्वज ! यहाँ पर आपका ही जो इष्ट हो वही हम दोनों को वरदान देने की कृपा करो । सुतभाव से जगतों के पति, पिता आपको नित्य ही जैसे हम अवगत करें वैसा ही वरदान हम दोनों को प्रदान कीजिए ।

हम लोग राज्य की इच्छा नहीं रखते हैं, न धन ही चाहते हैं और न अन्य कुछ ही इच्छा है । हे वृषभध्वज! आपकी भक्ति से आपकी सेवा करना चाहते हैं । आपके चरण कमल के युग्म ही मधुकर की स्वरूपता को प्राप्त होवें । आपके प्रसन्न होने पर नेत्रों का जोड़ा सदा ही सफलता को प्राप्त होगा । यहाँ से आगे अन्य प्रकार से आपके चिन्तनों से, आपके ध्यानों से और आपके पूजनों से हम दोनों के करोड़ों सहस्र कल्प भली भाँति व्यतीत होवें ।

इसके अनन्तर महादेवजी ने हँसते हुए ही सब देवगणों के साथ उन दोनों को देवत्व कर दिया था । भगवान शंकर ने देवेन्द्र की सम्मति से ही अमृत को लाकर उसको बेताल और भैरव को पिला दिया था । हे नरश्रेष्ठों! भगवान् शिव की शक्ति से अमृत के पी लेने पर उन दोनों ने मृत्युभाव का परित्याग करके अर्थात् मृत्यु के मुँह में जाने के भाव का त्याग करके वे दोनों ही अमर्त्यता को प्राप्त हो गए थे । उस अवसर में स्वपन करते हुए वे दोनों दिव्य ज्ञान और बल से समन्वित हो गए थे । वे दिव्य रूप से सम्पन्न अरियों के दमन करने वाले हो गए ।

इसी अभिन्न देह के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुए उन दोनों से भगवान् शम्भु बोले । भगवान् ने कहा–मैं तो आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ । मेरे दिए हुए काम की इच्छा करते हुए आप दोनों मेरी दयिता पार्वती ईश्वरी की आराधना करो । उनके बिना मैं सनातन अभीष्ट नहीं दे सकता हूँ । उनकी नित्य सेवा करने के लिए शिवा पार्वती देवी की शरण में गमन कीजिए । जिस भाव से शीघ्र ही वह देवी प्रीति को प्राप्त हो जावें वहाँ पर अथवा यहाँ पर गमन करके उसी भाव से उनका समर्चन करिए ।

अठारह पटल वाला महामाया कल्प

और्व मुनि ने कहा–इस प्रकार से भूतेश्वर प्रभु के कथन करने पर उस समय में वेताल भैरव दोनों ही वे हर्ष से प्रफुल्ल लोचनों वाले व्योम केश भगवान् से बोले । वेताल भैरव दोनों ने कहा–हे भगवान् ! हम दोनों देवी पार्वती का ध्यान-मन्त्र और विधि नहीं जानते हैं । हम

उनकी किस प्रकार से आराधना करेंगे, यह भली भाँति बताइए । श्री भगवान ने कहा–हे सुतो! मैं महामाया का मन्त्र और कल्प आप दोनों के उपदेश करूँगा और तात्त्विक रूप से बता दूँगा जिससे यह सब हो जायेगा । और्व ने कहा–हे नृपोत्तम! उन देवेश्वर ने इस प्रकार कहकर फिर माया का ध्यान-मन्त्र और विधि गिरीश प्रभु ने उन दोनों को भली भाँति कह दिए थे । उस भैरव ने अठारह पटलों के द्वारा शिवामृत में निर्णय विधि कल्प के निबन्ध की रचना की थी सगर ने कहा–पहले शम्भु ने उन दोनों को कैसा मन्त्र बोला था जिसके द्वारा आराधना करके वे दोनों गाणपत्य पद को प्राप्त हुए थे । जो अठारह पटलों के द्वारा उन भैरव ने निबद्ध किया था उसे कल्प और रहस्य के साथ श्रवण करने का उत्साह कर रहा हूँ ।

और्व ने कहा–उसके बहुत होने से बहुत काल में ही कहा जा सकता है । इस कारण से जो भी महादेवजी ने कहा था उसको सद्यः उद्धृत करके उसका तत्व संक्षेप में कहता हूँ ! हे नृपोत्तम! उसका श्रवण कीजिए । उस अवसर पर पार्वती के मन्त्र को पूछते हुए उन बेताल-भैरव को महादेवजी ने बोला था, उस मन्त्र और कल्प को सुनिए । श्री भगवान् ने कहा–आप श्रवण कीजिए में गुह्य से भी परम गोपनीय को बतलाऊँगा । वैष्णवजी का महामाया महोत्सव आठ अक्षरों बाला है । इस श्री वैष्णवजी के मन्त्र का नारद ऋषि है और शम्भु देवता है । इसका अनुष्टुप् छन्द है और इसका सब अर्थों के साधन में विनियोग होता है । हानान्त पूर्व और णान्त उसी भाँति नान्त और णान्त हैं । एकादशाष्टक आदि बाल छटवाँ णान्त है जिसमें विष्णु आगे हैं । इन आठ अक्षरों से मन्त्र होता है जो शोणपत्र की प्रभा के समान होता है । ॐकार पूर्व में लगाकर समस्त प्रभा साधना करने वालों के द्वारा जप करना चाहिए । यह महामन्त्र परम गोपनीय है और वैष्णवी मन्त्र की संज्ञा वाला है । मन्त्र वाले वरगत हैं इसी कारण से अंग कीर्तित किया गया है ।

महादेवजी का ऊर्ध्व मुख है । यह बीज कहा गया है । ॐकार

अक्षर बीज है और यकार शक्ति कही जाती है । हे भैरव! बीज के सहित मन्त्र कह दिया गया है और अब कल्प का श्रवण करो । किसी तीर्थ में, नदी में, देहवात में, गर्त्त आदि में, परकीय से इतर जल में पूर्व में स्नान करे । आचमन करके शुचिता को प्राप्त हुआ होकर आवास का परिग्रह करे । उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर फिर स्थण्डिल का मार्जन करना चाहिए । जिसको वह स्वयं क्षिति से इस मन्त्र के द्वारा कर से करे । 'ॐ ह्रीं' इस मन्त्र के द्वारा और आशापूरक के जलों के द्वारा भूतों के अपसारण करने में अभ्युक्षण करे । फिर सव्य हाथ से शुचि होकर स्थण्डिल का ग्रहण करके सुवर्ण की लेखनी से अथवा याज्ञिक कुशा से मन्त्र को लिखना चाहिए । अथवा 'ॐ वैष्णव्यैः नमः' इस मन्त्र राज को लिखे फिर उसी से समरेखा से त्रिमण्डल करे ।

नित्य होने वाली पूजाओं में रज से मण्डल को नहीं लिखना चाहिए । पुरश्चरण कार्यों में और काम्यों में और इनके अनन्तर पश्चिम में फिर इसके पीछे दक्षिण में पीछे, शेष में पूर्व भाग में करे । इसी प्रकार से वर्णों के द्वारों के निहित क्रम होता है । 'ॐ ह्रीं' इस मन्त्र मण्डल के द्वारा फिर दिग्बन्धन करे । यथाक्रम से पूर्व में कथित आशा बन्धन से ही करे । यहाँ पर भी फट् जिसके अन्त में हैं, अपने कर से ही निबन्ध करे । यवों के मण्डलों से और आठों से एक अंगुल होवे । अदीघ्र योजित हाथों से चौबीस अंगुलों से उस भ्रमण वाले हाथ से एक-एक उसका मण्डल होता है । एक बालिस्त मात्र पद्म होता है और उससे आधा कर्णिकार है । इसके दल परस्पर में सक्त होते हैं और आयत हों, ऐसे ही नियोजित करे । न्यूनाधिक भाग में द्वार का न्यास करे । ठीक मध्य भाग में द्वार का न्यास करे न्यून तथा अधिक में न करे और सुबद्ध मण्डल रक्तवर्ण वाला विचिन्तन करें । इससे अन्यथा इसका उग्र मण्डल जो लक्षण और भागरहित किया करता है और न अभीष्ट काम की होता है । इससे यह मण्डल यहाँ पर लिखना चाहिए ।

महामाया कल्प वर्णन

श्री भगवान् ने कहा–इसके उपरांत 'लम्' इस मन्त्र के अर्घ्यप... का चतुष्कोण मण्डल शीघ्र ही बनाकर जो कि द्वार पद्म से वर्जित होवे । फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र से मण्डल में अर्घ्यपात्र का विन्यास करना चाहिए । प्रथम वहाँ पूजा करके सन्निध्य करे । 'ॐ ह्रीं ह्रौं' इस मन्त्र से गन्ध और पुष्प तथा जल अर्घ्यपात्र में क्षिप्त करे फिर वहाँ पर मण्डल का विन्यास करना चाहिए । पूर्व की ही भांति मण्डल करके अर्घ्यपात्र तीन भागों वाले जलों से पात्र को पूजित करें और उसमें पुष्प का निक्षेप करे । फिर ह्रीं, इस मन्त्र से आसन का जो कि अपना ही यजन करे । फिर बुद्ध पुरुष को चाहिए कि 'क्षौं', इस मन्त्र से आत्मा का पूजन करें । गन्ध, पुष्पों से शिरोदेश में पूजा का समाचरण करना चाहिए । 'ॐ सः'–इस मन्त्र के द्वारा हस्ततल में स्थित पुष्प का समाचरण करके सव्य कर से आघ्राण करके वाम कर के द्वारा कोविद पुरुष को ऐशानी दिशा में इसका पूर्व मन्त्र से ही विनिक्षेप करना चाहिए ।

रक्त वर्णन के पुष्प का ग्रहण करके दोनों हाथों से पाणिकच्छप बाँधकर इसके पीछे दहन प्लवन आदि करे । बाँये हाथ की कनिष्ठका तथा दक्षिण हाथ की तर्जनी में वाम अंगुष्ठ को नियोजित करें । दाहिने उन्नत अंगुष्ठ को वाम कर के पृष्ठ में करना चाहिए । वाम के पितृ से मध्यमा और अनामिका को अधोमुख को और दाहिने कर को दक्षिण पृहस्त से कूर्म के पृष्ठ के समान करें । इस प्रकार से बँधा हुआ पाणिकच्छप सभी सिद्धियों को दे दिया करता है । स्थिर मन वाले बुद्ध पुरुष को चाहिए कि उसको अपने हृदय के समीप में करे और दोनों नेत्रों को मूँद लेवे । अपनी काया, शिर और ग्रीवा को समान रखे । फिर दाह प्लावन पूर्वक देवी के ध्यान का समारम्भ करना चाहिए । अग्नि को वायु में निक्षिप्त करके वायु को जल में और जल को हृदय में निक्षिप्त करे ।

हृदय को निश्चिल आकाश में देकर स्वप्न का निक्षेप करे । "ॐ हूँ फट्"–इस मन्त्र के द्वारा मस्तक में रन्ध्र का भेदन करके शब्द के सहित जीव को आकाश में स्थापित करे । वायु, अग्नि, यम इन्द्रों का और बीज के द्वारा शेषादि करे । ये परास्थान पर हैं, बिन्दु और अर्द्धचन्द्र के सहित इनसे शेष-दाह तथा उच्छद, परपीयूष का आसेवन यथाक्रम से करना चाहिए । विशुद्ध के लिए चिन्तन मात्र की है ।

इसके अनन्तर देवी के बीज के द्वारा जाम्बूनद की आकृति वाले अण्ड का पूजन करे । वहाँ पर पहुँचकर 'ॐ ह्रीं श्री' मन्त्रों से द्विधा करना चाहिए । उनके ऊर्ध्व भागों में हृदलोक, स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन करके शेष भाग से भू को पाताल के जल में चिन्तन करे । वहाँ पर सबका चिन्तन करना चाहिए । उसके मध्य में रत्नों से निर्मित मण्डल में संस्थित रत्न पर्यक का चिन्तन करे ।

आकाश गंगा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह शुभ है । उस पर्यंक पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है । उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानांक है, सप्त पातालों का नाम वाला हैं, ब्रह्मलोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है । वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्रमन वाला होकर ध्यान करे । वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुए रहकर लटके हुए हैं । वह चलत्कांचना पर समारूढ़ तथा उज्जवल कुण्डलों की शोभा वाली है । सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों को धारण करने वाली है ।

शुक्ल, कृष्णा और अरुण वर्णों वाले तीन नेत्रों द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है । सन्ध्याकालीन चन्द्र के तुल्य कपोलों से संयुक्त हैं और उनके लोचन चंचल है । पंकरहित दाड़िम के बीजों के समान दाँतों के रखने वाली, सुन्दर भौंहों से योग से उज्जवल, बन्धूक दन्त के वसनों वाली, शिरीष की प्रभा से युक्त, नासिका से संसुत, कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली, विशाल नेत्रों से युक्त, करोड़ों सूर्यों की प्रभा से

समन्वित, चार भुजाओं वाली विवसना और पीन तथा उन्नत पयोधरों से शोभित, सिद्धसूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात गम्भीर नाभि क्रम से आयात, क्षीण मध्य भाग वाली, मनोहर, आनमित नागपाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त, गुप्त, गुल्फों वाली सुन्दर पार्णियों से संयुक्त, बद्ध संकल्प वाली, नीवीरासन से राजित, गात्र से रत्न संस्तम्भ को भली भाँति आलम्बन करके संस्थिता । बारम्बार क्या चाहते हो, इस तरह से बोलती हुई, पाँच आननों वाली, पुरः संस्थित का निरीक्षण करती हुई, सुन्दर वाहन वाली, मुक्तावली, स्वर्ण, रत्न हार और किंकणी आदि समस्त आभूषण के समूहों से उज्जवल, स्मित हास्य सहित मुख वाली, करोड़ों सूर्यों के सदृश, समस्त सुलक्ष्णों से समन्वित नूतन यौवन से सम्पन्न तथा सभी अंग प्रत्यंगों से सुन्दरी, ऐसी अम्बिका देवी का ध्यान करके 'नमः फट्' इस मन्त्र से स्वकीय मस्तक में मैं ही हूँ ऐसा चिन्तन करके प्रथम देवे ।

इसके अनन्तर अंगों का न्यास और करों का न्यास क्रम से करना चाहिए । फिर हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र इनमें क्रम से न्यास करे। इसके अनन्तर मूल मन्त्र का मुख में, पृष्ठ में, उदर में, दोनों बाहुओं में, गुह्य में, दोनों पादों में, दोनों जाघों में क्रम से आठ अक्षरों का विन्यास करे । तथा ओंकार का स्मरण करते रहें । इस प्रकार से अत्यन्त शुद्ध देह वाला होकर पूजा सदा ही उचित होती है । अन्य प्रकार से उचित नहीं होती है । यह शरीर की शुद्धि, मन का निवेश, भूतों का प्रसार किया करती हैं ।

भगवान् ने कहा–इसके उपरान्त अर्घ्यपात्र में उस मन्त्र को आठ भागों में विभक्त करके भली-भाँति तप करे । उससे जल को, पुष्पों को, अपने मण्डल को, आसन को अशोधित करे । इसके पीछे पूजा के उपकरणों का सम करे । 'ओं ऐं ह्रीं' इस मन्त्र के द्वारा शब्द प्राँशु विवर्जित द्वारपाल को और फिर देवी के आसनों का पूजन करना चाहिए । नन्दि, भृंगि, मद्य, काल गणेश, द्वारपाल का उत्तर आदि क्रम

से पूजन करने के योग्य है और मध्य में आसन पूजन के योग्य है । आधार शक्ति आदि हे भैरव! पूजा कल्पों में समस्त तन्त्रों में प्रसिद्ध हेमेन्द्र यन्त्रों का पूजन करे । दश दिक्पालों के सहित धर्मादिकों को मण्डल के अग्नि आदि कोणों में पार्श्वदेश से यजन करना चाहिए । सूर्य, अग्नि, सोम, मरुत, इनके मण्डलों को, पद्मक को, रज, सत्व, तम को, योगपीठ को, गुरुदेव के चरण को नार से आदि लेकर भद्रपीठ के अन्त तक सांगोपाँगो को पूजित करे । फिर ब्रह्माण्ड, स्वर्ण डिम्ब और ब्रह्मा, विष्णु महेश्वरों का पूजन करें ।

सागरों के सहित सातों द्वीपों का, मण्डल के सहित स्वर्ण द्वीप का, रत्नमय, पर्यंक के सहित रत्न स्तम्भ मण्डप के पञ्चानन का मध्य में अवश्य पूजन करे । 'ह्रीं' मन्त्र से हाथों को निबद्ध करके कूर्मपृष्ठ का यजन करे और पूर्व की ही भाँति उत्तम आसन को प्राप्त करके देवी का ध्यान करना चाहिए । हृदय के मध्य में पर्यंक से संभृत स्वर्ण दीप का चिन्तन करे । इसके अनन्तर देखते हुए की भाँति एकाग्र मन से देवी का स्मरण करे । हृदय में प्रत्यक्ष करके मानस उपचारों में अर्थात् मन में कल्पित उपचारों के द्वारा सोलह प्रकारों से हृदय में विराजमान देवी शिवा का भजन करना चाहिए । इसके अनन्तर हे भैरव! हाथ से विनियोग करने पर उस पुष्प से गन्धर्वों के द्वारा देवी का पूजन किया जाता और पूजकों के द्वारा फल की प्राप्ति नहीं की जाती है । इसके उपरान्त शिर के साथ गायत्री मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए । हम महामाया का ज्ञान रखते हैं और चण्डिका नाम वाली का ध्यान करते हैं । इतना कहकर फिर जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे ।

हे देवि! आपके लिए 'ॐह्रीं श्री नमः' इस मन्त्र से देवि केलि में स्नानीय का समर्पण करे जो लक्षण लक्षित होवे, इसके अनन्तर मूल मन्त्र से दीपक के सहित गन्ध, पुष्प, धूप आदि को अर्पण करे और मोदक तथा पायस देवे । मिश्री, भुज, दधि, क्षीर, घृत और अनेक फलों से यजन करना चाहिए अर्थात् इनको अर्पित करना चाहिए । रक्तपुष्प, पुष्पों की माला, सुवर्ण और रजत (चाँदी) आदिक, उत्तम

नैवेद्य, देवी का लांगल, मोदक, सिता (मिश्री) शाण्डिल्य कर ताम्र नामक और कूष्माण्ड के फल, हरीत का फल, नारंगी, एलका (इलायची) और जो द्रव्य बाल प्रिय हो, कसेरु कविसादिक, नारियल फल का जल, ये सब देवी के लिए प्रयत्नपूर्वक समर्पित करे ।

देवी पूजा में सदैव लाल वर्ण का रेशमी वस्त्र समर्पित करे और नीला वस्त्र कभी भी नहीं देवे । देवी के परम प्रिय पुष्प जैसे वकुल पुष्प और केशर दे । माध्य, कल्हार, वज्र, करवीर, कुटङ्क, आक के पुष्प, शाल्मल, सुकोमल दूर्वा के अंकुर कुश मञ्जरिका, दर्भ, बन्धूक, कमल ये सभी पुष्पों में उत्तम हैं और पायस तथा मोदक द्रव्य हैं । बन्धूक के पुष्पों की अथवा बकुल के पुष्पों की माला, करवीर और माध्य पुष्पों को एक सहस्र संख्या में जो देवी को अर्पित किया करता है । देवी का कथन है कि वे अपने अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करके मेरे लोक में आनन्द प्राप्त किया करता है । शीतल चन्दन जो कालीयक से संयुत होवे मुख्य अनुलेपन प्रयत्नपूर्वक देवी के लिए देना चाहिए ।

कपूर, कुंकुम, कूर्च, कस्तूरी, सुगन्धित, कालीयक में सुगन्धों में देवी को प्रीति करने वाले माने गए हैं । अंगराग जितने भी हैं उनमें देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला सिंदूर है । मधु से संयुत सुगन्धिशाली से समुत्पन्न अन्न, अपूप, पायस, क्षीर ये पदार्थ देवी के लिए प्रशस्त हुआ करते हैं । कपूर के सहित रत्नोदक, पिण्डीतक, कुमारक रोचन, ये ही देवी के स्कानीय कहे गए हैं । दीपों में घृत का दीपक प्रशस्त कहा गया है । सब उपचारों को देकर मध्य में इनका पूजन करना चाहिए । अब उन देवियों के नाम बतलाये जाते हैं, कामेश्वरी, गुप्तदुर्गा, विन्ध्याचल की कन्दरा में निवास करने वाली, कोटेश्वरी दीपिका नाम वाली, प्रकटी, भुवनेश्वरी, आकाश गंगा, कामाख्या, दिक्करवासिनी मातंगी, ललिता, दुर्गा, भैरवी, सिद्धिदा, बलप्रथमनी, चण्डी, चण्डोग्र, चण्डनायिका, उग्रा, भीमा, शिवा, शांता, जयंती, कालिका, मंगला, भद्रकाली, शिवा, धात्री, कपालिनी, स्वाहा, स्वधामपर्णा, पंचपुष्ककरिणी, सब भूतों की दमनी, मन के प्रोत्साहन के करने वाली, ये चौंसठ

योगिनी हैं । इन सबका मध्य में भली-भाँति अभ्यचर्न करके मन के द्वारा अंगों का यजन करना चाहिए । हृदय, शिर, शिखा, कर्ण, नेत्र, बाहु, पाद, इन अंगों का यजन करे । तीन मूल मन्त्रों के अक्षरों से आदि अंग का पूजन करे । पीछे एक-एक का वर्धन करना चाहिए । अंगों के समूह के पूजन में मन्त्रों प्रयोग करें ।

सिद्धसूत्र और खंग का मूल मन्त्र के द्वारा यजन करे । इसके अनन्तर अष्ट पत्र के मध्य से आठ योगिनियों का पूजन करना चाहिए । पूर्व आदि चारों दिशाओं में शैलपुत्री, चन्द्रघण्टा, स्कन्दमाता और कालरात्रि का पूजन करना चाहिए । चण्डिका, कूष्माण्डी, कात्यायनी, शुभ्रा, महागौरी इनका अग्निकोण में और नैऋत्यादिक में पूजन करे । उसके आगे बलिदान करना चाहिए । हे भैरव! इस प्रकार से जब कल्प के विधान के मानों से देवी की पूजा की जाती है उस समय में स्वयं मंडल में समागमन करके जो भी कुछ देय होता है उसका ग्रहण किया करती है और कामना को भली भाँति प्रदत्त किया करती है ।

इसके अनन्तर पूर्व की ही भाँति ध्यान में स्थित होकर जप का समारम्भ करना चाहिए । हाथ से माला ग्रहण करके मन के द्वारा शिवा का चिंतन करे । गुरुदेव का चिंतन करके मूर्धा में जैसा भी वर्ण आदि होवे मंत्र को कण्ठ से ध्यान करके जो सित वर्ण हिरण्यमय है और हृदय में महामाया की और आत्मा को गुरुदेव के चरणों में देखें । इसके अनन्तर गुरु के मन्त्र का, आत्मा का और देवी की एकता का ध्यान करना चाहिए । फिर सुषुम्ना के मार्ग के द्वारा एकतत्व स्वरूप को षट्चक्र की ओर अवलम्बित करें । उस षटचक्र में भी एक क्षण के लिए प्रयत्नपूर्वक महामाया का ध्यान करे । सोलह चक्रों में स्थित, साधकों के आनन्द को करने वाली देवी का चिंतन करता हुआ साधक अपने कर्म का आरम्भ करे । भौहों के ऊपर तीनों नाड़ियों का प्रांत कहा जाता है । वह प्रांत त्रिषय का स्थान है, वह षट्कोण और चार अंगुल प्रमाण वाला है । उसका वर्ण रक्त है और योग के ज्ञाताओं के द्वारा वह आज्ञाचक्र नाम से कहा जाता है । मनुष्यों के कण्ठ में तीन

नाड़ियों का वेष्टन विद्यमान हुआ करता है । सुषुम्ना, इडा और पिंगलाओं का षट्कोण है वह छः अँगुली का होता है । वह कंठ के मध्य में स्थित शुक्ल वर्णन वाला, षट्चक्र इस नाम से बताया गया है । तीनों नाड़ियों की हृदय में एकता हो जाती है । वही स्थान सोलह अरों वाला होता है जिसका प्रमाण सात अंगुल है । उसको योग के जानने वालों द्वारा आदि षोडष चक्र के नाम से प्रयोग किया गया है । मन्त्रों के ध्यानों का चिन्तन का और जप का क्योंकि आद्य होता है इसी कारण से वह आदि इस नाम से कहा जाता है । जप के आदि में यत्न से जल से अभ्युक्षण करके माला का पूजन करना चाहिए उसे मण्डल के अन्दर रखकर अथवा सव्य हस्त में रखकर करे ।

हे माले! आप महामाया हैं और सब शक्तियों के स्वरूप वाली हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों का वर्ग आप में ही न्यस्त रहते हैं । इस कारण से मेरी सिद्धि को प्रदान करने वाली हो जाओ ।

जप विधि और माला का वर्णन

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करके अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए । मध्यमा अंगुलि के मध्य भाग में उसको रखे और तर्जनी अंगुलि को वर्जित कर देना चाहिए । जपकाल में तर्जनी अंगुलि को सर्वथा दूर ही रखे । अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों से युतकर के अग्रभाग से वहाँ पर स्थापित करके अंगुष्ठ के अग्रभाग के द्वारा माला को रखे और उसमें स्थित प्रत्येक बीज (मानिका) को लेकर, हे भैरव! अर्थ से जप करना चाहिए । प्रत्येक बार मन्त्र को पढ़े और ओष्ठ को चलित करे । माला के बीच (मानिया) पर जप करना चाहिए ये मानिया परस्पर स्पर्श नहीं करे ऐसा ध्यान रखे । हे भैरव! पूर्व बीज का जप करता हुआ पर बीज का संस्पर्श करता है और अंगुष्ठा से उसका स्पर्श होता है वह जप सर्वथा निष्फल हो जाया करता है । दाहिने हाथ से माला को धारण करके अपने हृदय के समीप में रखे । देवी का चिन्तन करते हुए ही जप करना

है और उसके टूट जाने पर तो मारण ही हो जाता है इस प्रकार से जो जप करने का पण्डित जीप किया करता है वह अपनी अभीष्ट कामना की प्राप्ति किया करता है और हीन होने पर इसका उलटा हो जाता है। देव का मन हरण करने वाला जप अन्यत्र भी माला का जप करे। वैसा ही साधन करने वाला करे अन्यथा कभी भी नहीं करना चाहिए। अपनी शक्ति के ही अनुसार जप करे और प्रयत्न के साथ संख्या से ही जप करना चाहिए।

बिना संख्या से जो भी जप किया जाता है उसका वह किया हुआ जप निष्फल ही जाता है। माला से जप करके फिर उस माला को मस्तक में अथवा प्रांशु स्थान में विन्यास करना चाहिए। इसके अनन्तर स्तुति का पाठ करे और जो भी कामना हो उसका निवेदन करे। स्तुति भी एक महामन्त्र की ही भाँति है जो कि समस्त कर्मों का साधन होता है। हे महाभागे! आप दोनों को मैं बताऊँगा जो कि सब सिद्धियों का प्रदायक होता है। समस्त मंगलों की मंगल करने वाली या मंगल स्वरूप है। हे शिवे! आप सभी अर्थों की साधिका हैं।

हे शरण्ये! अर्थात् शरणागति में आ जाने वाले की रक्षा करने वाला है। हे गौरि! आपकी सेवा में नमस्कार है। सात बार आवृत्ति करके साधक इस स्तुति को करे। 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र के द्वारा पाँच प्रणाम करे। अन्य अन्यों के आगे अधिकार भी अपनी इच्छा के अनुसार करे। इसके पीछे योनि मुद्रा को दिखा कर विसर्जन करना चाहिए। दोनों हाथों को प्रसृत करके अर्थात् फैलाकर और उत्तम अञ्जलि करके दोनों अंगुष्ठों के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठकाओं के अग्रभाग का दोनों कनिष्ठकाओं के अग्रभाग को वाम हाथ की अनामिका में उनकी कनिष्ठका न्यास आगे करें।

दाहिने हाथ की अनामिका में दक्षिण की कनिष्ठिका का और अनामिका के पृष्ठभाग में दोनों मध्यमाओं का निवेश करना चाहिए। दोनों तर्जनियों को कनिष्ठा के अग्रभाग में उसके अग्रभाग से ही योजित करना चाहिए। यह योनि मुद्रा कही गई है जो कि देवी की प्रीति के

करने वाली मानी गयी हैं। साधक को तीन बार उस मुद्रा को दिखाना चाहिए और मूल मन्त्र को पढ़कर ही दिखावे। उस मुद्रा को शिव में न्यास करके फिर मण्डल में विन्यास करना चाहिए। ऐशानी दिशा में अग्रहस्त से जो द्वार पद्म से विवर्जित होवे। वहाँ पर साधक को 'ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र से चण्डी को नमस्कार करना चाहिए। 'रक्त चण्डायै नमः' इस मन्त्र से वहाँ पर निर्माल्य का क्षेपण करे। जल में अथवा किसी वृक्ष के मूल में निर्माल्य का भली भाँति त्याग करना चाहिए। इस रीति के विधान के साथ जो मनुष्य शिवा देवी का अभ्यर्चन किया करता है वह अविलम्ब ही अपनी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है जो भी कुछ सब उसके मन में विद्यमान होवें। सबसे प्रथम साधक आधा लाख जप करके विशेष रूप से पुरश्चरण करे जिसमें अनेक प्रकार के नैवेद्य आदि होवें।

एक कुण्ड की मण्डल की ही भाँति ही रचना करे और अष्टमी तिथि में उपवास करना चाहिए। नवमी तिथि में जो कि शुक्ल पक्ष की होवे मनुष्य पाँच रजों के द्वारा गुरु और पिता सविधि में पूर्व की ही मण्डल की रचना करे। इसी विधान से चण्डिका देवी का यजन करना चाहिए। तीन सौ आठ बेलपत्रों के सहित तिलों से उसमें होम का समाचरण करे और तीन सहस्र जप करे। नैवेद्य-पुष्प गन्ध-वस्त्र अर्पित करे जो भी उनको प्रिय होवें। पूर्व में वर्जित तथा अन्य भी पायस आदि इसको समर्पित करे। पूजा के अन्त में उसके जातीय तीन बलि देनी चाहिए। सिन्दूर रत्न और जो-जो स्त्रियों के भूषण होवें अपनी शक्ति के अनुसार निवेदन करे और पुष्प तथा मालायें आदि निवेदित करना चाहिए। महा शक्तिशाली के अन्न के सहित और गाय के व्यंजनों से समन्वित घृतादि के द्वारा नवमी तिथि में देवी के लिए सम्पूर्ण बलि देनी चाहिए। गुरुदेव को दक्षिणा देवे उसमें स्वर्ण-गौ और तिल देवे।

अभिशाप प्राप्त किए हुए, पुत्र रहित, अविद्या से मुक्त, क्रिया से हीन, अल्पज्ञ, वामन (बौना) गुरुनिन्दक, सदा मत्सरता से संयुक्त—ऐसे

गुरु को मन्त्रों में वर्जित कर देना चाहिए । गुरु ही मन्त्र का मूल है और मूल को शुद्ध होने पर ही उससे जो भी उद्‌भूत है वह सफल होता है । इसी कारण से मन्त्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए । शठता, क्रोध, मोह अथवा असम्मति से गुरु के मुख से अथवा कल्पों में मन्त्र को देखकर अथवा छल से मन्त्र का ग्रहण करने पर मनुष्य मन्त्र की चोरी के पाप से तामिस्त्र नामक नरक में जाया करता है । तीन मन्वन्तर तक वह नरक में रहकर फिर पाप योनियों में समुत्पन्न हुआ करता है । शठ, क्रूर, मूर्ख, छद्‌म छल करने वाले और भक्ति से हीन में तथा दोषों से युक्त पुरुष को कभी भी मन्त्र नहीं देना चाहिए । जैसे सुन्दर बीज को जंगल में डाल दिया जाता है वैसा ही अनुपयुक्त मनुष्य को मन्त्र देना भी निष्फल ही होता है । एक लाख से पुरश्चरण पूर्वक कामना की साधना करनी चाहिए । क्योंकि पुरश्चरण से पापों का क्षय हुआ करता है ।

हे श्रेष्ठ नरो! दो लाख मन्त्र जप के द्वारा करे । प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में और बीज संघात के द्वारा करके साधक मनुष्य कवि, वाग्मी पण्डित और यशस्वी हो जाया करता है । हे साधकों में श्रेष्ठ! इसके उपरांत पूजा के स्थान का श्रवण करो । जहाँ-जहाँ पर भी निर्जन स्थान में जे मनुष्य पूजा किया करता है । उसका देवी स्वयं ही पुत्र-पुष्प और फल का तथा जल का आदान किया करती है । पूजा में शिला प्रशस्त होती है तथा स्थण्डिल और निर्जन होना चाहिए । उपांशु जप सभी जपों में उत्तम कहा गया है । अशुचि की दशा में कभी भी महामाया का पूजन नहीं करना चाहिए । जो अत्यन्त भक्ति से युक्त नर हो उसे मन्त्र का स्मरण अवश्य ही करना चाहिए । दाँतों में रक्त किसी भी स्मरण से समुत्पन्न हो जाने पर स्मरण भी नहीं किया करता है जानु के ऊर्ध्व भाग में क्षतज उत्पन्न हो जाने पर नित्य कर्म का भी समाचरण नहीं करना चाहिए । उसके नीचे के भाग में यदि रक्त का स्नान हो जावे तो नैमित्तक कर्म न करे । सूतक में समुत्पन्न होने पर, क्षौर कर्म में, मैथुन में, धूमोद्‌गार में, वन्ति हो जाने पर नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए । द्रव्य के मुक्त होने पर अजीर्ण में और कुछ भी न खाकर

मनुष्य सूतक में तथा मृतक में नित्य कर्म करो । पुत्र, पुष्प, फल और जल, ताम्बूल भोजन के ही रूप में माना गया है ।

कण से लेकर पिप्पली के पर्यंत, हे नर श्रेष्ठ! भेषज के बिना जल के भी भोजन से और फल खाकर समाचरण नहीं करे । सदा नैमित्तक कर्मों के साथ नित्य क्रिया को निवर्त्तित करे । जलों का, गूढ़ पाद, कृमि, अण्ड के पदादिक को काम से हाथ के द्वारा सम्पर्क करके नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए । जब तक एक वर्ष हो उसके अन्त तक मन से भी आचरण न करे । महागुरु के निपात हो जाने पर कुछ भी काम्य कर्म का समाचरण नहीं करना चाहिए । आर्त्त्विज्य, ब्रह्म यज्ञ, श्राद्ध, देव यज्ञ गुरु का और विप्र का आक्षेप करके और हाथ से प्रहृत करके, हे भैरव! रेतस के पात हो जाने पर नित्य कर्मों को नहीं करना चाहिए । आसन और अर्घ्य पात्र के भग्न हो जाने पर आसादित नहीं करना चाहिए ।

ऊसर में कृमियों से संयुत होने पर उसको भ्रष्ट करके भी वहाँ पर अर्चन नहीं करना चाहिए । नीचे स्थान पर आसन रख कर शुचि और संयत मन वाला होकर ही, हे भैरव! चण्डिका देवी तथा अन्य देव का अर्चन नहीं करना चाहिए । दिशाओं के विभाग में कोवेरी दिशा शिवा की प्रीति के देने वाली हुआ करती है । इस कारण से उस देवी के सम्मुख में ही स्थित होकर सदा ही चण्डिका का अभ्यर्चन करना चाहिए । पुष्प भी ऐसा होना चाहिए जो कृमियों से समिश्रित न होवे, विशीर्ण, भग्न और मिट्‌टी में पड़ा हुआ नहीं होवे । जो पुष्प चूहों से उद्‌भूत हो और केशों से युक्त हो उनका परिवर्जन रत्नपूर्वक कर देना चाहिए । पाचना किया हुआ, दूसरे का तथा पर्युषित (बासी) अत्यन्त मृष्द, पैर से स्पर्श किया हुआ हो तो ऐसे पुष्प को वर्जित कर देना चाहिए अर्थात् पूजा के कर्म में कभी ग्रहण नहीं करे । यह शिव का परमाधिक मनोहर विधान है इसको जो भी साधक उसके पूजन में किया करता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त करके, हे भैरव! शीघ्र ही चण्डिका देवी के गृह में प्रयाण करने वाला होता है ।

महामाया मन्त्र का कवच

श्री भगवान् ने कहा–हे बेताल भैरव! अब इस मन्त्र के कवचन का श्रवण करो जो कि वैष्णवी तत्र संज्ञा करने वाले का और विशेष रूप से वैयणवी देवी का है । वहाँ पर मन्त्रादि अक्षर वासुदेव के स्वरूप का धारण करने वाला है । दूसरा वर्ण ब्रह्मा ही हैं, तीसरा चन्द्रशेखर है । चतुर्थ गज वक्त्र है, पाँचवाँ दिवाकर है, स्वयं शक्ति यकार है जो जगन्मयी महामाया है । यकार महालक्ष्मी है और शेष वर्ण सरस्वती है । पूर्ण वर्ण की योगिनी शैलपुत्री कही गयी है । द्वितीय वर्ण की कुष्माण्डा मानी गयी है । तकार की स्कन्द माता है । देखो कात्यायनी स्वयं है । सप्तम की कालरात्रि है जो महादेवी है, यह संस्थिति है । प्रथम वर्ण कवच है तथा योगिनी कवच है । पीछे देवौद्य कवच है तथा देवीदिक् कवच है ।

इसके अनन्तर पार्श्व कवच है और द्वितीयन्ता व्यय का कवच है । इसके पश्चात् षड्वर्ण कवच है । अभेद्य कवच है, जो सर्वत्राण परायण है । ये आठ कवच हैं इनको जो नरों में उत्तम है जानता है । वह मैं ही महादेवी हूँ और शक्तिमान् देवी के रूप वाला है इस वैष्णवी तन्त्र कवच का नारद ऋषि है और अनुष्टुप छन्द है । कात्यायनी इसका देवता है । इसका सब कामों में अर्थों के साधन में विनियोग होता है । 'अ' पूर्व दिशा में रक्षा करे और 'का' सदा आग्नेयी में रक्षा करे । 'य' यम दिशा में रक्षा करे और 'द' नैर्ऋत दिशा में सर्वदा मेरी रक्षा करे । पाश्चात्य दिशा में 'त' रक्षा करे तथा वायव्य दिशा में शक्ति रक्षा करे । 'य' मुझको उत्तर दिशा में रक्षित करे तथा 'य' ईशान दिशा में रक्षा करे । 'स' मेरी मस्तक में रक्षा करे और 'क' मेरी दाहिने बाहु में रक्षा करे । 'च' मेरी बायीं बाहु में रक्षा करें और 'ट' सदा मेरे हृदय में रक्षा करें । कंठ देश में 'त' रक्षा करे और मेरी कटि की सशक्ति रक्षा करे ।

'य' दाहिने पैर में रक्षा करे तथा 'प' वाम पाद में रक्षा करे शैलपुत्री पूर्व में, चण्डिका आग्नेयी दिशा में मेरी रक्षा करे । याम्य चन्द्रघटा रक्षा करे जो भय की भीति की विवर्धिनी है । जगतों की

जननी कूष्माण्डी मेरे नैर्ऋत्य में मेरी रक्षा करें। पश्चिम दिशा में स्कन्द माता मेरी सदा ही रक्षा करें। वाव्यव दिशा में मेरी कात्यायनी रक्षा करे जो सदा ही रक्षा करे। तथा ऐशानी दिशा में निरन्तर पावनी मेरी रक्षा करे, जो सदा लोकेश्वरी है। कालरात्रि कौबेरी दिशा में स्वयं सदा मेरी रक्षा करे तथा ऐशानी दिशा में निरन्तर पावनी मेरी रक्षा करे। मेरे दोनों नेत्रों की भगवान् वासुदेव रक्षा करें जो नित्य ही सनातन प्रभु हैं। बदन में मेरी ब्रह्मा रक्षा करें जो पद्मयोनि और अयोनिज हैं अर्थात् किसी योनि से उत्पन्न नहीं होकर केवल पद्म से ही समुत्पन्न हुए हैं। मेरे नासिका के भाग में मेरी सर्वदा चन्द्रशेखर प्रभु रक्षा करें। भगवान् शम्भु के पुत्र गजवक्त्र (गणेश) मेरे दोनों स्तनों की नित्य रक्षा करें। मेरे बाँये और दाहिने हाथों की नित्य दिवाकर रक्षा करें। परमेश्वरी महामाया स्वयं मेरी नाभि में रक्षा करें।

महालक्ष्मी गुह्य की रक्षा करे, तन्तुओं की रक्षा सरस्वती करे। शुभा महामाया पूर्व भाग में मेरी नित्य ही रक्षा करें। वरानिनी अग्निज्वाला आग्नेयी दिशा में नित्य ही रक्षा करे। रुद्राणी मेरी याम्य दिशा में रक्षा करे और चण्ड नासिका नैर्ऋत्य में रक्षा करे। महेश्वरी उग्रचण्डा पश्चिम में नित्य ही रक्षा करें। वायव्य में प्रचण्डा और कौबेरी दिशा में घोररूपिणी रक्षा करे। ऐशानी दिशा में ईश्वरी सनातनी नित्य ही मेरी रक्षा करे। महामाया ऊपर की और नीचे की ओर परमेश्वरी रक्षा करे। उग्रा मेरी आगे की ओर रक्षा करे तथा पृष्ठभाग में वैष्णवी रक्षा करे। दक्षिण पार्श्व में ब्रह्माणी शोभना नित्य मेरी रक्षा करे। वृषभध्वजा माहेश्वरी वाम में पार्श्व में, ब्राह्मणी शोभना नित्य मेरी रक्षा करे। पर्वत में कौमारी और जल में वाराही मेरी रक्षा करे। दाढ़ वालों के भय में नारसिंहीं रक्षा करे, आकाश में इन्द्री तथा सर्वत्र जल में और स्थल से मेरी रक्षा करें। समस्त अंगुलियों की रक्षा सेतु करे तथा देवादि कर्णों की रक्षा करें। देवान्त चिबुक में रक्षा करे और दोनों पार्श्वों में शक्ति पञ्चम रक्षा करें। उसी भाँति ही मेरे ऊरुओं की रक्षा करे और माया मेरी दोनों जाँघों की रक्षा करे 'यः' सर्वदा

समस्त इन्द्रियों की और रोमों के कूपों की रक्षा करे । मेरी त्वचा में मुझको सर्वदा भगवान् शम्भु रक्षा करें । नाखून, दाँत, कर और ओष्ठ आदि में सदैव ही 'राँ' मेरी रक्षा करे । मेरी बस्ती में देवादि रक्षा करे और स्तनों तथा कुक्षों में देवांत मेरी रक्षा करे । 'यः' सेतु एतदादि में और दे के बाह्य भाग में मेरी रक्षा करें । आज्ञाचक्र में तथा ललाटकारा में वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र मेरी नित्य ही रक्षा करती हुई स्थित रहे । समस्त कानों की नाड़ियों में और पार्श्व कक्ष शिखाओं में, रुधिर, स्नायु, मज्जाओं में, मष्तिष्कों में और पार्वों में द्वितीयाष्टक्षर मन्त्र कवच सभी ओर रक्षा करें ।

रेतस (वीर्य), वायु में, नाभि के रन्ध्र में, पृष्ठ सन्धियों में सभी और षडक्षर यह तीसरा मन्त्र सर्वदा मेरी रक्षा करे । नासारन्ध्र में महामाया और कण्ठरन्ध्र में वैष्ववी रक्षा करे तथा समस्त संधियों में दुर्गाति हारिणी दुर्गा मेरी रक्षा करे । श्रोतों में 'हूँ फट्' यह कालिका संधियों में दुर्गाति हारिणी दुर्गा मेरी रक्षा करे । श्रोतों में 'हूँ फट्' यह कालिका नित्य रक्षा करे । नेत्र में नेत्र त्रय बीज रक्षा करने के लिए सदा स्थित रहें । ॐ ऐं ह्रीं हैं नासिका में रक्षा करती हुई चंडिका रहे । ॐ ह्रीं हूँ तारा सदा मेरे जिह्वा मूल में स्थित रहे । मेरे हृदय में उत्तम ज्ञान की रक्षा करने के लिए सेतु स्थित रहें । ॐ क्षौं फट् महामाया सभी और मेरी रक्षा करें । ॐ युँ सः प्राणान् कौशिकी मेरे प्राणों की रक्षा करें । ह्रीं ह्रीं सौं भर्ग की दयिता देह शून्यों में मेरी रक्षा करें । ॐ नमः शैलपुत्री सदा सब रोगों का प्रमार्जन करे । ॐ ह्रीं सः हस्फ्रें सः अस्त्राय फट् शिवदूती सिंह, व्याघ्र के भय से और रण से नित्य रक्षा करे । ह्रीं सब अस्त्रों से स्थित रहे । ॐ ह्रां ह्रीं सः चन्द्रघण्टा कर्णों के छिद्रों में मेरी रक्षा करें ।

ॐ क्रीं सः कामेश्वरी कामों में अभिस्थिति होवें और रक्षा करें । ॐ आं हूँ फट् प्रचण्डा शत्रुओं को और विघ्नों को विमर्दित करे । ॐ अं शूल से वैष्णवी जगदीश्वरी नित्य ही रक्षा करे । ॐव्रं ब्रह्माणी चक्र से रक्षा करे और रुद्राणी शक्ति से रक्षा करे । ॐ टं कौमारी वज्र से

रक्षा करे और तं वाराही काण्ड से रक्षा करे । ॐ यं नारसिंहीं क्रव्यादों से और अस्त्र से मेरी रक्षा करे । शस्त्रों से समस्त अस्त्रों से, मन्त्रों से और अनिष्ट मन्त्र से चण्डिका मेरी रक्षा करें । यं सं देवी के लिए बारम्बार नमस्कार है । ऐन्द्रीं विश्वास का घात करने वालों से मेरे मन की रक्षा करे । ॐ महामाया के लिए नमस्कार है, ॐ वैष्णवी के लिए बारम्बार नमस्कार है । हे परमेश्वर समस्त भूतों से सर्वत्र मेरी रक्षा करो । आधार में, वायु मार्ग में, समिद्ध वह्नि में वरदा के द्वारा वह आठ अक्षरों वाला मन्त्र प्रवेश करे । जो ब्रह्मा मस्तक में धारण करते हैं गले में हरि रक्षा करते हैं, हृदय में स्थित की चन्द्रचूड़ रक्षा करते हैं पदमगर्भ अबीज निखिल निरतिशय प्रधान त्वं मेरी रक्षा करें ।

आद्य शेष स्वरों के समुदायों से सम पर्वतरों से बिना स्वर से भी युक्तों से, अनुस्वार के सहित बिना विसर्गों वालो से, हरि हर विदित ओ एक सहस्त्र आठ हैं । वैष्णवी तन्त्र मन्त्रों का सेतुबन्ध निरन्तर निवास करना है वही परम पवित्र और अपरज भूतल और व्योम के भोग में मेरी रक्षा करें । आठ अंग तथा आठ मधुमती रचित तथा आठ सिद्धियाँ आठ-आठ की संख्या जगत् में रतिकला और क्षिप्रकांङ्क्षाष्ठ योग मुझ में आठ अक्षर क्षरण करें । यह उसका कवच बतला दिया गया है जो कि धर्म, और काम का साधन करने वाला है । यह परम रहस्य है और सभी अर्थों का साधक है । मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो कोई एक बार श्रवण कर लेता है वह सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और परलोक में शिव के स्वरूप का भाव किया करता है । मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो एक बार भी पढ़ता है वह सभी यज्ञों के फलों का लाभ किया करता है, इसमें कुछ संशय नहीं है । जैसे सिंह हाथियों को परास्त कर देता और उसी भाँति वह संग्रामों में शत्रुओं पर विजयी हो जाता है । जैसे अग्नि तृण को दग्ध कर देती है वैसे ही वह पुरुष सदा ही शत्रु का दाह कर देता है । उसके शरीर में शस्त्र और अस्त्र प्रवेश नहीं किया करते हैं । उसको न कभी रोग होता है और न कभी दुःख ही होता है ।

गुटिका, अंजन, पाताल, पादलेप, रसांजन और उच्चाटन आदि ये समस्त सिद्धियाँ प्रसन्न हो जाया करती हैं । पारद की गुटिका आकाश और भू गामिनी होती है । अञ्जन लगाते ही ऊपर और नीचे की गुप्त वस्तुऐं दिखाई देने लगती हैं । उसकी गति वायु के ही समान हो जाया करती हैं जो अन्यों के द्वारा कभी वारित नहीं हुआ करती है । वह मनुष्य लम्बी आयु वाला हो जाता है और स्वेच्छानुसार योग करने वाला भी हो जाया करता है । वह धनवान् होता है । अष्टमी तिथि में संयत हो नवमी में विधि के अनुसार शिवा का पूजन करके मन में विधान से ही शिवा का विचिन्तन करे । जो मनुष्य कवच का न्यास देह में किया करता है उसका पुण्य का फल अब श्रवण करो । वह समस्त व्याधियों पर जिय पाने वाला, सौ वर्ष की आयु वाला, रूप से संयुत और सदा गुणों वाला होता है । धन और रत्नों के समूह से परिपूर्ण और वह विद्यमान होता है । उसके शरीर को अग्नि दग्ध नहीं करती है और जल उसको भिगो नहीं सकते हैं । वायु उसको शुष्क नहीं करता है और राक्षस उसकी हिंसा नहीं किया करता है । शास्त्र उसका छेदन नहीं करते हैं और भास्कर से उसको ज्वर नहीं हुआ करता है । वेताल, पिशाच, राक्षस, और गुणों के नायक सभी उसके अधीन हो जाते हैं ।

चारों प्रकार के भूतों के समूह सभी उनके वश में हो जाया करते हैं जो मनुष्य नित्य ही भक्ति की भावना से भगवान हर का बनाया हुआ कवच का पाठ किया करता है । वह मैं ही महादेव हूँ और मृत का महामाया हूँ । उस पुरुष के धर्म अर्थ काम और मोक्ष उसक कर में ही नित्य स्थित रहा करते हैं । वह अर्थों के द्वारा अन्य के लिए वरदान वाला होता है तथा बड़ा पण्डित हो जाता है । कविता करने की शक्ति और सत्य भाषण करना उसको निरन्तर हो जाया करता है । वह सहस्त्रों श्लोकों को बोला करता है और वह श्रुतिधर हो जाता है । हे भैरवी! जिसके घर में यह कवच लिखा हुआ स्थिर रहा करता है उसकी कहीं पर भी दुर्गति नहीं हुआ करती है और उसको कोई भी दोष नहीं लगता है, उस पुरुष के सभी ग्रह सन्तुष्ट हो जाया करते हैं

और उसके वश में राजा हो जाते हैं । जिस राजा के राज्य में इस कवच का ज्ञाता रहता हैं वहाँ पर ईंतियाँ कभी नहीं हुआ करती हैं । टिड्डी आदि की वृद्धि वाली छः ईंतियाँ होती हैं । सेतु देव है, शक्ति बीज है, पञ्चमोह तुम्हारे लिए नमस्कार है । वायुबल से इसके लिए वह द्वितीय अष्टाक्षर है, सेतुदेव है, वैष्णवी के लिए यह षडक्षर है, ऐसा कहा गया है ।

ये दोनों जिस पुरुष की जिह्वा के अग्रभाग में होते हैं उसके शरीर में महामाया देवी निश्चय ही सदा स्थित रहती है । मन्त्रों का प्रणव सेतु होता है और उसका सेतु प्रणव कहा गया है । पूर्व में अनोड्कृत क्षरित होता है और परस्तात् विशीर्ण हो जाया करता है । नमस्कार महामन्त्र देव है यह सुरों के द्वारा कहा जाता है । द्विजातियों का यही मन्त्र है और शूद्रों के सब कर्म में होता है । अकार, उकार और मकार को प्रजापति ने तीनों वेदों में उद्धृत करके पहले प्रणव का निर्माण किया था । वह द्विजातियों का उदात्त है और राजाओं का अनुदात्त है । वैश्यों का प्रचित है । इसका मन से भी स्मरण नहीं करना चाहिए । जो यह चौदह स्वरों वाला है । शेष ओंकार संज्ञा वाला है और वह अनुस्वार, चन्द्रों से शूद्रों का सेतु कहा जाता है । जिस तरह से बिना सेतु वाला जल क्षण भर में ही निम्न स्थल में प्रसर्पित हो जाया करता है ठीक उसी भाँति बिना सेतु वाला मन्त्र यज्वाओं का क्षरित हो जाया करता है ।

इस कारण से सर्वत्र मन्त्रों में द्विजातिगण चार वर्णों वाले होते हैं । दोनों पार्श्वों में सेतु का आदान करके जप के कर्म का समारम्भ करे । शूद्रों का आदि सेतु अथवा द्विसेतु यथेच्छ से दो सेतु समाख्यात हैं । और्व ने कहा—यह आपको मैंने त्र्यम्बक् के द्वारा कहा हुअ कवच कह दिया है । वह कवच अभेद्य है और कवचों के अष्टक में अत्युत्तम है । महामाया मन्त्र कल्प कवच मन्त्र से संयुत है । यह षडक्षर समायुक्त है और तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है । हे नृपशार्दूल! इसका जाप नित्य ही भक्ति से युक्त होकर पढ़ते हुए और वैष्णवी के मन्त्र का जप करते हुए सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है ।

मन्त्र साधना के अंग

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भैरव के द्वारा इस सम्वाद को राजा सगर ने श्रवण करके और भर्ग से वेताल के द्वारा भी सुनकर पुनः और्व से पूछा । सगर ने कहा—हे द्विज! आपने मन्त्र अंगों के सहित बतला दिया है । हे द्विजोत्तम! अब देवी के अंगमन्त्र मुझसे कहिए । तथा समस्त्र मन्त्र और सभी ओर पूजा के स्थान हैं । ठीक उसी भाँति उत्तर मन्त्र और पृथक्-पृथक् कवचों को और कामाख्यान के माहात्म्य को जो रहस्य और मन्त्रों के सहित होवे । जैसा भगवान उमापति महादेव ने कहा था और वेताल, भैरव दोनों को बतलाया था उसे विस्तार सहित आप कहने की कृपा करें । यह महान् अद्भुत है, इसका श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है । जबकि आपको इसे कहते हुए मैं देखता हूँ तो मुझे बहुत ही अधिक कौतूहल होता है । और्व ने कहा—हे राज शार्दूल! जो भी उमापति ने अपने पुत्रों से कहा था और जो एक महान् आख्यान है । मैं अब आपको कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए । यह परमाधिक रहस्य है, बहुत ही पवित्र है और पापों का नाश करने वाला है ।

पुरुषों का परम स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याण का आलय है और इसको गर्भ में पुसंवन कहा गया है, यह कल्याण करने वाला, परम भद्र और चारों वर्गों के फल का प्रदान करने वाला हैं । इसको ऐसे व्यक्ति को भी भूलकर भी नहीं देना चाहिए जो शठ होवे, चंचल चित्त वाला हो । जो नास्तिक हो, जो अजित आत्मा वाला हो, जो देव, द्विज और गुरु वर्ग का मिथ्या निर्बन्धकारी होवे । जो पापी हो तथा अभिषाप्त हो, खञ्ज हो, काणा हो और रोगी हो ऐसे पुरुष से यह नहीं करना चाहिए और न देना भी चाहिए । जिसमें श्रद्धा का अभाव हो उसे भी यह न देवे । उमापति ने उन दोनों को वेताल, भैरव से कहकर अर्थात् इस महामाया के मन्त्र कल्प का उपदेश देकर पुनः यह बोले थे । भगवान् ने कहा—उत्तम मन्त्र तो मैंने कह दिया है किन्तु अब मूल मन्त्र को बताऊँगा वह ही सर्वप्रथम जान लो । यह सब पूजाओं में संगत हैं ।

आचमन करके, शुचिता को प्राप्त हुआ, सुन्दर रीति से स्नान किया हुआ देव पूजा में स्थित होवे । पूजा की वेदी से बाहर स्थित होकर बुद्धि से चार हाथों के अन्तर में स्थित रहे । घर में अथवा द्वार देश में स्थित होता हुआ शिर से गुरु को प्रणाम करे अपने इष्टदेव को इसी भाँति प्रणाम करना चाहिए तथा चित्त के ही द्वारा दिक्पालों को प्रणाम करना चाहिए ।

जो पाप में अथवा पूर्वकाल में अर्जित किया है उन दिनों में अथवा अन्य किसी दिन में प्रायश्चितों के द्वारा अपनुन्न नहीं किया गया है उस पाप का बुद्धि के द्वारा स्मरण करना चाहिए । उस पाप के अपनोदन करने के लिए दो मन्त्रों का उच्चारण करे । हे देवि! जो कि एक प्राकृत चित्त है पाप से आक्रांत हो गया था आप मेरे चित्त से आप पाप को निकाल दो, हुँ फट् आपके लिए नमस्कार है । पाप पुण्य के कुछ देव प्रत्यक्षा देखने वाले हैं उनमें सूर्य, सोम, यम, काल, और पाँच महाभूत ये नौ हैं । ये शुभ और कर्म के नौ देव साक्षी होते हैं । इसके अनन्तर 'हूँ फट्' इसके पार्श्व में, ऊर्ध्व में और अधोभाग में आत्मा को क्रोध की दृष्टि से निरीक्षण करके सुनना चाहिए । ऐसा करने पर प्रथम से पापों के उत्सारण कर्म किए जाने पर जो भी दृढ़त्तर पाप होता है वह दूर ही स्थित रहा करता है । पूजन के अतीत होने पर जो अपने स्थान को पुनः प्रणाम करता है तो जो भी अल्पतर पाप हो वह नाश को प्राप्त हो जाया करता है । ॐ अः फट्, इस मन्त्र के द्वारा पूजा की वेदी से वह प्रवेश करे ।

पूजन में पापों के त्याग कर देने वाले की जो भी अभीष्ट कामना है वह क्षण भर में पूरी हो जाया करती है । पुष्प, नैवेद्य, गन्ध प्रभृति 'ह्रीं हूँ फट्' मन्त्र से जो अपने द्वारा अवज्ञात न होवें भली भाँति से पुष्प आदि का दूषण, स्पर्श न करने के योग्य का स्पर्श, जो अन्याय से अर्जित होवे तथा निर्माल्य में संतुष्ट में जो कीट आदि का आरोहरण हो वह सभी नाश को प्राप्त हो जाता है । नैवेद्य आदि के अवलोकन से फिर 'रम्', इस मन्त्र से दीप की शिखा का संस्पर्श करना चाहिए ।

उसका वह दीप स्पर्शन मात्र से ही सुभग हो जाता है । पतंग कीट-केश आदि के दाह से, कन्याद से संहत, वसा, मज्जा, अस्ति सम्पूति जो यज्ञादि में उपयोजन हैं ऐसे अज्ञात रूप वाला सभी दोष स्पर्श से ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता है । नारसिंह मन्त्र के द्वारा देवतीर्थ से संस्पर्श करे । याजक को चाहिए कि घट के मध्य में स्थित जल को देखते हुए अभ्युक्षण करे ।

बांये हाथ से पकड़ कर उस समय में वाम पार्श्व में स्थित पात्र को आधार मन्त्र के द्वारा संस्कार करता हुआ जल का संस्पर्श करना चाहिए । यहाँ पर यज्ञ दान से अपेय आदि का संसृष्टि संगता है । शव के स्पर्श से जलाशय और स्नान से संगत जल से दूषण सब देव पूजन में विष्ट हो जाया करते हैं । चन्द्रार्थ बिन्दु से रहित यह नारसिंह मन्त्र है । अपनी संज्ञादि का अक्षर जो बिन्दु और चन्द्रार्द्ध से परियोजित होवे । इसको कार्य की सिद्धि के लिए आधार मन्त्र साधक जान लेवे । फिर आधार मन्त्र के द्वारा अपने आसन को हाथों से लाकर और रखकर शीघ्र ही पाणि में संस्पर्श करे । उस समय में उस श्रेष्ठ आसन पर आत्मा मन्त्र के द्वारा उपवेशन करे ।

पूर्व में सोम से समन्वित स्वाक्षर के समाहूत करके साधक को बिन्दु के सहित आत्मा मन्त्र जानना चाहिए । इसके अनन्तर नाद बिन्दु से समन्वित मातृका न्यास करे । विचक्षण पुरुष को अपने शरीर में मातृका के मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए । जो भी दुष्ट हो तथा स्पष्ट हो और मात्राओं के भ्रष्ट आदि का दोष होवे न्यास किए हुए मातृका के मन्त्र साथ ही उनका नाश कर दिया करते हैं । समस्त व्यंजन तथा विष्णु आदि स्वर ये सभी मातृका के मन्त्र है जो कि चन्द्रबिन्दु के विभूषण वाले हैं । सब युगान्त स्वयं बन्धों के न्यस्त होने पर न्यूनता की पूर्ति है । विन्यास की हुई मातृका स्वयं ही मन्त्र में और कल्प में न्यूनता की पूर्ति कर देती है । जिसमें एक मात्रा हो तो वह ह्रस्व होता है मात्रा का अर्थ कम से कम समय होता है । दो मात्राओं वाला स्वर दीघ्र कहा जाता है । तीन मात्राओं वाला या दो से अधिक मात्राओं वाला स्वर प्लुत जानना चाहिए । वर्ण इसी प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ।

सभी वर्णों की मात्रा देवियाँ ही मातृका हैं । वे शिवदूती प्रभृति है । तनु में स्थित उसके न्यास हैं । ये उन न्यूनताओं की पूर्ति किया करते हैं तथा शीघ्र ही चतुर्वर्ग को देती हैं और सुतों के पूजन में सदा ही रक्ष किया करती हैं । सर्वदा मातृका का न्यास करना धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के चार वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और सभी कामनाओं को देने वाला है तथा यह तुष्टि और पुष्टि कर भी देने वाला होता है । जो मनुष्य सुरों के पूजन के बिना भी मातृका का न्यास किया करता है उससे चारों प्रकार का भूतों का समूह निरन्तर भयभीत रहा करता है । उस महान् ओज वाले पुरुष के दर्शन करने के लिए देवगण भी स्पृहा किया करते हैं । उसमें ऐसी विलक्षण शक्ति समुत्पन्न हो जाती है कि वह सबको अपने वश में कर लिया करता है और स्वयं कभी भी पराभव को प्राप्त नहीं होता है ।

साधक को चाहिए कि कुसुम को विष्णु के मन्त्र के द्वारा अंगुलि के अग्र भाग से विमर्दन के लिए ग्रहण करे और इसका ग्रहण कर शोधन के कर्म में करना चाहिए । उस कुसुम को ग्रहण करके हाथों से मर्दन करना चाहिए । उपान्त सामिचन्द्र से राजित, शून्य से संयुत, रुद्रान्तोपरि संसृष्ट यह मन्त्र वैष्णव मन्त्र माना गया है । प्रासाद मन्त्र के द्वारा साधक अंगुलि के अग्र भाग से ग्रहण करके करों से पुष्प मर्दन करे । काम बीज के द्वारा निमन्थन करे ब्राह्मण के द्वारा अवघ्राण करे । ऐशानी दिशा में विशेष रूप से प्रसाद के द्वारा परित्याग करना चाहिए । ऐसा करने पर करों की अनुपम विशुद्धि होती है । जलों का, गूढ़पाद आदि के स्पर्श से विशोधन करने से विशुद्धि हुआ करती है । जो हाथों में दुर्गन्धि एवं उच्छिष्ट के संस्पर्श से दूषण होता है । वह सब अज्ञान रूप वाला है उसका सुन्दर विधान से विनाश कर देता है । पुष्पों के ग्रहण करने से अंगुलियों के अग्रभाग शुद्ध हो जाते हैं और करों के दोनों तले पुष्पों के मर्दन से विशुद्धि को प्राप्त होते हैं । सभी तीर्थ नासिका में और कर के प्रति समापात होते हैं । हे भैरव! इस कारण से ये कार्य यत्नों के साथ करने चाहिए ।

शम्भु चूड़ा और बिन्दु से युक्त हो वह प्रसाद कहा जाता है । वासुदेव इन्द्र बिन्दुओं से कर्म बीज जानना चाहिए । व्यञ्जन और आद्य दन्त्य और आद्य दन्त्य पूर्वक तथा पीछे आद्य दन्त्यद्वय व्यंजन होवे जिसके उत्तर में प्रणव हो, यह ब्रह्मबीज कहा गया है जो सब पापों का विनाश करने वाला है । मुख की शुद्धि के लिए प्रथम दीर्घ प्रणव का उच्चारण करे । वासुदेव के बीज के द्वारा प्राणायाम का समाचरण करे । जिस देव का जो भी रूप हो वैसा ही भूषण और वाहन होना चाहिए । उसके पूजन में वह ही पूरक आदि के द्वारा चिन्तन करना चाहिए । जो सदा पूर्ण चन्द्र के समान है । प्रथम गंगावतार बीज से धेनु मुद्रा के द्वारा अर्घ्यपात्र के सहित जल में अमृतीकरण करना चाहिए । चन्द्र के खण्ड से युत कण्ठ में पञ्चमी बल बीजक है ।

यह गंगावतार बीज है जो सब पापों का नाश करने वाला है । दो मात्राओं से युत विष्णु बलबीज उदाहृत किया गया है । अमृतीकरण के होने पर जो जल दिया जाता है, वह अमृत होकर सुरों के पूजन में देवता की प्रीति के लिए जाया करता है । पूजा के मात्र के जल की और गंगा भी स्वयं आ जाया करती है । धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए अमृतीकरण करना चाहिए । अभीष्ट सुर पूजन में स्वास्तिक, गोमुख, पद्म अर्धस्वस्तिक, पर्यंक आसन प्रशस्त होते हैं । वह पादयन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रों से स्वत्युत्तम है । दूध पुरुष को उसे प्रथम वाराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए । अग्निबीज काया आदि समव्याप्तिक चतुर्थ छठवें स्वरोपरिचर वाराह बीज कहा जाता है । मन्त्र के दो पादों में किया हुआ वाराह बीज संशुद्ध है । अभीष्ट देव का दर्शन करते हुए पाद रोष को नहीं देखा करता है ।

अन्य प्रकार से सुरों के पूजन में पाददर्शन युक्त नहीं होता है । मन्त्र के द्वारा अभीष्ट का लाभ किया करता है । इस कारण से मन्त्र में ही होना चाहिए । साधना करने वाले पुरुष को कर्म मन्त्र के द्वारा कर की कच्छपिका बनावे । वहाँ पर संस्कार किए हुए पुरुष से अपने शरीर का पूजन करे । उस पुष्प के द्वारा पूजित होने पर अपने आपको देवत्य ही

जाता है । दूसरा वैष्णवी तन्त्र बीज है जो बिन्दु इन्द्र से संयुत है । षष्ठ स्वर के उपरिचर कूर्मबीज कीर्तित किया गया है । दहन और प्लवन के आदि में दशम रन्ध्र का भेदन साधक को प्रणव मन्त्र के द्वारा भेदन करना चाहिए । वासुदेव के बीच के द्वारा आकाश में विनिधापति करे । प्रणव के सहित जो बीज है वह-सब प्रतिपादित कर दिया है ।

आज भी समस्त देवगण क्षति को पद से स्पर्श नहीं किया करते हैं और अपने शरीर की छाया को भूतल में योजित नहीं किया करते हैं । उस दोष के मोक्ष के लिए क्षिति पर मन्त्रराज को लिखना चाहिए । प्रोक्षण करने से अथवा वीक्षण से भी भेदिनी, शुद्ध हो जाया करती है । स्थण्डिल का वीक्षण धर्म बीज के द्वारा समाचरण करना चाहिए । दान्त बल से संयुक्त और बिन्दु से समन्वित धर्म बीज कहा गया है जो धर्म, काम और अर्थ का साधन होता है । आदान, धारण तथा संस्थान, पूजन सलिल से ही पूर्ण, गन्ध और पुरुष का निक्षेप मण्डल का विन्यास और पुनः पुष्प का सश्रय अमृतीकरण यह पात्र प्रतिपति है । मनुष्य अनिरुद्ध के द्वारा आदान करके अस्त्र मन्त्र से धारण करे और पात्र में वाग्बीजराग्र से मण्डल न्यास योजित करे ।

आद्य बिन्दु के उत्तर अनिरुद्ध बीज होता है । वह अनिरुद्ध जब फट् अन्त में होता है तो अस्त्र मन्त्र कहा गया है । शम्भु आद्यबल प्रान्तःसपूर्व ये संहिता है । पर से पूर्व समाप्ति के अन्तवाले बिन्दु के सहित तीसरा वाग्भव बीज है यह सकल निष्फल नाम वाला है । चतुर्थ स्वर संकल्प संसृष्टि में बिन्दु से और इन्दु से वर्गादि का द्वितीय तो वाग्बीज कहा जाता है और यह कामराज नाम वाला है जो धर्म, अर्थ और काम का साधन होता है । मनोभाव का बीज कुण्डली शक्ति से संयुक्त होता है वह वासुदेव से सम्पृक्त होता है जो आद्य वाग्भव कहा गया है । एक एक काम बीज आदि तीनों से तो त्रिपुरामद है । आद्य, तृतीय सामीन्दु बिंदुओं से समलंकृत है । यह मदन का मन्त्र है जो काम के भोग का फल प्रदान करने वाला है ।

ओत्, ऐत के रूप से विन्यस्त यन्त्र भास्कर के सदृश है । उसको

में बताऊँगा जो कि कुण्डली की शक्ति है । जो अभेद से कही जाती है । मार्जक इस मन्त्र के द्वारा भूतों का अपसारण करे इसके करने पर स्थानभूत जो है वे सुरार्चन के समय में दूर चले जाया करते हैं । भूतों के वहाँ पर स्थित रहने पर सदा ही वे लुब्धक नैवेद्य मण्डल को विशेष रूप से लुप्त कर दिया करते हैं और देवता उसका ग्रहण नहीं किया करते हैं । इस कारण से यत्नपूर्वक भूतों का अपसारण करना ही चाहिए । वह अपसारण अस्त्र मंत्र के सहित ही करे । उसका मन्त्र यह कहा गया है । वे भूत इस भूमि के पालक होवें । मैं भूतों के अविरोधक के द्वारा ही पूजा कर्म कर रहा हूँ । साधक इसके द्वारा स्थण्डिल से भूतों को अपसारित करके इसके पश्चात् दिग्बन्धन में मन्त्र स्थित होता है ।

अपनी आत्मा के पूजन के द्वारा ही कर्म के आरम्भ करने की अधिकारिता प्राप्त हुआ करती है और पूजित आसन योगपीठ के सदृश हो जाया करता है । यह पाँचों भूतों के स्वरूप वाले वपु स्वाभाविक रूप से सदा ही अशुद्ध होता है । यह मल की पूर्ति से समायुक्त है और श्लेषमा, विष्ठा, मूत्र, इनसे पिच्छल रहा करती है, यह शरीर अपरिष्कृत रहा करता है । इस शरीर के बीजभूत ये पाँच महाभूत होते हैं । उन समस्त भूतों को जो देह की संङ्गी हैं और बीज हैं । जो वायु, तेज, पृथ्वी, जल और आकाश है इनकी वृद्धि के लिए क्रम से शोषण, दहन, भस्म, प्रोत्साह, अमृतवर्षण और आप्लवन करना चाहिए जो कि चिंता मोक्ष की विशुद्धि के लिए है । अण्ड के चिंतन से, भेद से उसके मध्य में देव का चिंतन से, स्वकीय इष्टदेव की चिन्ता सर्वात्मा रूप से होती है जो कि आत्मा को हो जाती है ।

मैं देव हूँ, ऐसा संस्कार हो जाता है । इसके अनन्तर जो नैवेद्य और पुष्प गन्ध आदिक है और भी पूजा के उपकरण के लिए है यहाँ पर देवत्व हो जाता है । देव आधार है, मैं देव हूँ, देव के लिए योजित करें । सबको देवता की सृष्टि से शुद्धता भी समुत्पन्न हो जाया करती है । मन और जीवात्मा की शुद्धि प्राणायाम से हुआ करती है । अन्तर्गत

जो भी मल है वह भी शुद्ध हो जाता है । ग्रह में यदि देव या यजन करे तो उस समय में उसका विलोकन करना चाहिए और आदित्य बीज के द्वारा क्रम से चारों पार्श्वों में करे । हान्त समाप्ति से सहित और वह्नि बीज से संहित होवे । चतुर्थ के सहित उपान्त वह सकल आगे हो, यही आदित्य बीज कहा गया है जो कि समस्त रोगों का विनाश करने वाला है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण है और सन्तोष देने वाला है । किसी अशुद्ध पक्षी का संयोग, पक्षी की विष्ठा का प्रसेचन तथा मूषिकाओं का स्पर्श एवं कृमि और कीट आदि का संगम आदि दोष नष्ट हो जाया करते हैं अवलोकन करने मात्र से ही इनका विनाश होता है और गृह दूषण नष्ट हो जाया करता है । इसके अनन्तर प्रथम योगपीठ का ध्यान का समाचरण करना चाहिए ।

योगपीठ का ध्यान मात्र ही पर्याप्त है । इसी से योगपीठ मण्डल में प्रवेश किया करता है । योगपीठ के स्मरण करने पर सब कुछ योगपीठ से परिपूर्ण सम हो जाता है । योगपीठ से परमोत्तम कोई आसन नहीं हुआ करता है जिसके ध्यान से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है जिसमें जड़-चेतन मनुष्य सभी हैं । उसके चिन्तन का बड़ा भारी महात्म्य है जिसके कहने का उत्साह कौन कर सकता है! उसके चिन्तन भर से ही देखो मनुष्यों के शोक विनाश हो जाया करता है । योगपीठ के धारण करने से तो चतुर्वर्ग के फल का वह प्रदायक होता है । अब उसके ध्यान एवं चिन्तन का प्रकार बतलाया जाता है, वह विशुद्ध स्फटिक मणि के सदृश है, चतुष्कोण है और चार वृत्तियों वाला है । आधारशक्ति से विदित प्रग्रह वाला है तथा सूर्य के समान है । आग्नेय आदि चारों कोनों में क्रम से सदा ही धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य स्थित रहा करते हैं । पूर्व आदि दिशाओं में यह निम्नलिखित क्रम से स्थिति करते हैं ।

अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य, हैं इससे धारणार्थ व्यवस्थित हैं । उसके ऊपर जल का समुदाय है । उसमें ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, उस ब्रह्माण्ड के भीतर जल है । उसके ऊपर यह पृथ्वी स्थित है । उस कूर्म

से ऊपर में अनन्त है और उसके ऊपर यह पृथ्वी स्थित है । अनन्त के शरीर से संयुक्त एक नाल है जो पाताल तक गोचर होता है । पृथ्वी के मध्य में एक पद्म स्थित है जिसके दल दिशायें हैं और गिरि उसका केशर हैं । उसके आठ दिशाओं में दिक्पाल है और मध्यभाग में स्वर्ग अवस्थित है । उस पद्म की कर्णिका में ब्रह्मलोक है । उसके नीचे भाग में महालोक आदि हैं । स्वर्ग में ज्योतिर्मणि हैं और देवगण हैं । उनके अनन्तर में चारों वेद हैं । रज, सत्व, तम ये तीन गुण हैं जो प्रकृति से समुद्गत हैं । ये सदा ही पद्म के मध्य में स्थित है और परतत्व हैं । वहाँ पर आत्मा संस्थित है । जो ऊर्ध्वछेदन है, जो ऊपर की ओर है । अधः छेदन है जो नीचे की ओर है वहाँ पर केशर के अग्रभाग में पुनः स्थित है ।

इसके अनन्तर सूर्य, अग्नि, चन्द्र और मरुत के मण्डल क्रम से है । योग पीठ में शिव का आसन है और इसके परे में सुखासन है फिर आराध्य आसन है इसके पर में विमलासन है । मध्य में सम्पूर्ण इस चराचर जगत् का विशेष चिंतन करना चाहिए । वहाँ पर तीन भागों में विनिश्चित हुए ब्रह्मा, विष्णु और शिव का चिन्तन करना चाहिए । वहाँ पर अभ्यर्थना करने में समुपस्थित अपने आपका चिंतन करे । मण्डल, योगपीठ और पद्म का चिन्तन करना चाहिए । शव आदि चारों आसनों का भी यहाँ पर चिन्तन करे । इसके उपरान्त योगपीठ का ध्यान करके मण्डल के साथ एकता पुनः ध्यान करे । पीछे आसन का यजन करे । योगपीठ के ध्यान के द्वारा जो जिस प्रकार से जल दिया जाता है और नैवेद्य, पुष्प, धूप आदि स्वयं ही वहां पर उपस्थित हो जाया करते हैं । योगपीठ के पूजन में गन्धर्वों के सहित सब देवगण और चर, सचर, गुह्यक सभी चिन्तित और पूजित हो जाया करते हैं ।

अपने अभीष्ट देवता के पूजन बिना जिसके विचिन्तन से चतुर्वर्ग का लाभ उपासक किया करता है और उसकी तुष्टि एवं पुष्टि हो जाती है । आवाहन के अनन्तर ही दोनों करों के द्वारा अवतारित करना चाहिए । पहले दोनों करों को ऊँचा करे और ऊपर की ओर उत्क्षिप्त

करके अन्तर सहित निरन्तर नीचे की ओर नमित करते हुए पूजक को करना चाहिए। गणेश के बीज से उससे अवतरित होओ, यह कहे। अभीष्ट देवों के अवलम्बन के लिए दो बार उच्चारण करे। नासिका की वायु निःसारण से देवता आकाश में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार से करने पर उसी स्थिति मण्डल में हो जाया करती है। स्वान्तः अंशु और बिन्दु से बीज कहा जाया करता है। यह विघ्नों के बीजों का विनाश करने वाला है और धर्म, कर्म काम साधने वाला है। गन्ध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और जो भी अन्य वस्तु दी जाती है तथा वस्त्र और अलंकार आदि उनका देवता उच्चारण करके प्रोक्षण तथा पूजन करे।

मूल मन्त्र से उत्सर्जन करके प्रतिनाम से निवेदन करना चाहिए। वरुण के बीज के द्वारा उनका प्रोक्षण करे। इष्ट मूल मन्त्र के द्वारा उसी भाँति उत्सर्ग और निवेदन करे। ऊपर चन्द्र और बिन्दु से वरुण और बीज कहा जाता है। विलोकन, पूरक तथा पृथक्-पृथक् दान-जप कर्म माला की प्रतिपत्ति यह तीन हैं। अपने इष्ट मन्त्र के द्वारा माला का प्रोक्षण कीर्तिक किया गया है। पहले गाठापत बीज का उच्चारण करके इसके अनन्तर ही करना चाहिए। हे माला! आप अविघ्न करे, इसी मन्त्र के द्वारा माला का ग्रहण करे। जप के अन्त में माला का न्यास शिर पर करे, ऐसा कहा गया है। हाथों से माला लेकर श्री बीज के द्वारा उसी भाँति अर्चना करनी चाहिए। अन्त्य दन्यान्य मात्राओं आदि वर्ग और तृतीय पर से पर के पूर्व में श्री बीज बिन्दु से इन्दु से माला का अवतार शिर से सदा किया जाता है।

उसके हाथों से आदान करके सारस्वत से श्री बीजों का आद्य-आद्य बिन्दु चन्द्रार्ध से संयुत, यह चार बीज सारस्वत कहे जाते हैं। पौराणिकों और वैदिकों द्वारा और मूल मन्त्र के द्वारा करे। प्रदक्षिणा और प्रणाम करे जो धर्म व अर्थ का साधक है। भूमि का वीक्षण करके तथा उसका अभ्युक्षण करके पूर्व से क्षिति बीज के द्वारा उस भूमि का शिर से स्पर्श करता हुआ अपने इष्ट देवताओं को प्रणिपात

करना चाहिए। समाप्ति से हीन बीज है और बिन्दु-बिन्दु से संयुत क्षिति बीज है इसको जान लेना चाहिए। यह चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है। फिर दर्पण, व्यंजन, घण्टा, चामर का प्रोक्षण करे। हे भैरव! यह प्रोक्षण पूर्व में कहे हुए नैवेद्य लोकमन्त्र के द्वारा करे। इनके बिन्दु और इन्दु से युक्त आद्य नामों के अक्षर हैं–तस्मै नमः अर्थात् उसके लिए नमस्कार है, यह प्रांतः में, ग्रहण करना चाहिए।

हे भैरव! वाग्भव के द्वितीय कामबीज से मुद्रा का बन्धन करना चाहिए। मूल मन्त्र से दर्शन करे। मुद्रा का परित्याग तारा बीज के द्वारा समाचरण करे। चन्द्र बिन्दुओं से प्रांतादि षष्ठ स्वर से संयुत जो है वह ताराबीज कहा गया है जो धर्म अर्थ और काम का साधन होता है। क्योंकि वह मुद्रा अर्थात् आनन्द को दिया करती है इसलिए यह मुद्रा-नाम से कीर्तित की गई है। मुद्रा दर्शित किए जाने पर पूजा का समापन हुआ करता है। वह स्वयं काम, मोक्ष, धर्म, अर्थ और मोद से समन्वित होती हैं। गमन करने के लिए अन्त में इन छः महामन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए और भक्ति मार्ग के द्वारा पत्र-पुष्प फल, जल दिया गया है और जो नैवेद्य आवेदित किया गया है उसे कृपा करके ग्रहण करिए। मैं आवाहन कैसे किया जाता है, यह नहीं जान पाता हूँ और मुझे विसर्जन करने का भी ज्ञान नहीं हैं। मैं यजन के भाव को भी नहीं समझता हूँ अतएव हे परमेश्वरि! मेरी आप ही गति हैं।

कर्म, मन और वचन से आपसे अन्य मेरी कोई भी गति नहीं है। हे माता! जिन-जिन सहस्त्रों योनियों में मैं गमन करूँ, हे अच्युते! उन योनियों में सदा आपके प्रति मेरी भक्ति होवे जो कभी भी च्युत न होवे। देवी, दात्री, भोक्त्री यह सम्पूर्ण जगत् देवीमय ही है। देवी सर्वत्र जय प्राप्त करती है। जो देवी है वह मैं ही हूँ। जो अक्षर परिभ्रष्ट हो और जो मात्रा से हीन हो, हे देवी! वह सभी आप क्षमा कर देवें। कौन ऐसा है जिसका मन स्खलित न होता हो। हे भैरव! इन मन्त्रों के पढ़े जाने पर देवी स्वयं ही प्रसन्न हो जाया करती है और वह अविलम्ब ही चतुर्वर्ग को प्रदान कर दिया करती है। ऐशानी दिशा में मण्डल की

रचना करे जो द्वार और पद्म से वर्जित होवे । विसर्जन के लिए निर्माल्य धारिणी के पूजन के लिए मण्डल रचना करे । निर्माल्य धारिण का ध्यान पाद्य आदि के पूजन करे । उसमें निर्माल्य का निक्षेपण करके मन्त्र से विसर्जन करे । हे परमेश्वरि! अपने परमस्थान को गमन कीजिए जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण परम को नहीं जानते हैं । इस मन्त्र के द्वारा विसर्जन करके अनन्तर पूरक वायु के द्वारा ध्यान करते हुए इस मन्त्र से नमस्कार करके उसको हृदय में स्थापित करे । हे परमेश्वरि! हे देवि! परमोत्तम स्थान पर अपने आसन पर विराजमान होइए । जहाँ पर मेरे हृदय में ब्रह्मादिक सब देवता स्थिति हैं । इसके उपरान्त एक जटा बीजों से इष्ट देवी का बुद्धि से स्मरण करता हुआ निर्माल्य को मूर्धा में ग्रहण करे जो कि धर्म-काम और अर्थ का साधन होता है । इसके अनन्तर विभूति के मण्डल की प्रतिपत्ति करे । समस्त अंगुलियों के समूहों से आठ दलों से संयुत पद्म को क्षति बीज के द्वारा निर्मन्थन करे । हे भैरव! मण्डल का भी निर्मन्थन करना चाहिए । इसके पश्चात् मूल मन्त्र के द्वारा अथवा पुनः सर्ववश्य के द्वारा अनामिकाओं के अग्रभाग से ललाट का संस्पर्श करे । समाप्ति के सहित प्रान्त, उसके आगे ताराबीज, स्मरबीज विसर्ग के सहित पर सभी-परम एक जटाबीज होता है जो धर्म काम और अर्थ का साधन है ।

इसके अनन्तर आत्मा के सहित भास्करबीज के मन्त्र के द्वारा भास्कर के लिए अच्छिद्रार्थ अर्घ्य का निवेदन करना चाहिए । हे ब्रह्मन्! भास्वान्, कर्मदायी के लिए नमस्कार है । इसके बाद दोनों हाथों को जोड़कर कथित मन्त्र को पढ़कर एकाग्रमन से वागियों द्वारा अच्छिद्र का अवधारण करे । यज्ञ का छिद्र, तपश्चर्या का छिद्र, जो छिद्र, मेरे पूजन में हो वह सब अच्छिद्र हो जावे । भास्कर भगवान् के प्रसाद से ही अछिद्रता हो जावे । इसके पश्चात् पुष्प, नैवेद्य, जलपात्र आदि जो भी हे उन सबको देवीबीज के द्वारा पुनःविलोकन करना चाहिए । हाथ से अथवा चक्षु से जहाँ जहाँ पर पहले मन्त्र न्यास किया है वहाँ-वहाँ ही इससे विसृष्टि होती है ।

प्रान्तादि पञ्चम वह्निबीज षष्ठ स्वर से आहित तथा उपांत वाग्भव दुर्गा बीज कहा जाता है । स्थण्डिल, जलती हुई अग्नि, जल सूर्य की किरणों, और शुद्ध प्रतिमाओं में तथा शालग्राम की शिलाओं में, शिवलिंग में, शिला में विभूति के लिए पूजा करना चाहिए । एकाग्रमन वाला होकर सभी जगह मण्डल का न्यास करे । योगपीठ के बीज से स्थण्डिल आदि में साधक वासुदेव भगवान्, रुद्र देव, ब्रह्माजी की और सूर्य की पूजाओं में सर्वत्र बुद्ध पुरुष को यह प्रतिपत्ति करनी चाहिए । इस प्रकार से इन प्रतिपत्तियों से जो विष्णु भगवान् की पूजा करे तो उसको भगवान् हरि अविलम्ब ही चार वर्गों के प्रदाता हो जाया करते हैं । शिव हों या मिहिर हों जो भी अन्य प्रभृति होवे सभी सुरगण इस विधि में प्रसन्न हो जाया करते हैं विशेष रूप से जगन्मयी महामाया महादेवी प्रसन्न होती हैं ।

महामाया महादेवी इस प्रतिपत्ति का नित्य ही पूजन में चाहती रहती हैं । इस प्रकार से जो भी कोई भी पूजा किया करता है वह सम्यक फल का भागी होता है । इनसे विहीन जो भी पूजा होती है उससे अल्प से भी अल्प फल हुआ करता है । यह परम रहस्य है और परमाधिक कल्याण का अयन है । मन्त्र वेदों से परिपूर्ण और शुद्ध समस्त पापों का विनाश करने वाला होता है । जो इसका ब्राह्मणों के सन्निधान में श्रवण कराता है, श्राद्ध, यज्ञ, सुरों के पूजनों में इसको सुनाता है वह इस कर्म का बहुत अच्छा फल प्राप्त करता है । वह पूजा के बिना भी अनन्त का लाभ करता है ।

देवी तन्त्र कथन

श्री भगवान् ने कहा—आप दोनों ही भली भाँति देवी के तन्त्र का श्रवण करिए जिसके द्वारा आराधना की हुई देवी शीघ्र ही फल प्रदायक हो जाया करती है । पूर्व में दिए हुए तन्त्र से विशेष रूप से यह निश्चय ही उत्तम तन्त्र है । सामान्यतया से यह पहले आपके आगे कहा गया है । फिर देवी की पूजा में भक्ति कर्म में विशेष रूप से जो

तन्त्र शेष हैं उनको मैं पुनः बतलाऊँगा । जो पुरुष महामाया की भक्ति को एकाग्रमन वाला होकर किया करता है । फल, पुष्प, ताम्बूल और जो अन्न पान आदिक हैं वह सब देवी को समर्पित किए बिना कभी नहीं खाना चाहिए । मार्ग में अथवा पर्वत के शिखर पर और सभा में साधक जैसे-तैसे निवेदन करके ही अपने अर्थ को कल्पित करना चाहिए । मदिरा के पात्र को, रक्त वर्ण वाली स्त्रियों को, सिंह को, शिव को, रक्त पद्म को, व्याघ्र और वारण (गज) के संगम को देखकर ही गुरु के लिए, राजा के लिए और फिर महामाया के लिए नमन अर्थात् नमस्कार करे । जो भार्या पतिव्रता हो उससे सदा ही ऋतुकाल में संगम करना चाहिए ।

चण्डिका देवी का ध्यान करके जो किया जाता है तब वह कार्य विभूति के लिए होता है । चाहे शान्तिक कर्म हो अथवा पौष्टिक कर्म हो तथा इष्टापूर्त्त कर्म हों । जब भी करे तब नमस्कार करके देवी मन्त्र का समाचरण करना चाहिए । जिस समय में तौर्यत्रिक (नृत्यगान) अथवा केवल गति को हीं देखें । और वह देवी के लिए निवेदन करके ही अपना उपयोग करना चाहिए । जो भी कोई भूषण हो अथवा वस्त्र हो या मलय से समुत्पन्न चन्दन हो उसे अपने शरीर में यदि उपयोग करे तो वहाँ पर 'धी' अर्थात् बुद्धि से मन्त्र का न्यास करना चाहिए । चाहे वह व्यायाम में हो और वह विधान में हो, सभा में हो, जल में हो या स्थल में हो, कहीं पर भी हो मन्त्र का बुद्धि से न्यास करे । जहाँ-जहाँ पर भी स्वयं गमन करे वहाँ पर ही सदा देवी का स्मरण करना चाहिए । जो जो भी कर्म पूजन का अंग स्वरूप हो उसका समाचरण मन्त्र के द्वारा ही करना चाहिए । मंत्र से हीन पूजन का जो भी अंग होता है वह तो सब निष्फल होता है । जिस कर्म में जो भी अभीष्ट हो हे भैरव! जो मन्त्र पूजाओं में होवे । वह-वह कर्म नैवेद्य के आलोक मन्त्र के द्वारा उस-उस कर्म को समाचरित करे । देवी का मण्डल न्यास इष्ट मन्त्र के द्वारा करना चाहिए ।

पूजा के अन्त में मण्डल को लीप कर उसके द्वारा तिलक कराना

चाहिए । और उसको सर्ववश्य मन्त्र के द्वारा ललाट में तिलक का न्यास करे जो कि धर्म, काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है । उसके वश में सम्पूर्ण जगत् हो जाता है ।

यज्ञ पूजा तथा राजा सर्वशास्त्र है, यह श्रुत है । पूजन के बिना जो भी कोई नर इस मन्त्र के द्वारा निरन्तर करे उसके सब वश में हो जाते हैं चाहे वह राजा हो, राजा का पुत्र हो, स्त्रियाँ हो अथवा यक्ष तथा राक्षस हों । चारों प्रकार के भूत ग्राम सब उसके वश में हो जाया करते हैं । प्रवास में अर्थात् अपने घर से दूर देश में हो, अथवा मार्ग में हो, दुर्ग में हो, स्थान के न प्राप्त होने पर कहीं भी हो अथवा जल में हो अथवा कारागार में घिरा हुआ हो अथवा निरन्तर भूखा हो वहीं पर महामाया की पूजा करके जो कि बुद्धि पुरुष को मानसी ही करनी चाहिए । मन में भय के समुत्पन्न हो जाने पर तथा सिंह और व्याघ्र आदि के द्वारा समाकुल होने पर, दूसरे के चक्र में समागम होने पर मानसिक पूजन ही इन स्थितियों में रहने पर करना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में अन्य कोई भी चारा नहीं है । मन के द्वारा हृदय के अन्दर योग नामक पीठ का ध्यान करके वहीं पर पृथ्वी के मध्य में पूजन का समाचरण करना चाहिए । प्रसाधन, स्नान, दन्तधावन कर्म और अन्य सभी मन के द्वारा हो करके पूजन करना चाहिए ।

इसके पीछे बाहर के देश में पुष्प आदि के द्वारा पूजन की जाती है उसी भाँति हृदय में भी सभी प्रतिपत्तियाँ करनी चाहिए । देवी का यजन करने वाला निरन्तर अष्टमी तिथि में अपने रुधिरों से पूजा करनी चाहिए । लिंग में विराजमान देवी का पूजन करे । उसी भाँति पुस्तक में संस्थित देवी का पूजन करे । स्थण्डिल में संस्थित महामाया का और पादुका प्रतिमाओं में पूजन करे । चित्र और त्रिशिख में शंख का यजन करे अथवा जल में पूजन करे । शिला में, पर्वत के अग्रभाग में तथा पर्वतों में खोह में नित्य ही भक्तिभाव और श्रद्धा से संयुत देवी का पूजन करना चाहिए । वाराणसी पुरी में सदा का पूजन करना सम्पूर्ण फलों की देने वाली हुआ करती है । उससे भी दुगुनी फलप्रदाती

भगवान् पुरुषोत्तम की सन्निधि में हुआ करती है । उससे भी दुगने फल की देने विशेष रूप से द्वारका में कही है । समस्त क्षेत्रों में और तीर्थों में की हुई पूजा द्वारावती की पूजा के ही समान हुआ करती है ।

विंध्याचल में की हुई पूजा सौगुनी फलदायिका होती है, ऐसा कहा गया है और गंगा में भी की गई पूजा उसी के समान होती है । आर्यावर्त्त, मध्यदेश, ब्रह्मवर्त्त तथा पुष्कर में करतोया नाम की नदी के जल में उससे भी चौगुनी फल देने वाली कही गई है । हे भैरव! उससे भी चौगुने फल देने वाली पूजा नन्दि कुण्ड में होती है । उसमें भी चौगुनी जाल्यिपेश्वर की सन्निधि में की हुई बतलायी हुई है । वहाँ पर सिद्धेश्वरि की योनि में की गई पूजा उससे भी दुगनी बताई गई है । उससे भी चौगुने फल को देने वाली लौहित्य नदी के जल में कही गई है । उसी के समान कामरूप देश में सभी जगह जल और स्थल में मानी गई है । जैसे सबसे श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं तथा लक्ष्मी सबसे उत्तम है । कामरूप में सुरालय में देवी की पूजा प्रशस्त होती है । देवी का क्षेत्र कामरूप देश है और अन्यत्र उसके समान है अन्य स्थल में देवी विरल ही हुआ करती है और कामरूप में तो घर-घर में ही विद्यमान रहती है । इससे भी सौ गुने महत्व वाली पूजा नीलकूट पर्वत के शिखर पर होती है ।

उससे भी दुगुने शिवलिंग में की गई पूजा फलदायिनी होती है । उससे भी दुगुनी फलदायिनी शैल पुत्र्यादि की योनियों में कही गई हैं । उससे भी सौ गुनी अधिक महत्व वाली पूजा कामाख्या देवी की योनि मण्डल में बतलाई गई है । कामाख्या में महामाया की पूजा को एक बार कर चुका है वह इस लोक में कामनाओं को प्राप्त करता है और परलोक में भगवान् शिव की स्वरूपता का लाभ किया करता है । उस पुरुष के समान अन्य कोई भी भाग्यशाली नहीं है और फिर उसका कोई भी कृत्य शेष नहीं रह जाता है । वह पुरुष अपना मनोवांछित अर्थ इस लोक में प्राप्त करके चिरायु हो जाता है । उसकी गति वायु के ही समान हो जाती है जो अन्यों के द्वारा कभी भी बाधित नहीं हुआ करती

है । वह पुरुष संग्राम अथवा शास्त्रावाद में दुर्जय हो जाता है । वैष्णवी तन्त्र के द्वारा कामाख्या के योनि मण्डल में एक बार अभ्यर्चन करके उसका सौ गुना फल का लाभ किया करता है । मूलमूर्ति महामाया योगनिद्रा जगन्मयी है उसका वैष्णवी तन्त्र पहले ही प्रतिपादित कर दिया गया है । अन्य जो मूर्तियाँ कही गई है जो शैलपुत्री आदि दूसरी हैं वे सब उसी के विभाग हैं और उसके ही शरीर से निर्गत हुई हैं ।

जिस रीति से नित्य ही सूर्य के बिम्ब से किरणें निःसकरण किया करती हैं ठीक उसी भाँति देवी महामाया के शरीर से उग्रचण्डा आदि निकला करती हैं । मेरे द्वारा आपको उन्हीं के अंगरूप कहने चाहिए महामाया का स्वरूप तो एक ही है और कार्यों के सम्पादन करने के लिए वही भिन्नता को प्राप्त हुई हैं । कामाख्या तो महामाया है और मूलमूर्ति गान ही गाया जाया करता है । वह पीठों के द्वारा विभिन्न नामों वाली होकर महामाया गायी जाया करती है । जिस प्रकार से एक ही भगवान् विष्णु नित्य होने से सनातन हैं । जनों के पीड़ा को दूर करने से वही प्रभु जर्नादन, इन नाम से कहे गए हैं । ठीक उसी भाँति महामाया कामार्थ गिरि में संगत हुई थी उसी समय यह महादेवी के द्वारा और नरों के द्वारा निरन्तर कामाख्या कही जाती है । जैसे कोई पुरुष छत्र के ग्रहण करने से छत्री हो जाया करता है और स्नान काल में स्नापक कहा जाता है ठीक उसी रीति से नाम से यह कामाख्या हो गई है । महामाया का शरीर के लिए समुपस्थित हुआ था । लोहित, कुकर्मों से पीत जो कामार्थ उपयोजित किए गए हैं । कामकाल में खंड का परित्याग करके वह स्वयं ही स्त्रक् को ग्रहण किया करती है । जिस समय वह काम को त्याग कर देने वाली होती है उस समय में वह असिधारिणी होती है ।

लोहित पंकज को न्यस्त करने वाले शिव प्रेम कामकाल में सित प्रेत के ऊपर संस्थित काम को परित्यक्त कर देने वाली रमण करती है । उसी भाँति इधर-उधर गमन करके सिंह के ऊपर विराजमान होती हुई कामदा हो जाती है । किसी समय तो वह सित प्रेत पर होती है और

किसी समय में रक्त पंकज पर स्थित होती हैं। किसी अवसर पर वह केशरी के पीठ पर संस्थित होती हुई कामरूप वाली रमण किया करती है। जिस अवसर पर वह लोहित पद्म पर संस्थित हुआ करती है तो उस समय उसके आगे केशरी चरण किया करता है। जिस समय प्रेत पर स्थित देवी होती है उस समय आगे अन्य का निरीक्षण किया करती है। जिस समय वह महामाया के स्वरूप से वह वरदा होती है उस समय पूजा के काल में प्रेत, पद्म और सिंह के ऊपर स्थित होती है। जिस अवसर पर रक्त पद्म में ध्यान करे तब आगे हरि का चिन्तन करना चाहिए। जब हरि में ध्यान करे तब अन्य दो आगे चिन्तन करे। एक ही स्थान तीनों के ध्यान करने पर प्रेत पद्म हरि में क्रम से करना चाहिए।

उन पर कामदा देवी के स्थित होने पर कामदा हरि में क्रम से करना चाहिए। एक-एक पर भी जैमे भी उसी भाँति शिवा का चिन्तन करे। वह एक समस्त जगतों की प्रकृति जहाँ-तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, देवों के द्वारा वह जगन्मयी धारण की जाया करती है। सित प्रेत महादेव हैं, ब्रह्मा लोहितपद्म हैं, हरि हरि हैं ऐसे ही महान् ओज वाले के वाहन जानने चाहिए। क्योंकि अपनी मूर्ति से उनका वाहन होना युक्त नहीं होता है। इसी कारण से अन्य मूर्ति करके तीनों वाहनता को प्राप्त हुए हैं। जिस-जिस में महामाया शिव निरन्तर प्रसन्न होती हैं उसी-उसी रूप से तीनों ही आसन हुए थे। सिंह के ऊपर रक्त पद्म स्थिति है, उसके ऊर्ध्व में गत शिव हैं। उनके ऊपर वह वर देने वाली अभय दायिनी महामाया है। इस प्रकार के स्वरूप से ध्यान करके निरन्तर शिव का पूजन करना चाहिए। उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिव बिना ही संशय के पूजित हो जाते हैं। इस प्रकार से सदा कामाख्या एक रूप वाली महामाया ध्यान से और रूप से भिन्न है इससे वहाँ पर उसका पूजन करना चाहिए। इस प्रकार से दुर्गा के विशेष तन्त्रों को आप दोनों को कह दिए हैं। हे परमश्रेष्ठों! अब उसके अंग मन्त्रों का आप श्रवण करिए।

मृणाल के सदृश आयत स्पर्श वाली दश बाहुओं से युक्त है । दाहिने हाथ में त्रिशूल, देव, खड्ग, चक्र क्रम से नीचे की ओर हैं । बाहुओं के संधों में तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति से संगत है । ऊपर की ओर खेटक, पूर्ण, चाप, पाश और अंकुश धारण किए हुए हैं । नीचे की ओर बिना शिर वाले महिष असुर को प्रदर्शित करना चाहिए । जिसका शिर छिन्न हो गया है और जो दानव अपने हाथ में खण्ड लिए हुए हैं । जो हृदय में बल से विद्ध हो रहा है और जिसकी अँतड़ियाँ बाहर निकल रही हैं । स्त्रवित होते हुए रक्त से जिसके अंग रुधिर प्लावित हो रहे हैं और जो रक्त से विस्फुरित नेत्रों वाला हो रहा है । जो नागपाश से वेष्टित है और जो क्रोधावेश के कारण कुटिल भौंहों से समन्वित मुख वाला है । जो पाश के सहित बाँये हाथ से दुर्गा के द्वारा मस्तक के केश पकड़ा हुआ है । जिसमें मुख से रुधिर प्रवाहित हो रहा है ऐसी देवी के सिंह का भी प्रदर्शन करना चाहिए । देवी का दाहिना चरण सिंह के ऊपर संस्थित है तथा कुछ ऊपर की ओर वाम चरण का अंगुष्ठ महिषासुर पर स्थित है ।

इस प्रकार के ध्यान को करते हुए फिर देवी का ध्यान करे जो उग्र चण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चामुण्डा चण्डिका है । इन आठ शक्तियों से निरन्तर परिवेष्टित है । इसी रीति से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाली देवी का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए । इसका एक मन होकर श्रवण करो । यह धर्म काम और अर्थ का साधन है । इसका अंग मन्त्र दुर्गा तन्त्र, यह श्रुत किया गया है । सूर्य के मकर राशि पर स्थित होने पर जो शुक्ल पक्ष की पंचमी होती है । उसमें इस तन्त्र के द्वारा विधि-विधान के साथ शिवा का भली भाँति पूजन करके फिर शुक्ल पक्ष की अष्टमी में यथाविधि देवी का पूजन करके नवमी तिथि में बहुत बलिदानों का समाचरण करना चाहिए और सन्ध्या के समय में अपने शरीर से उक्षित रुधिर की बलि करनी चाहिए । उस प्रकार से करने पर कल्याणों से युक्त होता हुआ पुरुष नित्य ही प्रमुदित होता है ।

वह मनुष्य पुत्रों और प्रपौत्रों से समृद्ध और धन-धान्य समृद्धियों से समन्वित होता है और वह दीर्घ आयु वाला, सर्व प्रकार के सुभग इस लोक में होता है । शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में चैत्र मास में उस समय में होने वाले पुष्पों से और अशोकों से भी जो पुरुष इस मन्त्र के द्वारा पूजन किया करता है उसे कभी शोक नहीं होता है अथवा कोई रोग भी नहीं होता है और न दुर्गत ही होती है । ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन मनुष्य भली भाँति उपवास करे और नवमी तिथि में तिलों सहित अन्नों, यावकों, मोदकों से, क्षीर, घृत-शहद, शर्करा के सहित पिष्टक से, अनेक पशुओं के रुधिर से और माँसों से पूजन करे । इसके अनन्तर शुक्ल पक्ष की दशमी में तिलों से मिश्रित जल से दुर्गा मन्त्र के द्वारा तीन अंजलियाँ देनी चाहिए । इस रीति से करने पर दशमी तिथि में दस जन्मों में भी जो पाप किया है वह प्रलीन हो जाता है और ऐसा करने वाला पुरुष दीर्घायु भी हो जाता है । आषाढ़ मास के शुक्ल की दशमी में तिलों से मिश्रित जल से दुर्गा मन्त्र के द्वारा तीन अंजलियाँ देनी चाहिए । इस रीति से करने पर दशमी तिथि में दस जन्मों में भी जो पाप किया है वह प्रलीन हो जाता है और करने वाला पुरुष दीर्घायु भी हो जाता है । आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की जो अष्टमी है और श्रावण मास की अष्टमी है उसमें पवित्रा धारण करावे ।

पवित्राओं का आरोपण देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला होता है । हे भैरव! दुर्गा तन्त्र से मन्त्र के द्वारा और दुर्गा बीज से, हे भैरव! पवित्रारोपण का समाचरण करे । विशेष रूप से श्रवण को प्राप्त करके देवी को पवित्रारोपण करना चाहिए । समस्त देवों का पवित्रारोपण करना चाहिए । आषाढ़ में अथवा श्रावण में सम्वत्सर के फल का प्रदायक होता है । द्वितीया तो देवी के श्री की है जो अन्य सब तिथियों में उत्तम है, ऐसा कहा गया है । तृतीया तिथि भवभामिनी की है और चतुर्थी उसके सुत की है, पंचमीं सोमराज की है और षष्ठी गुही की बतायी गयी है । सप्तमी भुवन भास्कर की कही गई है तथा अष्टमी

तिथि दुर्गा देवी की है । मातृगणों की नवमी तिथि कही है तथा दशमी तिथि वासुकि की होती है । एकादशी ऋषियों की है और द्वादशी भगवान् चक्रपाणि की होती है । त्रयोदशी कामदेव की है और मेरी चतुर्दशी तिथि है ।

ब्रह्मा और दिक्पालों की पौर्णमासी तिथि मानी गयी है । जो पुरुष देवों को पवित्राओं का आरोपण नहीं करता है उसकी साम्वत्सरी पूजा के फल को भगवान् केशव हरण कर लिया करते हैं । इसीलिए प्रयत्नपूर्वक पवित्रारोपण अवश्य करना चाहिए । ऐसा करने पर बहुत फल की प्राप्ति होती है । पवित्रा जिस सूत्र से और जैसे भी करना चाहिए उसका ज्ञान होना चाहिए तभी उसे पवित्रारोपण करना चाहिए । हे भैरव! सर्वप्रथम तो दर्भ सूत्र है उससे पर पद्म सूत्र होता है । इसके पश्चात् क्षेम सुपुण्य होता है और इससे पर कपास का सूत्र हुआ करता है । यत्नपूर्वक पवित्रा विचित्र करने चाहिए । अर्थात् कई रंगों से समन्वित होने चाहिए । गन्धमाल्य सुरभियों से जैसा कहा गया है विरचित होने चाहिए । उस सूत को कन्या कर ले अथवा पवित्रता प्रमदा उसको करले । जो विधवा हो और साधुशीला हो वह उसको करले किन्तु दुःशील या दुःख शील कभी भी इसको न करे ।

इस पवित्रा की रचना में ऐसे सूत्र का वर्णन कर देवे जो सुई से भिन्न हो, दग्ध हो, भस्म और धूप से अविगुण्ठित हो । जिसका उपयोग किया गया हो, जो चूहों के द्वारा कुतरा हुआ हो, मद्य एवं रक्त से दूषित हो, मलिन, नील रक्त हो, ऐसे सूत्र का यत्नपूर्वक परिवर्जन कर देना चाहिए । सूत्रों से कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम पवित्रा की रचना करे । कनिष्ठ जो पवित्रा है वह सत्ताईस तन्तुओं का होता है । यह पवित्रा मर्त्यलोक में यश, कीर्ति, सुख और सौभाग्य का बढ़ाने वाला होता है । चौवन तन्तुओं का पवित्रा मध्यम कहा गया है । परम दिव्य भोगों का आवाहन करने वाला पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान करने वाला उत्तम होता है जो एक सौ आठ तन्तुओं के द्वारा निर्मित होता है उसको महादेवी के लिए अर्पित करके मनुष्य भगवान् शिव के सायुज्य

की प्राप्ति किया करता है । यदि भगवान् वासुदेव के लिए उत्तम पवित्रा को समर्पित करे तो वेदपुरुष सीधा हरि के लोक में गमन किया करता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।

महादेवी को अर्पित पवित्रा तो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है । जो पुरुष रत्न माला में महादेवी की सेवा में पवित्रा का समर्पण किया करता है वह सहस्र करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में निवास करके शिव ही हो जाया करता है । यह तो नागहार नाम वाला भगवान् शंकर का पवित्रा होता है । एक सहस्र आठ तन्तुओं के द्वारा परम मनोहर पवित्रा बनाकर जो मेरे लिए अर्पित कियाा करता है वह उसमें जितने ही तन्तुओं का संचय होता है उतने ही सहस्र कल्पों तक मेरे ही लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है । एक हजार आठ से भगवान् हरि की वनमाला कही गई है । उनके तन्तुओं के दान से भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति होती है । जो कनिष्ठ पवित्रा होता है वह कल्पपर्यन्त रहने वाला होता है । बारह ग्रन्थियों से समन्वित आत्ममान के द्वारा उसे योजित करे । उरुओं तक आने वाला मध्यम पवित्रा होता है । वहाँ पर ग्रन्थियों को योजित कर लेना चाहिए । इसका चौबीस का मान आत्मा का है वह उत्तम कोटि का पवित्रा होता है । है भैरव! वह जन्तु पर्यन्त कहा गया है ।

अपने मान से छत्तीस ग्रन्थियों को योजित करे । एक सौ आठ ग्रन्थियों का सुविधान से करना चाहिए । नागहार नामक जो है उसी के समान अन्यों में विद्यमान से पवित्र किया जाता है । जिस सूत्र के द्वारा पुनः ग्रन्थियाँ होती हैं, उससे अन्यय वर्ग वाले सूत्र से लक्षण से समन्वित पवित्रा की रचना करनी चाहिए । कनिष्ठ में सात वेष्ठनों के द्वारा ग्रन्थि करे । मध्यम में दुगनी करे और उत्तम में तिगुनी करे । पूर्व दिन में पवित्रताओं का अधिवासन करना चाहिए । फिर वहाँ दूसरे दिन में मन्त्रा में मन्त्र करे । दुर्गा बीज मन्त्र लोक वैष्णावी तन्त्र के द्वारा करे । विचक्ष्ण पुरुष को प्रत्येक ग्रन्थि में स्वयं मन्त्र का न्यास करना चाहिए । हे भैरव! यहाँ पर जितनी भी ग्रन्थियाँ हों उतनी ही भाँति न्यास करे ।

की प्राप्ति किया करता है । यदि भगवान् वासुदेव के लिए उत्तम पवित्रा को समर्पित करे तो वेदपुरुष सीधा हरि के लोक में गमन किया करता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।

महादेवी को अर्पित पवित्रा तो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है । जो पुरुष रत्न माला में महादेवी की सेवा में पवित्रा का समर्पण किया करता है वह सहस्त्र करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में निवास करके शिव ही हो जाया करता है । यह तो नागहार नाम वाला भगवान् शंकर का पवित्रा होता है । एक सहस्त्र आठ तन्तुओं के द्वारा परम मनोहर पवित्रा बनाकर जो मेरे लिए अर्पित कियाा करता है वह उसमें जितने ही तन्तुओं का संचय होता है उतने ही सहस्त्र कल्पों तक मेरे ही लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है । एक हजार आठ से भगवान् हरि की वनमाला कही गई है । उनके तन्तुओं के दान से भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति होती है । जो कनिष्ठ पवित्रा होता है वह कल्पपर्यन्त रहने वाला होता है । बारह ग्रन्थियों से समन्वित आत्ममान के द्वारा उसे योजित करे । उरुओं तक आने वाला मध्यम पवित्रा होता है । वहाँ पर ग्रन्थियों को योजित कर लेना चाहिए । इसका चौबीस का मान आत्मा का है वह उत्तम कोटि का पवित्रा होता है । है भैरव! वह जन्तु पर्यन्त कहा गया है ।

अपने मान से छत्तीस ग्रन्थियों को योजित करे । एक सौ आठ ग्रन्थियों का सुविधान से करना चाहिए । नागहार नामक जो है उसी के समान अन्यों में विद्यमान से पवित्र किया जाता है । जिस सूत्र के द्वारा पुनः ग्रन्थियाँ होती हैं, उससे अन्यय वर्ग वाले सूत्र से लक्षण से समन्वित पवित्रा की रचना करनी चाहिए । कनिष्ठ में सात वेष्ठनों के द्वारा ग्रन्थि करे । मध्यम में दुगनी करे और उत्तम में तिगुनी करे । पूर्व दिन में पवित्रताओं का अधिवासन करना चाहिए । फिर वहाँ दूसरे दिन में मन्त्रा में मन्त्र करे । दुर्गा बीज मन्त्र लोक वैष्णवी तन्त्र के द्वारा करे । विचक्ष्ण पुरुष को प्रत्येक ग्रन्थि में स्वयं मन्त्र का न्यास करना चाहिए । हे भैरव! यहाँ पर जितनी भी ग्रन्थियाँ हों उतनी ही भाँति न्यास करे ।

उसके मन्त्र उससे अंगोपयोजन होवें । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा सत्त्व न्यास करना चाहिए । एक स्थान में यज्ञपात्र में समस्त पवित्राओं को रखकर उसमें गन्ध आदि और पुष्पों को रखकर परम शोभन, हे भैरव! अँगुली के अग्रभाग से फिर तत्त्व न्यास करावे । द्विज का मन्त्र न्यास 'इन्द्रविष्णुः' यह कहा गया है । शूद्रों के मन्त्र से मेरा तत्व न्यास कहा गया है । इसके द्वारा इसके मन्त्र और इससे ही दान करावे । कुंकुम, उशीर, कर्पूर और चंदन आदि विलेपनों से पवित्रताओं का विलेपन करके तत्व न्यास को योजित करना चाहिए । मनुष्य विधिपूर्वक मण्डल में देवी का अभ्यर्चन करे ।

दुर्गा बीज द्वारा देवी के मस्तक में पवित्रा का समर्पण करना चाहिए । जिस देव का जो कहा है उसका उसी से ही मण्डल होता है । जिस-जिसका जो मन्त्र है जैसा भी ध्यान आदि पूजन है वह उसी मन्त्र से ही यत्नपूर्वक पूजन करके उसके ही बीज और मन्त्र से मस्तक में पवित्रा का अर्पण करे । जो भी मुझको पवित्रा का समर्पण करता है और दोनों देवों के लिए देता है । हे भैरव! सभी देवों का सम्पूर्ण अर्थ होता है । अग्नि, ब्रह्माभवानी, गज वक्त्र, महोरग, स्कन्द, भानु, मातृगण, दिक्पाल, नवग्रह, इन सबको घटों में यथाविधि, प्रत्येक का पूजन करके परम सावधान होते हुए इनके लिए एक-एक पवित्रा मस्तक में समर्पित करे । पञ्चगव्य चरु को बना करके देवी के लिए तीन आहुतियाँ देवे । उसी से भगवान् विष्णु और शम्भू के लिए यथाविधि देवे । आज्य (घृत) तथा तिल संयुत घृत से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देनी चाहिए ।

साधन करने वाले को महादेवी के लिए एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए । इसी विधान से भगवान् विष्णु आदि को भी साधक द्वारा आहुतियाँ देनी चाहिए । धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए पवित्रारोपण करना चाहिए । यह एक परमावश्यक कृत्य है । अनेक प्रकार के नैवेद्य पेय पिष्टक मोदकों से, कूष्माण्ड, नारिकेल, खजूर, आम्र, दाड़िम, कर्क, रुद्राक्ष आदि विविध भाँति के फलों के द्वारा,

समस्त भक्ष्य भोज्य आदि से, माँस ओदन से, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र-भूषण से भवानी का साधक यजन करे । हे भैरव! नर और नर्तकों के समुदाय तथा वेश्याओं के द्वारा देवी का मनोविनोद करे । नृत्य और गीतों से समुदित होकर रात्रि में जागरण करे । द्विजातियों के साथ और ज्ञानियों को तथा ब्राह्मणों को भोजन करावे । पवित्रारोपण के हो जाने पर दक्षिणा का उपदायन करे । दक्षिणा में सुवर्ण, गौ, तिल, घृत, वस्त्र अथवा शाक ही देवे ।

इसके अनन्तर साधक इस मन्त्र का उच्चारण करे, हे परमेश्वरि! मणि, विद्रुम की मालाओं से और मन्थर के कुसुम आदि के द्वारा आपकी यह साम्वत्सरी पूजा सम्पन्न होवे । इसके उपरान्त पूजाओं से और प्रतिपत्तियों के द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिए । इस रीति से देवी को यथाविधि पवित्राओं के दान के हो जाने पर सम्वत्सर की जो पूजा है वह वासर से सम्पूर्ण हो जाया करती है । वह मनुष्य सैंकड़ों करोड़ कल्पों में देवी के ही घर में निवास किया करता है और वहाँ पर भी उसको सुख, सौभाग्य की अतुल समृद्धि होती है ।

महिषासुर उपाख्यान

श्री भगवान् ने कहा—दुर्गा तन्त्र से मन्त्र के द्वारा दुर्गा का महोत्सव करना चाहिए । शरद् काल में महानवमी को राजास आदि का बलिदान करना चाहिए । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में जो अष्टमी तिथि होती है, वह महाअष्टमी कही गई है जो देवी की परम प्रीति करने वाली हुआ करती है । इसके पश्चात् जो नवमी तिथि होती है वह महानवमी कही गई है । वह समस्त लोकों की पूजनीय और शिव की होती है । हे भैरव! हे वत्स! इन दोनों में जो पूजा होती है उसमें जो कुछ भी विशेषता है उसका आप श्रवण करिए । मण्डल में विधि के साथ देवी का प्रयत्त होकर मनुष्य भाली भाँति पूजा करे । हे भैरव! वैष्णवी तन्त्र से मन्त्र के द्वारा और दुर्गा के मन्त्र से मूर्ति भेद में जैसे देवी भूति के लिए पूजा का ग्रहण किया करती है । कन्या राशि पर सूर्य के आ जाने

पर, हे वत्स! शुक्ल पक्ष की नन्दिका अर्थात् प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके रहे। आयाचित का अशन करने वाला, रात्रि में एक बार भोजन करने वाला, अमद रहने वाला, प्रातःकाल में स्नान करने वाला, शीतोष्ण आदि द्वन्दों का सहन करने वाला और दोनों वक्त में शिव का पूजन करने वाला, जप और होम से समायुक्त होता है।

विल्व वृक्ष की शाखाओं में बेंध न करे और षष्ठी तिथि में देवी पूजन फलों से करे। सप्तमी तिथि में उस विल्व की शाखा का आहरण करके प्रति पूजन करना चाहिए। फिर अष्टमी में विशेष रूप से पूजा का समाचरण करना चाहिए। स्वयं जागरण करे तथा महानिशा में बलिदान करे। अधिक बलिदान तो विधि के सहित नवमी में करना चाहिए। दश भुजाओं वाली देवी का ध्यान कर और दुर्गा तन्त्र से पूजा करनी चाहिए। उस तिथि में रात्रि में विसर्जन करके समाचरण करे। जिस समय में सोलह भुजाओं वाली महामाया का पूजन करे, दुर्गा तन्त्र से करे। उसकी विशेषता के विषय में अब श्रवण करो। कन्या राशि की संक्रान्ति में कृष्ण पक्ष की एकादशी के उपवास किए हुए द्वादशी में एक बार दूसरे दिन में करे। चतुर्दशी में विधान में महामाया का बोधन करे जो गीत, वाद्य और निर्दोष के द्वारा और अनेक नैवेद्यों के द्वारा बोधन करना चाहिए।

बुद्ध पुरुष को दूसरे दिन में अयाचित उपवास करे। इस प्रकार ही जब नवमी हो व्रत करे। ज्येष्ठा में भली भाँति अभ्यर्चन करना चाहिए और मूल में प्रति पूजन करे। उत्तरा से अर्चन करके श्रवण के अन्त में विसर्जन करना चाहिए। जिस समय में अठारह भुजाओं वाली महामाया का पूजन करे। हे भैरव! दुर्गा मन्त्र के द्वारा वहाँ पर भी करे। हे भैरव! उसका आप श्रवण कीजिए। कन्या में कृष्ण पक्ष की आद्रा नक्षत्र के दिन पूजन करे। नवमी तिथि में गीत वादित निर्घोषों के द्वारा देवी का बोधन करे। शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि में देवी के केशों का विमोचन करे। पञ्चमी में प्रातःकाल ही में शुभ जल से स्नपन करावे। सप्तमी में पत्रिका की पूजा करे और अष्टमी में भी उपोषण करे।

नवमी में विधि के साथ पूजा जागरण और बलि करे । दशमी में क्रीड़ा, कौतुक, मंगलों द्वारा सम्प्रेषण करे । दशमी में नीराजन करे जो महान् बल और वृद्धि का करने वाला होता है ।

जिस समय जगन्मयी वैष्णवी देवी महामाया का पूजन करे वहाँ पर उस अवसर पर जो विशेषता है उसका, हे भैरव! अब आप श्रवण करिए । सूर्य के कन्या राशि पर संस्थित होने पर जो पूजा है वह शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि है उस तिथि में रात्रि से वैभव के सितारों से पूजा करनी चाहिए । नवमी से यथाविधि बलिदान करना चाहिए । वहाँ पर विशेष भूति के लिए जप, होम विधि के साथ ही करना चाहिए । मनुष्य को महादेवी का अष्ट पुष्पिका से भली-भाँति पूजन करना चाहिए । पहले समय में श्रीराम के ऊपर अनुग्रह करने के लिए रावण वध के लिए ब्रह्माजी के द्वारा महादेवी रात्रि में ही बोधित की गई थी । इसके अनन्तर वह निद्रा का त्याग करके नन्दा में आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नन्दा तिथि में गमन करने वाली हुई थी । जहाँ पर पहले श्री राघवेन्द्र थे वहाँ से लंका में गये थे । वहाँ पर महादेव जी ने गमन करके उस समय में राम और रावण को युद्ध करने के लिए नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी । वहाँ बानरों और राक्षसों के माँस और रुधिर का भक्षण किया था ।

उस देवी ने श्रीराम और रावण का युद्ध एक सप्ताह तक नियोजित किया था । सातवीं रात्रि के समाप्त होने पर फिर नवमी में रावण को श्रीराम ने मार दिया था । वह जगन्मयी महामाया देवी ने उन दोनों की जब तक युद्ध की केलि हुई थी उसको स्वयं देखा था । तब तक सात रात्रियों में वह ही देवों द्वारा सुपूजित हुई थी और रावण के निहित हो जाने पर नवमी तिथि में समस्त देवगणों के द्वारा पूजा की गई थी । लोकों के पितामह श्री ब्रह्माजी ने दुर्गा देवी की विशेष पूजा की थी । इसके अनन्तर शार्वरोत्सवों के द्वारा देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रेषित की गई थी । इन्द्रदेव ने देवसेना का नीराजन किया था । और वह नीराजन देवसेना में शान्ति के लिए और देवों के राज्य की वृद्धि के

लिए ही किया था। राम और रावण से जो युद्ध हुआ था वह देखकर भय देने वाला हुआ था। तृतीया से लंका से पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाति नक्षत्र से युक्त में सुरों का बल बहुत अधिक भयभीत हो गया था। देवेन्द्र ने हरि के वचन से शान्ति के लिए वारण किया था। इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से संयुत दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरि ने शान्ति स्थापित करने के लिए बल का नीराजन (आरती) किया था। जिसके बल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम रावण को संस्थापित करके देवों सहित अपने स्वर्ग लोक को चला गया था। पहले कल्प में यह इति वृत्ति है जो कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में था। उस समय में दश भुजाओं वाली देवी देवों के हित का सम्पादन करने के लिए प्रादुर्भूत हुई थी। त्रेता युग के आदि काल में हित का सम्पादन करने के लिए प्रादुर्भूत हुई थी। त्रेता युग के आदि काल में मनुष्यों के जगतों की जनता के हित की कामना से पहले काल में जो हुआ था वैसा ही प्रत्येक कल्प में हुआ था। देवी स्वयं दैत्यों के विनाश करने के लिए प्रवृत्त होती है। प्रत्येक काल में श्रीराम होते हैं और राक्षसराज रावण भी हुआ करता है। उसी प्रकार युद्ध होता है और उसी भाँति देवों का संगम भी होता है। इस प्रकार से सहस्त्रों ही श्रीराम के अवतार हुआ करते हैं और रावण भी सहस्त्रों की संख्या में होते हैं। प्राणी भी जो होने वाले हैं वे होते हैं और वैसे ही देवी भी प्रवृत्त हुआ करती है। सभी सुरगण उस देवी का पूजन किया करते हैं तथा नीराजन भी करते हैं।

उसी भाँति जैसा कल्प में करते थे सभी मनुष्य विधि विधान के साथ पूजा किया करते हैं। राजा बल का नीराजन बल की वृद्धि के लिए किया करता है। दिव्य अलंकारों से युक्त वारुणी से प्रवृत्तन होता है। उस समय में क्रीड़ा कौतुकों के द्वारा मंगलमय नृत्य और गीत करने के भक्ष्यों तथा भोज्यों से, कूष्माण्ड, नारिकेल, खर्जूर, पनस, हास, आँवला, शांडिल, प्लीह, करुण, कशेरु, क्रमुक, मूल, जम्बू, तिन्दक तथा गुड़, माँस, मद्य, मधुताल, प्रिय नैवेद्य लाजा (खील), अक्षत,

इक्षुदण्ड, सिता (मिश्री) लवली आदि नागरंजक, अजा, महिषं, मेष अपने शोणित के सञ्चय, अक्षी आदि बलि के जाति वाले तथा अनेक प्रकार के पशुगण के द्वारा तथा माँस और रुधिर के कर्दम के द्वारा जगत् की धात्री का पूजन करना चाहिए ।

रात्रि में स्कन्द विशाख की पिष्ठ पुत्रिका बनाकर शत्रुओं के विनाश के लिए दुर्गा की प्रीति के सम्पादन के वास्ते पूजन करे और तिलों के सहित घृत से तथा माँस से ही होम करना चाहिए । उग्र चण्डादिक की पूजा करनी चाहिए तथा आठ शुभ योगिनियों की अर्चना करे । योगिनियाँ चौंसठ हैं । देवी के सन्निहित परम शुभ नव दुर्गाओं का यजन करे । जयन्ती आदि का गन्ध पुष्पों से पूजन करे क्योंकि वे देवी की मूर्तियाँ हैं और देवियाँ हैं । देवी के समस्त अस्त्र तथा सब भूषण जो देवी के अंग प्रत्यंग में युक्त हैं और देवी के वाहन सिंह का पूजन करना चाहिए । महिषासुर के मर्दन करने वाली सब का सदा भूति-वैभव के लिए यजन करे । पहले कल्प में स्वायम्भुव, मनु के अन्तर में मनुष्यों के कृतयुग के आदि काल में महादेवी सदा देवगणों के द्वारा स्तवन की गई थी । महिषासुर के विनाश के लिए तथा जगन्मयी महामाया प्रसिद्ध थी ।

वह महामाया सोलह भुजाओं से संयुत थी और भद्रकाली, इस नाम से लोकों में विश्रुत थी । क्षीर सागर के उत्तर पूर्वी तट पर अपने विपुल तनु का धारण करती हुई थीं । उनका वर्ण अलसी के पुष्प की आभा के ही समान था और उनके कुण्डल तपे हुए सुवर्ण के समान देदीप्यमान थे । खण्ड चन्द्र से युक्त उनके मस्तक पर कुण्डल जटाजूट थे तथा तीन मुकटों से यह शोभायमान था । उनके कण्ठों में नागों का हार विराजमान था तथा सुवर्ण का भी हार पड़ा हुआ था जिससे वे विभूषित हो रही थी । दाहिनी ओर की बाहुओं के द्वारा वे शूल, चक्र, खंड, शंख, बाण, शक्ति, वज्रदण्ड नित्य ही निरन्तर धारण कर रही थीं । देवी विकास संयुत दर्शनों की पंक्तियों से परम समुज्जवल थीं । बाँई ओर वाली भुजाओं के द्वारा वे खेटक, चर्म, चाप, पाश, अंकुश,

घण्टा, परशु, मुद्गल को धारण कर रही थीं । सिंह वाहन पर विराजमान थी और लाल वर्ण वाले नेत्रों से अतीव उज्जवल थीं । परमेश्वरी अपने शूल के द्वारा महिष असुर का भेदन करके संस्थित थीं । वहाँ पर अपने बाँये चरण से आक्रमण करके जगन्मयी देवी विराजमान थीं । उन देवी का दर्शन करके समस्त देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे । उस महिषासुर को निहित विलोकन करके वे देव कुछ भी नहीं बोल रहे थे । इसके अनन्तर वह परमेश्वरि उन ब्रह्मादिक देवों से बोली ।

देवी के मुख में मन्द हास था और परम प्रसन्न थी, शुभ दन्तपंक्ति से वे उज्जवल थीं । उन्होंने देवों से कहा–हे सुरगणों! आप लोग अब अन्य जम्बूद्वीप की ओर गमन कर जाओ । हिमवान् पर्वत के समीप में परम श्रेष्ठ कात्यायन का आश्रम है । वहाँ पर ही आपका साध्य होगा इसमें संशय नहीं है । इतना कहकर वह महादेवी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थीं । उस अवसर में देवगण भी कात्यायन मुनि के पुर को चले गए थे । देवी के द्वारा महिषासुर निहित हो गया था जो कि अर्थ से हम सबने देखा था । और महा जगतों की धात्री, जगतों से परिपूर्ण देवी का स्तवन किया गया था । उस महादेवी ने हमको यहाँ कात्यायन के आश्रम में गमन करने को किस प्रयोजन के लिए कहा है । क्या कोई अन्य कार्य हमारा वांछित होगा ? वे सब ही परस्पर में विचार करते हुए चले गए थे ।

हिमवान् पर्वत के समीप में ही कात्यायन मुनि का आश्रम है । फिर इन्द्र के सहित तथा दिक्पालों के समेत ब्रह्मा, विष्णु, शिव वहाँ गए थे । वहाँ पर बहुत लम्बे समय तक वे बैठ गए और सभी दुर्गा देवी के दर्शन की लालसा वाले हो रहे थे । इसके अनन्तर समस्त रुद्रगणों ने महिषासुर के चेष्टित को आकर कहा था । उन्होंने देवलोक के पराभव का कथन वहाँ आकर किया था । इसके अनन्तर वहाँ पर ब्रह्मा, शिव, विष्णु प्रभृति ने महान् कोप किया था । वह महिषासुर तो देवी के द्वारा हित कर दिया गया । वह कौन है जिसके द्वारा पुनः यहाँ पर जगतों

का अत्यन्त विध्वंस किया जा रहा है । इस प्रकार से प्रकोप करते हुए उन शरीरों से पृथक्-पृथक् तेज निर्वात हुए जो उसी क्षण शक्ति के स्वरूप वाले थे । उन देवों के शरीरों से निःसृत तेजों से देवी ने वपु धारण किया था और निश्चय ही कात्यायन के द्वारा सन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी । इसी से वह कात्यायनी, इस नाम से कही गई है । इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दश बाहुओं से समन्वित है उस जगतों की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था । जिस अवसर पर महादेवी का संस्तवन किया गया था और शोधित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी । वह देवों के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उसने किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा पूजित थीं और उसने महिषासुर का हनन किया था । दशमी में विदा की गई थी और शिवा अन्तर्धान हो गई थी । मार्कण्डेय ने महर्षि से कहा—राजा सागर ने इस देवी की संगति का श्रवण करके वह उसके स्वरूप में संशयालु होकर पुनः उसने और्व से पूछा था । राजा सागर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व में कैसे महिषासुर के लिए वह भद्रकाली के रूप वाली हुई थी । उसी भाँति उसका दर्शन है कि उसके चरणों से समाक्रांत किया गया था कि उस असुर के हृदय में शूल गड़ा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है । हे मुनि श्रेष्ठ! मुझे यह बड़ा संशय हो रहा है इसका छेदन कृपा कर करिए ।

और्व मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल! आप श्रवण करिए, जिस तरह पहले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर के साथ ही थी । यह महिषासुर ही है जो पर्वत में निद्रा में वर्तमान था । उस वीर ने एक घोर दर्शन वाला स्वप्न देखा था । उसने यह स्वप्न देखा था कि मुँह फैलाए हुए अत्यन्त भीषण महामाया भद्रकाली ने खंड से मेरे शिर का छेदन करके उसके रुधिर का पान कर रही थी । उस समय महिषासुर के द्वारा भली भाँति आराधना की हुई देवी भद्रकाली सोलह

भुजाओं से युक्त होकर प्रादर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी । इसके अनन्तर महिषासुर ने जगन्मयी महामाया को प्रणाम किया और अत्यन्त विनम्र मूर्ति वाला होकर भक्ति की भावना से परिपूर्ण होते हुए उस असुर ने यह वचन कहा । महिष बोला–हे देवी! आपके खंड से मेरे मस्तक को काटकर मेरे रुधिर को आपने पिया था और मैंने यह स्वप्न देखा है । स्वप्न के द्वारा निश्चित रूप से मैंने अवलोकन किया है । आपके द्वारा यह अवश्य ही करना है, यह मैंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है । यह मेरे रुधिर का पान आप अवश्य ही करेंगीं । अब उसमें मुझे एक वरदान दीजिए ।

हे परमेश्वरि! मैं तुम्हारे द्वारा ही वध करने के योग्य हूँ । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । मुझे भी इस विषय में कोई दुःख नहीं है क्योंकि जो नियत है वह किसी के भी द्वारा लंघित नहीं हुआ करता है अर्थात् उसे कोई टाल नहीं सकता है । किन्तु पहले समय में आपके ही साथ मैंने भगवान् शम्भु की आराधना की । मैंने भी शम्भु का समाराधना किया था और उसी भाँति की चेष्टायें प्राप्त हुई थीं । जब तक तीन मनवन्तर हैं, उत्तम असुर राज्य है । मैंने उस राज्य को अकण्टक रूप से भोग किया है । मुझे इसका कुछ भी अनुमान नहीं है । शिष्य के कारण से कात्यायन मुनि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था । यह सीमान्तिनी तेरा विनाश करेगी, इसमें संशय नहीं है । पुराने समय में तपश्चर्या करते हुए परम श्रेष्ठ रोद्राशव नामक जो कात्यायन मुनि के शिष्य को हिमवान् के समीप में एक अनुपम स्त्री का रूप धारण करके मैंने कौतुक से मोहित किया था । विप्र ने उस अवसर पर तप का त्याग कर दिया था । पाप में ही संस्थित कात्यायन के पुत्र ने मुझे शाप दिया ।

उस समय में माया का ज्ञान प्राप्त करके शिष्य के लिए क्रोध की अग्नि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था क्योंकि तुमने यह मेरा शिष्य मोहित किया है जो तप से च्युत हो गया है । तूने स्त्री के स्वरूप के द्वारा ऐसा किया है इसलिए तुझको स्त्री ही मारेगी । इस रीति से पूर्व में कात्यायन मुनि ने स्वयं मुझको शाप दिया था । उस शाप का काल

अब आकर उपस्थित हो गया है । मैंने देवों के इन्द्र का पद प्राप्त किया था और तीनों भुवनों का समान उपभोग किया था । मुझे कुछ भी सोचने अर्थात् शोक और चिन्ता करने के योग्य नहीं है और न मुझे शेष जो भी प्रार्थना करने योग्य है जो देवि! हे दुर्गे! मुझे दीजिए । आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

देवी ने कहा—हे महासुर! जो मुझे वरदान प्रार्थना करने के लायक हैं उसके विषय में तुम अब श्रवण करो । तुम्हारा प्रार्थनीय जो वर है उसको दे दूँगी, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । महर्षि ने कहा—मैं आपकी प्रसन्नता से यज्ञ के भाग का उपभोग करना चाहता हूँ । जिस रीति से सभी यज्ञों में पूज्य हो जाऊँ वैसा ही आप मुझ पर दीजिए । जब तक भी संसार में सूर्यदेव विद्यमान है मैं आपके चरणों की सेवा का परित्याग नहीं करूँगा । यदि आपके द्वारा मुझे वरदान देना है तो इस प्रकार से ये दो वर मुझे देने की कृपा कीजिए ।

देवी ने कहा—यज्ञों के भाग तो देवगणों के ही लिए पृथक्-पृथक् कल्पित हैं । अन्य कोई भी भाग शेष नहीं है जो मैं इस समय तुझे दूँगी । किन्तु हे महिषासुर! मेरे साथ युद्ध में तेरे निहित हो जाने पर तू मेरे चरणों को कभी नहीं त्यागेगा और निरन्तर चरण से संपुष्ट ही रहेगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे दानव! जहाँ-जहाँ पर भी मेरी पूजा प्रवृत्त होती है वहाँ पर यह तुम्हारा शरीर भी पूजा के और चिंतन करने के योग्य होगा । प्रातःकाल में यह उस देवी का वचन सुनकर महिषासुर वहाँ पर वर प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ ।

उसने कहा—हे उग्रचण्डे! हे दुर्गे! हे भद्रकाली! हे देवि! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है । हे देवि! आपकी बहुत सी मूर्तियाँ हैं और आपके द्वारा समस्त परिपूर्ण हैं । हे परमेश्वरि! मैं यज्ञ में किन मूर्तियों के द्वारा पूज्य होऊँगा । यही आप मुझे बताइए यदि आपके द्वारा मेरे ऊपर यहाँ पर कृपा की गई है ।

देवी ने कहा—हे महिषासुर! यहाँ पर आपने जो भी नाम कहे हैं उन मूर्तियों में संस्पुष्ट होता हुआ लोक में तुम पूज्य होओगे । जो उग्रचण्डा

मूर्ति है फिर मैं भद्रकाली हूँ जिस मूर्ति के द्वारा मैं तेरा हनन करूँगी वह दुर्गा कीर्त्तित की गयी है । इन मूर्तियों में सदा ही तुम मेरे चरणों के पूज्य होओगे । प्राचीन काल में जब सृष्टि का आदि काल था उस समय उग्रचण्डा मूर्ति के द्वारा तुम्हारा हनन किया गया था । दूसरी सृष्टि के समय में आपको भद्र काली मेरे द्वारा निहित किया गया था । और इस समय में दुर्गा के स्वरूप के द्वारा तुमको तुम्हारे अनुगामियों के सहित हनन करूँगी किन्तु पूर्व में मेरे द्वारा चरण के तल में तुमको ग्रहण करने वाले हो गए हो । अतएव पूर्व कालों में ग्रहण किए गए हो और पीछे भी यज्ञ भाग की मुक्ति के लिए ग्रहण करने के योग्य हो गए हो । और्व मुनि ने कहा–इतना कहकर उस महामाया ने उग्रचण्डा नाम वाले तनु को उस समय में महिषासुर को दिखा दिया था । जो मूर्ति सोलह भुजाओं वाली थी और भद्रकाली, इस नाम से विश्रुति थी उसी भाँति मूर्ति को अमर बाहुओं से धारण करने वाली थी ।

दक्षिण की ओर नीचे गदा रखे हुए बांये हाथ से पान पात्र को रखे हुए थी जो सुरों से भरा हुआ था । शिर में नर मुण्डों की माला धारण करने वाली थीं । भिन्न हुए अंजन के समान थी, प्रचण्ड स्वरूप वाली और सिंह के वाहन वाली थी । लाल वर्ण वाले नेत्र थे, महती काया थी और अठारह बाहुओं से युक्त थी । उग्रचण्डा और भद्रकाली ये दो मूर्तियाँ थी । ऐसे स्वरूप का दर्शन करके शीघ्र ही महिषासुर ने उनको प्रणिपात किया था और वह बहुत ही विस्मय को प्राप्त हो गया था । इसके अनन्तर जिस रीति से आक्रान्त करके महिषासुर को निहित किया था ठीक उसी भाँति दोनों देवियों ने उसको चरण के तल से नीचे ग्रहण कर लिया था । उसका हृदय शूल से विदीर्ण किया हुआ और महिषासुर बिना शिर वाला था । देवी के द्वारा उसके केश ग्रहण किए हुए थे और निकलती अँतड़ियों से भूषित हो रहा था । जिसके मुख से रुधिर निकल रहा था, ऐसा जिसका शरीर था ऐसे अपने पूर्व शरीर को उसने देखा था । वह असुर भय को प्राप्त करके बहुत चिन्ता एवं शोक करने लगा था तथा मोह को प्राप्त हो गया था । इसके अनन्तर

एक ही क्षण में दानव ने अपने आपको संस्तम्भित किया था और उसने देवी को प्रणाम किया था तथा गद्गद् होकर देवी से उसने यह वचन कहा—महर्षि ने कहा—हे देवि! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और आपने यज्ञ के भागों को मेरे लिए कल्पित किया है तब मेरा अन्य जन्म प्राप्त न करूँ। देवी ने कहा—आपने मेरी आराधना की है अतएव मैंने आपको वर दे दिया है । यहाँ पर तुम मेरे ही द्वारा वध्य होगे, इस विषय में कुछ भी विचार तुमको नहीं करना चाहिए । जो भी तुमने प्रार्थना की है कि मेरा विरोध सुरों के साथ न होवे, यह भी सब हो जायेगा । हे दानव! मेरे चरण के तल के स्पर्श से तेरा शरीर यज्ञ भागों से उपभोग करने के लिए विशीर्ण नहीं होगा । हे महासुर! तेरे जीवात्माओं के साथ प्राण सब ही भगवान् हर के पाद के संयोग से केवल चिरकाल पर्यन्त स्थित रहेंगे । हे महिषासुर! सहस्त्रों करोड़ कल्प तक और चिरकाल पर्यन्त तेरे जन्म न होंगे ।

इस प्रकार से यह वर देवी ने उस महिषासुर को देकर उस असुर के द्वारा शिर से प्रणत होती हुई वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी । वह महिष भी हे नृप! पुनः माया के द्वारा सम्मोहित होता हुआ पूर्व की भाँति आसुरी भाव का आदान करके अपने स्थान को चला गया था । राजा सगर ने कहा—माया के द्वारा अनेक दैत्य निहित किए गए थे जिनका वध लोकों की विभूति के लिए ही हुआ था । उसको शुभ वरदान देकर वे पुनः प्रगृहीत नहीं हुए थे । यह किस कारण से वर देकर कैसे पुनः प्रगृहीत हुआ था ? हे द्विजोत्तम! मुझे यह बतलाने की कृपा करें ।

और्व मुनि ने कहा—सुरों के बैरी रम्भ के द्वारा वे भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गए थे । इसके अनन्तर परम प्रसन्न महादेव जी प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित होकर उस रम्भ से बोले थे कि मैं तुम पर परम प्रसन्न हो गया हूँ अब जो भी तेरा इच्छित हो मुझसे वरदान का वरण कर लो । इस रीति से कहा हुआ रम्भ भगवान् चन्द्रशेखर से बोला था । हे महादेवजी! मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यदि आपका मुझ पर अनुग्रह हो तो, हे शंकर! मेरे तीन जन्मों में आप ही मेरे पुत्र होकर जन्म ग्रहण

करें। ऐसा ही पुत्र हो जो समस्त प्राणियों के द्वारा अवध्य हो और देवगणों का नेता होवे।

हे शंकर! वह मेरा पुत्र ऐसा हो जिसकी आयु चिरकाल तक होवे, यह यशस्वी और लक्ष्मीवान् होवे। इस प्रकार से जब उस दैत्य के द्वारा प्रार्थना की गई तो भगवान् वृषभध्वज ने कहा–यह तेरा वांछित हो जावे और मैं तेरा पुत्र जाऊँगा। इतना ही कहकर भगवान् वृषभध्वज वहाँ पर जावे और मैं तेरा पुत्र जाऊँगा। इतना ही कहकर भगवान् वृषभध्वज वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गए थे। रम्भ भी प्रसन्न होता हुआ अपने निवास स्थान को चला गया था। मार्ग में गमन करते हुए उस रम्भ ने शुभ महिषी को देखा था। वह महिषी त्रिहायणी, चित्र वर्ण वाली परम सुन्दरी और ऋतुशालनी थी। उस रम्भ ने उस महिषी को देखा था और कामदेव से मोहित हो गया था अर्थात् महिषी को ग्रहण करके उसके साथ सुरतोत्सव किया था फिर रति क्रीड़ा के प्रवृत्त हो जाने पर उसी समय में वह महिषी उसके तेज से युक्त होकर वह गर्भवती हो गयी थी। महिषी ने गर्भ धारण कर लिया था तभी उसके उदर से महिषासुर समुत्पन्न हुआ था। उस महिषी में अपने ही यश से भगवान् शंकर ने उसके पुत्र हो जाने की प्राप्ति की थी। वह रम्भ का पुत्र राम्भि शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की ही भाँति बड़ा हो गया था। कात्यायन मुनि ने उस महिषासुर के लिए शाप दे दिया था। शिष्य के अर्थ में उसको दुर्जय अवलोकन करके शिष्य पर अनुग्रह करने वाले चन्द्रशेखर ने कात्यायन के द्वारा शाप दिए हुए उस महिषासुर का ज्ञान प्राप्त करके चण्डिका से प्रणाम पूर्वक कहा–

ईश्वर ने कहा–आज हे देवि! यह महिषासुर कात्यायन के द्वारा शापित किया गया है। इसके विनाश करने वाली योषित होगी। इससे हे जगन्मये ! ऋषि का वाक्य बिना किसी सन्देह के ही पूर्ण होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह महिष मेरा ही शरीर है। हे जगन्मयि! यह तुम्हारे द्वारा करना है और इसका हनन करना है। पूर्व और पर में भी निरन्तर योग से युक्त मैं हरि के स्वरूप से तुमको वहन

करने में अब समर्थ नहीं हूँ। मेरा यह शरीर महिष तुम्हारा बोझा होगा। यह महादेवजी ने पूर्व में पहले देवी से प्रार्थना की थी। इससे देवी ने महिषासुर महादेव को ग्रहण किया था। उसने उसी प्रकार का आसुर तप का तपन किया था जो परम दारुण था।

उसी भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की थी और पुत्रार्थ वरदान प्रदान किया था। उसी रीति से उसने अपनी महिषी की सुरत के लिए सेवन किया था। उसमें उसी प्रकार से दानव महिषासुर दानव वीर हुआ था। भगवान् कात्यायन भी उसी प्रकार के उसको शाप दिया था। पूर्व जन्म में इस प्रकार से प्रवृत्त होने पर उसने अन्य जन्म में महिष ने देवी का पूजन करके वर की याचना की थी। तीसरे जन्म में वर प्राप्ति करके अशेष कल्पों में यहाँ पर मेरा जन्म न होवे, यह वरदान माँगा था। इस कारण से देवी के चरणों के तल में इस समय में महिषासुर स्थित रहा करता है।

इस प्रकार से देवी के प्रसाद से महादेवजी के अंश से उत्पन्न होने वाले महासुर ने निरन्तर परा प्रतिपत्ति का लाभ किया था। यह आज भी देवी के चरणों के तल की प्राप्ति से परम प्रसन्न होता है। हे राजन्! यह आपके समक्ष में सब कहकर सुना दिया है। हे राजन! अब प्रस्तुत विषय का आप श्रवण कीजिए। हे नृपोत्तम! मैं आपके सामने कहता हूँ। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस तरह से राजा सगर था और देवी, महर्षि के यजन में और्व के साथ सम्वाद किया था। यह सभी आपको बता दिया गया है।

कामाख्या माहात्म्य

और्व मुनि ने कहा—जिस रीति से भगवान् महादेव ने महात्मा भैरव से कहा था। हे नृप श्रेष्ठ! आप उसी भाँति सुनो। श्री भगवान् ने कहा—जो उग्रचण्डा मूर्ति हैं और जो अठारह भुजाओं वाली हुई थी वह पहले कन्या राशिगत सूर्य के होने पर कृष्ण पक्ष में नवमी में करोड़ों योनियों के सहित महामाया प्रादुर्भूत हुई थी। आषाढ़ मास की पूर्णिमा

में द्वादश वर्ष का होने वाला सत्र होता है । सत्र को करने के लिए प्रजापति दक्ष ने समारम्भ किया था और सभी देवों का वरण किया गया था, उसने मुझे वरण नहीं किया था । अर्थात् महात्मा दक्ष ने मुझे आमन्त्रित नहीं किया था । वे कपाली अर्थात् कपालधारी है और सती उनकी पत्नी है, इसलिए वरण नहीं किया था । इसके पश्चात् रोष से समायुक्त होकर उस सती ने प्राणों का परित्याग कर दिया था । देह के त्याग करने वाली सती फिर उस समय चण्डमूर्ति हो गई थी । फिर बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले उस यज्ञ के प्रवृत्त होने पर कन्या के सूर्य में कृष्णपक्ष में नवमी तिथि के दिन चण्डमूर्ति को धारण करने वाली योगनिद्रा महामाया ने करोड़ों योगिनियों के साथ यज्ञ का नाश कर दिया था ।

उस महामाया ने सती के स्वरूप का परित्याग करके यज्ञ का विध्वंस कर दिया था । वह सभी भगवान् शिव के गणों तथा शंकर के भी सहित थी । महात्मा देव के उस महामन्त्र को उस देवी ने स्वयं भंग किया था । फिर महादेवी के महान् क्रोध के व्यतीत हो जाने पर देवगणों ने पूर्व में वर्णित प्रकार से उस अनुपम देवी की पूजा की थी। देवों ने पूर्व वर्णित विधान से इस देवी की पूजा की थी । देवों ने दुखों की हानि के लिए पूजा करके ही परम निवृत्ति की प्राप्ति की थी । इसी प्रकार से अन्य जनों को भी सदा देवी का पूजन करना चाहिए । अतुल विभूति की प्राप्ति के लिए इस चतुवर्ग को प्रदान करने वाली पूजा को अवश्य सदा सबको करनी चाहिए । जो मोह वश या आलस्य से इस महोत्सव के अवसर में देवी पूजा नहीं करता है तो उससे देवी परम क्रुद्ध हो जाती है और अभीष्ट कामनाओं का हनन किया करती हैं ।

बहुत जाति वाली बलियों के द्वारा, भोजनों से, सिन्दूर, रक्त वस्त्र अनेक प्रकार के विलेपन, पुष्प जो नाना प्रकार के हों, बहुत तरह के फलों के द्वारा पूजन करना चाहिए । इस महाष्टमी में जो पुत्र वाला हो उसे उपवास नहीं करना चाहिए । जिस किसी प्रकार से भी पवित्र आत्मा वाला व्रतधारी देवी का यजन करे । महाष्टमी में पूजा करके

नवमी तिथि में बलियों का समर्पण करके विदा करे । दशमी तिथि में श्रवण में शावरोत्सवों के द्वारा जिस समय में दिवा के भाग में पुरुष को सम्प्रेषण करना चाहिए । सुवासिनयों के द्वारा, कुमारियों, वेश्याओं के, नर्तकियों के द्वारा शंख, तूर्यों की ध्वनियों से, मृदंग और पटहों के द्वारा ध्वज, बहुत प्रकार के वस्त्रों से, लाजा (खील) और पुष्पों के प्रकीर्ण के द्वारा देवी का पूजन करे ।

उसी समय नवमी में निशा के भाग में देवी का समुत्थान दिन में नहीं करे । निशा के भाग में जब अन्तिम चरण श्रवण को होवे उसी समय में देवी का समुत्थान नवमी में दिन के भाग में होता है । हे वत्स भैरव! इस मन्त्र के द्वारा विसर्जन करना चाहिए । हे देवि! हे चण्डेशे! आप समुत्थान कीजिए और शुभ पूजा को ग्रहण करिए । अपनी आठों शक्तियों के सहित मेरा कल्याण करिए । हे देवि! चण्डिके! अपने परम स्थान को गमन कीजिए प्रस्थान करिए । हे देवि! मेरे द्वारा जो पूजन किया है वह मुझे परिपूर्ण होवे ।

जल में निमज्जन करके पत्रिका वर्जित जल में भली भाँति त्याग करके पुत्र, आयु और धन की वृद्धि के लिए मेरे द्वारा जल में आपको संस्थापन करना चाहिए । यह सब लोकों की विभूति के लिए करे । महोत्सव में दुर्गा तन्त्र के द्वारा भद्रकाली, महामाया उग्रचण्डा दोनों ही देवियों का पूजन करना चाहिए । सब देवियों के पूजन में नेत्रबीज परिकीर्तित किया गया है । सब योगिनियों का और मूलमूर्ति का तथा उग्रचण्डा का मन्त्र, हे भैरव! आप पृथक् श्रवण कीजिए । अन्त में मन्त्र का उपांत आद्यद्वय नेत्रबीज है । अन्तः स्वरवह्नि से बिन्दुओं से औग्रक तन्त्र है । द्वितीया तो नेत्र द्विधा वर्जित कहा गया है । यह भद्रकाली का मन्त्र है जो धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए है ।

आठ योगिनियों वाली तन्त्र में वर्णित वैष्णवी देवी का यजन किया जाया करता है । हे भैरव! पूर्व कल्प में वे शैल की पुत्री कही गई है । उग्रचण्डा आदि आठ दुर्गा तन्त्र की कीर्तित की गई है । भद्रकाली के मन्त्र के द्वारा भद्रकाली का पूजन करना चाहिए । ये आठों योगिनियों

का भूति की वृद्धि के लिए अभ्यर्चन करना चाहिए । अब उन आठों के नाम बताये जाते हैं, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री इनका आठ दलों में पूजन करे । जिस समय में उग्रचण्डा तन्त्र के द्वारा वहाँ पर वह देवी पूजी जाती है, हे भैरव! वहाँ पर आठ योगिनियाँ जो अन्य हैं, पूजन चाहिए । अब इनके भी नाम बताये जाते हैं–कौशिकी, शिव की दूती, उमा, हेमवतीश्वरी, शाकम्भरी, दुर्गा, सातवीं महोदरी हैं ।

हे भैरव! सौम्य मूर्ति उमा का तन्त्र अब आप श्रवण कीजिए । समाप्ति के सहित आदि फट् जिसके अन्त में होवे और अन्त हीन होवे । एक अक्षर वाला और तीन अक्षरों से संयुत उमा का मन्त्र कहा गया है ।

अब ध्यान बताया जाता है–सुवर्ण के समान वर्ण वाली है, गौरी दो भुजाओं से युक्त है दाँये हाथ से नील कमल का सदा धारण किए रहती हैं । शुक्ल चामर को धारण करके गर्भ के दाहिने अंग में दाहिने हाथ का विन्यास करके संस्थित है, ऐसा ही परिचिन्तन करना चाहिए । भक्त को शम्भु के बिना भी रुद्राणी का ध्यान करना चाहिए । जो दो भुजाओं वाली है, स्वर्ण के सदृश परम शुभ अंगों से समन्वित है । पद्म तथा चामरा को धारण करने वाली है । व्याघ्र के चर्म पर स्थित पद्म पर सदा पद्मासन में संस्थित हैं । हे बेताल भैरव! इसके पूजन में आठ योगिनियों बताई गयी हैं । योगिनियों और नायिकायें भी पृथक् व्यवस्थित हैं । अब उन आठों के नाम बताये जाते हैं, जया, विजया, मातंगी, ललिता, नारायणी, सावित्री, स्वधा, स्वाहा ये आठ हैं । पहले समय में शुम्भ और निशुम्भ ये दो भाई दानव थे । ये दोनों महान् सत्व वाले थे । इनका विशाल शरीर था । ये महान् बल वाले थे, अन्धक दानव के पुत्र थे और ये दोनों मतवाले दुर्मद गजों के ही समान थे । ये दोनों सेना के साथ रहते थे और उनके वाहन भी थे, वे पाताल तल में समाश्रित थे ।

इसके उपरान्त उन दोनों महान् असुरों ने परम तीव्र तपश्चर्या की

और उस समय तप के द्वारा ब्रह्मा जी को परम सन्तुष्ट कर लिया था। ब्रह्माजी के द्वारा वर प्राप्त कर लिया था। शुम्भ ने इन्द्र के पद को प्राप्त करके इन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था और निशुम्भ ने चन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था। इन्होंने समस्त देवगणों के जो यज्ञों में भाग थे उनका उपाहरण कर लिया था। स्वयं शुम्भ और निशुम्भ ने दिक्पालों के पद को प्राप्त कर लिया था। इन्द्र के सहित समस्त देवगण फिर हिमाचल पर गए थे और गंगावतरण के स्थल के समीप में उन्होंने महामाया की स्तुति की थी। नाना भाँति से स्तवन की हुई देवी जो कि सभी देवों के समुदायों द्वारा स्तुत हुई थी। मातंग वनिता का स्वरूप धारण करके उस देवी ने देवगणों से पूछा था—हे देवगणों! यहाँ पर आपके द्वारा कौन सी भामिनी का स्तवन किया जा रहा है और आप लोग यहाँ पर किसलिए समागत हुए हैं ? किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए इस मातंग के आश्रम की ओर आये हैं ?

इस प्रकार से यह बोलती हुई उस मातंगी के कायकोष से समुद्भूत हुई देवी ने कहा—ये सुरगण मेरा ही स्तवन कर रहे हैं। शुम्भ और निशुम्भ ये असुर समस्त देवों को बाधा दिया करते हैं। इसी कारण से उन दोनों का वध करने के लिए इन समस्त सुरों के द्वारा मेरा स्तवन किया जा रहा है। मातंगी के कायकोष से देवी के विनिःसृत होने पर वह गौरी पिसे हुए अञ्जन के समान ही एक ही क्षण में कृष्ण वर्ण की हो गयी थी और वह हिमवान् पर्वत में समाश्रय वाली थी। ऋषिगण जो मनीषी है उसको यहाँ पर उग्रतारा नाम से कहा करते हैं। यह अम्बिका देवी सदा भय से भी परित्राण किया करती हैं। इसका प्रथम बीज तीनों ही कहे गए हैं। यह इसी कारण से एक जटा नाम वाली है क्योंकि एक ही जटा वाली है। हे बेताल भैरव! इसका चिन्तन अर्थात् ध्यान जिस प्रकार से भक्त ध्यान करके अपना अभीप्सित प्राप्त किया करता है कि वह चार भुजाओं से समन्वित है उनका वर्ण एकदम कृष्ण है और यह नरमुण्डों की माला से शोभायमान है।

दाहिने हाथ से वह खंड को धारण किए हुए हैं और अधोभाग में

चमर धारण कर रही है । क्रम से बायें में हाथ खर्पर को धारण करने वाली हैं । स्वयं शिर के शरीर एक जटा को धारण कर रही हैं । जो द्युलोक को मानो जटा से लिख रही होवें । मस्तक में मुण्डों की माला पहने हुए हैं और सर्वदा ग्रीवा में भी मुण्डमाला धारण करती है । उनके वक्षस्थल में नागों का हार है और उनके नेत्र रक्तवर्ण के हैं । कटि में कृष्ण वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली हैं तथा बाघम्बर से भी समन्वित रहती हैं । उनका बाँया चरणशिव के हृदय पर है तथा दाहिना चरण सिंह की पीठ पर संस्थापित हो रहा है और स्वयं शव को अपनी लम्बी जिह्वा से चाट रही है । अट्टहास करती हुई महान् घोर ध्वनि वाली अत्यन्त ही भीषण स्वरूप वाली है । निरन्तर सुख की इच्छा वाले भक्तियुक्त भक्तों के द्वारा आगे वह तारा देवी चिन्तन के योग्य हैं । अब देवी को जो आठ योगिनियाँ कही गई हैं उनको मैं बतलाऊँगा । उनके सब नाम बताये जाते हैं, महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और आठवीं भैरवी बताई गई है । उन योगनियों का यजन करना चाहिए ।

हे भैरव! जो कालिका के कायकोष से निकली थी वह कौशिकी इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी । यह परम सुन्दर, स्वरूप वाली और अत्यधिक मनोहर थी । यह देवी के हृदय से निःसृत हुई थी । रसना के अग्रभाग से चण्डिका निकली थी । यह इतनी अधिक सुन्दर थी कि इनके समान कोई भी अपनी मूर्ति की चारुरूपता से युक्त नहीं थीं । तीनों लोकों में कान्ति से इसके तुल्य कोई भी नहीं है और न होगी । जो महामाया योगनिद्रा मूल प्रकृति मानी गयी है । जो यह कौशिकी देवी कही गयी है यह उसकी प्राण की स्वरूप वाली है तथा इसका नेत्र बीज कहा गया है । हे भैरव! इसका मन्त्र और मूर्तिरूप को मैं कहूँगा । समाप्ति नान्त्य दन्त्य बिन्दुओं के सहित सर्वांगादि और परस्पर में संस्पृष्ट हो और बिन्दु से समलंकृत होवे यह कौशिकी मन्त्र का तन्त्र है जो समस्त काम और अर्थ का देने वाला है । उसकी जो यहाँ पर मूर्ति है उसको मैं बताऊँगा । आप एक मन वाले होकर उसका श्रवण करिए यह जगत् के आह्लाद को करने वाला है ।

अब उसके स्वरूप का वर्णन किया जाता है, धाम्मिल पुष्पों के द्वारा जिसके केश सुसंयत हैं, केशों के अन्त में और तिलक के ऊर्ध्व भाग में चन्द्र की नीचे की ओर मुख वाली कला को धारण किए हुए हैं और परम मनोहर है । मणियों से परिपूर्ण कुण्डलों से जिसके गण्डस्थल संस्पृष्ट हो रहे हैं तथा जिसका मस्तक मुकुट से विभूषित है । कर्णपूरों की सद्ज्योति कानों को आपूरित करके संगत हो रही है और वह सुवर्ण, मणि तथा माणिक्यों के सहित नागहार से विराजमान हैं । वह सर्वदा सुगन्धयुक्त पद्मों से जो कि म्लान नहीं है अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाली है । जो अपनी ग्रीवा में माला को धारण किए हुए हैं रत्न निर्मित केयूरों को पहने हुए हैं । यह मृणाल के सदृश आयत एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ बाहुओं से समन्वित है । जो कञ्चुकी के समेत पीन एवं उन्नत पयोधरों वाली शोभायमान है । इनका मध्यभाग बहुत क्षीण है, पीत वर्ण के वस्त्रों वाली हैं और त्रिवली से विभूषित हैं । वह देवी अपने दाहिने ओर के करों के द्वारा शूल, वज्र, वाण, खंग और शक्ति को धारण करके विराजमान हैं । वह देवी अपने बायें करों से ऊर्ध्वादि क्रम से ही गदा, जटा, चाप, चर्म और शंख को धारण करने वाली है ।

वह कौशिकी देवी सिंह के ऊपर संस्थित है तथा व्याघ्र के चर्म को धारण किए हुए हैं । उनका रूप अनुपम है, जो सभी सुरों और असुरों के मोदन करने वाला है । हे वत्स! इसकी जो आठ योगिनी पूजा के योग्य हैं उनके विषय में आप श्रवण करिए । वे पूजित होती हुई मनुष्यों के चतुर्वर्ग को सदा प्राप्त किया करता है । अब उन आठों के शुभ नाम बताये जाते हैं । सर्वप्रथम ब्रह्माणी कही गयी हैं, फिर माहेश्वरी, कौमारी, वाराही तथा पाँचवी वैष्णवी है, नारसिंही, ऐन्द्री तथा आठवीं शिवादूती है । इन महामाया योगिनियों का अभ्यर्चन करना चाहिए । ये कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं । जो देवों के ललाट से विनिर्गत हुई थी, वह काली इस नाम से प्रसिद्ध है । हे भैरव! उस काली का मन्त्र मैं बताऊँगा, उसका आप श्रवण करिए । मन्त्र कामनाओं का प्रदान

करने वाला है। समाप्ति के सहित दन्त्य है और उसके आगे रहने वाला प्रान्त होता है। छठवें स्वर अग्नि और बिन्दु के सहित होता है तथा आदि के भी सहित होता है। यह काली का मन्त्र बताया गया है। यह धर्म, काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है। अब इसकी मूर्ति का वर्णन करूँगा। हे वत्स! तुम एकाग्रमन वाले होकर उसका श्रवण करिए।

वह नीलकमल से समान श्याम वर्ण वाली है और चार बाहुओं से समन्वित उनका वपु है। वह अपने दाहिने कर में खट्वांग और चन्द्रहास को धारण करने वाली है। वाम कर में पुनः ऊर्ध्व और अधो भाग में चर्म और पाश को धारण किए हुए हैं। कण्ठ में नरमुण्डों की माला पहने हुए हैं और व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाली परम श्रेष्ठ हैं। उनका अंग कृश हैं और लम्बी दाढ़ों वाली है तथा अत्यन्त दीर्घ अर्थात् लम्बी एवं अत्यन्त भीषण स्वरूप से समन्वित है। उनकी जिह्वा अतीव चंचल है, निम्न रक्त वर्ण वाले नेत्रों से संयुत है, उनका महान् भैरव नाद है। मृत मनुष्य के धड़ को वाहन बनाकर उपविष्ट है और उनके श्रवण तथा मुख विस्तार वाले हैं। इस प्रकार के स्वरूप से सम्पन्न यह तारा देवी है और यह चामुण्डा, इस नाम से गान की जाया करती हैं। इस देवी की आठ योगिनियाँ हैं यदि उनका यजन एवं ध्यान किया जावे। उनके ये शुभ नाम हैं, त्रिपुरा, भीषण, चण्डी, कर्त्री, विधायनी, कराला और शूलिनी, ये आठ के कीर्त्तित की गई हैं। यह देवी अतिकाम की हानि करने वाली है। उस देवी के समान कोई भी कामनाओं के देने वाली नहीं है। यह देवी कौशिकी के हृदय से निकली हैं।

यह देवी शिवदूती नाम से प्रसिद्ध है और सैंकड़ों देवों से सर्वदा समावृत रहा करती है। अब मैं इसका मन्त्र बताऊँगा जो धर्म काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है और मनुष्य अविलम्ब ही समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और सब विजय प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है। अन्त समाप्ति के सहित है और बिन्दु तथा इन्दु से दशावर है। उपान्त्य स्वर से अन्त से पूर्व में संम्पृष्ट होता है। वह

ही दो बिन्दु पूर्व में स्थित उपांत पावक है । छटे कला से शून्यों के सहित प्रथम स्थित है । हे वत्स! अब मैं इसके स्वरूप का वर्णन करूँगा । आप एकाग्रचित होकर ही इसका श्रवण करिए । इसकी चार तो भुजायें हैं, परम विशाल शरीर है और सिंदूर के समान ही इसकी आकृति है । रक्त वर्ण वाली इसकी दन्त पंक्ति है । कंठ में नर मुण्डों की माला धारण किए हुए रहती है और मस्तक में जटाजूट तथा अर्द्धचन्द्र विराजमान रहा करता है । कानों के कुण्डलों तथा हार से शोभायमान हैं उसके नख परम उज्जवल हैं ।

यह देवी बाघम्बर का परिधान करती है । दक्षिण भुजाओं में शूल शंख धारण किया करती हैं तथा बांये करों में पाश तथा चर्म ऊर्ध्व तथा अधो भाग के क्रम से धारण करने वाले हैं । इनका मुख स्थूल है, पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं, इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयंकर है, यह दाहिने चरण को कुणप के ऊपर निक्षिप्त करके संस्थित रहती है । उनका बाँया चरण शृगाल की पीठ पर रहता है जो शृगाल सैंकड़ों ही फेरुओं से घिरा हुआ होता है । इस प्रकार की शिवदूती की प्रतिमा है । इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिए करना चाहिए । इस देवी के केवल ध्यान ही करने से मनुष्य परम कल्याण की प्राप्ति कर लिया करता है । और यदि इस देवी का अर्चन किया जावे तो यह समस्त कामनाओं को प्रदान कर दिया करती है । जो कोई पुरुष शिवाओं की ध्वनि का श्रवण करके शुभों की प्रदात्री शिवदूती को साधक प्रणाम किया करता है और भक्ति की भावना से प्रणिपात करता है तो उसकी सभी कामनायें उसके साथ ही में स्थित रहा करती हैं । जिस अवसर पर समस्त जगतों की भलाई करने के लिए इसने रक्तबीज का हनन किया था तो उस समय में महामाया महादेवी इसके शरीर से निःसृत हुई थी । उस अम्बिका ने शुम्भ दैत्य के लिए शिव को ही अपना दूत बनाकर उसके पास प्रेषित किया था । उसी कारण से वह समस्त देवगणों के द्वारा शिवदूती इस शुभ नाम से गान की जाया करती है ।

इसके पूजन में बारह योगिनियाँ कीर्तित की गई हैं, उनके शुभ नाम से हैं, क्षेमकारी, शांता, वेदमाता, महोदरी, कराला, कामदा, भगास्या, भगमालिनी, भगोदरी, भगारोहा, भगजिह्वा, भगा, ये द्वादश योगिनियाँ हैं जिनका पूजन कहा गया है । देवी स्वयं ही विचरण करती हुई जहाँ-तहाँ पर गमन किया करती हैं । जिस प्रकार से अन्यों की हुआ करती है वैसे ही पुनः ये योगिनियाँ सखियाँ होती हैं । चण्डिका की योगिनियाँ यहाँ पर सब सखियाँ बताई गई हैं । ये सब रीति से आपके-सामने अंग मंत्र संक्षेप में वर्णित कर दिए गए हैं । अब आप दोनों के समक्ष में कामाख्या देवी का कल्पमात्र महात्म्य बताता हूँ।

नृप धर्म कथन

ऋषियों ने कहा—आपने सर्ग का वर्णन किया और जो भी कुछ संशय उसमें हुए थे उनका भी आपने निवारण कर दिया है । हे गुरो! आपके प्रसाद से, हे महाभाग! हम कृत-कृत्य हो गए हैं । हे द्विजात्मा फिर हम आपसे कुछ श्रवण करना चाहते हैं यह अन्य भृंगी महाकाल कौन है जो यह वेताल तथा भैरव समुत्पन्न हुए हैं । बेताल को महाकाल और भृंगी भैरव को हम सुनते हैं । इनका चतुष्टय कैसे हुआ अर्थात् चार कैसे हो गए थे । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो! महाकाल के भूमण्डल में उत्पन्न होने पर और मनुष्यत्व में भृंगी के होने पर उन दोनों से ये बेताल और भैरव नामों वाले समुद्भूत हुए थे । वेताल को वरदान प्राप्त होने पर और उसके साथ भैरव के संगत हो जाने पर भगवान् हर ने तप से युक्त अन्धक को भृंगी कर दिया था । अन्धक पहले हर से विरुद्ध होकर आपदा में फँस गया था । इससे उसने भगवान् हरि की समाराधना की थी और उनका पुत्र हुआ था । भगवान् हरि ने स्नेह से उसका नाम भृंगी रख दिया था । भगवान् हरि ने स्नेह से जो महाकाल में था उसको बलि का पुत्र बाण कर दिया । भगवान् विष्णु के द्वारा कटे हुए बाहुओं वाले को महाकाल बना दिया था । इस प्रकार से, हे मुनिवरो! उनका चार होना संगत होता है । अनुक्रम से वेताल, भैरव, भृंगी और महाकाल है ।

ऋषियों ने कहा–जो राजा सगर ने महान् बुद्धिमान् और्व मुनि ने पूछा था, हे गुरुवर! नीति से जिस तरह से भार्या सुत और बोधिक किए जाते हैं। राजनीति में सत्पुरुषों की नीति में और सदाचार में स्थित है। हे जगत् के गुरुवर! आप तो महान् भाग वाले है उनको आप बताइए। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–महान् आत्मा वाले और्व ने जो-जो विशेष बताये थे। हे मुनियों में श्रेष्ठ वरो! यह सब आपको बताऊँगा आप श्रवण करिए। राजा सगर ने इस तरह से मन्त्र कल्पादित को सुनकर उन महा मुनि से पुनः नित्यादिक की विशेषता पूछी थी। सगर से कहा–जिस प्रकार से नीति के द्वारा सुत, आत्मा और प्रिया के साथ नीति से प्रयोग करना था उनकी विशेषता के सहित जो सदाचार हैं उनको आप मुझे बताइए।

और्व मुनि ने कहा–हे राजेन्द्र! अब आप क्रम से ही श्रवण कीजिए जिस प्रकार से नीति के द्वारा आत्मा, सुत और भार्या को नियोजित किया जाता है उसकी विशेषता मुझसे सुनिये। ज्ञान में बड़े, वय में बड़े, विद्या और तप में बड़े, सुरदक्षिणों का सबसे प्रथम सेवन करे तथा निन्दा से रहित विप्रों का सेवन करना चाहिए और उनसे नित्य ही वेदों और शास्त्रों के विशेष निश्चय का श्रवण करना चाहिए। उन्होंने जो भी कुछ कहा हो, वह करना चाहिए। प्राज्ञ नृप है, उसे उसका समाचरण करना चाहिए। ये पाँच इन्द्रियों पाँच अश्व हैं और यह शरीर रथ कहा जाता है। आत्मा रथी अर्थात् रथ का स्वामी है अश्वों को हाँकने के लिए ज्ञान कशा चाबुक है इस रथ का सारथी मन होता है। अश्वों को सदा सुदृढ़ करे तथा शरीर की स्थिरता रखनी चाहिए। जिस तरह से आदान्त अश्वों पर सभारोहण करके रथी अश्वों की इच्छा के अनुसार से अश्वों को प्रेरित करता हुआ सारथी वहाँ पर अवश होता है वह परम प्रथित वीर को भी परवश कर देता है।

इसी भाँति राजा को विषयों के परिग्रहण करने में इन्द्रियों को अपने ही वश्य करना चाहिए। हे नृपश्रेष्ठ! ज्ञान के सुदृढ़ होने पर कशा की सुदृढ़ता में अपने वश में रहने वाला सारथि दाँत अश्वों प्रेरित

करने में समर्थ होता है । इसलिए नृप को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को तथा मन को अपने वश में रखकर ज्ञान के मार्ग में अविष्टित होकर आत्मा का हित सम्पादित करे । फिर अपनी इच्छा से भोग करना चाहिए । जो सुनने योग्य है उसे ही श्रवण करना चाहिए । श्रवण में अधिक समाचरण न करे । शास्त्रों के तत्त्वामृत में धीर श्रुति वश्य नहीं होता है । इस रीति से इच्छा से घ्राण, त्वचा को वशीकृत करके अपनी इच्छा से उपभोग न करे और उद्दाम विषय का गमन न करना चाहिए । यदि राजा इसी रीति से समाचरण करने वाला होवे तो उसी समय में वह इन्द्रियों को जीत लेने वाला हो सकता है । जितेन्द्रिय होने में शास्त्रों और वृद्धों का उपसेवन करना ही हेतु हुआ करता है ।

जो नृप वृद्धों का सेवन करने वाला नहीं होता तथा शास्त्रों का ज्ञाता नहीं होता है वह शत्रुओं के वशीभूत हो जाया करता है । इस कारण से शास्त्रों में अधिष्ठित होकर राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए । धृति, दान, मैत्री, कृतज्ञता, वाक्पटुता, विवेचन, दक्षता, धारयिष्णुता, दान, दृढ़नुशासनता, सत्य, शौच, युद्ध का विशेष निश्चय, दूसरों के अभिप्राय का ज्ञान करना, चरित्र, आपत्ति में धीरज, निन्दा न करना, क्रोधी न होना, गुरु द्विजों का अर्चन, इन गुणों का राजा को अभ्यास करना चाहिए । धर्म अर्थ और काम में कार्य और अकार्य का विभाग का निरन्तर प्रतिबोध करना चाहिए और अवसर होने पर उसे करना चाहिए । साम, दाम, भेद और दण्ड वह चतुष्टय अर्थात् चार बातें हैं । उसके कालों में उपायों का ज्ञान करके उनके उपायों का प्रयोग करे । साम विषय में भेद मध्यम कहा गया है । दान के समय में साम योग्य ही उपलक्षित होता है (1)

दान के विषय में दण्ड अधम कहा गया है । दण्ड के विषय में दान जो होता है, वह भी अधम ही कहा जाता है । साम के गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष होने पर जो दण्ड का प्रयोग है वह अधम से भी अधम कहा गया है । राजा के दण्ड और भेद में निरन्तर सौजन्य जानना चाहिए । साम और दाम की सुजनता गोचर में जाती है । काम, लोभ,

हर्ष, नाम, मद, इनको अतिशय रूप में होने वालों का राजा के शत्रुओं की तरह विनष्ट कर देना चाहिए । संयुक्त काल में ही उसका सेवन करना चाहिए । लोभ और गर्व को विवर्जित कर देवे । नृपों का तेज ही तीव्र होता है । जिस तरह से सूर्य का हुआ करता है । उसमें गर्व रोग से युक्त होता है जिस कायमान् को उसको त्याग कर देना चाहिए । आखेट, अक्ष, स्त्री सेवन, पान और अर्थ दूषन, वाणी और दण्ड में कठोरता इन सबका वर्जन कर देना चाहिए । विरक्त पुरुष पराई स्त्रियों में सेवन करना एकान्त रूप से वर्जित कर देवे । अपनी सती नारियों में युक्त सेवन करना चाहिए ।

जो दाराऐं रति और पुत्र के फल वाली हैं उनका रूप से त्याग नहीं करें । रति और पुत्र दोनों की सिद्धि के लिए स्त्रियों को सेवन करना चाहिए । किन्तु उनमें अत्यन्त आसक्ति का वर्जन कर देवे । मृगया जो प्रमादो का स्थान होता है, इसका नित्य वर्जन कर देवे । अक्षों का भी सेवन न करे, ये सत्यकार्य और शक्ति का विनाश करने वाले होते हैं । अकार्यों के करने में और कृत्यों के वर्जन में यह बीज होता है । अकाल मन्त्र भेद में कलह में सत्कार के क्षय में निरन्तर सुरापान का वर्जन कर देवे जो कि यह मदिरा पान, शौच और मांगल्य का विनाश करने वाला होना है । यह अर्थ के क्षय का करने वाला होता है । अतएव इसका त्याग कर देना चाहिए । अभिशस्त, चोर-घातक, आततायी में राज को निरन्तर दण्ड की कठोरता नहीं करनी चाहिए । सदा सत्य की रक्षा करनी चाहिए । एक सत्य में ही परायण रहे ।

क्षमा और तेजस्विता का प्रस्ताव से नृप को समाचरण करना चाहिए । यान, आसन, आश्रय, द्वैध, सन्धि तथा विग्रह-इन छह गुणों तथा इनके शाश्वत स्थान का नृप को अभ्यास करना चाहिए । जो स्थान, वृद्धि, क्षय, कोष, जनपद में और दण्ड में जो परिमाण को नहीं जानता है वह राज्य पर अवस्थित नहीं करता है । वह एक-एक में तीन तीन हैं । प्रस्ताव से विनियोग करना चाहिए । किसी एक की ही रक्षा न करे, इन सबकी रक्षा करनी चाहिए । मित्र, शत्रु और उदासीन

तीनों में ही अपने प्रभाव करना चाहिए। नृपों को विजय की इच्छा में, धर्म कृत्य में अष्ट वर्ग में, शरीर यात्रा निर्वाह मे निरन्तर उत्साह करना चाहिए। मन्त्र के निश्चय से समुत्पन्न बुद्धि को सर्वत्र योजित करे, अमात्य में, शास्त्र में, राज्य में, पुत्रों में और अन्तःपुर में बुद्धि का योजन करना चाहिए।

कृषि, दुर्ग, वाणिज्य, खड्गों का कर साधन, सैन्य करों का आदान, गजों और अश्वों का बन्धन, सदम सुखों के शून्य में जनों के द्वारा निरन्तर योजन और तीन सार सेतुओं का बन्धन आठवाँ हैं। इन आठ वर्गों में चारों को भली भाँति प्रयोजित करना चाहिए। कार्य और अकार्य के विभाग के लिए अष्ट वर्ग के अधिकारियों को योजित करे। राजा को अष्ट वर्गों के लिए नियोजित करे। दश को शून्य में नियुक्त करे। उनको क्रम से मुझसे सुनिए। स्वामी, सचिव, राष्ट्र, मित्र, कोष, जल, दुर्ग और गुरु भाषित राज्य के अंग हैं। दुर्ग से युक्त अपने अष्ट वर्ण से चारों को योजित करे। इस कारण से इन शेष पाँच चार पदों को शुद्धान्तों में, पुत्रों में, यथादि में, अहासन में, शत्रु और उदासीनों से, बल, अबल के विशेष निश्चय में, इन अठारहों में राजा चारों को प्रयुक्त करे। प्रकाश में इनको कोई भी न जान पावे उसी भाँति चारों के द्वारा निरुपित कर देना चाहिए।

उसका प्रतिकार अवश्य ही निरूपण करके छिद्र से समाचरण करे। यहाँ पर नृप को ज्ञान प्राप्त करके जो कि चारों के द्वारा किया जावे दण्ड देवे या चारों को अलग कर देवे। नृप मन्त्री के साथ एकांत में स्थित रहे। राजा को चाहिए कि प्रदोष के समय में पूछे और उसी समय में साधन करे। अपने पुत्र के समय में शुद्धान्तः पुर में और जो चार महासन (रसोई गृह) में नियुक्त होवें उनसे मध्य रात्रि में पूछना चाहिए। और जो अपने मन्त्री के विषयवार हों उनसे राजा के बिना मन्त्री के स्वयं ही पूछे। अन्य जो चार हों उनसे मन्त्री के साथ निरूपण करके फल को प्रदेशन करके चार एक के धारण करने वाला न होवे, न एक ही होवें और न उत्साह से रहित होना चाहिए। चार सर्वत्र

संस्तुत नहीं होना चाहिए। वह अत्यन्त लम्बा न होवे और न बोना ही होना चाहिए। निरन्तर दिन में चरण करने वाला चार होना चाहिए। और वह रोगी तथा बुद्धि रहित भी नहीं होवे। चार चित्त के वैभव से हीन भी न होवे और ऐसा भी नहीं चाहिए जिसके भार्या तथा पुत्र न होवे। ऐसा ही चार राजा को तत्व गुह्य के विशेष निर्णय के नियुक्त करना चाहिए।

राजा को अपना चार कैसा बनाना चाहिए यह बताया जाता है, जो अनेक प्रकार के वेषभूषा के ग्रहण करने में समर्थ हो, भार्या और पुत्रों में संयुत होवे। बहुत से देश और वाणियों का अभिज्ञ होवे तथा दूसरों के अभिप्राय का ज्ञाता होवे। चार ऐसा ही करना चाहिए जो दृढ़भक्त, समर्थ और भय रहित होवे। राजा कृषि में अपने ही समानों के साथ स्थित होवे। वाणिक्पथ में और दुर्ग आदि में जो शक्त हों उनको ही नियोजित करना चाहिए। अन्तःपुर में चारों को नियुक्त करे जो पिता के तुल्य होवें, धीर होवें और वृद्ध होवें। शुद्धान्तःपुर में तथा द्वार में ऐसों की नियुक्ति करे जो वृद्ध और मनीषिणी होवें। राजा को अकेला कभी शयन नहीं करना चाहिए और अकेला भोजन भी नहीं करना चाहिए। अकेली महिषी का गमन न करे और एक ही की मैत्री के लिए भी कुछ नहीं करना चाहिए। अमात्यों की, उपधा शुद्धों की, भार्याओं को तथा पुत्रों को प्रसाद के सहित समाचरण करते हुए नृप को निरन्तर करना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से प्रत्येक का परिशोधन के द्वारा प्राप्त होकर धारण किया जाता है इसी कारण से वह उपधा कही जाती है।

अर्थ, काम की उपधाओं से भार्या और पुत्रों का परिशोधन करे। धर्म की उपधाओं से सचिवों का शोधन करे। इनके द्वारा, यज्ञों से और दोनों के द्वारा यहाँ पर ही नृप होता है। इस कारण से आप राज्य के अर्थी हैं अतएव इसी भाँति धर्म का ही समाचरण करे। इसी अभिचार से अथवा अज्ञों के यह राजा प्राणों का त्याग करता है और तुम राजा हो जावोगे। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यही नृप का धर्म है और

जो अश्वमेध का आदिक है राजा स्वयं नहीं करता है इस कारण से हे श्रेष्ठतम! तुम करो। इस प्रकार से नृप कायान्तिक द्विज से मंत्रों के द्वारा मंत्रणा करके उनके द्वारा अज्ञातों को स्वयं ज्ञान प्राप्त करके उनसे उसके मन को ग्रहण करे। यदि राज्य की अभिलाषा से सचिव अधर्म का आचरण करे अथवा राजा के विषय में अधिक करे तो उस धर्म को हीन बना देवे। अत्यन्त आभिचारिक कर्म को करने वाले का विघात कर देवे। राजा को चाहिए कि अभिचारिक ब्राह्मण हो तो उसको देश से बाहर निकलवा दे।

यह धर्मोपधा जाननी चाहिए उनके अमात्यों को और सुतों को विजित करे। इस प्रकार की उसी भाँति अन्य उपधा का धर्म से समाचारण करना चाहिए। कोषाध्यक्षों को समन्वित करके राजा अमात्यों को प्रतारित कर देवे तथा पुत्रों को अथवा अन्यों को जो मन्त्र के संवरण करने में असमर्थ होवें प्रतारित कर देना चाहिए। हे नरोत्तम! यह प्रचुर बहुत बड़ा कोष मेरे अधीन है यदि उसकी आप प्रतीक्षा करते हैं तो आपकी सम्मति से उसे ले आता हूँ। आपके अर्थ के लग्न दोनों में हमारा जीवन होगा और आप भी इन प्रचुर कोषों के द्वारा क्या-क्या नहीं करोगे। इस प्रकार से अन्य कोषगत उपायों से नृप श्रेष्ठ पुत्र, अमात्य आदिक सबका निरन्तर परिशोधन करे। जो कोष में दोषों के करने वाले हैं उनका हनन कर देवे और जो करने की इच्छा रखते हों उनको देश से बाहर निकाल देना चाहिए। जो द्वैध चित्त वाले होवें उनको विमानित कर देवें किन्तु कोष की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिए। जो द्वैध चित्त वाले होवें उनको विमानित कर देवें किन्तु कोष की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिए। दासियाँ, शिल्पिनी, वृद्धा, मेधा और धृति वाली स्त्रियाँ जो बाहर और भीतर गमन किया करती हैं तथा सचिवों आदि के द्वारा विदित हैं। राजा उसको भार्या आदि से अलक्षित होकर स्थित होकर स्थित रहकर एकांत में अभिमन्त्रण करके तथा इसके अनन्तर भली भाँति मन्त्रणा करके सचिवों के पास प्रेषित कर देवे। वे आकर वहाँ हृदय का ज्ञान प्राप्त करके विज्ञान में तत्पर

राजा की महिषी प्रमुख तुमको चाहती हैं यदि आपकी स्पृहा हो तो वहाँ पर मैं योजित कर दूँगी । सचिव तुमको चाहता है । हे वरवर्णिनि! आपके योग्य भी है यदि आपकी श्रद्धा हो तो मैं उसका संगम कराने के लिए समर्थ हूँ। इस रीति से तथा अनेक उपायों से और उत्तरों के द्वारा भार्याओं, पुत्र, दुहित्रियों, स्नुषाओं, सचिवों, पुत्रों, सेवकों, आदि का शोधन करना चाहिए । काम की उपधाओं से अविशुद्ध के बिना ही कुछ विचार किए हुए विघात कर देना चाहिए । स्त्रियों को दण्ड के द्वारा योजित करे और ब्राह्मणों को प्रवासित कर देवे । मोक्ष के मार्ग में अवसक्त तथा हिंसा और पैशुन्य से रहित, क्षमा को ही एक सार मानने वाले सचिव का राजा को परिवर्जन कर देना चाहिए ।

जो मोक्ष मार्ग में विशेष रूप से शक्त हों, दण्ड योग्य भी हों तो भी उन्हें दण्ड नहीं देना चाहिए । वह सर्वत्र सम बुद्धि वाला हैं इसी कारण से उसको परिवर्जित कर देवे । उपधाओं का यह सूत्र है । पुनः उपधा का बहुत सा विवेचन किया गया है । उशना ने इसका अच्छा विवेचन किया है । वहाँ पर उसके शास्त्र में इसका बोध करे । राजा को दूसरों के साथ निरन्तर विग्रह का भली प्रकार से आचरण नहीं करना चाहिए । भूमि, वित्त, मित्र, लाभों से जब से निश्चिय हो जावें तो ही विग्रह होते हैं । उत्तम नृपों के द्वारा स्वतः अंगों में सदा प्रसाद ही करना चाहिए । कोष की रक्षा और निरन्तर सञ्चय भली भाँति करना चाहिए । राजा को अपने मंत्रीगण विद्या में विशारद विप्रों को ही करना चाहिए । जो विशेष रूप से धर्मशास्त्र के ज्ञाता, कुलीन, धर्म और अर्थ में कुशल एवं सरल स्वभाव वाले होवें । उनके साथ ज्ञान की मन्त्रणा करे और अत्यंत अधिक बहुतों के साथ कभी भी समाचरण करे । एक-एक के ही साथ मन्त्रणा का विशेष निश्चय करे ।

अरण्य से निशिलोक में मन्त्रणा करे किन्तु रात्रि में कभी भी मन्त्रणा नहीं करना चाहिए । मन्त्रणा के गृह में छोटे बच्चों को, शाखा मृगों को, (बन्दरों) पण्डों को, शुकों को, सारिकाओं को तथा विकृत मनुष्यों को वर्जित कर देना चाहिए । नृपों के मन्त्र भेदों में भी जो दूषण

हो जाता है वह परम दक्ष सैंकड़ों नृपों के द्वारा भी समाधान नहीं किया जा सकता है । जो दण्ड के योग्य है उनको तो अवश्य दण्ड देवे और जो अदंडनीय हों उनको दण्ड नहीं देना चाहिए । जो दण्ड के योग्य हैं उनको दण्ड न देते हुए और जो दण्ड के योग्य नहीं है उनको दण्ड देते हुए राजा निन्दा को प्राप्त करके चोर के पाप को प्राप्त किया करता है । प्रकार, अट्टालिका और तोरणों के द्वारा दुर्ग में समता करनी चाहिए । राजा को चाहिए कि भूषित नगर से दूर में दुर्गाश्रय करे । राजाओं का बल दुर्ग है और नित्य ही दुर्ग की प्रशंसा की जाती है । एक ही धनुर्धारी दुर्ग में स्थित होकर सौ शूरों से युद्ध किया करता है । इसी कारण से दुर्ग को प्रशस्त कहा जाया करता है । दुर्ग कई प्रकार के होते हैं, जल दुर्ग होता है, भूमि दुर्ग है, और वृक्ष दुर्ग होता है । अरण्य मरु दुर्ग, शैल से समुद्भुत दुर्ग और परिखा से उद्भुत दुर्ग होता है । नृप का जैसा अपने देश का दुर्ग हो वैसा ही दुर्ग करना चाहिए । दुर्ग की रचना करते हुए त्रिकोण और धनुष की आकृति वाला पुर बनाना चाहिए । वर्तुल और चतुष्कोण की रचना करे अन्य प्रकार से नगर में नहीं करना चाहिए । मृदंग की आकृति वाला दुर्ग निरन्तर कुल के नाश करने वाला होता है । जिस प्रकार से पहले राक्षसों का राजा रावण की लंका पुरी में दुर्ग से युक्त थी । राजा बलि को शोणित नाम वाला पुर था और दुर्गों में प्रतिष्ठित था । क्योंकि वह व्यञ्जाकार था और शिवा बलि मनोभ्रष्ट थी । शल्वराज का सौभाग्य नगर पाँच कोनों वाला था । जो राज्य दिवलोक में है वह भ्रष्ट हो जायेगा और जो अयोध्या नामक इक्ष्वाकुओं नृपों का पुरा था वह भी धनुष की आकृति वाला था । इसलिए विजयप्रद हुआ था । दुर्ग की भूमि में दुर्गा का यजन करना चाहिए और द्वारा पर दिक्पालों का यजन करे । विधान से पूजन करके नृप जय को प्राप्त किया करता है ।

इसलिए राजा को अपना दुर्ग निरन्तर जय की वृद्धि के लिए करना चाहिए । राजा ब्राह्मणों को सदा किसी से भी अवमानीकृत न करे । राजा विप्रों को अवमान करके यहाँ पर और मृत्युगत होकर भी

दुःख का भागी होता है। उनके साथ कभी विरोध नहीं करे और उनका धन ग्रहण नहीं करना चाहिए। कृत्य के कालों में निरन्तर उनका ही परिपूजन करना चाहिए। इस प्रकार से महान् बुद्धिमान तत्त्व मण्डल में संयुत नृप, अप्रमादी, चार चक्षु, गुणवान्, प्रियपद होता है। यहाँ पर और मृत्युगत होकर महती सिद्धि को प्राप्त होता है और सुखों के भोग वाला हुआ करता है। जिन गुणों से अपने आपको योजित करे उन गुणों से पुत्रों को भी योजित करना चाहिए। नृप की निरन्तर स्वतन्त्रता अपने आपका विनाश किया करती है। राजा का पुत्र स्वतन्त्र रहकर निश्चिय रूप से विकार को प्राप्त हो जाता है। निर्विकार के लिए निरन्तर वृद्धों को पारियोजित करे। भोजन में, शयन में, यान में और पुरुषों के वीक्ष्ण में सदा दाराओं को भय को काम विनेष्टन में नियोजित करना चाहिए। राजा के द्वारा स्त्रियाँ निरन्तर स्वाधीन रखनी चाहिए।

स्वतन्त्र रहने वाली स्त्रियाँ नित्य ही हानि के लिए हुआ करती हैं। उस कारण से कुमार को और महिषी को मनोहर उपधानों से शोधन करके यौवराज्य और अवरोध में नियोजित करे। अन्तःपुर के प्रवेश में स्वतन्त्रता का निषेध कर देना चाहिए। राजा के पुत्र का, भार्या का यह विशेषता संक्षेप से नृप का धर्म मैंने बता दिया है। पुत्रों के गुणों के विन्यास में और राजा की भार्याओं के भी विषय में उशनों ने और बृहस्पति ने राजनीतियों के तन्त्रों को कहा है। अन्य विशेषताओं को उन दोनों के तन्त्रों में समझना चाहिए। इस प्रकार से महाभाग राजा राजनीति में विशेषता को करता हुआ कभी दुःखित नहीं होता है और सदा बहुत बड़ी श्री की प्राप्ति किया करता है।

सदाचार कथन

और्व ने कहा–अब हे राजेन्द्र! सदाचारों में जो विशेषतायें हैं उनका श्रवण कीजिए। जिन्हें राजा को अवश्य ही करना चाहिए उन सबको आप मुझसे ही उन सबका श्रवण कीजिए। साधुगण क्षीण दोषों वाले

होते हैं। क्योंकि सत् शब्द साधु वाचक हुआ करता है। उनका जो भी आचरण है वह सदाचार कहा जाया करता है। आगमों में, पुराणों में और संहिताओं में जिस प्रकार से कहे गए उन समुद्दिष्ट सदाचारों में गृहस्थ की भाँति ग्रहण करना चाहिए। वेदों के पाठों के द्वारा ऋषियों का यजन करे और होमों के द्वारा देवगणों का पूजन करे। श्राद्धों के द्वारा पितृगणों को तृप्त करे तथा बस्तियों के द्वारा भूतों को संतृप्त करना चाहिए। मैत्र, प्रसाधन, स्नान, दन्त, धावव, अञ्जन यह सब गृहस्थ की ही भाँति करे तथा निषेकाद्य विधि को करना चाहिए। राजा को चाहिए कि षट्कर्मों में सभी ओर से विप्रों की नियुक्ति करे। उसी भाँति क्षत्रिय आदि को अपने-अपने धर्म में नियोजित करे। जो अपने शास्त्रोक्त धर्म का परित्याग करके पराये के धर्म का समाचरण करे उसको राजा एक सौ पण का दण्ड देवे और फिर उसको उसी विहित धर्म में नियोजित करना चाहिए।

एक सम्वत्सर में होने वाले कृत्यों में विशेष रूप से इनका समाचरण करना चाहिए। हे राजन्! राजा उन विशेषों का अवश्य ही समाचरण करे, उनका श्रवण मुझसे कर लो। शरत्काल में अष्टमी के दिन दुर्गा का परिपूजन करे। दशमी तिथि में बल की वृद्धि के लिए नीराजन करना चाहिए। पौष मास में तृतीया में पुष्प का अभिषेक करे और नृप पञ्चमी में श्रीदेवी का पूजन करके चरण करे। हे नृप श्रेष्ठ! धन धान्य की वृद्धि के लिए श्रीयज्ञ का समाचरण करना चाहिए। श्रेष्ठ मास में दशहरा के दिन भगवान विष्णु की इष्टि का समाचरण करे। द्वादशी में हरिस्थ रवि के दिन में इन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए। राजा को इन यज्ञों का विशेष रूप से बहुत व्यय के द्वारा करना चाहिए। इनके किए जाने पर बल, राज्य और कोष भी वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इन यज्ञों को न किए जाने पर देश में दुर्भिक्ष (अकाल) और मरण होता है। सब प्रकार की ईतियाँ होती हैं। (टिड्डी आदि ईतियाँ हुआ करती है) अतएव इनको विशेष रूप से करना चाहिए। शारत्काल में महाष्टमी तिथि में दुर्गा की पूजा की विधि है।

यह विधि पहले कह दी गई है उसी विधि से पूजन करना चाहिए। हे पार्थिवों में परम श्रेष्ठ! आप नीराजन की विधि का श्रवण करिए। जिसके करने में अश्वों की और गजों की वृद्धि हुआ करती है। आश्विन मास में शुक्ल पक्ष में तृतीय तिथि स्वामी नक्षत्र की योग वाली हो। आठवें दिन के सम्प्राप्त हो जाने पर नीराजन करना चाहिए। नीराजन (आरती) का काल तो आपको मैंने बहुत पहले ही बता दिया है। अब तो केवल मुझसे विधान ही श्रवण करिए। इससे आप कृतकृत्य हो जायेंगे। हे महासत्व! एक अश्व जो सबसे बहुत ही सुन्दर होवे। सात दिन तक गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदि से उसकी पूजा करे। तृतीया के आदि से अर्चन करके उसे यज्ञ मण्डल में ले जावे। उसकी चेष्टा का निरूपण करते हुए शुभ और अशुभ का ज्ञान करो। यदि अश्व पलायन करता है तो पराये राष्ट्र का अवमर्दन होता हैं। यदि वह अश्व अश्रुओं का मोचन किया करता है तो राजा के पुत्र की मृत्यु हो जाती हैं। ले जाया हुआ वह अश्व आदि गमन न करे तो महिषा का मरण हो जाता है। यदि अश्व मुख, नासिका और नेत्रों से शब्द करे तो जिस दिशा की ओर मुख करके ध्वनि करता है उस दिशा में शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त कराता है। यदि अश्व दाहिने पद के अग्रभाग को उत्क्षिप्त करके आगे होवे तो राजा सम्पूर्ण रिपुओं पर विजय प्राप्त किया करता है।

हे नृप श्रेष्ठ! दशमी तिथि में प्रातःकाल में ही नीराजन करना चाहिए। उसकी अप्राप्ति होने पर उसी द्वादशी में समाचरण करना चाहिए। हे पार्थिव! अथवा वहाँ पर अभाव होने पर कार्तिक मास में पञ्चदशी में ऐशानी दिशा में जो अपने पुर से होवे। सोलह हाथों के मान के दश हाथ प्रमाण से युक्त और सोलह हाथ विस्तार वाला यज्ञ के लिए मण्डप बनावें और मध्य में वेदी का विनिर्देश करना चाहिए। वेदी के उत्तर दिशा में बहुत श्रेष्ठ अश्व वेदी की रचना करे। जहाँ पर संस्थापित करके पुरोहितों के द्वारा अश्व का पूजन करना चाहिए।

हे नृप! उदुम्बर की शाखाओं का अथवा अर्जुन की शाखा के

मत्स्य, शंख के अंकित चक्रों से और ध्वजों में भूषित करना चाहिए। सुवर्ण और रत्नों से तथा अनेक फलों के द्वारा सैन्धव की सिद्धि के लिए भल्लातक शालिकुष्ठ, तोरण, कण्ठ देश में पुष्टि और शान्ति के लिए बाँधे। वैष्णव मण्डल की रचना करके दिक्पालों और नवग्रहों का तथा विश्वेदेवों का और विष्णु मुख्यों का पूजन करना चाहिए। पुरोहित तिलों से मिश्रित घृत, यव और पुष्पों में रवि का, वरुण का, प्रजेश का, इन्द्र देव का, भगवान् विष्णु का होम सात दिन करे। एक-एक सहस्त्र अथवा अष्टोत्तर शत जप करे और चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिए प्रति दिन होम करना चाहिए। समिधायें भी हवन के लिए प्लाश (ढाक) अथवा खदिर की होनी चाहिए। पुरोहित के द्वारा समिधायें उदुम्बर (गूलर) की हो तथा पीपल की समिधा होम में ग्रहण करनी चाहिए।

फलाम्रम्बर से योजित आठ कलश रखे। वे कलश चाँदी, सुवर्ण अथवा इच्छानुसार मृत्तिका के ही होवें। हरिताल, चन्दन, कुष्ठ, प्रियंगु, में नसित, अञ्जन, जल्पी, श्वेतदन्ती, भल्लातक, पूर्णकोश, सहदेवी, शतावर, वज्र, सनगाकु, सुममोराजी, सुगुप्तिका, तुत्थ, करबीर, तुलसीदल, इन सब को पुरोहित कलशों के मध्य में निक्षिप्त कर देवे। हे नृप! नीराजन विधि में शान्ति की कामना से कनक, अम्बुज अथवा यश के काष्ठों के द्वारा स्त्रुक् और स्त्रुव बनवाने चाहिए। उस प्रकार से एक सप्ताह पर्यन्त पूजा करे। इस प्रकार से पूजन करके नृप एक सप्ताह तक समाचरण करे। जब तक नीराजन करे तब तक राजा को गृह में वास करना चाहिए।

शान्ति की इच्छा रखने वाले नृप को रात्रि के समय में यज्ञ भूमि में निवास नहीं करना चाहिए। राजा उस अश्व पर अथवा हाथों पर आरोहण न करे। जब तक एक सप्ताह होवे राजा को दूसरे ही किसी यान के द्वारा गमन करना चाहिए। अनेक प्रकार के अन्न के व्यञ्जन से सम्भूत भक्ष्यों से, मधु, पायस, यावको से अथवा मोदकों के द्वारा बलि करे। एक सप्ताह तक पूर्व में बताते हुए देवताओं की उत्तम बलि

करे । सातवें दिन में बताए हुए देवताओं की उत्तम बलि करे । सातवें दिन में तोरण के अन्तर में सेवन करते हुए का पूजन करना चाहिए । महाबाहुओं वाले दो भुजाओं से युक्त कवच में उज्जवल जाज्वल्यमान सूर्यपुत्र का पूजन करे । शुक्ल वस्त्र से केशों को उद्ग्रस्थित करके कुशा को बाँये हाथ में लिए दक्षिण कर को खंड के सहित सित सैन्ध पर संस्थित नाम में न्यस्त करे । इस प्रकार के रेवन्त को प्रतिमा में अथवा घट में तोरण के अन्तर में सूर्यदेव की पूजा के विधान से पूजन करे । रेवन्त अश्व को अथवा गज को पूजित करना चाहिए ।

अहत अम्बर (वस्त्र) से संजीव, माला और चन्दन से संयुत सुवर्ण से विद्ध निस्त्रिंश वाला, विचित्र, कवच आदि से युक्त, ऐशानी दिशा में होमकुण्ड की वेदिका पर जो पूर्व में हुई हैं अश्व और गज के पालक पृथक्-पृथक् ले जावें । अश्व और गज के ले जाने पर राजा पूर्व में कथित निमित्त को यत्न के साथ देखे और फल का भी अवधारण करे । होम कुण्ड की उत्तर दिशा में बाघम्बर चर्म पर स्थित होकर वेदों के ज्ञाता और अश्वों के ज्ञान रखने वाले के सहित सैन्धव (अश्व) को देखकर लाये हुए अश्व के लिए शीघ्र ही सुगन्धित भात की पिण्डी देवे । पुरोहित वहाँ पर शान्ति मन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित करके ही उसे देवे । पुरोहित लाये हुए अश्व के लिए शीघ्र ही सुगन्धित भात की पिण्डी देवे । पुरोहित वहाँ पर शान्ति मन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित करके ही उसे देवे । वह अश्व यति उसका अवघ्राण करे अथवा अशन करे तो उस अवसर पर सब प्रकार का कल्याण होता है । और इसके विपरीत होवे तो अन्यथा हुआ करता है । उदुम्बर की शाखा आम्र की शाखा कुशा के साथ घट के जल में आप्लावित करके अश्वों का, हाथियों का, राजा का और सैनिकों का अथवा रथों का स्पर्श करे । पुरोहित शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों के द्वारा विप्रों के सहित चतुरंग का सेवन करे ।

दिक्पालों और ग्रहों का वैष्णव मन्त्रों द्वारा बहुत प्रकार से अभिसिञ्चन करके ऋत्विक् सुवर्ण के दर्पण की, नृप को फिर मन्त्री

को, राजपुत्र को तथा अन्य आमात्यों को और सैनिकों को दिखा करके शिव शार्दूल कम्पन करते हुए सबको दिखावे । मिट्टी से शत्रु से हृदय में शूल से वेध करे और शिर का खंड से छेदन करना चाहिए । आचार्य पीछे कवि को अभिमंत्रित करके फिर प्रभाकर ऐन्द्र मन्त्रों से स्वयं के लिए मुख में देवे । उस समय में इस मन्त्र से नृप पर उस समारूढ़ होकर अपने सम्पूर्ण बलों के सहित उत्तर पूर्व दिशा में गमन करे ।

उस समय में ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य सब ही नृप के पीछे अनुगमन करें और अन्य निमित्तों का विलोकन करें । राजा तुमुल वाद्यों की ध्वनियों से मेदिनी को मानों विदीर्ण करता हुआ नीराजन में गमन करे । विविध मणि विद्रुम, मुक्ता आदि स्वर्ण रत्नों से सुभूषित होकर केवल एक कोस गमन करके राजा पूर्व के द्वार से अपने पुर में प्रवेश करे और पुरोहित विप्रों के साथ यज्ञ में गमन करे । वहाँ जाकर पीछे द्विजों के लिए दक्षिणा सुवर्ण, गौ, तिल आदि शक्ति से दान देवे । इस प्रकार से बलों का और राजाओं का नीराजन करके इस लोक में और मृत्युगत होकर भी राजा सुस्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति किया करता है । हे अश्व! आपका उद्भव सागर से हुआ है आप अश्वामृत से सज्जात हैं । शिव सत्त्व से इन्द्र का वहन किया करते हैं, उसी से मेरा वहन करें । जिस सत्य से रेवन्त का, जिस सत्य से भास्कर का वहन करते हो उसी सत्य से विजय प्राप्त करने के लिए मेरा वहन करो । इन मूल मन्त्रों के द्वारा अश्व पर आरोहण का समाचरण करना चाहिए ।

महिषी के आगे समारोहण करके फिर शुद्धान्तः पुर लम्बित करे । फिर वह महिषी (पट्टाभिषक्ता रानी) को पलंग पर संस्थित राजा का सिद्धार्थ के सहित दूर्वा क्षतों से स्त्रियों के साथ अभ्यर्चन करना चाहिए । यह तृतीया में नीराजन में भूमि के ग्रंहण करने पर ही करे । हे राजन्! यह मैंने आपके सामने नीराजन का क्रम बता दिया है । अब स्नान का विधान आप मुझसे श्रवण कीजिए ।

राज्याभिषेक वर्णन

औौर्व ने कहा—हे राजन् अब मैं आपको पुण्य स्नान की विधि के क्रम को बताऊँगा जिसके विधान से ही विघ्न निरन्तर नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । पौष मास में चन्द्र के पुष्य नक्षत्रगत होने पर राजा को पुण्य स्नान का समाचरण करना चाहिए । यह स्नान सौभाग्य और कल्याण के करने वाला होता है और दुर्भिक्ष तथा मरण का अपहरण करने वाला होता है । विष्टि (भद्रा) आदि दुष्ट करण में, व्यतीपात और वैधृति में वज्र, शूल, हर्षण आदि योग में यदि इसका लाभ होता है तो तृतीया से युक्त पुष्य नक्षत्र रवि, शौरि और मंगलवार में तब यह समस्त दोषों की हानि करने वाला होता है । ग्रहदोष होते हैं और राज्यों में ईतियाँ होती हैं । तब पुष्य नक्षत्र में मासान्तर में भी करना चाहिए । यह शान्ति पहले समय में ब्रह्माजी ने गुरु के लिए बताई थी और जगत्पत्ति ने शक्र आदि समस्त देवों की शान्ति के लिए ही कहा था । तुष, केश, अस्थि, वल्मीक, कीट देश आदि से वर्जित, शर्करा, कृमि, कूष्माण्ड, बहु कृष्ट से रहित, काक, उलूक, कंक, ककोल, गृध्र, शौनकी से रहित और जलोका आदि से वर्जित, चम्पक, अशोक, वकुल आदि से विराजित अपने स्थान में हंस और कारण्वों से समाकीर्ण अथवा शुचिसर के तट पर पुण्य स्नान के लिए राजा को उत्तम स्नान का ग्रहण करना चाहिए । इसके अनन्तर राजा और पुरोहित अनेक वाद्यों की ध्वनियों के साथ प्रदोष के समय में उस स्थान पर पूर्व दिन में गमन करें । उस स्थान की कौबेरी दिशा में पुरोहित स्थित होकर सुगन्धित चन्दन, पान कर्पूर आदि से अधिवासित्त गोरोचनाओं से सिद्धार्थों से, अक्षतों से जो फल आदि के सहित हो, 'गन्ध द्वारा' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सबके अधिसिक्तों से उस स्थान को अधिवासित करके वहाँ पर देवगणों का पूजन करना चाहिए ।

भगवान् गणेश, केशव, इन्द्रदेव, ब्रह्मा, देव शंकर उमा के सहित और समस्त गण देवता और मातृगणों का पुरोहित के साथ राजा अर्चन करे । मंगल कलशों को स्थापित करे और अनेक प्रकार के नैवेद्यों के

समुदायों का, पायस, स्वादु फल और मोदक तथा यावक देवे। उस स्थान से भी भूतों को मन्त्र का उच्चारण करते हुए अपसारित करना चाहिए। जो भूत भूमि के पालक हैं वे यहाँ से अपसरण कर जावें। भूतों का विरोध न करते हुए मैं स्नान के कर्म करता हूँ। इसके अनन्तर दोनों हाथों को पुटित करके राजा इस मन्त्र के द्वारा इन पूज्य देवों का पुष्प के अभिषेक लिए आवाहन करे। जो यहाँ पर पूजा के अभिलाषी देव हों वे सब सुरगण यहाँ पर आगमन करें। सब दिशाओं के पालक हों और जो भी अभागी होंवे आगमन करें। फिर पुष्पों की अञ्जलि देकर पुनः इस मन्त्र का पाठ करें।

मेरे इस स्थान को प्राप्त करके आज यहाँ पर बिबुध गण स्थित हों। रक्षा करने वाले आप पूजा प्राप्त करके और राजा को शान्ति प्रदान करके स्थित हों। इसके उपरान्त राजा स्वप्न में शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करे। देवी की पूजा करके रात्रि में स्थान में नृप को स्वयं ज्ञान करना चाहिए। दोषों के ज्ञाताओं द्वारा सम्मत स्वप्न में शुभ, अशुभ के फल को जानना चाहिए। यदि बुरे स्वप्न का दर्शन हो तो पुरुष के अभिषेचन में चौगुना हवन करना चाहिए और सौ गौओं का दान भी दे। गौ, घोड़ा, हाथी, प्रसाद, पर्वत वृक्ष का आरोहण शुभ करने वाला और राज्यश्री की वृद्धि करने वाला हुआ करता है। दधि, देव, सुवर्ण, ब्राह्मण की प्रदर्शन, दुर्वा, वीणा, अक्षत, फल, पुष्प, क्षत्र, विलेपन, शीतांशु (चन्द्र), चक्र, शत्रु का, पद्म का और सुहृद का लाभ, रात्रि में क्षय करने वाले हैं। रत्नाकार, भूभृत और उपराग को देखना, निबड़ के द्वारा बन्धन करने वाला होता है। माँस का भोजन, पर्वत का विवर्त्तन, नाभि के मध्य में वृक्ष की उत्पत्ति और मृत पुरुष उतरना, पर्वत को, नदी का तथा स्रोत लाँघना, अपने पुत्र का मरण, रुधिर और मदिरा का पान, पायस का भोजन तथा मनुष्य पर आरोहण हे नृप श्रेष्ठ! ये स्वप्न राजा के कल्याण, सुख, सौभाग्य, राज्य और शत्रुओं का क्षय किया करते हैं। गधा, ऊँट, और महिष का आरोहण राज्य के नाश करने वाले हैं। रक्त वस्त्र का परिधान, रक्तमाला और रक्त अनुलेपन, रक्त तथा काली की कामना करता

हुआ भी मृत्यु को प्राप्त किया करता है । कूप के अन्दर प्रवेश तथा दक्षिण दिशा में गति, कीच में निमज्जन या स्नान, भार्या और पुत्र का विनाश करने वाला होता है ।

अन्य राज्य की प्राप्ति करके महान् कल्याण को प्राप्त किया करता है । बीस हाथ दीर्घ और सोलह हाथ विस्तार से युक्त सब लक्ष्णों से युक्त उत्तम यज्ञ मण्डल की रचना करनी चाहिए । इसके उपरान्त दूसरे दिन में पूर्वाह्न में मातृगणों की पूजा करे । भीत में लगी हुई वसोर्धारा तथा वृद्धि, श्राद्ध अर्थात् नान्दीमुख नामक श्राद्ध करे । चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, धूप, कर्पूर के चूर्ण मण्डल स्थान की भली भाँति पूजा करके उसमें 'ह्रौं शम्भवे नमः' 'अस्त्राय हूँ फट्' इन दो मन्त्रों को बुध को लिखना चाहिए ।

मन्त्र का ज्ञाता और मण्डल के ज्ञान रखने वाला पुरुष कम्बल से उत्पन्न सूत्रों से अथवा कौशेयों से प्रथम स्वस्तिका नामक मण्डल का लेखन करे । फिर चार हाथ प्रमाण वाला मण्डल लिखना चाहिए । मण्डल का पद्म एक हाथ प्रमाण वाला कहा गया है । डेढ़ हाथ के प्रमाण वाले द्वार होने चाहिए । वह पद्म कर्णिमा के केसरों से समुज्जवल होवे । सफेद, लाल, पीला, कृष्ण और हरा और शीली के चूर्ण से, कौसुम्भ से तथा हरिदुद्भुव ह्रान्द्रि से अन्जन के चूर्ण से मण्डल की वृद्धि के लिए रचना करे । पद्म के अन्दर से आरम्भ करके पश्चिमगामी ताल को और पश्चिम के द्वार के मध्य में सौ हाथ विनिर्दिष्ट करना चाहिए । द्वार के मध्य में सौ हाथ विनिर्दिष्ट करना चाहिए । द्वार मध्य में प्रत्येक आठ पत्रों वाला होना चाहिए । मण्डल के भाग में ज्ञात को चूर्णों से पृथक्-पृथक् ही करना चाहिए । चूर्णों के द्वारा मण्डल की रचना करके फिर सूत्रों को उत्साहित करे । सूत्र का उत्सारण करके प्रथम मण्डल का अर्चन करना चाहिए । 'भवनाय नमः' इससे फिर हाथ से विनियोजित करे । मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से इच्छानुसार ऊपर नीचे की ओर मुख वाली अंगुलियों को करके विचक्षण पुरुष पातन कर देवे ।

रेखा समान करनी चाहिए जो विच्छिन और पुष्परंजित हो । ज्ञाता पुरुष के द्वारा अंगुष्ठ के पर्व की निपुणता से समादी करनी चाहिए । संसक्त, विषय, स्थूल, विछिन्न, कृसराकृत, पर्यन्त, अर्पित और ह्रस्व कभी भी नहीं लिखनी चाहिए । यदि रेखा संसक्त हो तो उससे कलह जानना चाहिए और ऊर्ध्व रेखा में विग्रह होता है । अत्यधिक स्थूल होने पर व्याधि होती है, विमिश्रत होने पर नित्य पीड़ा होती है । बिन्दुओं से भय को प्राप्त हुआ करता है, जो कि शत्रु के पक्ष की ओर से हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । कृपा में अर्थ की हानि होती है और रेखा छिन्ना हो तो उसमें निश्चय ही मरण हुआ करता है अथवा अभीष्ट द्रव्य या सुत का वियोग होता है । जो भी कोई न जानकर ही इच्छा के ही अनुसार मण्डल का लेखन करे तो वह सभी दोषों को प्राप्त किया करता है जो भी दोष पूर्व में बताये गए हैं । ज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा सफेद सरसों और दूर्वा से रेखा करनी चाहिए । मण्डल बारह होते हैं, उनके नाम विमल, विजय, भद्र, विमान, सुभद्र, शिव, वर्धमान, देव, शताक्ष, काम्यादक, रुधिर, स्वास्तिक, ये ही बारह मण्डल हैं । विचक्षणों द्वारा स्थान और यज्ञ के अनुसार ही योजित करना चाहिए ।

सुरों के समूहों द्वारा अमृत के लिए सागर के मन्थन लिए जाने पर पीयूष के धारण के लिए विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित किए गए थे । क्योंकि देवी की कलींकला-कला पृथक्-पृथक् आसन करके वे किए गए हैं इसी से वे कलश नाम से कीर्तित हुए हैं । कलश नौ ही बताये गए हैं । अब इनको नाम से समझ लो । गोह्योयगोह्य मरुत, मयूख, मनोहाचार्य, भद्र, विजय, तनुदूषक, इन्द्रिघन, विजय ये नौ कहे गए हैं । हे भूप! उनके ही दूसरे नौ नाम भी हैं उनका श्रवण करो जो सदा ही शान्ति प्रदान करने वाले हैं । प्रथम क्षितीन्द्र कहा गया है दूसरा जनसम्भव होता है । दो दो पवन और अग्नि हैं, फिर यजमान है । कोषसम्भव नाभि में छठवाँ कहा गया है । सोम सातवाँ कहा गया है और आदित्य आठवाँ है । विजय नाम वाला कलश है वह नवम कहा

गया है । वह पंचमुख कहा गया है जो महादेव के स्वरूप का धारण करने वाला है । घर को पाँच मुखों में पंचवक्त्र स्वयं स्थित है । दिशा के अनुसार वामदेव आदि नाम से भली भाँति स्थित हैं । मण्डप के पद्म के अन्दर पन्चवक्त्र घट का न्यास करना चाहिए । पूर्व की ओर क्षितीन्द्र का न्यास करके पश्चिम में जल सम्भव का न्यास करे । सोम का यजन उत्तर में करे तथा सौर का न्यास दक्षिण में करना चाहिए । इस रीति से कलशों का न्यास करके उनमें इनका विचिन्तन करे । कलशों के मुख में ब्रह्मा है और उनकी ग्रीवा में शंकर स्थित रहते हैं । मूल में भगवान् विष्णु संस्थित है और मध्य में मातृगण विराजमान हैं ।

दिक्पाल सब देवता दशों दिशाओं को वेष्टित किया करते हैं । कुक्षि में सात सागर हैं और सात द्वीप संस्थित हैं । नक्षत्र, समस्त ग्रह तथा कुल पर्वत गंगा आदि नव नदियाँ, चारों वेद कलम में ये सभी विराजमान रहते हैं । रत्न, सब बीज, पुष्प, फल, वज्र, मौक्तिक, वैदूर्य, महाद्म, इन्द्र स्फटिक से युक्त सर्वधाममय विस्व, नागरोहुम्वर, बीजपूरक, जम्बीर, काश्मीर, आम्रत, दाड़िम, यश, शाली, नीवार, गोधूम, जितसर्षय, कुंकुम, अगुरु, कपूर, मदन, रोचन, चन्दन, माँसी, एला, कुष्ठ, कस्तूरी, पत्र, चूर्ण, जल, निर्यास, काम्बुद, शैलेय, बदर, जातीपत्र, पुष्प, काल्त शाक, पृक्वा, देवीपणक वचा, धात्री, मंञ्जिष्ठा, मंगलाष्टक, दूर्वा, मोहिनका, भद्रा, शतावरी वर्णों की सरला, क्षुदासह, देवी, गजाह्वा, पूर्णा, कोषासिता, पीठा, गूंजा, शिर, सक, अनल, व्यामक, गजदन्त शतपुष्प, पुनर्नवा, ब्राह्मी, देवी, रुद्रा, सर्वसन्धानि इन सबका समाहरण करके कलशों में निर्धापति करना चाहिए । कलश के देश के अनुसार, ब्रह्मा, शम्भु, गदाधर का क्रम के अनुसार पूजन करके मुख्यता से भगवान् शम्भु का यजन करना चाहिए । प्रासाद मन्त्र के द्वारा शम्भु का और तन्त्र के द्वारा शंकर का प्रथम मध्य में अनेक प्रकार के नैवेद्यों के निवेदन द्वारा पूजन करना चाहिए । दिक्पालों के घटों में ही दिक्पालों का अर्चन करे । पूर्व में बाहर स्थापित कलशों में ग्रहों का पूजन करना चाहिए ।

नवग्रहों का और मातृघटों में मातृकाओं का पूजन करना चाहिए। सभी देवों का घट में यजन करना चाहिए। उनके घट पृथक्-पृथक् होते हैं। हे नृप! पूर्व में नौ ही कहे गए हैं जो मुख्य तथा वर्णित हैं। भक्ष्य, भोजन, पेय अनेक भाँति के पुष्प और फल-पावक पायस जो भी सम्भव योजित हों उनके द्वारा राजा सकल सुरों का पुष्प स्नान के लिए पूजन करे। मंडल के दक्षिण में कुण्ड का निर्माण करके पायस, समिधा, शाली सिद्धार्थ, दूर्वा, अक्षत तथा केवल घृत से पूजित सकल सुरों को ऋत्विक् पुरोहित के सहित नृप वृद्धि के लिए होम के द्वारा सन्तुष्ट करे। होम के अन्त में मण्डप के उत्तर में वेदिका में पदक के सहित, रोचना नामक तथा अलंकारों को सबको नियोजित करे। वृद्धि में अंगुलि से छब्बीस अंगुलिका की अवधि पर्यन्त वृत्त अथवा चौकोर त्रिकोण संज्ञा वाले पद्म को। फिर पद्म के मध्य में मुगोष्टिक से रत्नेशों को, श्रीवृक्ष, वरारोहा, शुभावन्त उमा देवी को सब रत्नों से और अलंकारों से दो हाथ यह बनाना चाहिए। वह एक साथ विस्तार वाला और नौ हाथ दश अंगुल वाला ऊँचा स्नान के लिए, डेढ़ हाथ का वृत्त तथा गुणों से अवलम्बित करे। शय्या चौगुनी दीर्घ बनावे और धनुष के मान वाला पीठ करे। गज और सिंह के द्वारा किए हुए आरोप वाला और हेम तथा रत्नों से विभूषित सिंह नामक सार्ध विस्तार से दण्डासन को अथवा व्याघ्र चित्रक पदों के द्वारा उपधानों को करावे। अथवा अन्यों के द्वारा निर्मित्त चर्म मृदुतूल से पूरित चार हाथ वाली परिमाण में सुन्दर लक्षण से युक्त दीर्घ विस्तार से युक्त शय्या गुरु विद्या से नृप की वितस्ति से अधिक की इच्छा करते हैं।

केवल सोलह ही वर्ण और चित्र से युक्त करने चाहिए। यान, सिंहासन, पट्टशय्या के उपकरण आदि राजा के योग्य हो वह वेदी के उत्तर की ओर न्यस्त करे। उनके पश्चिम में सब प्रकार के रत्नों के समुदाय से स्वतिक श्रेष्ठ पर्यंक पर जो यज्ञ के काष्ठ के समूह से निर्मित महान् आस्तरण वाले, अर्धच्छादन से संयुत हो तथा चर्म से आवृत चतुष्टय वाले, वृषभ के तथा सिंह शार्दूलों के ऊर्ण से आवृत्त

रत्नों से समन्वित पादपीठ पर राजा अपने चरणों को समारोपित करके उस पर्यंक के पीठ पर स्थित चर्म खंड चतुष्टय में रत्नों से शोभित अनेक अलंकारों से युक्त नृपति का स्नपन करावे । ब्राह्मणों के साथ सुख से संगत राजा को जो सम्वीन काम्वल वाला कृष्ण और बहुत से वस्त्रों से शोभित हो उसको कलशों के द्वारा बलि पुष्पादि से और शालि व्यूर्णों से स्नान करावे । आठ, सोलह, बीस, एक सौ आठ अथवा अधिक कलशों की संख्या बतायी गयी है ।

उस संख्या से उत्तरोत्तर अधिक भी होती है । जय और कल्याणप्रद मंत्रों से कौर मातृकों से आज्य को तेज समुद्दिष्ट किया है । आज्य पापों के हरण करने वाला है । आज्य ही सुरागणों का आहार और आज्य में लोक प्रतिष्ठित है । भूमिगत, अन्तरिक्षस्थ, अथवा दिव्य अर्थात् दिवलोकगत जो भी आपको कल्मष आ गया है वह सब आज्य के संस्पर्श से विनाश को प्राप्त होवे । इसके अनन्तर शरीर से कम्बल और वस्त्र को अलग करके पुष्पों और स्नानीयों से पूरित कलशों के द्वारा भूप को स्नान करावे । हे नृप श्रेष्ठ! शरीर के तत्त्वार्थ के साधक इन मन्त्रों से राजा को स्नान करावे । सुरगण आपका अभिषिञ्चन करे और जो सिद्ध एवं पुरातन हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, आदित्य, सुगण, भिषग्वर, दोनों अश्विनी कुमार, देवमाता अदिति, स्वाहा, लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, कुहू, दिति, सुरमा, विनिता, कद्रु, जो देव पत्नियाँ कही गयी हैं वे और देव मातायें सिद्ध और अप्सराओं के गण सब आपका अभिषिञ्चन करें । नक्षत्र, मुहूर्त्त, पक्ष, अहोरात्र, सन्धि, सम्वत्सर, निमेष, कला, काष्ठा, क्षण, लव ये काल के सब अवयव आपका अभिषिञ्चन करे और जो सिद्ध एवं पुरातन हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, आदित्य, सुगण, भिषग्वर, दोनों अश्विनी कुमार, देवमाता अदिति, स्वाहा, लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, कुहू, दिति, सुरमा, विनिता, कद्रु, जो देव पत्नियाँ कही गयी हैं वे और देव मातायें सिद्ध और अप्सराओं के गण सब आपका अभिषिञ्चन करें । वैमानिक अर्थात् विमानों पर

संस्थित रहने वाले सुरों के समुदाय, सागरों के सहित मनुगण सरिताएँ, महानाग, नाग, किम्पुरुष, वैखानस, महाभाग द्विज और अपनी दाराओं के साथ सप्तर्षि गण जो ध्रुव के स्थान वाले हैं, मारीच, अत्रि, पुलह, पुलस्य, क्रतु, अंगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक सनन्दन, दक्ष, जेगीषव्य, अभिनन्दन ।

एक, दो और तीन, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत कण्ड, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतमा, शनुःशेप, विदूरथ, और्व, सवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन, यव, क्रीति, देवरात, सहात्मज, ये और अन्य जो भी देव व्रत में परायण हैं वे अपने शिष्यों के सहित और अपनी दाराओं के साथ तप के ही धन वाले आपका अभिषिञ्चन करें । पर्वत, वृक्ष, नदियाँ और परम, पुण्य आयतन, प्रजापति, क्षिति, गौयें, विश्व की मातायें, दिव्य वाहन, सब लोक, चर और अचर, अग्नियाँ, पितर, तारा, जहमूत, आकाश, दिशायें, जल, ये और अन्य बहुत से पुण्य संकीर्तन वाले तथा शुभ सब उत्पातों के नियर्हण करने वाले जलों के द्वारा आपका अभिषिञ्चन करें । इस प्रकार से इन शुभ प्रदाता दिव्य मन्त्रों के द्वारा दूसरों के द्वारा अभिषेक करे ।

निम्नलिखित मन्त्रों से व नारायणों से, रौद्रों से, ब्रह्म और इन्द्र से, समुद्भवों से, 'आपोहिष्ठा' इत्यादि से, 'हिरण्य' इससे, 'सम्भव' इससे, सुर, इससे 'मानस्तोके' इस मन्त्र से और 'गन्ध द्वार', इस मन्त्र के द्वारा, सर्वमंगल मांगल्ये इससे, 'श्रीश्चते', इसके द्वारा और ग्रह योगियों से इस प्रकार से स्नान का समादन करके कम्बलों से शरीर को आवृत करके 'सर्व मंगल' इत्यादि मन्त्र के द्वारा कपास से निर्मित वस्त्र को धारण करना चाहिए । इसके उपरान्त आचमन करके देवों का, गुरु का और विप्रगणों का अभ्यर्चन करना चाहिए । फिर ध्वज, छत्र, चामर, घण्टा, अश्व, गज को मन्त्र का जप करके धारण करे और इसके अनन्तर हुताशन के समीप गमन करना चाहिए । वहाँ पर जाकर राजा वह्नि के मध्य में वह्नि की श्री का निरीक्षण करें । वहाँ पर बिन्दुओं के द्वारा निमित्तों की और अनिमित्तों को लक्षित करना

चाहिए। दैवज्ञ (ज्योतिर्विद) कञ्चुकि, अमात्य, बन्दीजन, पुरवासीजन से आवृत्त होते हुए तुमुल वाद्यों की ध्वनियाँ से तथा शुभ तौर्यत्रिकों के साथ युक्त होकर शेष में पुनः शान्ति करके और आशीर्वाच्य करके द्विजों को विधिपूर्वक सुवर्ण से युक्तपूर्ण दक्षिणा देवे तथा धान्य और वस्त्र देकर उन सबको विदा करे ।

इसके अनन्तर पुरोहित शेष जल से समस्त अमात्यादिक का सेचन करे तथा तुरंग का, बल का, राष्ट्र का सेचन करना चाहिए । इस प्रकार से करके पीछे राजा तीन रात्रि पर्यन्त पूर्णतया संयम से युक्त होकर रहे । माँस का अशन, मैथुन से रहित रहे और मांगल्यों का सेवन करे । यदि पुष्य नक्षत्र से युक्त तृतीया तिथि का लाभ है उसमें सदा शंकर के साथ चण्डिका देवी का अर्चन करना चाहिए । पाञ्चायिकी विहार आदि के द्वारा तथा शिशुओं के कौतुकों के, वैवाहिक विधि से शिवा चण्डिका का मोहन करना चाहिए । समस्त चतुष्पथों (चौराहों) में और देवों तथा देवियों के मन्दिरों में पताकाओं को लगाकर उन्हें भूषित करे और ऐसा करता हुआ कभी भी दुःख नहीं पाया करता है । इस रीति से शान्ति यज्ञ को सुसम्पन करके तथा पुष्य का अभिसेचन करके चतुरंगों के साथ, भार्याओं और नरों के साथ राज्य मण्डल से समन्वित यहाँ पर और परलोक में कभी भी दुखित नहीं हुआ करता है और इससे बड़ा और श्रेष्ठ कोई भी न यज्ञ होता है और न इससे उत्तम कोई उत्सव ही हुआ करता है ।

इससे बढ़कर कोई भी शान्ति नहीं है और इससे अधिक कोई कल्याण एवं मंगल नहीं होता है । इस विधान से ही नृप का अभिषेचन होता है और राजपुरोहित को चाहिए कि इसी विधान से युवराज का अभिषेक करे । यदि नृप को अभिषेक का समाचरण करना हो तो इसी विधान से नृप सदा स्थिर होता है । प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने इन्द्रदेव से यही यज्ञ कहा था । इसी भाँति राजा इस यज्ञ को करके यहाँ पर और परलोक में कभी दुःख नहीं पाया करता है ।

शक्रध्वजोत्सव वर्णन

औंर्व ने कहा–इससे अनन्तर हे राजेन्द्र! अतएव आप शक्रोत्थान ध्वजोत्सव का श्रवण कीजिए जिसको सम्पादित करके राजा किसी समय में भी पराभव की प्राप्ति नहीं किया करता है । हरिस्थ परिवार के दिन श्रवण से युक्त द्वादशी तिथि में राजा को इन्द्रदेव का समाराधन करना चाहिए । इसको भली भाँति करने से सब प्रकार के विघ्नों की उपशान्ति हुआ करती है । राज परिवार नाम वाला जिसका वासु नाम दूसरा है, नृप इसे करे । यह पिछले समय में अतुल यज्ञ प्रवृत्त हुआ था । नभ मास में, वर्षा ऋतु में, द्वादशी तिथि में, शुक्ल पक्ष में, पुरोहित बहुत प्रकार के वाद्यों और तूर्यों से समन्वित हो । सबसे प्रथम इन्द्र के केतु के लिए वृक्ष को आमन्त्रित करके उसको वर्धित करना चाहिए । सम्वत्सर और वार्धकि मंगल कौतुक किया हुआ हो । उद्यान में, देवता के आगार में, श्मशान में और मार्ग के मध्य में जो भी तरुवर समुत्पन्न हों उनका वायस ध्वज में वर्जन कर देना चाहिए । जो बहुत वल्लियों से संयुत हो, शुष्क हो, बहुत से काँटों से समन्वित हो, कुब्ज अर्थात् टेढ़ा हो वृक्षादनीय युक्त हो तथा लताओं से छन्न तरु हो उसका परित्याग कर देना चाहिए ।

जो वृक्ष पक्षियों के निवास से समाकीर्ण हो अर्थात् जिस पर बहुत से पक्षियों के घौंसले हों, जो बहुत कोटरों से समन्वित हो, जो वायु और अग्नि से विध्वस्त हो गया हो ऐसे तरु को यत्नपूर्वक वर्जन कर देवे । जिन वृक्षों का नाम नारी वाला हो, जो अत्यन्त छोटा हो, जो बहुत ही कृश हों । ऐसे इन सभी वृक्षों का धीर पुरुष इन्द्र के पूजन में सदा ही वर्णन कर दे । अर्जन, अश्वकर्ण, प्रिय कोषक, औदुम्बर, ये पाँच वृक्ष केतु के लिए उत्तम बताए गए हैं, और अन्य देवदारु आदि तथा शाल आदि वृक्ष जो भी प्रशस्त हैं उनका परिग्रहण करना चाहिए और जो अप्रशस्त हैं उनका कभी भी ग्रहण न करे । वृक्ष को पकड़ करके रात्रि में स्पर्श करके इस निम्न कथित मंत्र का पाठ करना चाहिए, जो प्राणी वृक्षों पर है उनके लिए कल्याण हो और आपको

नमस्कार है । राजा आपका वरण करता है । हे नृपोत्तम! कल्याण हो । देवराज इन्द्र की ध्वजा के लिए इस पूजा का परिग्रहण करिए । इसके अनन्तर दूसरे दिन में उसका छेदन करके फिर आठ अंगुल मूल का ग्रहण करे तथा आगे की ओर से चार अंगुल को छेदन करके उसे जल प्रक्षिप्त कर देवे । फिर पुर के द्वार पर ले जाकर वहाँ पर केतु का निर्माण करके भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में केतुका वेदी प्रवेश करना चाहिए । बाईस हाथ के मान वाला केतु अधम कहा जाता है । बत्तीस हाथ के मान वाला उससे ज्येष्ठ होता है । बयालीस हाथ के मान वाला भी होता है । इससे भी अधिक बावन हाथ के मान वाला उत्तम कहा गया है । हे नृप श्रेष्ठ! इन्द्र की पाँच कुमारियाँ करनी चाहिए । वे सब शालमयी हों और दूसरी शक्र मातृकाऐं होनी चाहिए । केतु के सेतुपाद के प्रमाण वाला तथा मन्त्री के दो हाथ करे । इस रीति से कुमारियों की रचना करके और मातृका तथा केतु को करके एकादशी तिथि में शुक्ल पक्ष में उस यष्टि की अधिवासित न करे । फिर यष्टि का अधिवास करे तो जो 'गन्ध द्वारा' आदि मन्त्रों के द्वारा किया जाना चाहिए ।

भगवान् अच्युत का अर्चन करके पीछे शुक्रदेव का पूजन करना चाहिए । इन्द्रदेव की प्रतिमा का निर्माण के स्वर्ण द्वारा अथवा काष्ठ के द्वारा करना चाहिए । अन्य किसी उत्तम धातु के द्वारा निर्माण करावे अथवा सबके अभाव में मृत्तिका से परिपूर्ण करे । उस प्रतिमा को मण्डल के मध्य में स्थापित करके विशेष रूप से अर्चन करे । इसके अनन्तर किसी परम शुभ मुहुर्त में राजा केतु को उत्थापित करे । हे पुरन्दर! आप हाथ में वज्र धारण किए हुए हैं । आप असुरों के हनन करने वाले हैं, आपके बहुत नेत्र हैं । समस्त लोकों के कल्याण करने वज्र के लिए यह पूजा ग्रहण कीजिए । हे अमरों के स्वामिन्! आप सबके धारण करने वाले हैं और सभी देवगणों के द्वारा अभिष्टुत हैं आप यहाँ पर आगमन कीजिए, यहाँ पदार्पण करिए । आप श्रवण के आद्यपाद से समुत्थित हुए हैं, आप इस पूजा का ग्रहण कीजिए । हे

राजन् ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित हैं । इस रीति से उत्तम तन्त्रों में वर्णित दहन और पावन के आदि के द्वारा इस मन्त्र से और तन्त्र से तथा अनेक नैवेद्यों के निवेदनों से, अपूपों से, पायस से, पान, गुड़ और अनेक तरह के भक्ष्यों से, भोज्यों से श्री की विशेष वृद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए ।

घट दिक्पालों को और ग्रहों का अर्चन करे । अनुक्रम से साध्य आदि समस्त देवों का और सब मातृकाओं का पूजन करना चाहिए । इसके अनन्तर किसी शुभ मुहूर्त में वर्धकि से समन्वित ज्ञानी यज्ञवेदी के पश्चिम में केतूत्थापन की भूमि में विप्रों और पुरोहितों के साथ राजा गमन करे । सुमंगल पाँच रज्जुओं से सुबुद्ध मन्त्र से शिलष्टा मातृकाओं के सहित, कुमारियों से संयुक्त और दिक्पालों के पादकों युत, वृहन्, अतिकान्त सुपूरित अनेक द्रव्यों से यथावर्ण और यथादेश में वस्त्र से वेष्टित किए हुए हैं । योजितों से युक्त उसको जो किंकिणी के जलों से तथा बड़े घण्टाओं से और चामरों से भूषित तथा रत्नों की माला से अलंकृत अद्‌भुत माल्यों और अम्बरों से तथा चारों तोरणों से राजकीयों के द्वारा धीरे-धीरे महाकेतु को उत्पाथित करे । मण्डल में पूजित उस महाकेतु को उठाकर इन्द्रदेव का चिन्तन करते हुए उस प्रतिमा को केतु के मूल में ले जावे ।

वहाँ पर पूर्व की ही भाँति उसका यजन करे तथा शची मातालि, उसके पुत्र जयन्त और ऐरावत का भी अर्चन करना चाहिए । ग्रहों, दिक्पालों, सर्पों, गणदेवों अश्वों, वलियों के द्वारा और पायस आदि से पूजन करना चाहिए । अर्चन किए हुए देवों को निरन्तर होम का समाचरण करे । होम के अन्त में बलि देवे जो महात्मा वासव के लिए देनी चाहिए । हे नरोत्तम! तिल, घृत, अक्षत, पुष्प, दूर्वा, इनके द्वारा अपने-अपने मन्त्रों से देवों का हवन करना चाहिए । इसके उपरान्त होम के अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे । इस रीति से सात रात्रि पर्यन्त दिन-दिन में नित्य भली भाँति अर्चन करना चाहिए । देवों और वेदांग शास्त्रों के पारगामी विद्वान ब्राह्मणों के सहित राजा सर्वत्र इन्द्र की पूजा

में कीर्तित किया गया है । 'त्रातारम्', यह मन्त्र इन्द्र का परम प्रिय है । इस प्रकार करके दिवा के भाग में शक्र का उत्थापन करे । श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि में राजा को स्वयं भरणी के अन्तिम चरण में रात्रि में शक्र का विसर्जन करना चाहिए ।

हे नृप शार्दूल! इस कारण से नृप शक्र का विसर्जन का यह मन्त्र कहा गया । सुर-असुर गणों के साथ पुरन्दर क्रतु इस उपहार को ग्रहण कर, हे महेन्द्रध्वज! गमन कीजिए । सूतक के उत्पन्न होने पर भौम अथवा शनिवार में, भूकम्प आदि उत्पात के हो जाने पर वासव को विसर्जन नहीं करना चाहिए । उत्पात होने पर तथा उपप्लव के दर्शन होने पर सात रात्रि को व्यतीत करके तथा शनिवार और भौमवार को छोड़कर अन्य नक्षत्र में भी विसर्जन कर देना चाहिए । सूतक के सम्प्राप्त हो जाने पर सूतक के अन्त में जिस किसी भी दिन में विसर्जन कर दे ।

राजा के द्वारा उसी भाँति क्रतु की रक्षा करनी चाहिए जिससे हे नृप शार्दूल! क्रतु पर शकुन पतन न करें । जब तक उसका विसर्जन न हो । जिस प्रकार से आदि से उत्थापन हो धीरे-धीरे पातन करना चाहिए । क्रतु के भग्न होने पर मृत्यु की प्राप्ति होती है । हे नृप! अलंकारों के सहित विसर्जन किए हुए शक्रकेतु को रात्रि में अगाध जल में निम्न वर्णित मन्त्र के द्वारा प्रक्षिप्त कर दे । हे महाभाग केतु! आप विघ्नों के विनाश करने वाले हैं । समस्त लोकों के भव के लिए आप जब तक सम्वत्सर हो जल में स्थित रहें । समस्त लोकों के आगे सूर्य की ध्वनि के साथ उत्पादन करे और एकान्त में केतु का विसर्जन करना चाहिए । यही पूजन में विशेषता है । इस रीति से महात्मा वासव की जो पूजा किया करता है वह बहुत समय तक पृथ्वी का उपयोग करके अन्त में वासव (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति किया करता है । उसके राज्य में कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ करता है और कहीं पर भी व्याधियाँ तथा आधियाँ नहीं होती हैं तथा मनुष्यों की अकाल में कभी मृत्यु भी नहीं हुआ करती है । पार्थिव! उसके समान अन्य कोई भी इन्द्रदेव का

प्रिय नहीं होता है । उसकी पूजा सब की पूजा है । भगवान् केशव आदि वहाँ पर ही सब विराजमान रहा करते हैं । समस्त कलुषों का अपहरण करने वाला व्याधि और दुर्भिक्ष का नाशक, सकल भवों का विशेष, सब प्रकार के सौभाग्य का सम्पादन करने वाला, शक्रकेतु का सुरपति के गृह की वाणियों से वाचनप्रिय शरत्काल में अनेकोपचारों के द्वारा श्री वृद्धि के लिए पूजन करना चाहिए ।

राजा के पालनीय नियम

और्व ने कहा–हे नृप! ज्येष्ठ मास के दशहरा में भगवान् विष्णु की इष्टि के विषय में अब आप श्रवण जिस विधि से नृप को सदा भगवान् विष्णु इष्टि करनी चाहिए । प्रतिवर्ष राजा को भगवान् हरि की सुवर्ण की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए अथवा किसी अन्य उत्तम धातु के द्वारा बनवाये या काष्ठ की अथवा शिलामयी प्रतिमा की रचना करानी चाहिए । शिल्पों के द्वारा उसका निर्माण करावे और मानोन्मानो से उसकी विधि के साथ प्रतिष्ठा करनी चाहिए । उसकी संस्थापना किसी देवालय में करावे या स्वयं द्वारा निर्मित देवालय में करे । पूर्व में वर्णित विधि से वासुदेव के बीच से सभी उपचारों के द्वारा भक्ति के द्वारा वासुदेव भगवान् का अभ्यर्चन करे । पूजा के अन्त में संस्कार किए हुए अग्नि में जो कि कुण्ड के मध्य में स्थित होवे फिर द्विज घृत से हरि भगवान् की प्रिय एक सहस्त्र आहुतियों से हवन करे । द्विज भली भाँति वासुदेव का पूजन करके फिर होम करे । नृप की अनुमति से उस प्रतिमा को मण्डल में ले जावे । प्रतिमा के दोनों कपोलों का दाहिने हाथ से स्पर्श करना चाहिए ।

उस प्रतिमा में हरिदेव की प्राण प्रतिष्ठा करे । हे नृप श्रेष्ठ! प्राणों की प्रतिष्ठा के करने पर भगवान विष्णु के प्राण नियत रूप से उस प्रतिमा में आ जाया करते हैं । प्राणों के समागत हो जाने पर इस प्रतिमा में नियत रूप से देवत्व हो जाया करता है । प्राणों की प्रतिष्ठा न करने पर प्रतिमाओं में जैसा पहले भाव होता है वैसे ही स्वर्ण आदि भाव

बना रहता है और उनमें विष्णु का भाव नहीं होता है । हे पार्थिव! अन्य देवों की भी प्रतिमाओं में भी प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए तभी उसमें देवत्व की सिद्धि हुआ करती हैं । प्राण स्थान के बिना सदा सुवर्ण सुवर्ण ही रहता है, शिला-शिला है और काष्ठ केवल काष्ठ ही रहा करता है । सभी अपने ही स्वरूप में रहते हैं । वासुदेव के बीज से, 'मद्विष्णोः' इत्यादि से तथा अंग, अंगी मन्त्रों के द्वारा भगवान हरि की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए । उसी भाँति मन्त्रों का ज्ञान रखने वाला हृदय में निरन्तर अंगुष्ठ को देखकर इन मन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठा करके हृदय में भी समाचरण करे । इसके लिए प्राण प्रतिष्ठा हों, इनके लिए प्राण क्षरण करें, यह देवत्व की संख्या के लिए स्वाहा, यह यजु का उच्चारण करें, वैदिक अंग मन्त्रों से और मंत्रों से और इनके द्वारा सर्वत्र प्रतिमाओं में प्राणों की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए । मन्त्रों के ज्ञान रखने वाले पुरुष की प्रतिमा के पूजन में आत्मा में भी करना चाहिए । पूजा के भाग की विशुद्धि के लिए प्रथम प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए । इसमें प्राण प्रतिष्ठा का प्रतिमा के पूजन के बिना किसी भी बुध पुरुष को नहीं करना चाहिए ।

नृपश्रेष्ठ दशमी में इस भगवान विष्णु की इष्टि को करके उसके पूर्ण हो जाने पर ही फिर उस प्रतिमा को स्थापित करे । इस प्रकार से राजा दशहरा में हरि भगवान् की इष्टि को करके सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लिया करता है और वह विघ्नों से भी रहित होता है । श्री पञ्चमी में भी देवी का कुन्द के पुष्पों के द्वारा उस समय में प्रकृष्ट रूप से पूजन करना चाहिए । गजराज पर संस्थित वासव का उत्तम उपहारों के द्वारा अर्चन करे ।

यहाँ पर पूजन में भी वासव का पहले कहे हुए लक्ष्मी के महातन्त्र का ग्रहण करना चाहिए और क्रम के अनुसार मण्डल आदि का भी ग्रहण करे । इस प्रकार से पूजन के करने पर और श्री पञ्चमी में विशेष रूप से किए जाने पर नृप श्री से समन्वित होता है और कभी भी श्री की हानि को नहीं प्राप्त किया करता है । हे पार्थिव! यह समाचार

विशेष मैंने आपके सामने वर्णित कर दिया है और निषेध में विशेषों का श्रवण कीजिए जिससे श्री के द्वारा इष्ट किया जाता है । भगवान् विष्णु का भली-भाँति पूजन न करके तथा दान न देकर राजा को कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए । पुरोहितों के द्वारा नित्य अग्निहोत्र का हवन करना चाहिए । अग्निहोत्र न करके भोजन करने वाला नरक की प्राप्ति किया करता है । रत्नदीप से रहित अरक्षित गृह में राजा को स्त्री के साथ शयन नहीं करना चाहिए और कभी वहाँ बैठना भी नहीं चाहिए । अन्न खाकर श्रीफल का अशन न करके तथा नृप धात्री फल को भी न खावें । माष, आसन और मृत्तिका ये सब बुद्धि का क्षय करने वाले होते हैं ।

नृपों में उत्तम को प्रतिदिन बुद्धि के जो हेतु हों उन्हीं का भक्षण करना चाहिए । राजा को यान पर विहीनआसन प्रारोहण नहीं करना चाहिए । जो आसनों से हीन हो ऐसे यान पर, अश्व और हाथी पर भी आरोहण नृप न करे । किसी भी समय में राजा एक अकेला निर्जन वन में विचरण न करे । राजा को चाहिए किसी भी समय भोजन में मद के कारण पदार्थ का अशन न करे । अष्टमी तिथि में कभी भी माँस और मैथुन का सेवन न करे । दशश्राद्ध, गया श्राद्ध, तिलों से तर्पण, वह राजा न करे जिसका पिता जीवित हो । ऐसा करके पाप को प्राप्त किया करता है । राजा को राज्य पर क्षेत्रज्ञ तनयों का अभिषेक नहीं करना चाहिए जबकि और सुपुत्र हो तो उसके होते हुए पितृगणों की शुद्धि के लिए और सुपुत्र का ही अभिषेक करे । औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न अपविद्ध ये पुत्र भाग के योग्य हुआ करते हैं । कानीन् (कन्या से उत्पन्न), सहोढ़, क्रीत (धन देकर खरीदा हुआ), पौनर्भव, स्वयंदत्त और दास, ये छः पुत्र पाँसुल होते हैं । पूर्व पूर्वों के अभाव में दूसरों का अभिषेक करे । जो पौनर्भव स्वयंदत्त और दास हो उसका कभी भी राज्य में योजन नहीं करे । दत्तक आदि पुत्र भी जो निज गोत्र के द्वारा संस्कार किए गए हों वे अन्य के वीर्य से समुत्पन्न हुए पुत्रता को प्राप्त हुआ करते हैं । पिता के गोत्र से राजा का जो पुत्र

संस्कार किया हुआ है वह चूड़ाकर्म संस्कार निजगोत्र से संस्थित होंवे वे दत्तक आदि पुत्र होते हैं अन्यथा दास कहा जाया करता है । हे नृप! पाँचवे वर्ष से ऊपर दत्तक आदि पुत्रों को ग्रहण करके प्रथम पाँच वर्षीय पुत्रेष्टि का समाचरण करना चाहिए । पौनर्भव पुत्र को जैसे ही समुत्पन्न हो उसे समानीत करे ।

मनुष्य को चाहिए कि जातकर्म आदि समस्त संस्कारों को करे । पौनर्भवष्टोम के करने पर पौनर्भव कहा गया है । पिता का एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिए । जो मूल्य के द्वारा वनिता खरीदी गयी हैं वह वनिता दासी कही जायी करती है, उसमें जो भी पुत्र समुत्पन्न होता है वह पुत्र दास कहा गया है । वह राजा के राज्य का भागीदारी हुआ करता है किन्तु विप्रों के श्राद्ध करने वाला नहीं होता है ।

राजा उसका नियोजन करके उससे तामिस्त्र नामक नरक में जाया करता है । राजा को चाहिए कि वह काण्याव्यं अर्थात् विशेष अंग वाला अथवा अंगहीन, पुत्र रहित, अनभिज्ञ, अजितेन्द्रिय, बहुत छोटे कद वाला, रोगी को कभी अपना पुरोहित न बनावे । राजा को चाहिए कि वह कभी कृपण के धन को ग्रहण न करे । द्विजों को बहुत अधिक धन भी नहीं देवे । राजा कभी कामुक और उन्मत हाथी पर आरोहण न करे । उस कामुक पर समारोहण करके इस लोक और परलोक में विषाद को प्राप्त किया करता है । सम्पूर्ण धन के द्वारा राजा को अपनी आयु की वृद्धि के लिए यत्न करना चाहिए । किसी भी क्रूर वार के दिन अष्टमी और षष्टी तिथि में उत्तम नृप को अञ्जन, अभ्यञ्जन और ताम्बूल का भी भोजन नहीं करना चाहिए ।

चन्द्रमा और सूर्य का ग्रहण अतीव सूक्ष्म होवे या पूर्ण हो तो राजा को रक्तसूर्य का स्वयं अवलोकन नहीं करना चाहिए । जो उत्पात उत्पन्न होता है चाहे वह दिव्य हो, भूमिगत हो या आकाशगत हो यत्नपूर्वक उसे राजा को नहीं देखना चाहिए और यदि देख भी लेवे तो तीन दिन भोजन नहीं करे । राजा सर्वदा मंगल रत्न को धारण करे और दूर्वा के सहित ही पहने । राजा कभी भी वस्त्र से न ढके हुए शरीर को विप्रों

के लिए न दिखावे । पानी में अपने मुख को न देखे, पर्वों में माँस न खावे । खर, उष्ट्र, वासी और गुर्व्विणी पर आरोहण न करे । इस प्रकार से नये शास्त्र से संयुत राजा चतुरंग को वर्धित करता हुआ अपने आप की निरन्तर रक्षा करके सदा वीर्य का वर्द्धन करे । जो भक्ष्य बीज के क्षय करने वाला होवे उसकी, भोज्य को, पानक, क्षार, शाक आदि, बहुत खट्टे और बहुत तिक्त, (चरपरा) का वर्जन कर देना चाहिए । कांसे के पात्र में और चाँदी के पात्र में स्थित तथा नदी का जल मूत्र की वृद्धि करने वाला है तथा वीर्य के क्षय करने वाला है इसको वर्जित कर देवे । ताम्र, लोहा, सुवर्ण, शीशा के पात्र में स्थित तथा फल और चर्म में स्थित जल वीर्य की वृद्धि करने वाला होता है ऐसे ही जल का यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए । सम्पूर्ण मूल कृत्यों में और सदाचारों में स्थित रहने वाला इस लोक में अनेक भागों का उपभोग करके परम इन्द्र के स्थान को प्राप्त किया करता है ।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–मुनियों में परम श्रेष्ठ और्व ने इस रीति से राजा सगर को शासित किया था और उन्होंने सब शास्त्रों को गुह्यकों को और सदाचारों को बहुत बार महात्मा सगर राजा को कह कर सुना दिया । राजनीति, सत्पुरुषों की नीति और जो भी कुछ शास्त्रों में सम्भव है संहिताओं में पुराणों में और जो आगमों के समुदाय में हैं राजा सगर ने सभी कुछ धीमान् और्व के मुख से श्रवण किया था । हे द्विजश्रेष्ठ! उनका कुछ उधृत करके कहा था । राजनीति, सदाचार, वेदों और वेदों के अंगशास्त्रों से संगत विष्णु का रहस्य है । हे द्विज श्रेष्ठों उसका वीक्ष्ण कर लें । अन्य स्थल में जो नहीं कहा है अथवा संशय के सहित का है, हे द्विजो! उनमें आप लोगों के लिए सम्पूर्ण संशयों का छेदन करने वाला कालिका पुराण है । जो विप्र इसका निरन्तर अभ्यास किया करता है वह वेदों के पठन का फल प्राप्त किया करता है ।

सदाचार वर्णन

ऋषियों ने कहा–संक्षेप से सदाचार और राजनीतियों में विशेष जो और्व ने राजा से जिस तरह से कहा था वह आपके वचन से श्रवण

किया है । फिर सबसे बाहुल्य विष्णुधर्मोत्तर तन्त्र में सदाचार देखना चाहिए वह आपके ही प्रसाद से देखने के योग्य हैं । फिर जो हमको संशय है जो पहले आपके ही द्वारा नहीं कहा गया है । हे विप्रेन्द्र! उस छेदन कीजिए । हम आपसे पूछते हैं । हमारे हृदय में बहुत ही अधिक कौतूहल है । वेदों और लोक में भी यह सुना जाता है कि जो पुत्र रहित है उसकी गति नहीं होती हैं । प्राचीन समय में वेताल और भैरव तप के लिए पर्वत पर गए थे । पूर्व में वे दोनों ही दाराओं के ग्रहण करने वाले थे । उन दोनों के पुत्र नहीं सुने गए हैं । हे द्विजोत्तम! वे ही उत्पन्न नहीं हुए थे अथवा अनेक उत्पन्न हुए थे । उनका उत्तम स्थान में भली भाँति से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा–हे द्विज सत्तमो! बिना पुत्र वाले की गति नहीं होती है यह निश्चित ही है । अपने पुत्रों के द्वारा अथवा भाई के पुत्रों द्वारा पुत्रों वाले स्वर्ग में गए हैं । हे विप्रों! के द्वारा अथवा भाई के पुत्रों द्वारा पुत्रों वाले स्वर्ग में गए हैं । हे विप्रों! वे दोनों उत्पन्न सन्तानों वाले वे धीर बेताल भैरव थे । अब मैं उन दोनों के वंशों को बताऊँगा । हे महर्षि गणों! आप श्रवण कीजिए ।

जिस समय में बेताल और भैरव दोनों भली-भाँति सिद्धि प्राप्त करके कैलाश के प्रति हर्षित होते हुए बोध करने वाला यह तथ्य वचन कहा था । नन्दी ने कहा–आप दोनों पुत्र सहित भगवान् शंकर के आत्मज हैं । पुत्र के जन्म लेने में यत्न कीजिए । समुत्पन्न पुत्र वाले की सर्वत्र सुलभ गति हुआ करती है । जो पुत्र से हीन पुरुष होता है वह पुन्नाम वाले नरक को देखा करता है । उसका मोचन करने के लिए तपों द्वारा तथा धर्म के द्वारा भी समर्थ नहीं हुआ करता है । केवल पुत्र के जन्म होने ही से उस नरक के छुटकारा होता है । उस कारण से आप दोनों ही देवयोनियों में पुत्र का उत्पादन करिए । आप दोनों की अमर्त्य हैं । इस कारण से जैसे-तैसे भी सुरयोनियों में पुत्रों का उत्पादन करके आप दोनों ही शिवा और शिव के प्रिय होंगे और अविलम्ब ही उनके भवन को प्राप्त होंगे ।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—नन्दी के वचन का श्रवण करके वे दोनों ही प्रसन्न मन वाले हो गए थे । इसके अनन्तर निरन्तर अपने हृदय में नन्दी के वचन को स्थिर करके वे दोनों ही इधर-उधर गमन करते हुए अपने पुत्रों के समुत्पन्न के लिए चेष्टा करने लगे थे । एक समय में इस भैरव ने हिमवान् पर्वत के प्रस्थ में परम सुन्दरी और श्रेष्ठ उर्वशी अप्सरा को देखा था । इसके उपरान्त परम कामुक होकर इसने उर्वशी से सुरतोत्सव की याचना की थी । वेश्या के भाव से परम प्रसन्न होती हुई उसने यथेच्छा कहा था । इसके अनन्तर भैरव ने उसके साथ सुरतोत्सव की क्रीड़ा की थी और वह प्रसन्न हुई उर्वशी में भैरव के तेज से सूर्य वाला सूर्य के समान प्रभा वाले सद्योजात पुत्र ने जन्म ग्रहण किया । उस पुत्र का परित्याग करके उर्वशी अपने स्थान को चली गयी थी ।

भैरव ने बहुत ही आनन्द से युक्त हो उस पुत्र का संस्कार कर गणधियों सहित करके उसका नाम उसने सुवेश रखा था । इंसके अनन्तर उचित अवस्था के प्राप्त करने वाले और इन्द्र तथा सूर्य के तुल्य कान्ति से संयुत उस सुवेंश का विद्याधरों के अधिपत्य में अभिषेक कर दिया था । उसने विद्याधरों के अध्यक्ष की अत्यन्त सुन्दरी पुत्री के साथ विवाह कर लिया था जो कि गन्धर्वों का राजा और धृतराष्ट्र नाम वाला था । उसमें परम सुन्दर रूरू नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । रुरु के पुत्र बाहु ने मैनाकी में जन्म लिया था । बाहु के चार पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम तपन, अंगद, ईश्वर और कुमुद थे । कुमुद सबसे छोटा था । कुमुद का पुत्र परम सुन्दर पार्वती में उत्पन्न हुआ था जो महान् बलवान् देवसेन नाम वाला था । वह परम मनोहर देवसेन पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ था । कोमल अंगों वाली अप्सरा यौवनाश्रव की केशिनी नाम वाली पुत्री का जो बहुत ही कोमल अंगों वाली अप्सरा के समान थी अपनी भार्या बनाने के लिए वरण किया था ।

यौवनाश्रव मान्धाता ने भी इन्द्र के वचन से अपनी पुत्री केशनी की इच्छा से ही देवसेन के लिए प्रदान कर दिया था । देवसेन ने केशिनी के साथ विवाह करके उसी को साथ में लेकर उसने शम्भु की पुरी

वाराणसी में भगवान् शिव की आराधना की । भगवान् शिव परम प्रसन्न हो गए थे और अभीष्ट वरदान उसे दे दिया था । उसने भी भगवान् शम्भु से अपने अभीष्ट तीन वरदान प्राप्त किए थे । जब तक भगवान् भास्कर रहें तभी तक मेरी सन्तति स्थित रहेगी, इसी नगरी में मेरे ही वंश की राजता रहे । मेरे वंश पर आप नित्य ही परम प्रसन्न रहेंगे । इन वरों को प्राप्त करके महान् देवसेन ने ही भगवान् शंकर की प्रसन्नता से उस पुरी का चिरकाल तक उपभोग किया । देवसेन ने केशिनी के उदर से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया । अब आप लोग उन सातों के नामों का श्रवण कीजिए जो कि कीर्तित किए जा रहे हैं । सुमना, वसुदान, ऋतुधृक्, यवन, कृती, नील, विवेक, ये सात पुत्र थे जो समस्त शास्त्रों के विशारद थे ।

इसके अनन्तर समय पर देवसेन भी भार्या के सहित अपने पुत्रों पर राज्य का भार डालकर विद्याधर क्षय को चला गया था । इसके उपरान्त उसके पुत्र समुत्पन्न हुए थे । ये सभी शास्त्रों के अर्थ के पारगामी विद्वान् थे । उनके नाम सुमति, विरूप और सत्य थे । सुमति की कन्या और सत्य का पुत्र डिण्डिम हुआ था । विरूप का गाधि हुआ और गाधि का सुतमित्र नामक हुआ था । उसका राजा कल्प से विजय हुआ था जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर बहुत तेज वाले राजाओं का शक्र की अनुमति से सौ योजन का खण्डन किया था । जिसको सत्यसाची अर्जुन ने जो पाण्डु का प्रतापी पुत्र था, दग्ध कर दिया था ।

ऋषियों ने कहा—उसने भी योजन वाले खाण्डव वन को विजय किस तरह से किया था । इसको हम श्रवण करना चाहते हैं । हे तप के ही धन वाले! इसका आप वर्णन कीजिए । महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—चन्द्रवंश से एक महान् बल और पराक्रम वाला, देखने में सुन्दर नाम वाला चारु रूप से संयुक्त और प्रताप वाला राजा हुआ था । उसने हिमवान् पर्वत के समीप में ही महान् वन को भंग करके सिंहों और व्याघ्रों को निकाल कर और कहीं पर तपस्वियों को भी हराकर साण्डवी नाम वाली परम शोभन नगरी का निर्माण किया था । वह तीस

योजन विस्तार वाली थी और सौ योजन आयत की थी । उसकी चहार दीवारी उच्च थी और अट्टाल एवं अम्बुद तोरणों वाली थी । निम्न और अतीव दीर्घ परिघाओं (खाई से समावृत थी) । उसमें अनेक मनुष्य रहते थे और वह शत्रु वीरों से घृष्यमाण नहीं थी । उसमें बड़े-बड़े उपवन थे तथा बहुत सी अप्सराओं से समाकीर्ण थी । उसमें बहुत से आरामगाह (उद्यान) थे तथा उत्तम श्रेणी के मनुष्य निवास किया करते थे । जहाँ पर निरन्तर मनुष्य उत्सवों से समन्वित रहा करते थे जो दिवलों में स्थित देवगणों के साथ स्पर्धा किया करते थे । वहाँ के मनुष्य आनन्द से युक्त आढ्य और भोगों से संयुत थे । उस सुदर्शन नाम वाले राजा ने भूमि का खनन और विदारण किया था ।

उसने गंगादेवी खाण्डवी का वहन कराया था । उसके द्वारा खोदे हुए मार्गों से खाण्डवी के मध्य को संप्लावित करके वक्रा और अनुवक्रा होकर सीता नदी की ओर वह जाया करती है । उसने समस्त युद्धों को जीतकर और बहुत-सा धन का आहरण किया था । उसने खाण्डवी को मध्य में अनेक प्रकार के रत्नों के द्वारा वश में कर लिया था । उस सुदर्शन नृप ने अन्यों के नगरों से मनुष्यों को वहाँ लाकर खाण्डवीं में हठ से भी निवासी बना दिया था । उस कृती ने देव, दानव और गन्धर्वों को युद्ध से जीत जीतकर देववृक्ष, देवरत्न, देवी और औषधियों को उस भूपाल सुदर्शन ने खाण्डवी में रोपित किया था । भगवान् विष्णु ने उस नृप सुदर्शन का उपचार किया था और प्रायःदेवों का तथा मनुष्यों का जयशाली वाराणसी के स्वामी विजय को कुत साचिव्य को युद्ध के लिए उसके बैर में योजित किया था ।

महान् बल और पराक्रम वाले विजय ने विवर की प्राप्ति करके नृप सुदर्शन का अबस्कन्द किया था । उस सुदर्शन ने विजय के अबस्कन्द को सहन किया था और चतुरंगिणी सेना से शीघ्र ही युद्ध सम्मुख हुआ था । फिर महात्मा विजय के साथ महान् युद्ध हुआ था । सुदर्शन का सेनानी जिसका नाम रुमण्वान था जो बहुत अधिक वीर्यवान था । वह सोने के रथ पर सवार होकर विजय के सम्मुख हुआ

था। उद्यत आयुधों वाला होकर इसने उसकी सप्त अक्षौहिणी सेना को चारों ओर से घेर कर जितनी भी शत्रु की सेना थी उसको आक्रान्त कर दिया था।

विजय का जो सेनानी था उसका नाम संजय था और वह रिपुओं का जीतने वाला था। नागों की सेना के द्वारा उसने सैनिकों के सहित रुमण्वान को ग्रहण किया। उन दोनों वीर सेनानियों का बहुत भारी युद्ध हुआ था। इसके अनन्तर रुमण्वान् ने शूरों की ही भाँति बड़ी भारी गर्जना करते हुए ही बीस वाणों के द्वारा उसके धनुष को छिन्न कर दिया था। कृत हस्त की तरह क्षुरप्र के द्वारा उसके धनुष को छिन्न कर दिया था। उस सञ्जय ने भी उसी समय में धनुष लेकर तीन वाणों के द्वारा प्रहार किया था। वाणों से वेधन किया था और भाले से उसी क्षण में धनुष को काट दिया। आठ सौ हाथियों और तीन सहस्त्र अश्वों को सञ्जय ने अपने चारों ओर सुदारुण वाणों की वर्षा से शीघ्र ही मार गिराया था। इसके अनन्तर दूसरी ओर से धनुष ग्रहण करके बहुत ही अधिक कुपित हो गया था और भाले के द्वारा इसके सारथी का शिर शरीर से काटकर अलग गिरा दिया था।

इसके अश्वों का चार वाणों के द्वारा विहनन कर दिया था। चतुर ने पाँच वाणों से सञ्जय को बेध दिया था। उसी क्षण में सञ्जय ने गदा लेकर अत्यन्त वेग से रथ से उतरकर रुमण्वान् पर धावा बोल दिया था। उस आक्रमण करने वाले सञ्जय को द्रुतहतस्वत् रुमण्वान ने शरीरों की वर्षा के द्वारा संच्छादित करके सञ्जय को वारित कर दिया था। इसने गदा के फिराने से सिंह जैसे महान् गज हटा दिया करता है उसी भाँति शरों की वर्षा करने वाले रुमण्वान् को हटाकर उसके समीप से प्राप्त हो गया था। सञ्जय ने उसके पास पहुँचकर उस बड़ी भारी गदा को अविद्ध करके अपने एक ही प्रहार के द्वारा रथ के सहित उसको व्यायोथित कर दिया था। गदा से हत होकर वह महान् वीर पृथ्वी में गिरा गया था। जैसे वन के मध्य में स्थित शाल का प्रफुल्ल वृक्ष वज्र से हत होकर गिर जाया करता है। राजा सुदर्शन ने

रुमण्वान को गिरा हुआ देखकर वह धूम के सहित पावक की ही भाँति शोक और कोप से समाविष्ट हो गया था ।

अत्यधिक क्रोध से युक्त होकर समाकुल देह वाला भी वह ज्वलित हो गया था । वेगवान् अश्वों से युक्त और व्याघ्र के चर्म से युत सुवर्ण के चित्रिक अंगों वाले, सिंह की ध्वजा से भूषित रथ पर आरूढ़ होकर आमुक्त धनुष ग्रहण कर बारम्बार विस्फारित करते हुए वेगवान् राजा ने सैनिकों के सहित सञ्जय को द्रवित किया था । इसके अनन्तर अपने पैने अस्त्रों के द्वारा सेना के आगे बहुत ही अधिक सम्पूर्ण सेना का सिंह हिरनों को जैसे निहत करता है ठीक उसी भाँति हनन कर दिया था । बहुत ओज वाले वीरों की अग्रगामिनी एक अक्षौहिणी सेना का हनन कर दिया था । जैसे सूर्य अन्धकारों का नष्ट कर दिया करता है उसी भाँति दो कोस तक न्यहनन किया था । राजा एक अक्षौह्णिणी सेना का हनन करके सञ्जय के समीप प्राप्त हो गया था । राजा ने आठ वाणों से वेधन किया था और एक बाण के द्वारा ध्वजा को छिन्न कर दिया था । इसके उपरान्त सञ्जय ने भी बीस वाणों से सुदर्शन के हृदय में वेधन किया था । कृतहस्त की भाँति एक बाण से ललाट में वेध किया था । क्षुरप्र के द्वारा प्रताप वाले राजा ने राजा के दण्ड को छिन्न कर दिया था ।

सञ्जय ने फिर वाणों से सारथी का वेधन उसी समय कर दिया था । फिर राजा सुदर्शन ने अपना धनुष लेकर अत्यधिक शरों की तीव्र वर्षा से संजम को निमग्न-सा कर दिया था । उन दोनों में विस्मय उत्पन्न करने वाला महान् युद्ध हुआ था । फिर राजा सुर्दशन ने अपने भाले के द्वारा इसके दृढ़ धनुष को काट गिराया था । उसने अपने पैने बाणों के द्वारा इसके सारथी का हनन कर दिया था । उस सञ्जय ने जो शत्रु के वीरों का हनन करने वाला था स्वयं ही अपने वाहनों को संयमित करके अन्य धनुष का आदान करके सुदर्शन को घेर का दश वाणों से वेधन किया था और इसके सुदृढ़ धनुष को छेदन कर दिया था । सुदर्शन ने अन्य धनुष का ग्रहण करके सञ्जय के चारवाहों को यमपुरी

को लेकर विजय ने शत्रु की ओर उसका प्रक्षेपण किया था और वह शक्ति सुदर्शन के हृदय में प्रवेश कर गयी थी ।

वह विह्वल होकर नीचे की ओर मुख वाला रथ के ही समीप में बैठ गया था । उस नृप सुदर्शन के मोह को प्राप्त हो जाने पर उसके आगे की ओर तथा पार्श्व में ही वहाँ पर जो सैनिक स्थित थे, हे द्विजोत्तमो! राजा ने एक ही क्षण भर में उन सबको मार गिराया था । दश हजार रथों को, और उतने ही हाथियों को, बड़े वेग वाले अश्वों की बीस हजार संख्या और दो लाख पदातियों को क्षण भर में मार गिराया था । इसके उपरान्त होश में आकर तथा सुदृढ़ धनुष लेकर सुदर्शन ने विजय के ऊपर शरों की वर्षा की थी । उसके राज्य कार्मुक को भाले के द्वारा उसी क्षण में छिन्न कर दिया था और सारथी का शिर काया से दूर कर दिया था और इसके चार अश्वों को मृत्यु के मुँह में भेज दिया था । इसके अनन्तर बिना रथ वाले राजा को दश कंकपत्रों के द्वारा विद्ध कर दिया था ।

सुदर्शन ने हृदय में वेधन कर फिर गर्जना की थी । वह कटे हुए धनुष वाले और बिना रथ वाले होकर वेग से युक्त ने गदा का आदान किया था । विजय की इच्छा वाले विजय ने सुदर्शन पर धावा किया था । सुदर्शन ने ऊपर से पतन करने वाले महान् वीर पर बाणों की वर्षा की थी जैसे वर्षा ऋतु में बादल पर्वत पर वर्षा किया करता है । विजय ने उन बाणों को अपने शरों से प्रच्छादित करके गदा से उसी क्षण में रथ पर समारूढ़ हुए उसके समीप में समादान किया था । उस महान् वीर्य वाले के पास पहुँचकर सुदर्शन के शिर में प्रहार करके उसको भूमि पर गिरा दिया था । जिस प्रकार से वज्र के द्वारा विदीर्ण किया गया पर्वत का ऊँचा शिखर गिरा करता है । उस वीर के गिर जाने पर उसकी सेना के सैनिक उस युद्ध स्थल से डर से भयभीत होते हुए दिशा-विदिशाओं में भाग गए थे । उसकी सेना के सैनिकों के नष्ट हो जाने पर विजय ने खाण्डवी नाम वाली नगरी में प्रवेश किया था ।

उसने नगरी में प्रवेश करके वहाँ घर एकत्रित पर्वतों की ही

राशिभूत सुवर्णों की तथा रत्नों के ढेरों को बहुत तादाद में देखा था । वहाँ पर खिले हुए कमलों वाले सरोवरों को देखा था । जो हंसों के नाद से सभी ओर से युक्त थे । पर्वतों के ही समान सुवर्ण और रत्नों के ढेरों को देखा था, घूमते हुए भौंरों से विभूषित और पुष्पित देव वृक्षों को देखा था जो प्रस्फुट और सुन्दर गन्ध से युक्त प्रत्येक घर में व्यवस्थित थे । शत्रुओं का हनन करने वाली विजय से राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गए थे । उसने उस नगरी को भूमि पर समागत अमरावती ही माना था । उस परम सुन्दर नगरी को देखते हुए राजा के पास सुरेश्वर ने आकर परम तीक्ष्ण वाणी से उसको सान्त्वना देते हुए विजय से कहा था ।

इन्द्रदेव ने कहा—हे राजन्! यह महावन देवगणों से समावृत था । यह गन्धर्व, यक्ष और मुनियों से समावृत और परम मनोहर था । राजा सुदर्शन ने देव आदि सबको यहाँ से उत्सारित करके मेरे अप्रिय कार्य करने में रत होता हुआ उसने इन वन का भंग करके गुह्य तपोधन को उत्साहित करके राजा ने हठ से खाण्डवी नगरी की रचना की थी । हे नरोत्तम! आप पुनः इसको उत्तम वन बना दीजिए । वहाँ पर मैं तक्षक के साथ एकान्त में विहार करूँगा । यह आपके प्रसाद से मुनिगणों के तपश्चर्या करने का अनुपम स्थान होगा । हे पार्थिव! यह यक्षों का और किन्नरों का भी उत्तम स्थान हो जायगा ।

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस समय इन्द्रदेव के इस वचन को विजय ने श्रवण करके इन्द्रदेव के गौरव से उस खाण्डवी नगरी को विस्तृत वन ही बना दिया था । समस्त प्रजाजन अपनी इच्छा के अनुसार यथास्थान गमन कर जायें । जिन लोगों की पुनः मेरे राज्य में गमन करने की इच्छा होवे वे वाराणसी में गमन कर जावें जो कि मेरे द्वारा ही प्रतिपादित पुरी है । इसके उपरान्त मनुष्यों ने उसके वचन का श्रवण किया और कुछ लोग अपने ही स्थान को गमन कर गए । और कुछ लोग विजय नृप के द्वारा अभिपालिता वाराणसी में चले गए । इसके अनन्तर धनों की तथा रत्नों की तथा राशियों को अलग-अलग और

मणियों, कनकों और पुरुषों की राशियों को विजन ने अंक साधनों के द्वारा वाराणसी नगरी की ही ओर वारित करा दिया था ।

विजय ने तुरन्त ही तीस योजन विस्तीर्ण एवं सौ योजन आयत उस पुरी को वन बना दिया था । उस वन में इन्द्रदेव की सम्मत्ति से अपने गणों के साथ तक्षक ने निवास किया था । वहाँ पर तक्षक बहुत समय तक रहा था और फिर वह निर्धन बन गया था । वहाँ पर गन्धर्वों के साथ देवगण और अप्सराओं के समुदाय आनन्द की क्रीड़ा किया करते हैं । वे सब युद्धों में विजय प्रदान करने वाले विजय की चर्चा किया करते हैं । अट्ठाईसवाँ युग के प्राप्त होने पर द्वापर के शेष में वह्नि ने विष्णु से ब्राह्मण के रूप से भिक्षा की याचना की थी । पाण्डु के सुत द्वारा भिक्षा देने की स्वीकृति दे दी गई थी ।

वह्नि ने अपने स्वरूप में स्थित होकर विष्णु से यह वचन कहा था, हे पाण्डु पुत्र! मैं अग्नि हूँ, यज्ञ भागों के अभिभाजन से मैं व्याधित हो रहा हूँ । अब आप ही मेरी व्याधि का विनाश कीजिए । खाण्डव नाम वाला विपिन है जो पक्षी-मृग और राक्षसों से समन्वित है । हे श्वेत वाहन! यदि आप मुझको भोजन कराने में समर्थ है तभी मेरी यह व्याधि शीघ्र ही नष्ट हो जायगी । पहले समय में विजय नाम वाले नृप ने खाण्डवी नाम की उस पुरी को भंग करके इसको वन बना दिया था। इसी कारण से यह खाण्डव वन है । हे श्वेत वाहन! वह देवों के द्वारा विहित वन मेरे ही लिए था । इन्द्रदेव के विरोध से मैं स्वयं इसका भोग करने का उत्साह नहीं करता हूँ । हे महाभाग! इसी कारण से आप परित्राण करिए और उस वन में नियोजन कीजिए । जिस रीति से मैं सम्पूर्ण का भोग करने के लिए आपके प्रसाद से मैं समर्थ हो सकता हूँ । महान् बलवान् सव्यसाची ने उसके इस वचन का श्रवण करके उस सम्पूर्ण वन को जो कि प्राणियों से समन्वित था, दग्ध कर दिया था।

यह देवकी के आत्मज भगवान् वासुदेव के द्वारा पालित है । अग्नि के हित करने से रति रखने वाले ने उस खाण्डव वन को जला दिया था । परम प्रसन्न होकर वह्नि ने इसी कारण से महात्मा अर्जुन को

गाण्डीव धनुष जो देवों द्वारा निर्मित और वारुण था, प्रदान किया था और अक्षय, दिव्य औषधियाँ दी थीं और सुरूप से संयुत चार अश्व, हनुमानजी से अधिष्ठित वानर ध्वजा वाला महान् रथ, खंड, वीक्ष्ण त्रिशिख अग्नि से सव्यसाची (अर्जुन) को दिए थे । तथा विष्णु के प्रसाद से वह्नि रोग से रहित हो गया था । फाल्गुन (अर्जुन) ने उन बाणों से, उस धनुष से, खंड से, केतु से उन अश्वों वाले रथ से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी । इस प्रकार से भैरव के वंशों में विजय नृप जो महाआकृति वाला था उसने खाण्डव को विपिन कर दिया था ।

विजय राजा के महान् बल वाले तेरह पुत्र हुए थे । उनके नाम द्युतिमान, सौम्यदर्शी, भूरि, प्रद्युम्न, क्रतु-पुण्य, विरुपाक्ष, विक्रान्त, धनञ्जय, प्रहर्ष, प्रबल, केतु और उपरिधर थे ।

इन सबका राजा वीर हुआ था जो शेषोपरिचर था जिसने वाराणसी नगरी में पहले एक लाख यज्ञ किए थे । एक लाख यज्ञों के करने वाला कोई भी नहीं हुआ था और न भविष्य में भी होगा । इसके पुत्र, पौत्र, प्रपोत्रों से ही यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । भूमण्डल में ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो बहुत लम्बे समय में भी उनकी गिनती कर सकता हो । अर्थात् ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है । क्रम से भैरव के वंश से यह तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं । हे विप्रों! यह मैंने आपके समक्ष में भैरव की सन्तति का वर्णन कर दिया है । जो एकाग्र मन से उत्तम चरित्र का श्रवण करता है उसके वंश का विच्छेद कभी भी नहीं हुआ करता है और न होगा ही ।

श्री भगवान ने कहा–हे भैरव मैं अब सोलह उपचारों का वर्णन करता हूँ । उनका आप श्रवण कीजिए । जिनसे देवी भली भाँति से सन्तुष्ट हुआ करती है और अन्यदेव भी परम प्रसन्न होते हैं । सबसे प्रथम आसन देना चाहिए । यह आसन या कौश हो । उसे खण्डल के उत्तर की ओर ही सृजन करना चाहिए । जिस समय में यह पद्म में दिया जाता है उसे मण्डल के उत्तर में ही देवे । अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्थानीय, नेत्ररञ्जन, मधुपर्क, गन्ध और पुष्प निवेदित करे । और

प्रतिमाओं में देने के लिए जो भी योग्य हो वह तनु में देना चाहिए । पौष्य जो होता है वह पुष्पों के समुदाय से रचित हुआ करता है और कुश तथा सूत्र आदि से संयुक्त होता है । हे भैरव ? यह देवी का, मेरा और समुद्भुत आसन मसृण और शुभ हुआ करता है ।

आसन के प्रकार और भेद

आसन ऐसा होना चाहिए जो बहुत ऊँचा न हो, न बहुत विस्तृत होना चाहिए । ऐसे ही आसन को निवियोजित करे । अन्य लकड़ी से बनाया हुआ भी उत्तम देवे । वह आसन दारु (काष्ठ) के सार रहित तथा काँटों से युक्त एवं क्षीर से संयुक्त, चैत्य शमशान से समुत्पन्न और विभीतक को छोड़कर ही काष्ठ का आसन बनाना चाहिए । वस्त्र के आसन के लिए वल्कल (वृक्ष की छाल), कोषज और शाण अर्थात्, ये ही तीन आसन माने गए हैं । रोमज अर्थात् रोमों से बनाया हुआ कम्बल, ये चार होते हैं । अपने इष्टदेव की मूर्ति के लिए इसके द्वारा विरचित आसन ही देना चाहिए । सिंह, व्याघ्र, तीक्षण, छाग, महिष, गज, तुरंग, कृष्यास्मर, ये मृगों के नौ भेद हैं । इनके चर्मों के द्वारा आसन बनाया जाया करता है जो सभी देवों के लिए हुआ करता है । चर्म के आसन में तुरंग के चर्म का आसन श्रेष्ठ होता है तथा काष्ठ के आसनों में चन्दन का श्रेष्ठ माना गया है । सभी देवों का संयुत आत्म वाले ऋषियों का योगपीठ के सदृश आसन तथा स्थान कहा जाता है ।

देवों के लिए आसन के समर्पण से परम सौभाग्य और मुक्ति की प्राप्ति की जाया करती है । मृग नौ प्रकार के माने गए हैं । अर्थात् निम्नांकित इनके नौ भेद होते हैं, शम्बर, रोहित, राम, न्यंक, अंकु, शशा, रूरू, राण और हिरण, ये नौ भेद हैं । हे भैरव! हरिण भी यहाँ पर पाँच भेदों वाला समझना चाहिए । ऋष्य, श्रृंग, रूरू, पृषत, तथा मृग, ये बलि के प्रदान करने में तथा चर्म दान में कीर्त्तित किए गए हैं । धातु के आसनों में केवल लौह को छोड़कर काँसा, सीमा, शिलामय, मणिमय, ये रत्नमय माने गये हैं । देवताओं के लिए आसन मुक्ति

अर्थात् साँसारिक सुखों के उपभोग और मुक्ति अर्थात् साँसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए उपभोग और समुत्सृजित करना चाहिए। हे भैरव! और यहाँ पर ही साधना करने वालों के आसनों के विषय में भी श्रवण कर लीजिए। जिन पर बैठकर अभ्यर्चन करता हुआ सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लिया करता है। साधकों के लिए चार प्रकार के आसन निरन्तर बताये गए हैं, ऐन्धन (काष्ठक), चार्मण, (चमक), वास्त्र (वस्त्र का), और तेजस अर्थात् धातु निर्मित ये चार हैं। साधक को पूजा के कर्म में वे सभी आसन प्रशस्त होते हैं।

बुध पुरुष को चाहिए कि सर्वदा काष्ठ आदि का आसन ही रखे। काष्ठ का आसन चौबीस अंगुल प्रमाण वाला दीर्घ होना चाहिए, यही शास्त्र सम्मत होता है। सोलह अंगुल के विस्तार से युक्त और चार अंगुल ऊँचाई वाला होना चाहिए, अथवा छः अंगुल ऊँचा करे। इससे ऊँचा कभी न करे। आसन दो हाथ से बड़ा नहीं होना चाहिए और डेढ़ हाथ से अधिक विस्तृत नहीं हो। तीन अंगुल से ऊँचा आसन कभी भी पूजा के कर्म में संश्रित करना चाहिए। चर्म का आसन जितना भी अभीष्ट हो करे। पूर्व में वर्णित आसन सिद्धि का प्रदान करने वाला हुआ करता है। छः अंगुल से ऊँचा कभी भी नहीं करना चाहिए। कम्बल का आसन तथा चर्म का आसन और शैल अर्थात् शिला का आसन महामाया के प्रकृष्ट पूजन में परम प्रशस्त आसन कहा गया है तथा कामाख्या देवी के पूजन में इसी को श्रेष्ठ बताया गया है तथा देवी के पूजन में और भगवान् विष्णु के अर्चन में भी कुशा, आसन प्रशस्त माना गया है। बहुत दीर्घ, बहुत ऊँचा और बहुत विस्तार वाला काष्ठ और भूमि के समान ही कहा गया है और पाषाण का भी आसन सभी कर्मों में प्रशस्त होता है। द्वार में बाहर आसन पृथक्-पृथक् ही कल्पित करे। पत्रों का आसन कभी पूजन में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

गज को छोड़कर किसी भी प्राणी के अंग से निर्मित आसन तथा अस्थियों से रचित आसन ग्रहण नहीं करे। मातंग के दाँतों से निर्मित आसन कामिक कर्मों में समाचरित करना चाहिए। गजचर्म का आसन

नहीं ग्रहण करना चाहिए जो पूर्व में कहा गया है तथा गन्ध मृग के चर्म का आसन ले । यदि जल में देवताओं का पूजन करे वहाँ पर भी आसन पर बैठे हुए साधक को कभी उठना नहीं चाहिए । जल में शिलामय अथवा कुशा का ही आसन करे । काष्ठ का अथवा तैजस अर्थात् धातु निर्मित आसन को ग्रहण करे तथा अन्य आसन को समाचरित नहीं करे । स्थान के अभाव में तो पूजन आसन के आरोप में संस्थान को ही आसन कल्पित करके मन से जल में पूजन करें । यदि जल के मध्य में बैठने का संस्थान नहीं दे तो अन्य स्थान में बैठकर उस समय में देव की पूजा का समाचरण करना चाहिए । हे पुत्र! यही आपको मैंने पूज्य का जो संगत विषय है वह कहकर बता दिया है । हे बेताल भैरव! आसन और इससे पाद्य का श्रवण कीजिए । चरणों के प्रक्षालन के लिए जो जल है वही पाद्य होता है अथवा केवल वह जल ही होता है । वह पाद्य किसी उत्तम धातु से निर्मित पात्र के द्वारा और शंख के द्वारा भी देना चाहिए । पाद्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का संस्थान होता है ।

उस समय में आसन के उत्तर में सभी ओर से मूल मन्त्र के द्वारा कुश, पुष्प, अक्षत, सिद्धान्त, चन्दन तथा यथालभ्य अर्थात् जो भी प्राप्त हो सकें जलों से सिद्धि के लिए अर्घ्य देना चाहिए । अर्घ्य से कामनाओं का लाभ होता है और अर्घ्य देने से धन की प्राप्ति हुआ करती है । अर्घ्य से पुत्र, आयु, सुख, मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती । विचक्षण पुरुष को कभी शंख के द्वारा जल का अर्घ्य भास्कर के लिए नहीं देना चाहिए । सीप के पात्र से भगवान् विष्णु के लिए अर्घ्य निवेदित नहीं करे । सुगन्ध से युक्त जल से ही जो परम शुभ हो आचमनीय समर्पित करे । कर्पूर के वासित और कृष्ण गुरु से धूपित जिस प्रकार से सुगन्धित हों । वैसे ही प्रसंगों से और फेनों से रहित जल से तैजस (धातु निर्मित) पात्र के द्वारा और शंख के द्वारा भी निवेदित करे । जो भी जल दिया जाता है वह स्वच्छ और फेनों रहित ही होना चाहिए । देवों के लिए जो आचमन करने को जल दिया जाता है वही

आचमनीय कहा जाया करता है अथवा केवल जल ही दे और मिश्रित नहीं दे। सुगन्धित पदार्थों से उस जल को वासित करे। आचमनीय का समर्पण करके साधक आयु, बल और यश एवं बुद्धि प्राप्त किया करता है।

साधक अपने हृदय में उठे हुए मनोरथों की भी प्राप्ति किया करता है। सभी देवों की तुष्टि के लिए मधुपर्क दिया करता है। दधि, घृत, जल, मधु, मिश्री, इन्हीं पाँचों में मिश्रित करके मधुपर्क बनाया जाता है। इसमें जल तो बहुत ही थोड़ा होना चाहिए और मिश्री, घृत और दधि समान परिमाण में होने चाहिए। इन सबसे अधिक मधु मधुपर्क में प्रयुक्त करे। यह मधुपर्क काँसे के पात्र के द्वारा, सुवर्ण, अथवा चाँदी के पात्र से ही समर्पित करे। ज्योतिष्टोम और अश्वमेध आदि में, पूर्व में और इष्ट में पूजन में यह मधुपर्क प्रविष्ट होता है। जो सभी देवों के समुदाय की तुष्टि के लिए हुआ करता है। यह मधुपर्क धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन कीर्तित किया गया है। मधुपर्क सांख्य, भोग्य, तुष्टि, पुष्टि का प्रदान करने वाला हुआ करता है। पिष्टातक, कस्तूरी, रोचन, कुंकुम, गुड़, मधु, पंचगव्य, सर्वोषधियों का समुदाय, सित्ता, (मिश्री), निर्णेजन, तैर, स्निग्ध स्नेह से तिल, प्रान्त में जल, ये सभी पदार्थों को काव्य कोविदी के द्वारा स्नानीय अर्थात् स्नान का जल कहा गया है। इस स्नानीय जल को स्वर्ण और रत्नों का जल जो कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों से अधिवासित करे और उसको तैजस अर्थात् उत्तम धातु पात्रों के द्वारा, काँसे के पात्रों से अथवा शंखों के द्वारा निवेदित करना चाहिए।

आदित्य की प्रतिमाओं में मण्डल और केशर से देना चाहिए। शिवजी के लिंग में तथा भोग में, पीठ में तथा देवता के तनु में देना चाहिए। सद्य स्निग्ध में, मुक्तिका से निर्मित में, घृत और सिन्दूर से निर्मित में अथवा श्री चन्दन प्रतिष्ठ में प्रतिमा के तुने में लेपन करना चाहिए। स्वास्तिक में स्थापित में, खंड अथवा दर्पण में स्नपन कराना चाहिए। इसी प्रकार से और विशेष रूप से महादेवी के लिए स्नानीय

को समर्पित करना चाहिए । सूर्य, विष्णु, शिव के लिए जहाँ-तहाँ पर पूजन में पूजक स्नानीय के समर्पण करने से पूजक कल्प के अन्त तक स्वर्ग के निवास का अधिकारी हो जाया करता है । जिस समय में ही पाद्य तथा गन्ध और पुष्प प्रभृति दिए जाया करते हैं तथा सभी उपचार समर्पित किए जाते हैं । इन सबको अर्घ्य पात्र में अवदित जलों में अमृतीकरण आदि करे तथा सुसंस्कृत करे और फिर उसके द्वारा अभिसिञ्चन करना चाहिए । इसके उपरान्त ही इष्ट देवों की सेवा में समर्पित करना चाहिए । उस समर्पित को वह स्वयं ही ग्रहण किया करते हैं । अर्घ्य पात्रों को उस प्रकार के जलों के बिना जो निवेदन किया जाता है । ऐसा जो समर्पण है जो अपने इष्ट देवों के लिए किया जाता है । वह सभी समर्पण निष्फल ही हुआ करता है जो राग से, प्रसाद अथवा लोभ से किया जाया करता है वह फल ही नहीं होता है । अर्घ्य पात्र में अमृतीकृत होना चाहिए ।

पात्र से जल स्तुत होता है फिर उसको अमृत करना चाहिए । अमृतीकृत जब पात्र में स्वल्प अवशेष रहे तो उस समय में उसमें अन्य जल दे दें । वह उससे ही अमृत हो जाया करता है । यदि बहुत से पुष्प हों और यदि प्रचुर मालायें हों तो अर्घ्य पात्र में स्थित जल से सिञ्चन करके दी जाया करती हैं । दूसरे जलों से अर्घ्य पात्र में स्थित से भिन्न हों जो उत्सृजन किया जाये तो सैंकड़ों विधियों से भी समर्पित किए गए को इष्टदेव ग्रहण नहीं किया करते हैं । नवीन प्रतिपत्तियों के द्वारा संस्कृत अर्थात् संस्कार किए हुए अर्घ्यपात्र में जो स्थित रहते हैं । वहाँ पर तो सभी तीर्थ और सभी और से पीयूष स्वरूप स्थित रहा करते हैं । इस कारण से उसमें स्थित रहने वाले जल से ही अभ्युक्षण करके ही उपचारों का उत्सृजन करना चाहिए । अर्घ्य पात्रों में योग्य को निधान न करके जो निवेदन करे वह निवेदन करना उचित नहीं होता है । हे भैरव! आपके सामने यह आसन आदि का वर्णन करके बता दिया गया है । अब वस्त्रादि को बताऊँगा । उसका आप श्रवण विज्ञान की बुद्धि के लिए करिए ।

देव पूजा के अन्य उपचार

श्री भगवान् ने कहा–कपास का अर्थात् सूत निर्मित, कम्बल, वल्कल अर्थात् छाल से रचित और कोशज वस्त्र ही अभीष्ट हुआ करता है । उसको ही पूर्व में मन्त्रों के द्वारा पूजन करके देवों के लिए उत्सृजित करना चाहिए । कीड़ों के द्वारा कटा तथा कुतरा हुआ मैला, जीर्ण, छिन्न और गाय से अवलिंगित अर्थात् अंग पर धारण किया हुआ और चूहों के द्वारा काटा हुआ, सुई से विद्ध तथा उषित, गुप्त केश और विधोत एवं श्लेष्मा, मूत्र आदि से दूषित देवताओं के लिए प्रदान में और दैव तथा पित्रकर्म में वर्जित कर देना चाहिए । पताका और ध्वजा तथा कुण्डाडि में सिले हुए वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए । और अन्यत्र आवरणादि में उसके विनाश के होने से रक्त वस्त्र और कौशेय वस्त्र महादेव के लिए उत्सृजन करना चाहिए । परमात्मा शिव के लिए रक्तवर्ण का कम्बल समर्पित करे ।

समस्त देवों के लिए देवियों के लिए विचित्र वस्त्र का निवेदन करना चाहिए । कपास का सर्वतोभद्र सभी के लिए निवेदित करे । बहुत ही लाल वस्त्र भगवान् वासुदेव के लिए नहीं निवेदन करना चाहिए । नील और रक्त जो भी वस्त्र है वह सभी जगह पर विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिए । जो बुध पुरुष प्रसाद से नील अथवा रक्त वस्त्र को भगवान् विष्णु के लिए निवेदित करता है हे भैरव! उसकी वह पूजा निष्फल ही हुआ करती है । विचित्र वस्त्र में जो कोई नीले वर्ण की विरंञ्जित हुई हो तो ऐसे वस्त्र को महादेव के लिए निवेदित करना चाहिए । अन्य किसी देवता को कभी भी निवेदित न करे । जिस रीति से दो पदों वालों में ब्राह्मण और देवों में इन्द्रदेव होते हैं । उसी भाँति भूषण वर्गों में उत्तम कहा जाया करता है । वस्त्र से लज्जा जीर्ण होती है और वस्त्र के द्वारा पाप हीन अर्थात् नष्ट हो जाता है, वस्त्र से सभी प्रकार की सिद्धि होती हैं अतः वस्त्र चारों वर्गों के फल का प्रदान करने वाला होता है । हे पुत्र! आपके सामने यह वस्त्र सब प्रीति का देने वाला कह दिया गया है । अब भूषणों के विषय में मुझ से श्रवण करो ।

आभूषणों के नाम व प्रकार आदि

भूषण बताये जाते हैं, किरीट शिरोरत्न, कुण्डल, ललाटिक, ताल पत्र, हार, ग्रैवैषक, उर्मिका, प्रालम्बिका, रत्न सूत्र, उत्तुंग, तक्ष मालिका, पार्श्वद्योत, नखद्योत, अंगुलीच्छादक, अंगद, बाहुवलय, शिखाभूषण, इंगिका, प्राग्दण्वन्ध, नीवी, मुष्टिबन्ध, प्रकीर्णक, पादांद, हंसक, भूपुर, क्षुद्रघण्टिका, मुखपट्ट, ये परम सुशोभन अलंकार कहे गए हैं। ये कुल चालीस होते हैं जो देवलोक में सौम्य के प्रदान करने वाले हैं। अलंकारों के प्रदान करने से चारों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) वर्गों का प्रसाधन होता है। इसका पूजन करके ही इष्ट की सिद्धि के लिए समर्पण करना चाहिए। विचक्षण पुरुष को उनके दैवत का उच्चारण करके ही पूजन करना चाहिए। अथवा शिरोगत सौवर्णों को सर्वदा समर्पित करना चाहिए।

हे भैरव! चूड़ारत्न आदि भूषण ग्रैवेयक से आदि लेकर हंस के अन्त तक सब सुवर्ण से निर्मित हों अथवा रजत (चाँदी) से रचित होने चाहिए। इन्हीं को देवताओं के लिए समर्पित करना चाहिए और अन्य तेजस अर्थात् धातुओं से विरचितों को निवेदित नहीं करना चाहिए। रीति रंग आदि से निर्मित पात्र और उपकरण आदि ही होने चाहिए। इन भूषणों की बीच में इससे उपभूषण देवे। सब ताम्रमय जो कुछ भी भूषण आदि हैं उन्हें निवेदित करे। सर्वत्र ताम्र आभूषण भी स्वर्ण की ही तरह से दे और अर्घ्य पात्र में अधिक देना चाहिए। पूजा का अर्घ्य पात्र, नैवेद्य का आधार पात्र, पालक है। भगवान् विष्णु के लिए सदा उदुम्बर (गूलर वृक्ष) से निर्मित प्रीति तथा सन्तोष देने वाले होते हैं। ताम्रपात्र में देवगण प्रसन्न हुआ करते हैं क्योंकि ताम्र में देव सदा स्थित रहा करते हैं। ताम्र सबके लिए प्रीति का करने वाला हुआ करता है। अतएव ताम्र का प्रयोग करना चाहिए। हे भैरव! अपने उपयोग में भी ताम्र का ही प्रयोग करे और देवगणों के भी उपयोग में इसका प्रयोग करना चाहिए। ग्रीवा के ऊपर के भाग में कभी भी रौप्य (चाँदी का भूषण का प्रयोग न करे)।

अब उपभूषण बताये जाते हैं। प्रावार, दान पात्र, गण्डक और गृह हैं। पर्य्यंक आदि जो और दूसरे है\वे सब आभूषण हैं। जो सौम्य परिपूर्ण के बिना और काँसे के बिना भूषण होता है वह सुवर्ण और रौप्य के अभाव में शरीर में नीचे नियोजित करना चाहिए। इन भूषण आदि में जो भी नरों के द्वारा दिया जा सकता है, वही सम्भव होने पर सब ही देना चाहिए। इस प्रकार से भूषण चतुर्वर्ग का दाता और सब सौख्य का प्रदान करने वाला हुआ करता है। अपनी शक्ति के ही अनुसार तुष्टि और पुष्टि के करने वाला भूषण कहा गया है।

हे पुत्रों! हे वेताल और भैरव! अब भली भाँति गन्ध का श्रवण कीजिए। यह गन्ध पाँच प्रकार का होता है, जो देवों की प्राप्ति को प्रदान करने वाला है। चूर्णीकृत, घृष्ट अर्थात् घिसा हुआ, दाह को आकर्षित करने वाला, सम्मर्दन से समुत्पन्न रस अथवा प्राणी के अंग से उद्‌मन ये ही पाँच भेद हैं। गन्ध का चूर्ण, गन्ध पत्र, पुष्पों का चूर्ण प्रशस्त गन्ध से युक्तों के पत्रों का चूर्ण जो है वे सब गन्ध वह होते हैं। घृष्ट मलय से समुत्पन्न गन्ध है जो मेरु के द्वारा चूर्णीकृत हैं।

अगुरु प्रभूति भी गन्ध है जिसका पंक प्रदान किया जाया करता है। घिस कर भी अघृष्ट गन्ध प्रियादि का जो दग्ध करके ग्रहण किया जाता है वह दाह से समुत्पन्न रस हैं। दाह के साथ आकर्षित गन्ध तीसरा कहा जाता है वह निपीड़न करके ही परिग्रहीत किया जाया करता है। वही सम्मर्द से उत्पन्न गन्ध सम्मर्द से, इस नाम से अभीष्ट हुआ करता है। मृग की नाभि से समुत्पन्न, उसके कोप उद्‌भूत गन्ध प्राणी के अंग से जायमान कहा गया है जो स्वर्ग के निवासियों का भी मोह देनेवाला है। कर्पूर गन्ध, साराद्यक्षोद के धृष्टि होने पर संस्थित होते हैं। चन्द्र भाग आदि भी रस में और पंक में संगत हैं। गन्धसार, सर्वरस और गन्धादि में प्रयुक्त किया जाता है। मृग नाभि और घृष्ट, चूर्ण भी अन्य के योग से होता है। रीति से सभी जगह पर गन्ध पाँच प्रकार का होता है। जो मलराज गन्ध है वह दैव कार्य और पितृगण के कार्य में सम्मत होता है। उसका पंकरस अथवा चूर्ण भी भगवान्

विष्णु की तुष्टि प्रदान करने वाला होता है। समस्त गन्धों में मलय से समुत्पन्न गन्ध परम प्रशस्त होता है इस प्रकार होता है। इस कारण सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। हे भैरव! कर्पूर के सहित कृष्ण अगुरु मलयोद्भूत के साथ वैष्णवी प्रीति का देने वाला होता है तथा यह गन्ध चण्डी देवी के लिए भी प्रशस्त माना जाता है। साधक को चाहिए कि देवता के उद्देश्य के पूर्व में गन्ध का सम्पूजन करे फिर अपने इष्टदेव के लिए उसका वितरण करे तो यह सदा समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। गन्ध के द्वारा मनुष्य अपनी कामनाओं का भला किया करता है और गन्ध सदा ही धर्म देने वाला होता है। गन्ध अर्थों का भी साधन हुआ करता है और गन्ध में मोक्ष भी प्रतिष्ठित है। हे वेताल और भैरव! यह गन्ध आप दोनों को बता दिया गया है। अब वैष्णवी देवी के परम प्रिय जो पुष्प हैं उनके विषय में श्रवण कीजिए।

वैष्णवी देवी, कामाख्यादेवी तथा त्रिपुरा देवी का अर्चन निम्नांकित पुष्पों द्वारा करना चाहिए। वकुल, मन्दार, कुन्द, कुरुण्टक, करवीर, अर्क, शाल्मल, अपराजित, दमन, सिन्धुवार, सुरभी, कुरुवक, ब्रह्मावृक्ष की लता, कोमल दुर्वा के अंकुर, दशाओं की मञ्जरी, सुशोभव विल्वपत्र, इनसे यजन करे और अन्य जो भगवान् शिव की प्रीति के लिए पुष्पों की जातियाँ होती हैं। हे वैताल भैरव! उनका भी अब आप श्रवण कीजिए जो मेरे द्वारा अभी कही जा रही है। मल्लिका, मालती, जाती, यूथिका, माधवी, पाटला, करवीर, जवा, तार्परिका, कुब्जक, नगर, कर्णिकार, रोचना, चम्पक, आम्रतक, वाण, वर्वरामल्लिका, अशोक, लोध्र, तिलक, अष्टरूप, शिरीष, शमी, द्रोण, पद्म, उत्पल, वकारुण, श्वेतारुण, विसन्ध्य, पलाश, खादिर, वनमाला सेवन्ती, कुमुद, कदम्ब, चक्र कोकन्द, तण्डिल, गिरिकर्णिका, नागकेशर, पुन्नाग, केतकी, अञ्जलिका, दोहदा, बीजापुर, नमेरु, शाल, त्रपुषी, चण्डविल, झिंठरी पाँचों प्रकार की ऐवमादि कथित पुष्पों के द्वारा वरदा शिवा का अर्चन करना चाहिए। अपामार्ग के पत्र, भृंगार के पत्र, गन्धिनी के पत्र, वलाहक इससे भी पर हैं। खदिर का पत्र, वञ्जुलान्तवक,

आम्र, कवगच्छ इससे भी पर जम्बु का पत्र, बीजपुर का पत्र, इससे भी पर कुश पत्र है । इससे भी पर दूर्वा का अंकुर कहा गया है । इससे पर शमी का पत्र इससे अमालक पत्र और उससे अन्त में आमल पत्र है । सबसे अधिक प्रीति करने वाला देवी को विल्व पत्र होता है । सबसे अधिक प्रीति करने वाला देवी को विल्व पत्र होता है । कोकनद पुष्प, पद्म, जवा, बन्धूक, इन सबसे विल्व पत्र वैष्णावी देवी की तुष्टि देनेवाला माना गया है । सब पुष्पों की जातियों में रक्त पद्म अतीव उत्तम होता है ।

एक सहस्त्र पद में माला की रचना करके जो महादेवी को समर्पित किया करता है और भक्ति की भावना से युक्त रहा करता है उसका जो पुण्य फल हुआ करता है उसको सुनिए । एक सहस्त्र करोड़ और सौ करोड़ कल्पों तक वह मानव मेरे पुत्र में स्थित रहकर फिर वह श्रीमान् भूमण्डल में राजा हुआ करता है । सभी पत्रों में विल्व पत्र देवी की परमाधिक प्रीति करने वाला माना गया है । उन विल्व पत्रों की एक सहस्त्र की बनाई हुई माला पूर्व की ही भाँति फल देने वाली हुआ करती है । इस विषय में बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है । साधारण रूप से यही कहा जाता है कि कहे हुए तथा न कहे हुए पुष्पों में समुत्पन्न जल तथा सब पत्रों से जो भी जैसा लाभ होता है वह सर्वोषधियों के समुदाय से भी होता है । सभी वन में समुत्पन्न पुष्पों से और पत्रों के द्वारा भी शिवा का यजन करना चाहिए । पुष्पों के अभाव में पत्रों के द्वारा भी पूजन करना चाहिए । यदि पत्रों का भी अभाव हो तो अवसर में तृण, गुल्म और औषध आदि के द्वारा यजन करे । इनके अभाव में सरसों से जो सित हों उनमें पूजन करे । सित के भी न प्राप्त होने पर मानसी भक्ति का समाचरण करना चाहिए । वाजिदन्तक पत्रों से और पुष्पों की राशि के द्वारा पूजन करे ।

तुलसी के कुसुमों अर्थात् मञ्जरियों से और तुलसी दलों से श्री की वृद्धि के लिए अर्चन करे । पुरश्चरण के कार्यों में विल्व पत्रों से युक्त तिल, अक्षत अथवा घृत से शिवा का उद्देश्य लेकर यत्नपूर्वक काम की

वृद्धि के लिए संस्कार की हुई अग्नि में हवन करना चाहिए । कामना की वृद्धि के लिए संख्या से जो जप संकल्प किया गया है उसके अन्त में पूजन किया है वह द्विजों के द्वारा करना चाहिए । श्रेष्ठ द्विजों ने जिसको पुरश्चरण के नाम से कीर्तित किया हैं उसमें पूर्व में पुराण पूर्वोक्त और विस्तार से वर्णित विधानों के द्वारा कामाख्या और वैष्णवी देवी का पूजन करे । जहाँ तक भी सम्भव हो साधक को यहाँ पर सोलह उपचार समर्पित करने ही चाहिए । उसी भाँति षोडश पूर्वोक्त उपचारों का और विधान के कृत्यों का लंघन नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण पूजन करके कल्पोक्त का सौ बार जप करे । जाप के अन्त में अग्नि में होम करे और होम के अन्त में तीन बलि दे । तीन जाति के बलियों का वितरण करे तथा इसके उपरान्त नृत्य गीत करना चाहिए । पत्नी स्वयं अथवा भाई या गुरु, अपना पुत्र अथवा शिष्य नैवेद्य आदि का विनियोजन करना चाहिए ।

यज्ञ की समाप्ति पर श्री गुरुदेव को शुभ दक्षिणा देनी चाहिए । सुवर्ण, तिल, गौएं दक्षिणा में देवे और इनके देने की शक्ति न हो तो केवल चेटक ही निवेदित करे । मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में ब्रह्मचर्य रखने वाला तथा इन्द्रियों को जीत लेने वाला रहे और नवमी में अथवा चतुर्दशी में महादेवी का पुरश्चरण करे। है भैरव ! श्री गुरुदेव के मुख से आदान करना करना चाहिए। जो भी विधि और विस्तार कल्प में कहा गया हो उससे इन उक्त तिथियों में भली भाँति पूजन करे । सम्पूर्ण पूजा को न करके ईप्सित मन्त्र को नहीं देना चाहिए अथवा पुरश्चरण भी नहीं करे । यदि ऐसा करता है तो अवसाद प्राप्त किया करता है। जो नित्य पूजा है, यदि की जा सकती है तो सम्पूर्ण पूजा करे और उस समय में अतीन्द्रिय होकर की कल्प में वर्णित पूजन करना चाहिए । हे भैरव! यदि विस्तार से देवी की पूजा करना न हो तो कल्प में कथित अन्य देव की पूजा करे ।

अर्घ्य पात्र में आठ बार जप कर उपचारों का प्रसेचन करना चाहिए । आधार शक्ति के प्रमुख मूल वर्गों का प्रयोग करे और हृदय

में संस्थित देवता का ध्यान करके और वायु के द्वारा बाहर करके मण्डल में आरेहण करके विधि के अनुसार उपचारों को देना चाहिए। अंगों का पूजन करके उसी भाँति दल देवताओं का यजन करे। फिर तीन पुष्पांजलियों को देकर, जप करके, स्तवन करके और प्रणाम करे। देवता के सामने मुद्रा को प्रदर्शित करके पीछे विसर्जन करना चाहिए। सभी देवताओं की यह ही विधि कही गई है। यदि कल्प में कही हुई पूजा भली भाँति नहीं की जा सकती है तो उपचारों को उस भाँति देने के लिए उस समय में इन पाँचों को सदा वितरित करे। गन्ध, पुष्प, दीप और नैवेद्य, ये पाँच हैं। अभाव में पुष्प और दीप के द्वारा करे, इनके भी अभाव में भक्ति की भावना से ही करना चाहिए। यह संक्षेप पूजा कह दी गई है।

दीप पूजा का विधान

हे भैरव! पुरश्चरण के कृत्य में प्रदीप के विषय में आप श्रवण कीजिए। दीप को तेजोमय बताया गया है। यह दीप चारों वर्गों के प्रदान करने वाला हुआ करता है इस कारण से दीपों के द्वारा श्री के ऊपर जप प्राप्त करना चाहिए।

जो पुरुष निरन्तर ही पुष्पों और दीपों के द्वारा देवता का अर्चन किया करता है। इन दोनों ही से चारों वर्गों की प्राप्ति कही गयी है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। पुष्पों में रहने वाली परम ज्योति है अतएव पुष्प से ही प्रसन्न होती है। तीन वर्गों का अर्थात् धर्म, अर्थ, और काम का साधन हैं। यह पुष्प तुष्टि, पुष्टि और मोक्ष प्रदान करने वाला है। पुष्प के मूल में ब्रह्माजी रहा करते हैं और पुष्प के मध्य में केशव का निवास है। पुष्प के अग्रभाग में महादेवजी विराजमान रहा करते हैं और सभी देवगण दल में संस्थित रहते हैं। इस कारण से पुष्पों के द्वारा देवों का यजन करना चाहिए और भक्ति की भावना से संयुत होकर नित्य ही अर्चन करे। नाममात्र का उच्चारण करना सब विभूति के लिए होता है। अब दीपक के भेदों के विषय में बताया जाता है,

घृत का दीप, जो सर्वप्रथम होता है, तिलों के तैल से बनाया हुआ दीप, रानिक अर्थात् राई के तेल से तैयार किया हुआ दीपक, दधि से बनाया हुआ और अन्न से किया दीपक, ये सात प्रकार के दीप कहे गए हैं। दीप में वर्त्तिकारी पाँच प्रकार की होती है, पद्म के सूत्र से बनी हुई, दर्भ के मध्यस्थ सूत्र से निर्माण की गयी, शण से निर्मित बदरी, फलकोष से उद्भुत हुई वर्त्तिका।

दीपक के कृत्यों में वर्त्तिका सदा ही पाँच तरह की बतायी गयी है। किसी धातु से निर्मित जो भी उत्तम धातु हो। काष्ठ से बना हुआ, लोहे का, मृत्तिका से निर्मित, नारियल से बनाया हुआ अथवा तृण ध्वज से उद्भूत दीपक का पात्र प्रशस्त होता है। हे भैरव! दीप वृक्ष अर्थात् दीवट तैजस अर्थात् उत्तम धातुओं की ही बनानी चाहिए। दीवट पर ही दीप रखना चाहिए। भूमि पर दीपक कभी भी नहीं रखना चाहिए। यह भूमि सभी को सहन करने वाली होती है किन्तु दो कामों को यह सहन नहीं किया करती है, एक तो बिना ही किसी कार्य के पादों का घात करना और दूसरा दीपक का ताप, यह नहीं सहा करती है। इस कारण जिस तरह से भी यह पृथ्वी ताप प्राप्त न करे वैसे ही करना चाहिए अर्थात् दीपक को भूमि पर कभी नहीं रखना चाहिए। हे भैरव! महादेव के लिए तथा अन्य देवों के लिए भी दीप समर्पित करे। जो मानव पृथ्वी को ताप देता हुआ दीपक का उत्सृजन किया करता है वह मनुष्य ताम्रताप नामक नरक को सौ वर्ष तक निश्चित रूप से प्राप्त किया करता ही है, इसमें कुछ संशय नहीं है। सुवृत्त बत्ती वाला, सुन्दर स्नेह से युक्त, अर्थात् घृतादि से संयुत, देखने में भी अच्छा दीपक होना चाहिए। सुन्दर ऊँचाई से युक्त वृक्ष की कोटि पर ही प्रयत्न पूर्वक दीपक रखना उचित है और उसका ही देवता के लिए उत्सृजन करे। चार अंगुल से जिस दीप का ताप प्राप्त किया जाया करता है वह दीपक, इस नाम से ख्यात नहीं होता है। वह तो वह्नि का एक समूह ही है, ऐसा सुना गया है। दीपक नेत्रों को आह्लाद करने वाला, सुन्दर लौ वाला और दूरी से नाम से रहित ही होना चाहिए।

सुन्दर शिखा से युक्त, शब्द से रहित, बिना धुआँ वाला, अत्यधिक छोटा भी न हो और जिसमें बत्ती दक्षिणावर्त्त वाली हो ऐसा प्रदीप हो वह श्री की वृद्धि के लिए हुआ करता है । दीपक का पात्र दीवट पर स्थित हो और शुद्ध घृतादि से भरा हुआ हो तथा जिनकी वर्त्तिका को दक्षिण की ओर होनी चाहिए । हे पुत्र! ऐसा ही दीपक उत्तम कहा जाया करता है जो सबकी तुष्टि के देनेवाला हो । जो दीपक दीवट से रहित होता है वह मध्यम कहा जाता है । दीपक के लिए निरन्तर नूतन की बत्ती ही ग्रहण करे । इसी से श्री की वृद्धि होती है । कोष से उत्पन्न रोम से उद्भूत वस्त्र को बत्ती के लिए कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए और दीपक में स्नेह घृतादि का मिश्रण करके कभी भी न दे । जो घृतादिक का दीपक में मिश्रण करके रखता है वह तामिस्त्र नरक में जाता है । वसा, मज्जा, अस्थियों का निर्यास के स्नेहों (चिकनाई) से तथा किसी भी प्राणी के अंग से समुत्पन्न स्नेह से दीपक की रचना कभी भी नहीं करनी चाहिए । यदि ऐसा कोई भी मनुष्य करता है तो वह पंक में अवसाद प्राप्त किया करता है । ऐसा दीपक विवृद्ध पुरुषों के द्वारा श्री की विशेष वृद्धि के लिए कभी भी नहीं देना चाहिए । दीपक को यत्नपूर्वक कदाचित भी निर्वापित नहीं करे । निरन्तर ही देवों के लिए सुन्दर लक्षणों से युक्त ही दीपक कल्पित करना चाहिए । ज्ञानपूर्वक तथा लोभ आदि से मनुष्य को दीपक का हरण नहीं करना चाहिए । जो दीपक का हरण किया करता है वह अन्धा और जो दीपक को बुझा दिया करता है वह काना हुआ करता है । उदीप्त दीप्त की प्रतिमा के युक्त काष्ठ के काण्ड से समुद्भव विल्व के मध्य से उत्पन्न का ही दीपक के अभाव में निवेदन करना चाहिए । दीपक के लिए उल्मुक का कभी भी उत्सृजन न करे । इस प्रकार से दीपक के विषय में सब कुछ कह दिया गया है ।

अब आप लोग धूप के विषय में श्रवण करिए । धूप भी ऐसी ही होनी चाहिए । जो नासिका के रन्ध्रों (छिद्रों) के लिए सुख प्रदान करने वाली हो और मन का हरण करने वाला सुन्दर गन्ध से युक्त हो, दाह

दिए गए काष्ठ अथवा पराग का जिसका धूप ताप रहित हो वह धूप देवगणों की तुष्टि के देने वाला होता हैं, ऐसा जान लेना चाहिए। उन द्रव्यों को सबको एक समूह में एकत्रित करके परिधूपित नहीं करे। तुषाग्नि से वर्त्तुन करके धूप न दे। ऐसा करने से धूप देने का जो भी कुछ फल हुआ करता है वह कभी भी प्राप्त नहीं होता है। जब उसका कोई भी फल नहीं है तो वैसा न करें।

अब यह बताया जाता है किन-किन वृक्षों को धूप के लिए ग्रहण करना चाहिए। श्री चन्दन, सरल शाल तथा कृष्णा गुरु, उदय, सुरथ, स्कन्द, काशल, नमेरु, नेदेव दारु, विम्बसार, खादिर, सन्तान, पारिजात, हरिचन्दन, वल्लभ, इन वृक्षों की धूप सभी देवों के लिए प्रीति देने वाली परिकीर्तित की गई है। सूत्र के साथ अराल, श्री बास, पट्ट वासक, कर्पूर, श्रीकर, पराग, श्रीहर, आमल, सर्वौषधीय, जातीय वराह, चूर्ण, उत्कल, जाती कोप का चूर्ण, गन्ध, कस्तूरिका, क्षोद वृत्त में कही हुई ये उदाहृत हैं। यक्ष धूप, वृक्ष धूप, श्रीपितट, अगुर, झर्झर, हवि, वाहा, पिण्डधूप, रुगोल, दण्ठ, अन्योन्य योग, निर्यास, ये धूप कीर्तित किए गए हैं। इन धूपों के द्वारा देवों को धूपित करना चाहिए। जिनकी धूपों से उद्भूत घ्राणों के द्वारा जन्तुगण तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं।

निर्यास, परांग, काष्ठ, गन्ध और कृत्रिम, ये पाँच धूप परम प्रीति के करने वाला हुआ करते हैं। भगवान् माधव प्रभु के लिए किसी भी समय में यक्ष धूप का वितरण नहीं करना चाहिए। मेरे लिए रक्त विद्रुम तथा सुरथ, कद्रिल का भी वितरण न करे। यक्ष धूप, पुत्र बाद, पिण्ड धूप, सुगोलक, कृष्णा गुरु, कपूर से युक्त, यह महामाया का प्रिय धूप कहा गया है। वृक धूप द्वारा महामाया देवी का प्रकृष्ठ पूजन करना चाहिए। जो धूप में मेद और मज्जा से समायुक्त हों उनका विनियोग कभी भी नहीं करना चाहिए। परकीय अर्थात् दूसरों के आघ्रात अर्थात् जिनका घ्राण कर लिया गया हो, कृत्या से अभिमर्दित पुष्प, धूप और गन्ध को तथा दूसरे भी उपचारों को घ्राण करके जो

देवगणों के लिए समर्पित किया करता है वह मनुष्य घोर नरक में प्राप्त हुआ करता है । धूप को कभी आसन पर तथा घट पर वितरण नहीं करना चाहिए । जैसा-जैसा भी कोई आधार बनाकर ही उनको विनवेदित करना चाहिए । रक्त विद्रुम, शाल, सुरथ, सुरल, सन्तानक, नमेरु, काला गुरु से समन्वित, जाती से संयुक्त धूप कामेश्वरी को प्रिय हुआ करता है ।

हे पुत्र! उसी भाँति यह त्रिपुण्या को तथा नित्य ही मातृकाओं को और समस्त पीठदेवों को और रुद्र आदि को भी प्रिय हुआ करता है । धूप हमने आपको बता दिया है ।

अब नेत्रों के अञ्जन के विषय में आप श्रवण करिए जिसके द्वारा कामाख्या देवी त्रिपुरा देवी वैष्णवी देवी परम प्रसन्न हुआ करती हैं । अञ्जन छः प्रकार के हुआ करते हैं उनके नाम ये हैं—सौवीर, यामुन, तुत्य, मयूरयामुन, द्रुविका, मेघनील, ये छः होते हैं । ये घिसे हुए ग्रहण करने के योग्य होते हैं । चाहे शिला पर घिसे हुए हों या किसी उत्तम धातु पर घृष्ट किए गए हों । हे पुत्र! यह सभी देवों के लिए समर्पित करे और सभी देवियों की सेवा में निवेदित करना चाहिए । धृत और तैल आदि के योग्य से ताम्र आदि पर दीपक की अग्नि के द्वारा जो अञ्जन बनाया जाता है वही दर्विका कहा गया है । यदि सबका अभाव हो तो देवियों की सेवा में इस दाह से समुत्पन्न अञ्जन को ही समर्पित करना चाहिए । महामाया देवी, जगत् की धात्री कामाख्या देवी तथा त्रिपुरा देवी इन उपर्युक्त छः प्रकार के अञ्जनों से जब ये निवेदित किए गए हों तो सदा ही महान तोष को प्राप्त हुआ करती है अर्थात् उनको परमाधिक प्रसन्नता इनको हुआ करती है । महामाया के लिए प्रस्तुत इस उत्तम अंजन को विधवा नारी को कभी अपने उपयोग में नहीं लेनी चाहिए । इसका तात्पर्य यही है कि विधवा नारी के द्वारा यह अंजन नहीं बनाया जाना चाहिए ।

वैष्णवी देवी कभी भी विधवा नारी के द्वारा तैयार किया अञ्जन स्वीकार नहीं करती हैं । साधना करने वाले को चाहिए कि मिट्टी के

पात्र में विहित अञ्जन को निवेदित करने से पूजा के फल की भी प्राप्ति कभी नहीं हुआ करती है । ऐसा अञ्जन नहीं देना चाहिए क्योंकि जब इस अञ्जन को देवी स्वीकार ही नहीं किया करती है तो वह पूजा अधूरी होकर निष्फल हो जाया करती है । धूप और नेत्र अञ्जन इन दोनों का ही देवगणों के लिए भक्ति की भावना द्वारा मनुष्य को समर्पण करना चाहिए । इस प्रकार से हमने आप दोनों के समक्ष धूप और नेत्र अंजन इन दोनों को बता दिया है । अब एकाग्र मन वाले होकर महादेवी के लिए जो भी नैवेद्य समर्पित करना चाहिए उसके विषय में श्रवण करिए ।

प्रदक्षिणा और प्रणाम निर्णय

श्री भगवान् ने कहा–दक्षिण हाथ को प्रसारित करके फिर स्वयं नग्न शिर वाला हो और दाहिने पार्श्व को दर्शित करता हुआ एक बार अथवा तीन बार वेष्टित करें । इसके करने से देवी को प्रीति हुआ करती है । और जो एक सौ आठ बार देवी की प्रदक्षिणा किया करता है वह पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करके पीछे अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ किया करता है । जो मन से भी भक्ति की भावना से देवी के लिए प्रदक्षिणा (परिक्रमा) दिया करता है वह इस प्रदक्षिणा के ही पुण्य-प्रभाव से ही यमराज गृह में अर्थात् समय पुरी में जाकर नरकों को कभी नहीं देखा करता है । नमस्कार भी काया से होने वाला, वाणी के द्वारा समुत्पन्न हुआ और मन से किया हुआ तीन प्रकार का हुआ करता है । जो उसके ज्ञान रखने वालों के द्वारा उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार का सुना गया है । इस नमस्कार करने का भी उक्त तीनों श्रेणियों में करने का क्रम है । जो अपने दोनों हाथों को और पैरों को फैलाकर भूमि में एक दण्ड की भाँति गिरकर अपने घुटनों से भूमि में जाकर शिर से फिर भूमि गमन करके अर्थात् शिर से भूमि का स्पर्श करके नमस्कार अपने आठों अंगों के सहित किया जाता है वही उत्तम नमस्कार होता है । जो काया के ही द्वारा किया

जाया करता है, इसी को कायिक कहा गया है । जो अपने घुटनों से भूमि का स्पर्श करके और शिर से पृथ्वी का स्पर्श करके किया जाता है वह नमस्कार मध्यम श्रेणी कायिक कहा गया है ।

जो अपने दोनों करों को जोड़ कर किसी प्रकार से अपने शिर में ही लगाकर नमस्कार किया जाता है और जिसमें घुटनों और मस्तक को भूमि में स्पर्श नहीं करके ही किया जाता है वह नमस्कार अधम कोटि का कहा जाया करता है । ये तीन तरह के नमस्कार काया से किए जाने वाले होते हैं तथा जो नमस्कार गद्य तथा पद्य के द्वारा घटित करके किया जाता है और भक्ति की भावना से होता है वह वाचिक अर्थात् वाणी के द्वारा किए जाने वाले उत्तम श्रेणी का नमस्कार किया जाया करता है वह सदा ही वाणी के द्वारा किया हुआ मध्यम कोटि का नमस्कार होता है और जो मनुष्य के वाक्य के ही द्वारा सदा नमस्कार किया जाता है । हे पुत्रों! वह वाणी से ही किया हुआ अधम श्रेणी वाला नमस्कार समझना चाहिए । मन के द्वारा भी किया हुआ नमस्कार उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकार का कहा गया है । जो मन को पूर्णतया संलग्न करके किया जावे तथा आधे मन से केवल खाना पूरी ही की जावे अथवा मन को इष्टवत न करके ही किया जाया करता है ये तीन प्रकारों वाला अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम मानस नमस्कार होता है । इन तीनों प्रकार के नमस्कारों में कायिक अर्थात् शरीर के द्वारा किए जाने वाला नमस्कार ही उत्तम होता है । कायिक नमस्कारों से ही देवगण नित्य परम प्रसन्न हुआ करते हैं । यह ही नमस्कार जो दण्ड आदि के द्वारा प्रतिनामों से पूर्व में प्रतिपादित किया गया है उसी को प्रणाम जान लेना चाहिए ।

नैवेद्य अर्पण

नैवेद्य के द्वारा सभी कुछ होता है और नैवेद्य से अमृत होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों परम पुरुषार्थ नैवेद्यों में ही प्रतिष्ठित रहा करते हैं । नैवेद्य नित्य ही समस्त यज्ञों से परिपूर्ण होता

है और यह नैवेद्य से देवों की तुष्टि के प्रदान करने वाला है । यह नैवेद्य ज्ञान का देने वाला एवं सभी भोग्यों से परिपूर्ण हुआ करता है । जो मनुष्य महादेवी के लिए मन के द्वारा भी नैवेद्य के समर्पित करने की इच्छा किया करता है वह मानव भक्ति से युक्त होता हुआ दीर्घ आयु वाला और सुखी हुआ करता है । जो मनुष्य सदा ही महामाया देवी की भक्ति से अनेक प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा अर्चना करूँगा, ऐसी चिन्ता से आकुलित रहा करता है वह सभी मन की कामनाओं की प्राप्ति करके अन्त में मेरे ही लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । जो पुरुष मन से भी देवी के लिए भक्तिभाव से प्रदक्षिणा देता है वह फिर यमराज की पुरी में कभी भी नरकों को नहीं देखा करता है । नमस्कार का बड़ा भारी महत्व होता है । इससे देव, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग प्रसन्न हुआ करते हैं । महती मति वाला पुरुष नमस्कार द्वारा चारों वर्गों का लाभ प्राप्त किया करता है । सभी जगह सबकी सिद्धि के लिए नमस्कार ही प्रशस्त किया करता है अर्थात् नमस्कार सबकी प्राप्ति के लिए परम उत्तम साधन माना है ।

नमस्कार से लोकों पर मानव विजय प्राप्त किया करता है और नमस्कार से आयु की भी वृद्धि होती है, नमन करने से मानव दीर्घ आयु वाला होता है और नमस्कार से अविच्छिन्न सन्तति का लाभ प्राप्त किया करता है जो कि सन्ततियों का क्रम कभी भी टूटता नहीं है । अतएव महादेवी के लिए नमस्कार करो और प्रदक्षिण होकर ही नमस्कार करो । तात्पर्य यह है कि देवों को दक्षिण भाग में स्थित करके ही नमस्कार करना चाहिए । जो निरन्तर नैवेद्य दीजिए—यह कहा करता है और बार-बार बोलता है वह मानव भी अपने समस्त मनोरथों की प्राप्ति किया करता है । इस तरह से आप दोनों को मैंने षोडश (सोलह) उपचार जो अभ्यर्चन के हुआ करते हैं बता दिए हैं । अब आप दोनों को क्या रुचिर है अर्थात् अब आप दोनों क्या पूछना पसन्द करते हैं उसी को बता दूँगा ।

कामाख्या कवच माहात्म्य वर्णन

आप दोनों श्रवण कीजिए मैं कामाख्या देवी के माहात्म्य का वर्णन करूँगा । हे वेताल! हे भैरव! अंगों के सहित उस रहस्य से युक्त को आप दोनों सुनिए । एक समय भगवान विष्णु शीघ्र ही अपने वाहन गरुड़ के द्वारा गमन करते हुए नीलपर्वत पर विराजमान कामाख्या देवी के समीप में प्राप्त हुए थे । उस परम श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँचकर उनका ज्ञान प्राप्त करके उन भगवान् शिव ने गरुड़ को गमन करने की गति में 'चलो-चलो' इस प्रकार से प्रेरित किया था । समस्त जगतों को समुत्पन्न करने वाली महामाया कामाख्या देवी ने उन भगवान् श्री विष्णु को गरुड़ के साथ आते हुए जान कर आकाश में ही स्तम्भित कर दिया था । वे गमन करने के लिए समुद्यत थे किन्तु महामाया की भी माया से ऐसे मोहित हो गए थे कि न तो आगे गमन करने में और न वापिस आगमन करने में समर्थ हुए और विद्ध की ही भाँति वहीं पर स्थित रह गए थे । भगवान् गरुड़ध्वज गरुड़ को गमन करने में असमर्थ देखकर बहुत क्रुद्ध हुए थे और उस श्रेष्ठ पर्वत को उत्साहित करने के लिए समुद्यत हुए थे । इसके अनन्तर जगतों के स्वामी श्री विष्णु ने अपने करों के द्वारा उस पर्वत को हिलाने में समर्थ नहीं हुए थे अर्थात् तनिक भी न हिला सके थे ।

जिस समय में उस पर्वत को चालित करने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए केशव भगवान को देखा था तो महादेवी कामाख्या बहुत ही क्रोधित हुई थीं और उस देवी ने सिद्धसूत्र के द्वारा भगवान् बैकुण्ठनाथ को गरुड़ के साथ बाँध दिया था । उनको सिद्धसूत्र से बाँधकर ग्राहाग्र क्षीर समुद्र में देवी ने वहीं से उनको प्रक्षिप्त कर दिया था और वे संक्षेपण करने से तल में प्रपतित हो गए थे । सागर के तले में प्राप्त हुए उन भगवान् केशव को फिर भी अपनी माया से मन्त्रित करके वहाँ पर समाक्रान्त होकर सागर के तल में स्थित हुए उनको ग्रहण कर लिया था । उन केशव प्रभु ने बड़ा भारी प्रयत्न किया था । सागर के तले से ऊपर और महान् प्रयत्न करते हुए भी रहें कि पुनः उन्मज्जित हो जायेंगे

हरि ने सब कुछ यत्न किया था कि उनके असार और प्रसार को उस देव ने रोक दिया था । इसके अनन्तर वे प्रज्ञान से रहित हो गए तथा असार प्रसार से अर्थात् हिलने से भी डुलने से भी शून्य हो गए थे और गरुड़ के ही साथ से चिरकाल तक सागर के जल के तले में ही शीर्ण रहे थे । सृजन करने के लिए जब उनकी बहुत खोज की तो उनको सागर के तले में समवस्थित हुए हरि को पाया था और वे ऐसे विशीर्ण हो रहे थे और कोई साधारण प्राणी होता है ।

सृजन करने वाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने गरुड़ के सहित उनको प्राप्त करके उन्होंने अपने दोनों करों के द्वारा लाने की भी इच्छा की थी । किन्तु लोकों के पितामह भी उनको उत्प्लावित करने करने के समर्थ नहीं हुए थे और स्वयं भी देवी की माया से बुद्ध होकर विस्मय करते हुए ही स्थित रह गए थे । फिर समस्त देवगण जिनमें इन्द्र सबके नायक थे सबके सब खोज करते हुए बहुत अधिक समय में उन्होंने सागर के दूषित जल के मध्य में उन दोनों को प्राप्त किया था और फिर सब इन्द्र आदि देवों ने उनको से ऊपर लाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया था किन्तु वे भी ऐसा न कर सके थे । इसके अनन्तर वे सब देवगण भी देवी की माया से अत्यधिक मोहित हो गए थे । जिस रीति से जल के तले में भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी स्थित थे उसी प्रकार से वे सब भी वहीं पर संस्थित रह गए थे । उस समय में देवगरु बृहस्पति भी सबकी खोज करते हुए चले गए थे और हिमालय की शिखा पर विराजमान महादेवी के समीप पहुँचे । देवों के द्वारा पूजित महादेवजी ने देवों का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे पूछा था तब बड़े आदर के साथ देवगुरु ने उनको प्रणाम करके यथाविधि करके निवेदन किया था ।

देवगुरु ने कहा—हे महादेव! आप तो समस्त जगतों के धाम हैं तथा जगत् के प्रशमन के कारणस्वरूप हैं । मैं इन्द्र आदि देवों की खोज करता हुआ ही इस समय आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । इस समय ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् न तो ब्रह्मा सदन में हैं और न स्वर्ग में ही है । इनमें वे कहीं पर भी समवस्थित नहीं जाने जाते हैं । जैसे अन्य

समय या स्थान में हों ऐसा भी नहीं जाने जाते हैं । हे देव! आप तो देवों के भी देव हैं । मेरे इस महान् संशय का छेदन कीजिए । इस माया में कहाँ पर स्थित हैं, किस कारण से स्थित हो रहे हैं और ऐसे किस प्रकार से वे अवस्थित हो रहे हैं । हे प्रभो! मैं अब आपके ही उपदेश से उन सबके पीछे अनुगमन करूँगा । यदि आपके हृदय में दया हो तो अब उन सबकी स्थित के विषय में मुझे बताइये । महादेवजी ने देवगुरु के उन वचनों का श्रवण किया था और उनके उपदेश का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था । फिर महादेव ने कहा था जो कि कर्म हुआ था और जिस प्रकार से वे सब माया में बद्ध हुए थे, यह सभी कुछ बता दिया था । महामाया महादेवी को भी अब ज्ञात करा दिया था इसी कारण से उस देवी की माया में बद्ध हुए भगवान् विष्णु सागर के जल में स्थित हैं । उसकी खोज करते हुए देवगण ब्रह्मा आदि सब फिर माया से बद्ध हुए उनके ही समीप में अत्यन्त संयत होते हुए स्थित रहते हैं ।

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उसी भाँति बद्ध हो जायेंगे और फिर जहाँ से आने में समर्थ नहीं हो सकेंगे । इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाता हूँ जहाँ पर गरुड़ध्वज प्रभु स्थित हैं । मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन सबका क्रम से मोचन करा दूँगा । इस प्रकार से देवगुरु के साथ मिलकर वृषभध्वज ने कहा था और फिर जहाँ पर देवों के समुदाय स्थित थे वहीं पर वे महेश्वर गए थे । वहाँ पर जाकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब वहाँ पर किसलिए स्थित हो रहे हैं । आप सब तो गमन और आगमन से रहित हो रहे हैं तथा एक जड़ की भाँति ज्ञान से वर्जित हो रहे हैं आप सब ऐसे किसलिए हो गए हैं ? हे देवगणों! यह सब मुझे बताइए । उन महादेवजी के इस वचन का श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उस समय में महादेवजी से यह कहा था ।

श्री भगवान् ने कहा—नीलकूट के शिखर पर से ऊपर की ओर

आकाश में गरुड़ के द्वारा गमन करते हुए मैंने महान् नीलगिरि को हाथ से पकड़ लिया था और मैं उसको ऊपर उठाना चाहता था क्योंकि वह गरुड़ की गति का कारण करने वाला था। वहाँ पर कामरूपों वाली उस कामाख्या योगनिद्रा ने मुझको पकड़कर महासागर के जल में फेंक दिया था। फिर मैं तल में पहुँच कर जो समुद्र का था अपने वाहन के सहित गिर गया था। हे अन्धक के सूदन करने वाले! मैं यहाँ पर बहुत अधिक समय से निवास कर रहा हूँ। मैं यहाँ पर ही इस महासागर के जल में ही चिरकाल से ही रहता हूँ। हे महेश्वर! वह महामाया मेरे ऊपर दया नहीं कर रही हैं और अभी तक भी मैं वैसा ही हो रहा हूँ। मेरे ही लिए सभी ओर से ब्रह्मा आदिक अब समागत हुए थे। महादेवी ने हठ से उन सबको भी माया के पाश से बद्ध कर दिया था। इस कारण से आप हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिए और अब मुझको शिवालय में ही ले चलिए और हम लोग इस बन्धन की विशेष हिंसा से उस महादेवी को प्रसन्न करेंगे। भगवान् हरि के उस वचन को सुनकर मैं करुणा से युक्त हो गया था अर्थात् मुझे दया आ गई थी। फिर मैं परम प्रीति से स्वयं ही ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु से बोला था।

यह कामपूर्वा ईश्वर का एक सुमनोहर कवच है। उस कवच को शरीर में बाँधकर और आप्लावित होकर पीछे मेरी और गमन करें। मैं भी कवच बाँधे हुए हूँ। इस कारण से माया के द्वारा यहाँ पर मेरे संसर्ग से ही बृहस्पति को निबृद्ध नहीं किया गया है। इस कारण से तुम लोग मेरे वचन से उस कवच का श्रवण कर लीजिए। जिसके द्वारा सुख के साथ भली-भाँति उपप्लुत होकर परमेश्वरी का दर्शन करेगा। ॐ कामाख्या कवच के ऋषि बृहस्पति कहे गए हैं। उसकी देवी कामेश्वरी देवी है तथा छन्द अनुष्टुप् होता है। उसका विनियोग सबकी सिद्धि में होता है। हे देवताओं! उसका आप श्रवण कीजिए। कण्ठ में महामाया रक्षा करें फिर हृदय में कामेश्वरी रक्षा करें। कामाख्या जठर में रक्षा करें और शारदा मुझको नाभि में रक्षा करें। त्रिपुरी दोनों पार्श्वों में रक्षा करे। मेदन में महामाया रक्षा करे। गुद में कामेश्वरी रक्षा करे और

कामाख्या मुझको दोनों ऊरुओं में रक्षित करे । दोनों घुटनों में शारदा देवी रक्षा करें और दोनों जाँघों से रक्षा करें । दोनों पादों में ये महामाया रक्षा करे और कामदा नित्य ही रक्षा करें । केश में कामेश्वरी रक्षा करे तथा दोनों अंगों में मातंगी रक्षा करे । दाँतों के समुदाय में भैरवी रक्षा करे तथा दोनों अंगों में मातंगी रक्षा करे । ललिता मेरी बाहुओं में रक्षा करे और दोनों प्राणियों में वनवासिनी रक्षा करे । अंगुलियों में विन्ध्यवासिनी देवी रक्षा करे और नखों की कोटियों में श्रीकामा रक्षा करे । समस्त रोम कूपों में सदा गुप्तकामा परित्राण करें । पैरों की अंगुलियों में तथा पार्ष्णिभाग में मेरी भुवनेश्वरी करे । जिह्वा में मेरी सेतु रक्षा करे तथा कण्ठ के भीतर की रक्षा करे । वक्षस्थल के अन्दर में लःरक्षा करे । बिन्दु के अन्दर से इन्दु रक्षा करे । समस्त नाड़ियों में रक्षाकर और ईकार सभी सन्धियों में मेरी रक्षा करे स्नायुओं में मेरा परित्राण चन्द्र करे तथा निरन्तर बिन्दु मज्जाओं में मेरी रक्षा करे ।

पूर्व दिशा में, आग्नेयी में, दक्षिण में, तथा नैर्ऋत में, वायव्य में, ईशान में, कौवेर में, हर मन्दिर में प्रत्येक में उनको देवों ने तत्क्षण में आरोहण कर-कर के पान किया था । स्नान किया था और पूर्व की ही भाँति उन्होंने अतुल प्रीति को प्राप्त किया था । वे सब नीरोग होकर अर्थात् परम स्वस्थ होते हुए वहाँ से गमन करे गए थे और परम विस्मय से आकृष्ट चेतना वाले हो गए थे । वे सभी स्तवन करते हुए तथा प्रस्तवन करते हुए गए थे जो कि कामाख्या देवी के योनि मण्डल की स्तुति करते हुए ही वहाँ से गए । इसके अनन्तर देव गुरु को उन्होंने प्रणाम किया था और मुझको भी अभिवादन किया था और मेरी स्तुति की थी । फिर मैंने उनको विदा किया था और वे सब देवगण हर्ष से विकसित लोचन वाले होते हुए स्वर्ग को चले गए थे । हे भैरव! कामाख्या देवी का ऐसा ही महात्म्य है और देवी का कवच भी इसी तरह का है जो कहा गया है । अब हे पुत्र! तत्त्व को प्राप्त करके अपने अभीष्ट के अनुसार विनियोग करके द्वारा उनकी प्राप्ति करके सुखी होओ । यह कामाख्या का माहात्म्य है । अब अन्य मैं क्या तुमको

बताऊँ। जिसकी योनि के शिलाबल से आयोग से लौह आदि धातुयें सुवर्ण हो जाया करती हैं। जो मानव इसके मण्डल में स्नान करके और एक बार भी प्रदक्षिणा करता है वह परम निर्वाण को प्राप्त किया करता है।

मातृका न्यास वर्णन

श्री भगवान् ने कहा–हे वेताल भैरव! अब तुम मातृका न्यास का श्रवण करो जिसके द्वारा मनुष्य भी किए जाने से देवत्व को प्राप्त कर लिया करता है। वाग् और ब्रह्माणी प्रमुख हैं जिनमें ऐसी देवियाँ मातृका पर कीर्तित की गयी हैं उनके प्रयोग किए हुए मन्त्र और सब व्यञ्जन तथा स्वरों को जो चन्द्र बिन्दु से समन्वित हैं सभी कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं। मातृका मन्त्रों का ऋषि ब्रह्मा ही कहे गए हैं। इनका छन्द गायत्री कहा गया है और इनका देवता सरस्वती देवी हैं। शरीर बुद्धि मुख्य में और सब कामार्थ साधन में विनियोग सनुद्दिष्ट किया गया है जो मन्त्रों की न्यूनता के पूरण करने में होता है। अकार के समकादि वेग है जो प्रथम कहा गया है। वहाँ पर स्थित चन्द्र बिन्दु से संयुक्त उन अक्षरों से बाहर आकर का उसी भाँति उच्चारण करके तथा अंगुष्ठों से नमः, इसको कह करके सबसे प्रथम अंगुष्ठों से मातृका मन्त्र का न्यास करना चाहिए।

वे सब चन्द्र बिन्दुओं से युक्त सब ओर से ही करने चाहिए। ह्रस्व इकार से और दीर्घ ईकारान्त 'क' वर्ग से पूर्व की ही भाँति जिसमें स्वाहा अन्त में हो भली भाँति तर्जनियों में निवास करना चाहिए। एकार जिसके आदि में हो ऐसा वर्ग को और ऐकारान्त से हुम् को अनामिकाओं के जोड़े में हे भैरव! नियत रूप से वहाँ पर न्यास करें। ओंकार जिसके आदि में हो ऐसे पवर्ग को और अशेष को ओंकार वाला तथा वौषट् अन्त में लगाकर कार्य की सिद्धि के लिए कनिष्ठका में न्यास करना चाहिए। अकार जिसके आदि में हो ऐसे यकारादि वर्ग से और 'क्ष' के अन्त वाले से तथा 'अ' 'इ' अन्त वाले बल को

प्राणियों के पृष्ठों में न्यास करे । शेष भाग में वषट्कार अस्त्र न्यास करना चाहिए । हृदय आदि छः अंगों में पूर्व की ही भाँति क्रम से न्यास करे । अंगुष्ठ जिनके आदि में हो ऐसे उक्त वर्गों से क्रम से उसी प्रकार छहों से करे ।

फिर उसी प्रकार से पाद, जानु, सक्थि, गुह्य और दोनों पार्श्वों तथा वस्ती में पूर्व की ही भाँति अक्षरों के द्वारा क्रम से मन्त्रों का न्यास करना चाहिए । दोनों बाहुओं में, दोनों हाथों में, कटि में, नाभि में, जठर में, दोनों स्तनों में उसी प्रकार छहों के द्वारा विन्यास का समाचरण करे । मुख में, चिबुक में गण्ड में, दोनों कानों में, ललाट में, दोनों आँखों में, कक्ष में, षड्वर्गों में पूर्व की ही भाँति न्यास करना चाहिए । रोक कूप में, ब्रह्मरन्ध्र में, गुदा में, दोनों जंघाओं में, नखों में, दोनों हाथों में और पादों में उसी क्रम से पूर्व की ही भाँति समाचरण करना चाहिए । इस रीति से जो श्रेष्ठ मनुष्य मातृकाओं का न्यास करता है वह समस्त यज्ञ पूजाओं में पूत (पवित्र) और योग्य हो जाया करता है । इससे परम श्रेष्ठ मन्त्र कहीं पर भी विद्यमान नहीं है । जो सब कामनाओं का देने वाला, पुण्यमय और चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है । वाग्देवता का हृदय में ध्यान करके और सब अक्षरों की पूर्तियों का ध्यान करके तीन बार क्रम युक्त मातृका मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर जल का पान करे ।

वह वाग्मी, पण्डित, श्रीमान् और श्रेष्ठ कवि हो तो जाता है । बुद्ध पुरुष को चाहिए कि पूर्व में चन्द्र बिन्दु से युक्त स्वरों को पढ़े । इसके पीछे केवल समस्त व्यञ्जनों को पढ़ना चाहिए । अकार से आदि लेकर क्षकार के अन्त तक को पूरक श्वासों से पढ़े । जल करतल में लेकर अक्षरों की संख्या को पढ़कर उस जल को अभिमन्त्रित करके प्रथम पूरकों के द्वारा पान करे । द्वितीय को कुम्भकों से तथा तृतीय को रेचकों से करे । इस प्रकार से करके विचक्षण पुरुष जल को पीकर, वह दृढ़ अंगों वाला, पण्डित और पुत्र-पौत्रों से समन्वित हो जाता है । मातृका मन्त्रों से मन्त्रित करके जल को तीनों सन्ध्याओं में पीना चाहिए ।

वह कवित्व को प्राप्त हो जाता है तथा जो भी कामों को मातृका मन्त्रों से मन्त्रित करके निरन्तर ऐसा करता है । हे महाभाग! पूरक, कुम्भक, रेचक से जल का पान करना है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके पुत्र-पौत्र की समृद्धि वाला हो जाता है ।

वह लोक में महाकवि, बलवान् और सत्यविक्रम वाला तथा सर्वत्र वल्लभ होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया करता है । वह राजा, राजपुत्र और भार्या को मातृका मन्त्र का पान से वश में कर लेता है । न्यास क्रम में क्रम कहा गया है । यहाँ पर ही वर्ग क्रम कहा गया है । अक्षरों के जल का पान करे । जो-जो मन्त्र देवों के, ऋषियों के, राक्षसों के हैं वे सब मन्त्र मातृका तथा देवों से परिपूर्ण है । यह चतुर्वर्गप्रद मातृका मन्त्र कहा जाता है । हे पुत्र! यह अद्भुत मातृका न्यास तुमको बता दिया है ।

मार्कण्डेय कथन

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—प्रजापति दक्ष की एक पुत्री नाम से सुरभि हुई थी । वह गोओं की माता थी और वह महाभाग सभी लोकों के उपकार करने वाली थी । प्रजापति कश्यप से उसके उदर से एक तनया ने जन्म ग्रहण किया था । नाम से वह रोहिणी थी । वह शुभ्रा और मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनाओं का दोहन करने वाली थी । उसमें अतीव तपोधन शुनःशेफ मुनि से जिसने जन्म प्राप्त किया था वह समस्त सुलक्षणों से युक्त कामधेनु, इस नाम से प्रख्यात हुई थी । वह सितमेघ के सदृश थी और चारों वेदों के चरणों वाली थी । वह अपने चारों स्तनों के द्वारा धर्म, अर्थ और कामों के प्रसव करने वाली थी । सुवर्ण के समान शरीर वाली उस कामधेनु ने जो सती थी, बहुत काल के होने पर निर्मिल और परम मनोहर यौवन को प्राप्त किया था । मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर सञ्चरण करती हुई, चारू स्वरूप वाली, सुन्दर लक्षणों से समन्वित उसको बेताल ने देखा था और उसका सौन्दर्य देखकर बेताल के हृदय में कामवासना समुत्पन्न हो गई थी ।

उस कामधेनु ने उस बेताल को कामुक जानकर पशु धर्म से स्वयं

ही उस चन्द्रशेखर के पुत्र का सेवन किया था । उस भगवान् शंकर के पुत्र ने उस कामधेनु में परम आनन्द की प्राप्ति की थी और उसने भी उससे आनन्द को प्राप्त करके बहुत ही हर्षित हुई थी । उन दोनों में सुरत क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाने पर गर्भ स्थित हो गया था । जब प्रसव काल में प्राप्त हुआ तो उस समय में उसने महावृष को प्रसूत किया था । वह थोड़े ही समय में सुमहान् वृषभ हो गया था । उसके बहुत बड़ा ककुद था और सुन्दर सींगों से वह युक्त था । उत्क्षेपण करके विचलित दोनों कानों वाला था और बहुत लम्बी उसकी पूँछ थी । वह ककुद् से, सीगों से और कानों से सितअभ्र के ही समान था । विचलन करते हुए उस शृंगों से सिताचल की ही भाँति देवों के द्वारा वह देखा गया था । बेताल ने उसका नाम शृंग, यही रखा था । यह शृंग बहुत ज्ञानवान् था और उसने ईश्वर की समाराधना की थी । वह भगवान् शम्भु भी उस पर परम तुष्ट हो गए थे और उसने अभीष्ट वरदान दिया था ।

भगवान् हर ने उसे वृषभ शरीर वाला बनाकर अपना वाहन बना लिया था । वह बल वाला और चिरायु था तथा पृथ्वी के धारण करने में समर्थ था । शृंग महान् तेज वाला था और वह प्रभु का केतु भी हो गया था क्योंकि शृंग होकर वह महान् आत्मा वाले भगवान् शंकर का प्यारा हो गया था । अतएव शृंग, इस ख्याति को प्राप्त हो गया था । वह शृंग महादेव के ध्यान में समासक्त हो जाने पर कभी-कभी वरुण के गृह में गमन किया करता था । वहाँ पर भी सुरभि की जो पुत्रियाँ थी वे रूप और यौवन से सम्पन्न थी । ये उनके साथ खूबसूरत रूप धारण करके उनका सेवन किया करता था । वरुण के गृह में सभी लक्ष्णों से युक्त सुता उत्पन्न हुई थी । जो बहुत थीं इनकी सूति-प्रसूतियों से यह जगत् व्याप्त हो रहा है और उनसे यज्ञ प्रवृत्त हुआ करता है । आज्य से देव सन्तुष्ट हुआ करते हैं और आज्य में ही यज्ञ प्रतिष्ठित होते हैं । यह सम्पूर्ण स्थावर और जंगम अर्थात् चर अचर जगत् यज्ञाधान होता है ।

वह आज्य गौओं के अधीन है, इससे सभी कुछ गौ में ही स्थित

रहा करता है । हे द्विजोत्तमों! यह सम्पूर्ण विश्व गौओं के ही अधीन रहा करता है । वे सब गौएँ बेताल के वंश में ही होने वाली हैं और सदा सबकी प्रिय होती हैं । जो महात्मा बेताल के इस चरित्र का नित्य श्रवण किया करता है और इनके वंशों से जन्म को सुनता है वह सब सुखी और बलवान् हुआ करता है । उस पुरुष की न तो गौयें नष्ट होती हैं और न कभी वैभव ही विनष्ट हुआ करता है । उस पुरुष की न तो गौयें नष्ट होती हैं और न कभी वैभव ही विनष्ट हुआ करते हैं । उस पुरुष को भूत पिशाच आदि भी कभी नहीं देखा करते हैं । बेताल स्वयं ही उनकी निरन्तर रक्षा किया करता है । हे विप्रो! यह मैंने आपको बता दिया है जिस तरह से बेताल और भैवर! दोनों ने जन्म लिया था और पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । अब तो आपके सभी संशय विच्छन्न हो गये होंगे । जिस तरह से कालिका देवी ने शंकर को मोहित किया था और जैसे शरीर के अर्ध में उत्पन्न हुई थी और भगवान् शुम्भ ने जैसे-जैसे किया था, यह सब कह दिया है । जो मनुष्य कालिका के लिए आपको नमस्कार है, ऐसा स्वयं कहता है उस पुरुष के हाथ में ही मुक्ति तो स्थित रहा करती है और तीनों का अर्थात् धर्म, अर्थ काम का वर्ग मुक्ति के ही वश में रहने वाला इनका अनुगामी हुआ करता है ।

इस रीति से परम पुण्यमय कालिका नाम वाला पुराण आपको वर्णित करके सुना दिया है । जो मन्त्रों से परिपूर्ण हैं, शुद्ध ज्ञान को देने वाला, कामनाओं का दाता परम श्रेष्ठ है । हे द्विजगणों! यह लोक में और वेदों में भी परम गोपनीय है । इसके लिए देवगन्धर्व और सिद्ध आदि सभी सदा स्पृहा किया करते हैं । इस पर उत्तम कालिका नामक पुराणमृत को महात्मा वसिष्ठ ने मुझसे ही सुना था और अध्ययन किया था । यह कामरूप सुरालय में भी इसी कारण से गुप्त है । हे महर्षिगणों! उसको इस समय में प्रकट करके ही भली भाँति आख्यात किया है । आप लोग भी इसको नहीं देवें यह सर्वदा लोकों में गोपन करने योग्य है । जो शठ हो, चञ्चल चित्त वाला हो, नास्तिक हो, अविजित आत्मा वाला हो, भक्ति और श्रद्धा से रहित हो उसको

इसे कभी भी नहीं देना चाहिए। जो एक बार भी इस कालिका पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके अमृतत्व अर्थात् देवत्व को प्राप्त किया करता है। जिससे मन्दिर में यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता जो पुराण सदा स्थित रहता है, हे द्विजो! उसको कभी विघ्न नहीं होता। जो प्रतिदिन इसका गोपनीय अध्ययन करता है जे कि यह परम तन्त्र है। हे द्विज श्रेष्ठों! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वेदों क अध्ययन कर लिया है। इस कारण से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है। विलक्षण पुरुष इसके अध्ययन से कृतकृत्य हो जाता है।

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाली भी हो जाता है। जो निरन्तर लोक का पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है। यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है, अतएव उसके लिए नमस्कार है। योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है, जो पुराणों के अधिपति भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न हों। जो उग्र हेतु है, पुराण पुरुष है, जो शाश्वत तथा सनातन रूप ईश्वर है, जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणों के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिए मैं स्तवन करता हूँ और अभिवादन करता हूँ। जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से स्मरण किया करती है, जो मधुरिपु को भी मोह कर देने वाली हैं, जिसका स्वरूप रमा है और शिवा के स्वरूप से जो भगवान् शंकर का रमण कराया करती है माया आपके विभव को और शुभों को वितरित करे।

॥ श्रीकालिका पुराण समाप्त ॥

काली का अर्थ तत्व

काली का शाब्दिक अर्थ है–**कालः**

अर्थात 'शिवः तस्य पत्नि काली ।'

अथवा **'काली'** शिव की पत्नी का नाम है ।

ये काली (भगवती) आदि और अन्त रहित अजन्मा और पूरे चराचर विश्व की स्वामिनी है । ये काल को उत्पन्न करने वाली तथा स्वयं उसे भी खा जाने वाली है । साकार-उपासकों और साधकों की सुविधा के लिए तन्त्र आदि शास्त्रों में इन्हीं का निराकार काली के गुण, ध्यान तथा स्वरूप आदि का वर्णन है ।

पौराणिक काली (मार्कण्डेय पुराण या दुर्गा सप्तशती में वर्णित) जो अम्बिका के ललाट से उत्पन्न हुई वह इन आद्या काली से भिन्न हैं । वे श्री दुर्गा जी के स्वरूपों से एक स्वरूप हैं ।

ॐ卐ॐ

काली साधना मन्त्र

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

दक्षिण कालिका का यह बाईस अक्षर का मन्त्र सब मन्त्रों में प्रधान माना गया है । इस मन्त्र के वर्णों का अर्थ इस प्रकार है–

जलरूपी 'ककार' मोक्ष को प्रदान करने वाला है तथा अग्नि रूप 'रेफ' सर्वतेजोमयी है । **'क्रीं क्रीं क्रीं**– ये तीनों बीज सृष्टि, स्थिति एवं लय को करने वाले हैं ।' **'बिन्दु'** निष्कल ब्रह्मरूप है, अतः कैवल्य फल को देने वाला है । **हूं हूं**– ये दोनों बीज शब्दज्ञान को देने वाले हैं । **ह्रीं ह्रीं**– ये दोनों बीज सृष्टि, स्थिति एवं लय को करने वाले हैं । **'दक्षिण कालिके'**–इस सम्बोधन से देवी का सामीप्य प्राप्त होता है तथा **'स्वाहा'**–यह मन्त्र संसार का मातृ स्वरूप है तथा समस्त पापों को क्षय करने वाला है ।

ॐ卐ॐ

काली साधना मन्त्र

भद्रकाली-मन्त्र

अब भद्रकाली के मन्त्र का वर्णन किया जाता है । वह इस प्रकार है–

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

यह बीस वर्ण वाला भद्रकाली का मन्त्र साधक को चतुर्वर्ग फल प्रदान करता है ।

卐 ॐ 卐

श्मशान काली-मन्त्र

इस श्मशान काली के मन्त्र का वर्णन किया जाता है । वह इस प्रकार है–

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशान काली क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

इस इक्कीस अक्षर के मन्त्र से श्मशान काली की पूजा करनी चाहिए । यह भी चतुर्वर्गदायक है ।

卐 ॐ 卐

महाकाली-मन्त्र

अब महाकाली के मन्त्र का वर्णन किया जाता है । वह इस प्रकार है–

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं महाकाली क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

इस बीस अक्षर के मन्त्र द्वारा महाकाली का पूजन करना चाहिए । यह भी चतुर्वर्गफलदायक है ।

卐 ॐ 卐

काली गायत्री मन्त्र

ॐ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात् ।

पूजन विधि–इन देवियों में पूजन में यह विशेषता है कि यन्त्र के भूपुर में इन्द्रादि दिक्पाल तथा वज्रादि अस्त्र, भूपुर के चतुर्द्वार में विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश; भूगृह में लोकपाल, बाह्य में देवी के अस्त्र तथा भूपुर के चारों ओर पूर्वादि क्रम से विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश का पूजन करना चाहिए।

इसी प्रकार यन्त्र में ही गुह्यकाली, भद्रकाली, श्मशान काली–इन चारों देवियों का पूजन करना चाहिए। इनका यन्त्र सम्बन्धी कोई भेद नहीं है। सबके यन्त्र एक समान हैं। इनके यन्त्र का स्वरूप नीचे बताया गया है।

यन्त्र का स्वरूप–उक्त चारों देवियों में यन्त्र को अंकित करने की विधि यह है कि पहले त्रिकोण, फिर षट्कोण तथा नवकोण अंकित करके उसके बाहर तीन वृत्त तथा केशर सहित अष्टदल पद्म अंकित करे। फिर तीन भूपुर वाला एक चुरस्त्रद्वार संयुक्त योनि मण्डल का स्वरूप अंकित करना चाहिए। यह **'त्रिपञ्चार यन्त्र'** सब यन्त्रों से प्रसिद्ध हैं।

卐 ॐ 卐

गुह्य काली के मन्त्र

अब **'गुह्यकाली'** के मन्त्र तथा पूजा-प्रणाली का वर्णन किया जाता है। यह महाविद्या त्रिभुवन में अत्यन्त दुर्लभ तथा धर्मार्थ काम मोक्ष को देने वाली, महापापों को नष्ट करने वाली, समस्त सिद्धियों की प्रदाता, सनातनी तथा भोग को देने वाली प्रसिद्ध है।

क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

नाम-भेद से यह मन्त्र गुह्यकाली तथा दक्षिणा काली दोनों की ही आराधना में प्रयुक्त होता है। यह मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

गुह्यकाली के अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं–

क्रीं हूं ह्रीं गुह्य कालिके क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

इस षोडशाक्षर मन्त्र द्वारा आराधना करने पर साधक को चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है।

क्रीं हूं ह्रीं गुह्ये कालिके हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

यह चतुर्दशाक्षर मन्त्र सब तन्त्रों में गुप्त है । इस मन्त्र में 'गुह्ये' के स्थान पर 'दक्षिणे' पद जोड़ने से पंचदशाक्षरी दक्षिण कालिका का मन्त्र होता है । यथा—

क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

गुह्यकाली का चतुर्दशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—

हूं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

गुह्य काली का नवाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—

क्रीं गुह्ये कालिके क्रीं स्वाहा ।

इसी मन्त्र में 'गुह्ये' के स्थान पर दक्षिणे शब्द जोड़ने पर दक्षिणा कालिका का दशाक्षर मन्त्र बनता है । यथा—

क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा ।

इस सब मन्त्रों की साधना में दक्षिण कालिका की पूजा-पद्धति में लिखे नियमानुसार न्यासादि करके पूजा तथा बलि करनी चाहिए । इसके बलिदान में यह विशेषता है कि पूर्व नियमानुसार बलि उत्सर्ग करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा बलि को निवेदित करना चाहिए ।

ऐं ह्रीं ऐह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि गृहण बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रु क्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा ।

यदि गुह्यकाली के लिए बलि निवेदित करनी हो तो इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—

ऐह्येहि गुह्य कालिके मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रुन नाशय नाशय खादय स्फुर स्फुर छिन्धि छिन्धि सिद्धिं देहि हूं फट् स्वाहा ।

आसन का मन्त्र भी अन्य प्रकार से है । यथा—

ॐ सदाशिव महाप्रेताय गुह्य कल्पासनाय नमः ।

श्रीकाली क्षमापराधस्तोत्रम्

प्राग्देहस्थो यदाऽहं तव चरणयुंग नाश्रितो नार्च्चितोऽहं ।
तेनाद्या कीर्तिवर्गैर्जठरजदहने वर्द्धयमानो बलिष्ठैः ॥
क्षिप्त्वा जन्मान्तरान्नः पुनरिह भविता क्वाश्रयः क्वापि सेवा ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
बाल्ये बालाभिलाषैर्ज्जडित-जडमतिर्बाललीलाप्रसक्तो ।
न त्वां जानामि मातः कलिकलुषहरां भोगमोक्षप्रदात्रीम् ॥
नाचारो नैव पूजा न च यजनकथा न स्मृतिर्नैव सेवा ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
प्राप्तोऽहं यौवनञ्चेद्विषधरसदृशैरिन्द्रियैर्दष्टगात्रो ।
नष्टप्रज्ञः परस्त्रीपरधनहरणे सर्व्वदा साभिलाषः ॥
त्वत्पादाम्भोजयुग्मं क्षणमपि मनसा न स्मृतोऽहं कदापि ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
प्रौढो भिक्षाभिलाषी सुतदुहितृकलत्रार्थमन्नादिचेष्टाः ।
क्व प्राप्स्ये कुत्र यामीत्यनुदिनमनिशञ्चिन्तया मग्नदेहः ॥
नो ते ध्यानं न चास्था न च भजनविधिर्नामसंकीर्तनं वा ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
वृद्धत्वे बुद्धिहीनः कृशविवशतनुश्श्वासकासातिसारैः ।
कर्म्मानर्होऽक्षिहीनः प्रगलितदशनः क्षुत्पिपासाभिभूतः ॥
पश्चात्तापेन दग्धो मरणमनुदिनन्ध्येयमात्रन्नचान्यत् ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितसदने कामरूपे कराले ॥
कृत्वा स्नानं दिनादौ क्वचिदपि सलिलं नो कृतं नैव पुष्पं ।
ते नैवेद्यादिकञ्च क्वचिदपि न कृतं नापि भावो न भक्तिः ॥
न न्यासो नैव पूजा न च गुण कथनं नापि चाऽर्चा कृता ते ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
जानामि त्वां न चाहं भवभयहरणीं सर्व्वसिद्धिप्रदात्रीं ।
नित्यानन्दोदयाढ्यान्त्रितयगुणमयीं नित्यशुद्धोदयाढ्याम् ॥
मिथ्या कर्म्माभिलाषैरनुदिनमभितः पीडितो दुःखसङ्घैः ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
कालाभ्रां श्यामलाङ्गीं विगलितचिकुरां खड्गमुण्डाभिरामां ।
त्रासत्राणेष्टदात्रीम् कुणपगणशिरो मालिनीं दीर्घनेत्राम् ॥
संसारस्यैकसारं भवजननहरां भावितो भावनाभिः ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
ब्रह्माविष्णुस्तथेशः परिणमति सदा त्वत्पदाम्भोजयुग्मम् ।
भाग्याभावान्न चाहम्भवजननि भवत्पादयुग्मं भजामि ॥

नित्यं लोभप्रलोभैः कृतवशमतिः कामुकस्त्वाम्प्रयाचे ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
रागद्वेषैः प्रमत्तः कलुषयुततनुः कामनाभोगलुब्धः ।
कार्य्याऽकार्य्याऽविचारी कुलमतिरहितः कौलसङ्घैर्विहीनः ॥
क्व ध्यानं ते क्व चाऽर्चा क्व च मनुजपनैव किञ्चित् कृतोऽहम् ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
रोगी दुःखी दरिद्रः परवशकृपणः पांशुलः पापचेताः ।
निद्रालस्यप्रसक्तः सुजठरभरणे व्याकुलः कल्पितात्मा ॥
किं ते पूजाविधानं त्वयि क्वच नुमतिः क्वानुरागः क्व चास्था ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
मिथ्या व्यामोहरागैः परिवृतमनसः क्लेशसङ्घान्वितस्य ।
क्षुन्निद्रौघान्वितस्य स्मरणविरहिणः पापकर्मप्रवृत्तेः ॥
दारिद्र्यस्य क्व धर्मः क्व च जननि रुचिः क्व स्थितिस्साधुसङ्गैः ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
मातस्तातस्य देहाज्जननिजठरगः संस्थितस्त्वद्वशेऽहम् ।
त्वं हन्त्री कारयित्री करणगुणमयी कर्महेतुस्वरूपा ॥
त्वम्बुद्धिश्चित्तसंस्थाप्यहमतिभवती सर्व्वमेतत्क्षमस्व ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
त्वम्भूमिस्त्वं जलञ्च त्वमसि हुतवहस्त्वं जगद्वायुरूपा ।
त्वं चाकाशम्मनश्च प्रकृतिरसि महत्पूर्व्विका पूर्वपूर्वा ॥
आत्मा त्वं चासि मातः ! परमसि भवती त्वत्परं नैव किञ्चित् ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
त्वं काली त्वं च तारा त्वमसि गिरिसुता सुन्दरी भैरवी त्वं ।
त्वं दुर्गा छिन्नमस्ता त्वमसि च भवना त्वं हि लक्ष्मीः शिवा त्वम् ॥
धूमा मातङ्गिनी त्वं त्वमसि च बगला मङ्गलादिस्तवाख्या ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥
स्तोत्रेणानेन देवीम्परिणमति जनो यः सदा भक्तियुक्तो ।
दुष्कृत्यादुर्गसंङ्घम्परितरति शतं विघ्नता नाशमेति ॥
नाधिर्व्याधिः कदाचिद्भवति यदि पुनस्सर्वदा सापराधः ।
सर्वं तत्कामरूपे त्रिभुवनजननि क्षामये पुत्रबुद्ध्या ॥
ज्ञाता वक्ता कवीशो भवति धनपतिर्दानशीलो दयात्मा ।
निःपापी निष्कलङ्की कुलपतिकुशलः सत्यवाग्धार्मिकश्च ॥
नित्यानन्दो दयाढ्यः पशुगणविमुखस्सत्पथाचारशीलः ।
संसाराब्धिं सुखेन प्रतरति गिरिजापादयुग्मावलम्बात् ॥

॥ इति श्रीकाली-अपराधक्षमापन-स्तोत्रम् ॥

श्रीकाली के सम्बन्ध में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का यथार्थ रूप

श्मशानवासिनी–भगवती को श्मशानवासिनी भी कहा गया है । श्मशान का जो व्यावहारिक अर्थ होता है (जहाँ शव जलाये जाते हों) वह अर्थ यहाँ नहीं होता । श्मशान का भाव इस प्रकार जानना चाहिए–

पंच महाभूत चिद्ब्रह्म में लय होते हैं । आद्याकाली चिद्ब्रह्म स्वरूपा हैं। लय होने के स्थान को श्मशान कहा जाता है । इस प्रकार जिस स्थान पर पंच महाभूत लय हों, वही श्मशान है और भगवती वहीं निवास करती हैं ।

सांसारिक काम, क्रोध, रागादि जिस स्थान पर भस्म होते हैं वह भी श्मशान है । इनके भस्म होने का स्थान मन है । जो मन काम, क्रोध, रागादि से रहित हो उसी श्मशान के समान मन में भगवती काली निवास करती हैं ।

अतःकाली के उपासकों को चाहिए कि वे अपने हृदय में काली को स्थापित करने से पूर्व उसे श्मशान के समान अर्थात् समस्त रागों से मुक्त बना लें ।

श्मशान में चिता–श्मशान में चिता के जलाने का अर्थ है–हृदय में ज्ञानाग्नि का निरन्तर बने रहना । अतः साधक को अपने श्मशानवत् हृदय में ज्ञानरूपी चिता को सदा जलाये रहना चाहिए ।

भगवती का आसन–भगवती का आसन शव का कहा गया है । इसका अर्थ यह है कि जब शिव से शक्ति अलग होती है 'शिव' शव रह जाता है । उस स्थिति में भगवती उसके ऊपर अपना आसन करती हैं अर्थात् उस पर अपनी कृपा करती हैं और उसे स्वयं में मिलाकर उसे भौतिक संसार से मुक्त कर देती हैं ।

मुक्तकेशी–काली के बाल बिखरे हुए हैं–इसका आशय यह है कि भगवती केश-विन्यास आदि विलास के विकारों से मुक्त हैं ।

त्रिनेत्रा–इसका अर्थ है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों ही भगवती के नेत्र स्वरूप हैं । अथवा भगवती तीनों कालों भूत, भविष्य तथा वर्तमान को जाननेवाली हैं ।

बालावतंसा–काली ने अपने कानों में बालक का शव पहना है । इसका मतलब है कि वे बालस्वरूप निर्विकार साधक को अपने कानों के पास रखती हैं या बालक के समान सच्चे साधक के समीप ही उनके कान रहते हैं ।

प्रकटितरदना–श्री काली के दाँत बाहर निकले हैं और वे उनसे बाहर निकली जीभ को दबाये हैं । इसका आशय है कि भगवती रजोगुण तथा तमोगुण रूपी जीभ को सत्वगुण रूपी उज्ज्वलता से दबाये हुए हैं ।

पीनपयोधरा–श्रीकाली के स्तन बड़े तथा उन्नत हैं अर्थात् भगवती अपने स्तनों से तीनों लोकों को अमृतमय दूध रूपी आहार देकर उनका पालन करती हैं यानी वे अपने साधकों को अमरत्वरूपी दूध पान कराती हैं ।

चिर यौवना–इसका आशय है कि देवी में अवस्था (उम्र) सम्बन्धी कोई परिवर्तन नहीं होता । वे सदा युवावस्था में रहती हैं, वे अपरिवर्तनशीला हैं ।

करालवदना–काली का रूप भयानक काला है । इसका आशय है कि देवी का स्वरूप देखकर सामान्यजन भयभीत होते हैं । लेकिन जिनके चित्त में देवी का वास है या जो माँ काली के भक्त हैं, उन्हें डरने का कोई कारण नहीं । क्योंकि माँ काली के भक्तों से काल (यम) भी भयभीत रहता है ।

श्रीमद् शंकराचार्य विरचित–

श्री कालिकाष्टक

ध्यान

गलद्रक्तमुण्डावलीकण्ठमाला,

महोघोरराव सुदंष्ट्रा कराला ।

विवस्त्रा श्मशानालया मुक्तकेशी,

महाकालकामाकुला कालिकेयम ॥१॥

वे भगवती काली अपने कण्ठ में रक्त टपकते हुए मुण्डों की माला को पहने हुए हैं, वे अत्यन्त घोर शब्द कर रहीं हैं, उनकी सुन्दर दाढ़ें भयानक हैं, वे वस्त्रहीना हैं, वे श्मशान में निवास करती हैं, उनके केश बिखरे हुए हैं और वे महाकाल के साथ कामातुर हो रही हैं ॥१॥

भुजेवामयुग्मे शिरोऽसि दधाना,

वरं दक्षयुग्मेभयं वै तथैव ।

सुमध्याऽपि तुङ्गस्तना भरनम्रा,

लसद्रक्तसृक्कद्वया सुस्मितास्या ॥२॥

वे अपने दोनों बायें हाथों में नरमुण्ड तथा खड्ग को धारण किये हैं तथा दोनों दाएँ हाथों में वर तथा अभय मुद्रा लिए हैं। वे सुन्दर कटि वाली, उत्तुङ्गस्तनों के भार से झुकी हुई सी, दो रक्तमालाओं से सुशोभित तथा मधुर-मुस्कान से युक्त हैं ॥२॥

शवद्वन्द्वकर्णावतंसा सुकेशी,

लसत्प्रेतपाणिं प्रयुक्तैककांची ।

शवाकारमञ्चाधिरूढा शिवाभि-

श्चतुर्दिक्षु शब्दायमानाऽभिरेजे ॥३॥

भावार्थ– उनके कानों में दो शवरूपी आभूषण हैं, उनके केश सुन्दर हैं, वे शवों के हाथों से सुशोभित करधनी को धारण किये हुए हैं, वे शवरूपी मंच पर आरूढ़ हैं तथा उनके चारों ओर शिवाओं का शब्द गूँज रहा है ॥३॥

स्तुति

विरंच्यादिदेवास्त्रयस्ते गुणास्त्रीन्,

समाराध्य कालीं प्रधाना बभूवुः ।

अनादिं सुरादिं मखादिं भवादिं,

स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥१॥

भावार्थ—हे देवि ! तुम्हारे त्रिगुणात्मक रूप से उत्पन्न ब्रह्मा आदि तीनों देवता तुम्हारी ही आराधना करके प्रधान हुए हैं। तुम्हारा स्वरूप अनादि, सुरादि तथा विश्व का मूलभूत है, उसे देवता भी नहीं जानते हैं ॥१॥

जगन्मोहिनीयम् तु वाग्वादिनीयम्,

सुहृद्पोषिणी शत्रुसंहारणीयम् ।

वचःस्तम्भनीयम् किमुच्चाटनीयम्,

स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥२॥

भावार्थ—तुम्हारी मूर्ति संसार को मोहित करनेवाली, शत्रुओं का संहार करनेवाली, वचन का स्तम्भन करनेवाली तथा दुष्टों का उच्चाटन करनेवाली है, तुम्हारे इस स्वरूप को देवता भी नहीं जानते हैं ॥२॥

इयं स्वर्गदात्री पुनः कल्पवल्ली,

मनोजास्तु कामन्यथार्थ प्रकुर्यात् ।

तथा ते कृतार्था भवन्तीति नित्यं,

स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥३॥

भावार्थ—ये मूर्ति स्वर्ग को देनेवाली, कल्पलता के समान और भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाली है, जिससे वे सदैव कृतार्थ बने रहते हैं। तुम्हारे इस स्वरूप को देवता भी नहीं जानते हैं ॥३॥

सुरापानमत्ता सुभक्तानुरक्ता,

लसत्पूतचित्ते सदाविर्भवस्ते ।

जपध्यानं पूजासुधाधौतपंका,

स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥४॥

भावार्थ–तुम सुरापान से मस्त रहती हो तथा अपने भक्तों पर कृपा बिखेरती हो, जप-ध्यान-पूजा रूपी अमृत से निर्मल तथा पवित्र हृदय से तुम्हारा अविर्भाव सुशोभित होता है। तुम्हारे इस स्वरूप को देखता भी नहीं जानते हैं ।।४।।

चिदानन्दकन्दं हंसन्मन्दमन्दं,
शरच्चन्द्र कोटिप्रभापुञ्जबिम्बम् ।
मुनीनां कवीनां हृदि द्योतमानं,
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ।।५।।

भावार्थ–तुम चिदानन्द की मूल, मन्द-मन्द मुस्काने वाली, करोड़ों शरद् चन्द्रमाओं की प्रभा से युक्त मुख वाली एवं मुनियों तथा कवियों के हृदय को प्रकाशित करने वाली हो। तुम्हारे इस स्वरूप को देवता भी नहीं जानते हैं।

महामेघकाली सुरक्ताऽपि शुभ्रा,
कदाचिद्विचित्रा कृतिर्योगमाया ।
न बाला न वृद्धा न कामातुराऽपि,
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ।।६।।

भावार्थ–तुम महामेघों के समान कृष्णवर्णा, रक्तवर्णा तथा शुभ्रवर्णा भी हो। तुम कभी-कभी विचित्र आकृति को धारण करने वाली योगमाया हो। तुम न बाला हो, न वृद्धा हो और न कामातुरा हो। तुम्हारे स्वरूप को देवता भी नहीं जानते हैं ।।६।।

क्षमास्वापराधं महागुप्तभावं,
मयालोकमध्ये प्रकाशीकृतं यत् ।
तव ध्यानपूतेन चापल्यभावात्,
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ।।७।।

भावार्थ–मैंने तुम्हारे ध्यान से पवित्र चापल्यभाव से तुम्हारे अत्यन्त गुप्त भाव को जो संसार में प्रकट कर दिया है, उस अपराध के लिए तुम मुझे क्षमा करो। तुम्हारे इस स्वरूप को देखता भी नहीं जानते हैं ।।७।।

यदि ध्यान युक्तं पठेद्यो मनुष्य,-
स्तदा सर्वलोके विशालो भवेच्च ।
गृहे चाष्टसिद्धिर्मृते चापि मुक्तिः
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥८॥

भावार्थ–जो मनुष्य ध्यान युक्त होकर इस अष्टक का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण संसार में उच्चपद प्राप्त करता है। उसके घर में आठों सिद्धियाँ बनी रहती हैं तथा मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है। हे देवि ! तुम्हारे इस स्वरूप को देवता भी नहीं जानते हैं ॥८॥

॥ इति श्री मच्छंकराचार्य विरचितं श्रीकालिकाष्टम् समाप्तम् ॥

●

श्री काली स्तुति

या कालिका रोगहरा सुवंद्या वैश्यैः समस्तै व्यवहारदक्षैः ।
जनैर्जनानां भयहारिणी च सा देवमाता मयि सौख्यदात्री ॥१॥
या माया प्रकृतिः शक्तिश्चण्डमुण्ड विमर्दिनी ।
सा पूज्या सर्वदेवैश्च ह्यस्माकं वरदाभव ॥२॥
विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्याभवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३॥
देवि प्रपन्नर्तिहरे प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरी पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥४॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापत्मनां कृतिधियां हृदयेषु बुद्धि ।
श्रद्धां सतां कुलजन प्रभवश्य लज्जा
तां त्वां नताः स्मरपरिपालय देवि विश्वम् ॥५॥

●

श्रीकाली चालीसा

दोहा–जय काली जगदम्ब जय, हरनि ओघ अघ पुंज ।
वास करहु निज दास के, निशदिन हृदय-निकुंज ॥
जयति कपाली कालिका, कंकाली सुख दानि ।
कृपा करहु वरदायिनी, निज सेवक अनुमानि ॥

जय जय जय काली कंकाली । जय कपालिनी, जयति कराली ॥
शंकर प्रिया, अपर्णा, अम्बा । जय कपर्दिनी, जय जगदम्बा ॥
आर्या, हला, अम्बिका, माया । कात्यायनी उमा जगजाया ॥
गिरिजा गौरी दुर्गा चण्डी । दाक्षाणायिनी शम्भवी प्रचंडी ॥
पार्वती मंगला भवानी । विश्वकारिणी सती मृडानी ॥
सर्वमंगल शैल नन्दिनी । हेमवती तुम जगत वन्दिनी ॥
ब्रह्मचारिणी कालरात्रि जय । महारात्रि जय मोहरात्रि जय ॥
तुम त्रिमूर्ति रोहिणी कालिका । कूष्माण्डा कार्तिकी चण्डिका ॥
तारा भुवनेश्वरी अनन्या । तुम्हीं छिन्नमस्ता शुचिधन्या ॥
धूमावती षोडशी माता । बगला मातंगी विख्याता ॥
तुम भैरवी मातु तुम कमला । रक्तदन्तिका कीरति अमला ॥
शाकम्भरी कौशिकी भीमा । महातमा अग जग की सीमा ॥
चन्द्रघण्टिका तुम सावित्री । ब्रह्मवादिनी माँ गायत्री ॥
रुद्राणी तुम कृष्ण पिंगला । अग्निज्वाला तुम सर्वमंगला ॥
मेघस्वना तपस्विनि योगिनी । सहस्त्राक्षि तुम अगजन भोगिनी ॥
जलोदरी .सरस्वती डाकिनी । त्रिदशेश्वरी अजेय लाकिनी ॥
पुष्टितुष्टि धृति स्मृति शिव दूती । कामाक्षी लज्जा आहूती ॥
महोदरी कामाक्षि हारिणी । विनायकी श्रुति महा शाकिनी ॥
अजा कर्ममोही ब्रह्मणी । धात्री बाराही शर्वाणी ॥
स्कन्द मातु तुम सिंह वाहिनी । मातु सुभद्रा रहहु दाहिनी ॥
नाम रूप गुण अमित तुम्हारे । शेष शारदा बरणत हारे ॥
तनु छवि श्यामवर्ण तव माता । नाम कालिका जग विख्याता ॥
अष्टदश तव भुजा मनोहर । तिनमहं अस्त्र विराजत सुंदर ॥
शंख चक्र अरु गदा सुहावन । परिघ भुशुण्डी घण्टा पावन ॥
शूल बज्र धनुबाण उठाये । निशिचर कुल सब मारि गिराये ॥
शुंभ निशुंभ दैत्य संहारे । रक्तबीज के प्राण निकारे ॥

चौंसठ योगिनी नाचत संगा। मद्यपान कीन्हेउ रण गंगा ॥
कटि किंकिणी मधुर नूपुर धुनि। दैत्यवंश कांपत जेहि सुनि-सुनि ॥
कर खप्पर त्रिशूल भयकारी। अहै सदा सन्तन सुखकारी ॥
शव आरूढ़ नृत्य तुम साजा। बाजत मृदंग भेरि के बाजा ॥
रक्त पान अरिदल को कीन्हा। प्राण तजेउ जो तुम्हिं न चीन्हा ॥
लपलपति जिह्वा तव माता। भक्तन सुख दुष्टन दुःख दाता ॥
लसत भाल सेंदुर को टीको। बिखरे केश रूप अति नीको ॥
मुंडमाल गल अतिशय सोहद। भुजामाल किंक्कण मनमोहत ॥
प्रलय नृत्य तुम करहु भवानी। जगदम्बा कहि वेद बखानी ॥
तुम मशान वासिनी कराला। भजत तुरत काटहु भवजाला ॥
बावन शक्ति पीठ तव सुन्दर। जहाँ बिराजत विविध रूप धर ॥
विन्ध्यवासिनी कहूँ बड़ाई। कहूँ कालिका रूप सुहाई ॥
शाकम्भरी बनी कहुँ ज्वाला। महिषासुर मर्दिनी कराला ॥
कामाख्या तव नाम मनोहर। पुजवहिं मनोकामना द्रुततर ॥
चंड मुंड वध छिन महं करेउ। देवन के उर आनन्द भरेउ ॥
सर्व व्यापिनी तुम माँ तारा। अरिदल दलन लेहु अवतारा ॥
खलबल मचत सुनत हुँकारी। अगजग व्यापक देह तुम्हारी ॥
तुम विराट रूपा गुणखानी। विश्व स्वरूपा तुम महारानी ॥
उत्पति स्थिति लय तुम्हरे कारण। करहु दास के दोष निवारण ॥
माँ उर वास करहू तुम अंबा। सदा दीन जन की अवलंबा ॥
तुम्हरो ध्यान धरै जो कोई। ता कहँ भीति कतहुँ नहिं होई ॥
विश्वरूप तुम आदि भवानी। महिमा वेद पुराण बखानी ॥
अति अपार तव नाम प्रभावा। जपत न रहत रंच दुःख दावा ॥
महाकालिका जय कल्याणी। जयति सदा सेवक सुखदानी ॥
तुम अनन्त औदार्य विभूषण। कीजिये कृपा क्षमिये सब दूषण ॥
दास जानि निज दया दिखावहु। सुत अनुमानित सहित अपनावहु ॥
जननी तुम सेवक प्रति पाली। करहु कृपा सब विधि माँ काली ॥
पाठ करै चालीसा जोई। तापर कृपा तुम्हारी होई ॥

दोहा:—जय तारा जय दक्षिणा, कलावती सुखमूल ।
शरणागत 'राजेश' है, रहहु सदा अनुकूल ॥

॥ इति काली चालीसा समाप्त ॥

आरती : श्रीकाली जी की

मंगल की सेवा सुन मेरी देवा, हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़े ।
पान सुपारी ध्वजा नारियल, ले ज्वाला तेरी भेंट करें ॥
सुन जगदम्बा कर न विलम्बा, सन्तन के भण्डार भरें ।
सन्तन प्रतिपाली सदा खुशहाली, जय काली कल्याण करें ॥१॥

'बुद्धि' विधाता तू जगमाता, मेरा कारज सिद्ध करें ।
चरण कमल का लिया आसरा, शरण तुम्हारी आन पड़े ॥
जब जब भीड़ पड़े भक्तन पर, तब तब आप सहाय करें ।
सन्तन प्रतिपाली सदा खुशहाली, जय काली कल्याण करें ॥२॥

'गुरु' के वार सकल जग मोहे, तरुणी रुप अनूप धरे ।
माता होकर पुत्र खिलावै, कहीं भार्या होकर भोग करें ॥
'शुक्र' सुखदाई सदा सहाई, सन्त खड़े जय कार करें ।
सन्तन प्रतिपाली सदा खुशहाली, जय काली कल्याण करें ॥३॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश फल लिए, भेंट देन सब द्वार खड़े ।
अटल सिंहासन बैठी माता, सिर सोने का छत्र धरे ॥
वार 'शनिचर' कुमकुम वरणी, जब लुंगड़ पर हुक्म करे ।
सन्तन प्रतिपाली सदा खुशहाली, जय काली कल्याण करे ॥4॥

खडग खप्पर त्रिशूल हाथ लिये, रक्तबीज को भस्म करे ।
शुम्भ निशुम्भ क्षणहि में मारे, महिषासुर को पकड़ दरे ॥
'आदित' वारी आदि भवानी, जन अपने का कष्ट हरे ।
सन्तन प्रतिपाली सदा खुशहाली, जय काली कल्याण करे ॥५॥